M.A./M.Sc. GE-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

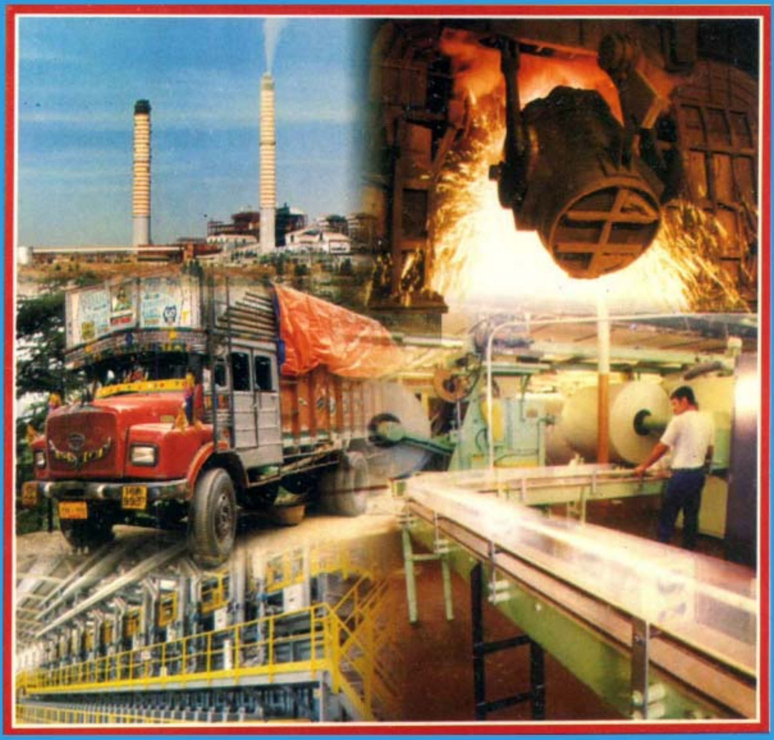

आर्थिक भूगोल के सिद्धान्त

M.A./M.Sc. GE-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आर्थिक भूगोल के सिद्धान्त

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक/समन्वयक

विषय समन्वयक / सलाहकार

प्रोफेसर (डॉ.)एस.सी. कलवार

पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

सदस्य सचिव

डॉ. अशोक शर्मा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रोफेसर (डॉ.) संतोष शुक्ला**
   प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
   सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग
   एच.एस. गौर विश्वविद्यालय, सागर(मध्य प्रदेश)
2. **डॉ. जे.के. जैन**
   पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर(राज.)
3. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)
4. **प्रोफेसर (डॉ.) एन.एल. गुप्ता**
   पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)
5. **डॉ. मनोज गौतम**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)

सम्पादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

श्री हरक चन्द जैन

पूर्व प्राचार्य

राजकीय महाविद्यालय, सागवाड़ा

जिला डुंगरपुर(राज.)

लेखक

1. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)
2. **डॉ. इशाक मोहम्मद**
   एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
   मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)
3. **डॉ. आर.बी. उपाध्याय**
   पूर्व विभागाध्यक्ष
   भूगोल विभाग
   दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर(राज.)
4. **डॉ. एन.के. जेतवाल**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
   बून्दी(राज.)
5. **डॉ. जयभारत सिंह**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय डूंगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर(राज.)
6. **डॉ. अहमद अली**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय डूंगर स्नातकोत्तर
   महाविद्यालय, बीकानेर(राज.)
7. **डॉ. प्रबोध पारीक**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
   ब्यावर, जिला अजमेर(राज.)
8. **इन्दुबाला जैन**
   C/o. श्री हरक चन्द जैन
   पूर्व प्राचार्य
   राजकीय महाविद्यालय, सागवाड़ा
   जिला डुंगरपुर(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**अकादमिक**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन-पुनः मुद्रण : अक्टूबर, 2011 ISBN NO- 13/978-81-8496-008-2

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

M.A./M.Sc. GE-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आर्थिक भूगोल के सिद्धान्त

इकाई संख्या		इकाई	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	:	आर्थिक भूगोल की परिभाषा, क्षेत्र व परिवर्तित प्रकृति	8–29
इकाई - 2	:	अर्थव्यवस्था: परिभाषा, सरलीकृत मॉडल, पर्यावरणीय संबंध एवं स्थानिक संरचना	30–45
इकाई - 3	:	आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक आधार : क्रमबद्ध और स्थानिक उपागम	46–61
इकाई - 4	:	निर्वाहक, बागाती एवं व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि	62–79
इकाई - 5	:	मिश्रित कृषि, व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि	80–92
इकाई - 6	:	पशुपालन-दुग्ध व्यवसाय	93–107
इकाई - 7	:	ऊर्जा संसाधन	108–139
इकाई - 8	:	उद्योगों की अवस्थिति सिद्धान्त : वेबर, लॉश, हूवर, एवं स्मिथ	140–162
इकाई - 9	:	लोहा- इस्पात, एल्यूमिनियम तथा इंजीनियरिंग उद्योग का विशद अध्ययन	163–181
इकाई - 10	:	सूती वस्त्र तथा कागज एवं लुग्दी उद्योग	182–205
इकाई - 11	:	परिवहन लागत मे स्थानिक विविधताएँ	206–230
इकाई - 12	:	परिवहन जाल विश्लेषण	231–269
इकाई - 13	:	महासागरीय जल मार्ग एवं आन्तरिक जलमार्ग	270–290
इकाई - 14	:	वॉन थूईनेन के कृषि अवस्थिति सिद्धान्त के संदर्भ में : भूमि-उपयोग की स्थानिक संरचना	291–306
इकाई - 15	:	निर्णय लेने की प्रक्रिया: स्थितिगत निर्णय-व्यवहारात्मक दृष्टिकोण	307–326
इकाई - 16	:	केन्द्रीय-स्थल सिद्धान्त की परिवर्तित प्रकृति	327–347
इकाई - 17	:	आर्थिक प्रदेश: निर्धारण की विधियाँ	348–363
इकाई - 18	:	भारत के आर्थिक प्रदेश	364–386

परिचयात्मक

आर्थिक भूगोल सदैव ही भूगोलवेत्ताओं के लिये अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय रहा है लेकिन विषय पर प्रकाशित अधिकांश हिन्दी की पुस्तकों में आर्थिक गतिविधियों का वर्णनात्मक स्वरूप ही अधिक देखने को मिलता है, उनमें संकल्पनात्मक एव अवस्थितिक सिद्धान्तों को कम ही महत्व दिया गया है । वर्तमान में जनसख्या की तीव्र वृद्धि, पर्यावरण प्रदूषण, ऊर्जा के स्रोतों पर बढ़ता दबाव, धनी और निर्धन देशों के मध्य बढ़ती खाई, विभिन्न देशों में बढ़ती आन्तरिक असमानता, तेल उत्पादक देशों के कारटेल की समस्या व नये आर्थिक प्रदेशों के अभ्युदय से पारस्परिक निर्भरता बढ़ रही है इससे पुरानी समस्याएँ अधिक जटिल होकर सामने आ रही है वहीं नई समस्याएँ भी सामने आ रही है । इन समस्यों के समाधान हेतु आर्थिक भूगोल का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण हो गया है ।

सभी देश अपने अपने स्तर पर इन समस्याओं के समाधान में लगे हुये हैं लेकिन संसाधनों का समानता के आधार पर आवटन अब भी प्रमुख समस्या है तेल उत्पादक देशों के सगठन (OPEC) द्वारा तेल मूल्यों में वृद्धि से विभिन्न देशों ने ऊर्जा व संसाधनों का अधिक सदुपयोग करने की ओर विचारों को मोड़ा है लेकिन पर्यावरण प्रदूषण का खतरा बढ़ता जा रहा है जो अब एक स्थानीय समस्या न रहकर विश्वव्यापी समस्या बन गया है जो न केवल वर्तमान बल्कि भावी जनसख्या के स्वास्थ्य की समस्याओं से भी जुड़ता जा रहा है ।

पुरानी अर्थव्यवस्थाएँ काफी सरल प्रकार की थी लेकिन वर्तमान में अधिक व्यापक, उच्च तकनीकी क्षमता वाली एवं अधिक जटिल हो गई है । आज पारस्परिक निर्भरता में वृद्धि हुई है जहाँ एक ओर रोजगार की संभावनाएँ बढ़ी है वहीं जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी की समस्या भी बढ़ती जा रही है अर्थ व्यवस्था के विकास में सूचना तत्र एव तकनीकी विकास के कारण आर्थिक विकास परम्परागत कच्चे माल पर आधारित उद्योगों का स्थान लेने लगा है । वर्तमान में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की आर्थिक गतिविधियाँ अधिक प्रभावी हो गई है ।

आज कल सब कुछ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने लगा है कम विकसित देश भी अपने यहाँ से बना हुआ माल विकसित देशों को भेज रहे हैं और विकसित देश नवीन ज्ञान पर आधारित गतिविधियाँ जैसे इलेक्ट्रोनिक्स, इन्टीग्रेटेड सर्किट, रोबोट, टेलिकम्यूनिकेशन्स, बायो जेनेटिक्स में अधिक रूचि ले रहे हैं इससे भी पारस्पीरक अन्तर्निभर्रता बढ़ती जा रही है । आज किसी देश विशेष के किसी भाग में अर्थतंत्र में कोई परिवर्तन आता है तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था पर दिखाई देने लगता है जैसे सयुक्त राज्य अमेरिका में सब प्राइम सकट उत्पन्न होने का प्रभाव विश्व के कई देशों में अनुभव किया जा रहा है जो कोन्ड्रेटिफ (1935) के 'लॉग वेवज थ्योरी ' (Long Waves Theory) या 'कोन्द्रोटिफ साइकिल ' (Kondratieff Cycle) को ही स्पष्ट करती है । (यद्यपि कोन्ड्रेटिफ ने इस चक्रीय व्यवस्था की अवधि 50-60 वर्ष ही मानी थी लेकिन समय के अनुसार यह अवधि (वर्तमान में लगभग 80 वर्ष) अधिक भी हो सकती है । यह अर्थव्यवस्था में उतार चढ़ाव को व्यक्त करती है आज विकसित देशों में उच्च

तकनीक व सेवा आधारित अर्थ व्यवस्था का विकास हो रहा है अत : पुरानी अवधारणाएँ जो अवस्थिति निर्धारण में प्रमुख हुआ करती थी वे बदल रही है ।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रथम इकाई आर्थिक भूगोल की परिभाषा, विकास एव परिवर्तित प्रकृति को स्पष्ट करती है वही शेष अध्ययन में वर्णनात्मक एव सकल्पनात्मक दोनों विधियों का मिश्रण प्रस्तुत किया गया है । इकाई 2, 3, 8, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17 में जहाँ सकल्पनात्मक (सैद्धान्तिक) विश्लेषण प्रस्तुत किया है वही शेष अध्याय सामान्यत : वर्णनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । प्रस्तुत इकाईयों को विद्‌वान लेखकों ने सरल शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ताकि विद्‌यार्थियों के लिये वे अधिक बोधगम्य हो सकें । सोवियत सघ के बिखराव क्‌ए कारण इसे "पूर्व सोवियत संघ " के रूप में ही प्रस्तुत किया है।

पुस्तक की रूपरेखा इस प्रकार रखी गई है कि यह जहाँ समस्याओं को इंगित करती है वहीं इनके समाधान के लिये सोचने को मजबूर भी करती है । इन समस्याओं को जो कि विश्व समृद्धि की विषमताओं में अन्तनिर्हित तत्वों से सम्बन्धित है, अगर समझ सकें तो हमारा प्रयास सफल होगा और उनके समाधान में सुगमता होगी तभी गरीबी, बेरोजगारी, आतकवाद, पर्यावरण प्रदूषण, बढ़ती जनसख्या के समाधान में प्रयास कर सकेंगे ।

विद्‌वान लेखकों ने जो प्रयास इस पुस्तक को तैयार करने में किया है वे बधाई के पात्र हैं । प्रत्येक इकाई के प्रारम्भ में उद्देश्य एव प्रस्तावना, विषयवस्तु का वर्णन व अन्त में साराश, बोध प्रश्न, शब्दावली, सन्दर्भ क्रथ सूची, अभ्यासार्थ प्रश्नों से विषय में अधिक स्पष्टता आयेगी और उनका (विद्‌यार्थियों का) दृष्टिकोण भी परिवर्तित होगा वे अधिक विस्तृत व गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए प्रवृत्त हो सकेंगे । वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्‌यालय, कोटा (राज.) के भूगोल विषय के संयोजक प्रोफेसर एस. सी. कलवार को बधाई । जिन्होंने भूगोल के प्रति समर्पित होकर दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्‌यालय, कोटा में भूगोल को महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु अनवरत एवं अथक प्रयास कर रहें हैं।

इकाई 1 : आर्थिक भूगोल की परिभाषा, क्षेत्र एवं परिवर्तित प्रकृति (Economic Geography: Changing Nature and Recent trends)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भूगोल का अर्थ

1.3 आर्थिक भूगोल का क्रमिक विकास

- 1.3.1 प्रारम्भिक युग
- 1.3.2 अंतर्विश्व युद्ध काल
- 1.3.3 युद्धोत्तर काल
- 1.3.4 आधुनिक काल

1.4 आर्थिक भूगोल की परिभाषा

- 1.4.1 नियतिवाद का परिभाषा पर प्रभाव
- 1.4.2 सम्भववाद का परिभाषा पर प्रभाव
- 1.4.3 आधुनिक विचारधारा का प्रभाव

1.5 आर्थिक भूगोल के उद्देश्य

1.6 आर्थिक भूगोल का क्षेत्र

- 1.6.1 प्राकृतिक संसाधन
- 1.6.2 मानव संसाधन
- 1.6.3 आर्थिक क्रियाएँ
  - 1.6.3.1 उत्पादन
  - 1.6.3.2 विनिमय
  - 1.6.3.3 उपभोग

1.7 आर्थिक भूगोल की परिवर्तित प्रकृति

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि :–

- आर्थिक भूगोल, भूगोल की एक शाखा है,

- आर्थिक भूगोल का विकास क्रम,
- आर्थिक भूगोल को परिभाषित करने सम्बंधी विद्वानों के विचार,
- आर्थिक भूगोल से होने वाले उद्देश्यों की पूर्ति,
- आर्थिक भूगोल की अध्ययन सामग्री,
- मानव की आर्थिक क्रियाओं के प्रकार,
- आर्थिक भूगोल की परिवर्तित प्रकृति।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज वैश्वीकरण (Globalization) का युग है। विश्व के सभी राष्ट्रों के परस्पर निकट आने से उनमें निर्भरता इतनी बढ़ गई कि विश्व के किसी छोटे से भाग में अशान्ति, युद्ध, आतंकवाद की जरा सी घटना विश्व के सभी राष्ट्रों में अस्थिरता पैदा कर चिन्ता का कारण बन जाती है। इसका कारण आज लोगों की आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति कर अपने देश के लोगों को सन्तुष्टि प्रदान करने में कोई भी राष्ट्र आत्मनिर्भर नहीं है। आत्मनिर्भरता के अभाव के लिए दो कारक उत्तरदायी हैं – प्रथम भूतल पर संसाधनों के वितरण में विषमता और द्वितीय संसाधनों का रूप परिवर्तन कर उनकी उपयोगिता और मूल्य में वृद्धि करने के कौशल में विषमता। संसाधनों की उपलब्धता और उनके उपयोग को विकसित करने के कौशल से आर्थिक क्रिया का विकास होता है। आर्थिक क्रियाओं की विविधता तथा पृथ्वी तल पर उनका विषम वितरण आर्थिक भूगोल को जन्म देता है। आर्थिक शब्द के साथ भूगोल शब्द जुड़ा होने से सर्वप्रथम भूगोल का संक्षिप्त में अर्थ समझ लेना उचित होगा।

1.2 भूगोल का अर्थ (Meaning of Geography)

भूगोल का सामान्य अर्थ है – पृथ्वी का वर्णन करना। भूगोल एक गत्यात्मक विज्ञान है। इसके स्वरूप में समय के साथ परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन काल में भूगोल पृथ्वी अथवा पृथ्वी के ज्ञात क्षेत्रों का विवरण मात्र था। मध्यकाल में पृथ्वी और उसके ग्रहीय सम्बन्धों के अध्ययन पर बल देने से खगोलीय भूगोल का विकास हुआ। पुनर्जागरण काल में विवरणात्मक भूगोल का विकास हुआ। इस काल के भूगोलवेत्ता **वेरेनियस** ने भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है **"भूगोल पृथ्वीतल के अध्ययन पर दृष्टि केन्द्रित करता है जहाँ वह धरातलीय स्वरूपों, जलवायु, जल, वन, खनिज, पशु एवं मानव बस्तियों का अध्ययन करता है।"** आधुनिक भूगोल का विकास 1700 ई. के बाद माना जाता है। द्वैतवाद के युग (1859–1882 ई.) में भूगोल को एक प्राकृतिक विज्ञान माना गया जिसमें प्राकृतिक तत्वों की व्याख्या की जाती थी। सन् 1872 में सर्वप्रथम भूगोल को वितरण के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया। लेकिन 1882 से 1900 ई0 के मध्य भूगोल के अध्ययन में मानव को प्रमुख स्थान दिया जाने लगा। मानव और वातावरण के मध्य सम्बन्ध की चर्चा प्रमुख विषय बनी। यही से भूगोल की दो शाखाएँ बनी–प्रथम भौतिक भूगोल और द्वितीय मानव भूगोल। मानव भूगोल भी पुन: अनेक उपशाखाओं में विभाजित हुआ जिनमें से एक प्रमुख उपशाखा आर्थिक भूगोल है।

भूगोल के सम्बन्ध में हेटनर ने लिखा है **"भूगोल क्षेत्रीय विज्ञान है जिसमें पृथ्वी तल के क्षेत्रों का अध्ययन उनकी भिन्नताओं तथा स्थानिक सम्बन्धो की पृष्ठभूमि में किया जाता है।"** एक तथ्य स्पष्ट है कि भूगोल में पृथ्वी तल पर स्थित विविध तत्वों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसी विचार की पुष्टि करते हुए जुलियस फ्रोवेल ने लिखा है कि **"भूगोल एक प्राकृतिक विज्ञान है जो सम्पूर्ण पृथ्वीतल का विभिन्न तत्वों एवं कारकों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध व्यक्त करते हुए क्रमबद्ध अध्ययन करता है।"**

उपरोक्त विवरण से भूगोल के बारे में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं।

1. भूगोल में पृथ्वीतल पर स्थित प्राकृतिक और मानवीय तत्वों का अध्ययन होता है।
2. प्रदेशों के प्रारूप और उनमें परस्पर अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन भूगोल का विषय है।
3. मानव और प्राकृतिक वातावरण के मध्य सम्बन्ध के आधार पर निर्मित पारिस्थितिकी का अध्ययन।

भूगोल का अर्थ समझने से आर्थिक भूगोल का अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। कारण स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल की जननी भूगोल है। अत: आर्थिक भूगोल का स्वरूप तथा अध्ययन विधि भूगोल से प्रभावित है।

1.3 आर्थिक भूगोल का क्रमिक विकास (Systematic Development of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल का अर्थ एवं स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम इसके विकास के ऐतिहासिक स्वरूप को समझ लिया जाए। आर्थिक भूगोल एक प्रगतिशील एवं गत्यात्मक विषय है। भूगोल की एक प्रमुख शाखा होने के कारण इसके वर्तमान स्वरूप का विकास भूगोल विषय के संकल्पनात्मक विकास से जुड़ा रहा है। दूसरी ओर आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र मानव के आर्थिक क्रियाकलापों के विकास एवं उनकी जटिलता से सम्बन्धित रहा है। किसी भी विषय का जन्म यकायक तथा अति अल्प समय में नहीं होता है। जन्म की एक लम्बी प्रक्रिया होती है। विषय का अंकुरण कुछ विद्वानों के मस्तिष्क में होता है। मनीषी विचार मन्थन करते हैं तथा साथ ही मानव और पर्यावरण के परिवर्तित सम्बन्ध भी विद्वानों के मस्तिष्क में अंकुरण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करते हैं। वास्तव में आर्थिक भूगोल का विकास भूतल पर मानव की क्रियाओं में परिवर्तन तथा परिमार्जन के साथ जुड़ा हुआ है। आदि मानव तथा आधुनिक मानव की क्रियाओं में बड़ी भिन्नता मिलती है। इस भिन्नता के लिए विज्ञान का विकास उत्तरदायी है। विज्ञान के विकास के साथ यंत्रीकरण का उद्भव हुआ। मशीनों के निर्माण से मानव क्रियाओं में परिवर्तन सम्भव हुआ। लेकिन इस परिवर्तन के लिए जनसंख्या में वृद्धि भी उत्तरदायी है। जिसके कारण उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई तथा साथ ही लोगों के रहन–सहन में आए परिवर्तन के फलस्वरूप लोगों में कलात्मक दृष्टि से सुन्दर वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। इसी के कारण मानव की आर्थिक क्रियाओं में विविधता आने के साथ विज्ञान ने उनके प्रसार में सहयोग दिया।

आर्थिक भूगोल के विकास के लिए उत्तरदायी एक कारण आधुनिक मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि से सम्बन्धित है। क्रान्ति से पूर्व मानव की आवश्यकताएँ सीमित थी। आदि मानव की

आवश्यकता भोजन तक सीमित थी। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ उसकी तीन प्रमुख आवश्यकताएँ भोजन, कपड़ा व मकान हो गई। जहाँ पूर्व में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों की कम आवश्यकता होती थी वहीं औद्योगिक क्रान्ति से मानव की उत्पादन क्षमता में वृद्धि के फलस्वरूप –वस्तुओं के निर्माण के लिए उसे कच्चे माल की अधिक आवश्यकता होने लगी। साथ ही तकनीकी कौशल के आधार पर उसने ऐसी वस्तुओं का निर्माण प्रारम्भ किया जिसके लिए कच्चा माल स्थानीय क्षेत्र में उपलब्ध नहीं था। इसका आज के समय में सबसे अच्छा उदाहरण जापान देश है। कुछ राष्ट्रों ने मानवीय कौशल एवं दक्षता के आधार पर औद्योगिक विकास तो कर लिया लेकिन उन उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल कीं आपूर्ति के लिए इन राष्ट्रों ने उपनिवेशवाद का विस्तार किया। उपनिवेश में जकड़े राष्ट्र ही उन राष्ट्रों के उत्पादित माल के लिए बाजार उपलब्ध कराते थे। इस प्रक्रिया ने आर्थिक भूगोल को नवीन स्वरूप प्रदान किया। आर्थिक भूगोल के वर्तमान स्वरूप एवं इसके क्षेत्र का विस्तार विशेषत: 20 वीं शताब्दी में हुआ। आर्थिक भूगोल के विकास क्रम को अध्ययन की सुविधा के लिए चार भागों में बाँटा जा सकता है –

1. प्रारम्भिक युग
2. अन्तर्विश्वयुद्ध काल
3. युद्धोत्तर काल
4. आधुनिक काल

1.3.1 प्रारम्भिक युग

आर्थिक भूगोल का स्वतंत्र अस्तित्व 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकट हुआ। वैसे आर्थिक भूगोल का उद्भव वाणिज्य भूगोल के रूप में हुआ, जब 1839 में **जी सी चिशोल्म** ने वाणिज्य भूगोल पर सर्वप्रथम एक पुस्तक लिखी। इसके बाद 1862 में **एण्ड्री** नामक भूगोलवेत्ता ने **'ज्योग्राफी डैस वैल्थैण्डेल्स'** नामक पुस्तक का प्रकाशन किया । वाणिज्य भूगोल में विभिन्न देशों के व्यापार सम्बन्धी आंकड़ों का संग्रह होता था। 1882 में जर्मन विद्वान गोट्ज़ ने सर्वप्रथम आर्थिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया और वाणिज्य भूगोल से पृथक अर्थ में इसका प्रयोग किया। उसने आर्थिक भूगोल को इस प्रकार परिभाषित किया – **"आर्थिक भूगोल में विश्व के विभिन्न भागों की उन प्राकृतिक विशेषताओं का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है जिनका वस्तुओं के उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। "**

गोट्ज निश्चयवादी विचारधारा से सम्बन्धित होने के कारण उसने आर्थिक भूगोल में मानव क्रियाओं पर प्राकृतिक दशाओं के प्रभाव के विवेचन पर बल दिया। लेकिन गोट्ज का यह विचार केवल जर्मनी में ही लोकप्रिय हुआ। यूरोप के अन्य देशों में जैसे ब्रिटेन तथा अमेरिका में भूगोलवेत्ता वाणिज्य भूगोल पर ही अधिक जोर देते रहे।

1.3.2 अन्तर्विश्वयुद्ध काल (Period between World Wars)

इस काल में वाणिज्य भूगोल की अपेक्षा आर्थिक भूगोल की ओर झुकाव अधिक बढ़ा। इसका कारण 1913 से 1917 के मध्य चला प्रथम विश्वयुद्ध था क्योंकि युद्ध की स्थिति में वाणिज्य

सम्बन्धी कार्य बाधित हुआ और औद्योगिक राष्ट्र जैसे जर्मनी और जापान कच्चे माल की प्राप्ति के लिए नये स्रोतों की खोज करने लगे। इससे उपनिवेशवादी राष्ट्रों को अपने यहाँ कच्चे माल के उत्पादन की व्यवस्था करनी पड़ी। धीरे –धीरे गोट्ज़ के मत को बल मिला और कृषि उत्पादन का अधिक अध्ययन होने लगा। लेकिन नियतिवाद का प्रभाव 1925 तक रहा। सन् 1925 के बाद सम्भववाद की विचारधारा का प्रभाव बढ़ने से प्राकृतिक वातावरण के साथ मानव के प्रभाव के महत्व को भी भूगोलवेत्ताओं ने स्वीकार करना प्रारम्भ किया। आर्थिक भूगोल पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। अब आर्थिक भूगोल में विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन पर प्राकृतिक एव मानवीय दोनों तत्वों के प्रभाव का वैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा। यद्यपि आर्थिक भूगोल में प्राथमिक क्रियाओं के अध्ययन पर विशेष ध्यान केन्द्रित रहा किन्तु द्वितीयक क्रियाओं के अध्ययन की ओर भी ध्यान आकृष्ट हुआ। इस काल में आर्थिक भूगोल स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त करने में सफल रहा।

1.3.3 युद्धोत्तर काल (Period after Second World War)

यह काल द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का समय है। अब तक भूगोल में वातावरण के साथ मानव को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा था। इस काल में जनसंख्या वृद्धि के साथ औद्योगिक विकास तीव्र गति से हुआ और मानव क्रियाओं में विविधता आई। भूगोल की तत्कालीन परिभाषा से असन्तुष्ट होकर **हेटनर** और **कार्लसावर** ने भूगोल को क्षेत्रीय विषमता का अध्ययन करने वाला विषय बताकर भूगोल को नवीन स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। लेकिन 1939 में **रिचर्ड हार्टशोर्न** द्वारा इस मत का अनुमोदन होने पर आर्थिक भूगोल में सर्वप्रथम **आर. ई. मरफी** ने इस आधार पर आर्थिक भूगोल को परिभाषित किया। पुन: इस संकल्पना से सन्तुष्ट न होने के कारण **हार्टशोर्न** ने इसमें परिवर्तन कर आर्थिक भूगोल को प्रादेशिक भिन्नता का अध्ययन करने वाला विषय बताया।

1.3.4 आधुनिक काल (Modern Period)

इस काल में जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से हुई है। बढ़ती जनसंख्या की मांग की पूर्ति के लिए औद्योगीकरण तेजी से बढ़ा है। यंत्रीकरण का बोलबाला रहा जिससे मानवीय श्रम घटा और उत्पादन में वृद्धि हुई। मानव की आर्थिक क्रियाओं में इतनी विविधता आयी कि वे और भी अधिक जटिल हो गई। इसका बड़ा प्रभाव संसाधनों पर अत्यधिक दोहन के कारण पड़ा। परिवहन के साधनों का विस्तार हुआ। इन सभी के कारण पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि हुई और पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ रहा है और वैश्वीकरण बढ़ रहा है। अनेक आर्थिक व्यवस्थाओं का जन्म हुआ है। आर्थिक प्रगति के आधार पर राष्ट्र विकसित, विकासशील और पिछड़े वर्गो में विभाजित हो गए हैं। इन सभी समस्याओं का प्रभाव आर्थिक भूगोल पर भी पड़ा है। आर्थिक भूगोल के अध्ययन में नये आयाम जुड़ने के साथ इसके सैद्धान्तिक पक्ष का विकास भी अधिक हुआ है।

1.4 आर्थिक भूगोल की परिभाषाएं (Definition of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल के विकास क्रम में हमने अध्ययन किया कि आर्थिक भूगोल के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। आर्थिक भूगोल क्या है और मानव की क्रियाओं में परिवर्तन ने इसके सम्प्रत्यय को किस प्रकार बदला है, आदि को जानने के लिए यहाँ कुछ विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं पर विचार करना उपयुक्त होगा।

गोट्ज के अनुसार "आर्थिक भूगोल विश्व के विभिन्न भागों की उन विशेषताओं का वैज्ञानिक विवेचन करता है जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है।"

Economic geography makes a scientific investigation of nature of world areas in their direct influence on the production of goods."

आर्थिक भूगोल की यह प्रथम परिभाषा है जो जर्मन विद्वान गोट्ज के द्वारा सन् 1882 में प्रस्तुत की। इस विद्वान ने सर्वप्रथम आर्थिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया। इस परिभाषा में उत्पादन शब्द पर विशेष बल दिया गया है। गोट्ज ने उत्पादन को मानव की प्रमुख क्रिया के रूप में स्वीकार किया। लेकिन उनके समय उत्पादन से आशय कृषि उत्पादन से था। कृषि कार्य पर प्राकृतिक वातावरण के प्रभाव का वैज्ञानिक अन्वेषण ही आर्थिक भूगोल का कार्य बताया। आज के युग में मानव की क्रियाओं में विविधता ही नहीं आई है अपितु वातावरण पर मानव का प्रभुत्व भी बढ़ा है। इस कारण गोटज की परिभाषा आज आर्थिक भूगोल के स्वरूप पर स्पष्ट प्रकाश नही डालती है।

1.4.1 नियतिवाद का परिभाषाओं पर प्रभाव (Impact of Determinism on Definition)

इस काल में नियतिवादी अवधारणा की प्रधानता थी। इसी कारण उस समय के विद्वानों द्वारा आर्थिक भूगोल की दी गई परिभाषाओं में वातावरण को प्रधानता दी गई है।

प्रो. क्लिन, स्ट्रैवी एवं हाल के अनुसार – "मानव की आर्थिक क्रियाओं के वितरण और प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ उनके सम्बन्धों के अध्ययन को आर्थिक भूगोल कहते हैं।"

“Economic geography may be defined as the study of the distribution of economic activities and their relation to their physical environments.”

प्रो. जी. चिशोल्म के अनुसार – "आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सभी भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन निहित है जो वस्तुओं के उत्पादन, परिवहन तथा विनिमय को प्रभावित करती है।"

“Economic geography embraces all geographical condition affecting the production, transport and exchange of commodities.”

प्रो. आर.एन.ब्राउन के अनुसार – "आर्थिक भूगोल, भूगोल की वह शाखा है जिसमें मानव की आर्थिक क्रियाओं पर पड़ने बाले वातावरण के जैविक व अजैविक तत्वों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।"

“Economic geography is that aspect of the subject which deals with the influence of the environment inorganic and organic on the activities of man’’

गे. मैकफरलैन के अनुसार – "आर्थिक भूगोल मानव की आर्थिक क्रियाओं पर उसके भौतिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन हे।

“Economic Geography is the study of influence exerted on the economic activities of man by his physical environment”

गे. बुकानन के अनुसार – "आर्थिक भूगोल मानव के आर्थिक प्रयत्नों का उसके पृथ्वी के साथ निवास स्थान के रूप में अध्ययन करता है।

"Economic geography is the study of man’s economic activities in relation to earth as his home.”

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाएँ नियतिवाद से प्रभावित है। सभी ने इस बिन्दु पर बल दिया है कि आर्थिक भूगोल मानव की क्रियाओं पर वातावरण के विविध तत्वों के प्रभाव का अध्ययन करता है। अर्थात् इन विद्वानों ने वातावरण को प्रधान तथा मानव को गौण माना है। आज वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर मानव इतना सबल हो गया है कि प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थिति में भी वह अपनी आर्थिक क्रियाएँ करने में सक्षम है। अत: वर्तमान समय में उपरोक्त पीर भाषाएँ आर्थिक भूगोल के केवल एक पक्ष पर ही प्रकाश डालती हैं। इन परिभाषाओं में प्रयुक्त कुछ शब्द आर्थिक भूगोल के वर्तमान स्वरूप को ग्रहण करने में अवश्य सहायक हु ए हैं। इनमें पहला शब्द आर्थिक क्रिया से सम्बन्धित है। अर्थात् आर्थिक भूगोल में हम मानव की केवल आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन करते हैं । **चिशोल्म** ने अपनी परिभाषा में इन आर्थिक क्रियाओं को और स्पष्ट करते हु ए इनको उत्पादन, परिवहन तथा विनिमय में वर्गीकृत किया है। इनमें उत्पादन महत्वपूर्ण है। उत्पादन क्रिया का वह स्वरूप है जिसमें मानव पदार्थो का रूप परिवर्तन करके उसकी उपयोगिता एव मूल्य में वृद्धि करता है।

1.4.2 सम्भववाद का परिभाषाओं पर प्रभाव (Impact of Possibilism on Definition)

सम्भववाद की विचारधारा को विद्वानों का समर्थन मिलने के बाद आर्थिक भूगोल के स्वरूप में पुन: परिवर्तन होना प्रारम्भ हु आ। कुछ विद्वानों ने इसे भूगोल की मूल शाखा के रूप में मानते हु ए इस प्रकार परिभाषित किया –

प्रो. पोन्ड्स के अनुसार – "आर्थिक भूगोल पृथ्वीतल पर मानव की उत्पादक क्रियाओं के वितरण का अध्ययन करता है। यह क्रियाएँ प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्रियाएँ होती हैं।"

“Economic geography is concerned with the distribution of man’s productive over surface of the earth. These activities are primary, secondary and tertiary activities"

यह प्रथम परिभाषा है जिसमें वितरण शब्द का प्रयोग किया गया है। वितरण शब्द का प्रयोग करके आर्थिक भूगोल का, मूल भूगोल विषय के साथ सानिध्यता प्रकट की गई।

आर. ई. मरफी ने आर्थिक भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "आर्थिक भूगोल मानव के द्वारा अपनाई गई जीविकोपार्जन की विधियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मिलने वाली समानताओं और विषमताओं का अध्ययन करता है।"

"Economic geography has to do with similarities and difference from place to place in the ways people make living."

1.4.3 आधुनिक विचारधारा का प्रभाव (Impact of Modern Thoughts)

इसी से मिलती हुई परिभाषा सी. एफ. जोन्स ने प्रस्तुत की। उसके अनुसार "आर्थिक भूगोल उत्पादक व्यवसायों का अध्ययन करता है और यह व्याख्या करने का प्रयास करता है कि क्यों कुछ प्रदेश विविध वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात में अग्रणी है तथा कुछ प्रदेश क्यों इन्ही वस्तुओं के आयात और उपभोग में अग्रगण्य हैं।"

"Economic geography deals with the productive occupations and attempts to explain why certain regions are outstanding in the production and exportation of various articles and why others are significant in the importation and utilization of these things"

उपरोक्त परिभाषा आर्थिक भूगोल के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करती है। इस परिभाषा में स्थान शब्द के स्थान पर प्रदेश शब्द का प्रयोग किया गया है तथा परिभाषा वितरण प्रक्रिया पर प्रकाश डालती है। इसमें उत्पादन क्रिया तथा उसके साथ जुड़ी आयात व निर्यात की प्रक्रिया को सम्मिलित किया गया है। यह प्रथम परिभाषा है जिसमें उपयोग या उपभोग शब्द का प्रयोग किया गया है। यह परिभाषा आर्थिक भूगोल के वर्तमान स्वरूप की ओर बढ़ने का अच्छा प्रयास है। इसी से मिलती हुई परिभाषा **अलेक्जेण्डर** ने दी है। उनके अनुसार **"आर्थिक भूगोल पृथ्वी सतह पर सम्पति का उत्पादन, विनिमय और उपभोग से सम्बन्धित मानवीय क्रियाओं का अध्ययन करता है।"** इस परिभाषा में एक नवीन शब्द का प्रयोग किया गया है। यह नवीन शब्द **'सम्पति'** है जो प्राकृतिक संसाधनों की ओर संकेत करता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आर्थिक भूगोल में भू पृष्ठ पर विद्यमान विभिन्न प्रदेशों के लोगों के जीविकोपार्जन की विधियों अर्थात उनकी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह भूतल के आधारभूत संसाधनों और वहाँ निवास कर रहे लोगो की आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्धों एवं उससे उत्पन्न समुच्चयिक स्वरूप का विवेचन करता है। किसी क्षेत्र के प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों में अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप ही क्षेत्रीय भिन्नता पैदा होती है। आर्थिक भूगोल में इन क्षेत्रीय भिन्नताओं तथा आर्थिक क्रियाओं की विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

1.5 आर्थिक भूगोल के उद्देश्य (Aims of Geography)

आर्थिक भूगोल के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण ऊपर दी गई परिभाषाओं से ही स्पष्ट है जिनमें स्पष्ट किया गया है कि आर्थिक भूगोल का उद्देश्य मानव की आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय विशेषताओं

एवं उनके स्थानीय वितरणों और परिस्थितियों के साथ अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करना है। फिर भी आर्थिक भूगोल के निम्नलिखित उद्देश्य है -

1. किसी प्रदेश के लोग किन भौतिक एवं सामाजिक दशाओं के कारण विशिष्ट आर्थिक क्रियाएँ करते हैं। प्रदेश के पर्यावरण और वहाँ के निवासियों की आर्थिक क्रियाओं में परस्पर अन्तर्सम्बन्ध का ज्ञान करना आर्थिक भूगोल का उद्देश्य है। उदाहरण के लिए जापान में लोगों का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना वहाँ के भौतिक वातावरण के कारण है। जापान में कृषि भूमि का अभाव तथा चारों ओर समुद्र द्वारा घिरा होने के कारण ही मछली पकड़ना मुख्य व्यवसाय हुआ।
2. पृथ्वी तल पर स्थित विभिन्न प्रकार के वातावरणों में रहकर वहाँ के निवासियों ने अपने वातावरण का प्रयोग करके किस–किस प्रकार की आर्थिक क्रियाओं का विकास किया है? इस तथ्य का अध्ययन करना भी आर्थिक भूगोल का उद्देश्य है। इसका उदाहरण टैगा प्रदेश का वन क्षेत्र है जहाँ लकड़ी काटना तथा लकड़ी से लुग्दी एवं कागज बनाने के उद्योग का विकास करके लोगों ने अपने वातावरण का प्रयोग करना सीख लिया है।
3. किसी प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन करना आर्थिक भूगोल का उद्देश्य है यह हमको प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति तथा उनकी गुणात्मक उपयोगिता एवं उपलब्ध मात्रा का ज्ञान कराता है। ये प्राकृतिक संसाधन ही किसी देश की आर्थिक प्रगति के आधार होते हैं। आर्थिक भूगोल का उद्देश्य यह स्पष्ट करना भी है कि इन संसाधनों का उपयुक्त स्थल कौनसा है जहाँ इनका उपयोग करने पर उत्पादन लागत कम आयेगी। भारत के पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के बाद यहाँ कितने प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण द्वारा ज्ञान हुआ है और इसी का परिणाम है कि भारत आज विश्व स्तर पर एक बड़ी औद्योगिक शक्ति के रूप में उभरकर आ रहा है।
4. आर्थिक भूगोल का एक उद्देश्य यह ज्ञान कराना भी है कि किसी राष्ट्र में पायी जाने वाली प्राकृतिक सम्पदा का किन साधनों द्वारा और कहाँ पर और किस कार्य के लिए उपयोग हो सकता है। उदाहरण के लिए कनाडा, भारत में गंगा का मैदान, चीन में यांगटिसीक्यांग नदी का मैदान आदि क्षेत्र समतल भूमि और उपयुक्त जलवायु के कारण कृषि कार्य के उपयुक्त हैं। इसी प्रकार जहाँ ऊर्जा के साधन जैसे कोयला, तेल आदि मिलते हैं और निकट ही कोई खनिज मिलता है तो वहाँ उस खनिज पर आधारित उद्योग विकसित हो सकता है। उदाहरण के लिए लोहा तथा कोयला निकट उपलब्ध होने के कारण लोहा –इस्पात उद्योग का विकास झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा छत्तीसगढ़ राज्यों में हुआ है।
5. आर्थिक भूगोल का उद्देश्य मानव संसाधन की वृद्धि, वितरण और उसकी योग्यता एवं जीवन स्तर पर प्रकाश डालना है। आर्थिक क्रियाओं का सम्बन्ध जनसंख्या से होता है। अधिक जनसंख्या और उच्च जीवन स्तर किसी वस्तु की मांग के आधार होते हैं। वस्तु की मांग ही आर्थिक क्रिया को जन्म देती है। इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता होने पर भी यदि किसी प्रदेश की जनसंख्या अशिक्षित है, वैज्ञानिक एवं तकनीकी

कौशल में पिछडी हुई है तो ऐसा प्रदेश आर्थिक क्रियाओं की दृष्टि से सदैव पिछड़ा रहेगा। वर्तमान युग में अफ्रीका के अनेक राष्ट्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

6. आर्थिक विकास की योजना बनाने में सहायता करना आर्थिक भूगोल का एक अन्य उद्देश्य है। प्राकृतिक सम्पदा और मानवीय संसाधनों का ज्ञान ही किसी प्रदेश या राष्ट्र के लिए सुव्यवस्थित योजना बनाने में सहायता कर सकता है। आर्थिक भूगोल ही सम्पदा का ज्ञान कराता है जिसके आधार पर योजना निर्माता निर्णय लेने में सफल होते हैं कि देश की प्राकृतिक सम्पदा का किस प्रकार उपयोग और किन स्थानों पर श्रेष्ठ उपयोग किया जा सकता है।

बोध प्रश्न – 1

1. आर्थिक भूगोल को भूगोल की किस शाखा की उपशाखा माना जाता है?

   ....

   ....

2. किस भूग़ेलवेत्ता ने वाणिज्य भूगोल के स्थान पर आर्थिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया था?

   ....

   ....

3. क्षेत्रीय विषमता का अध्ययन करने वाली विचारधारा के अनुसार किस विद्वान ने आर्थिक भूगोल को परिभाषित किया?

   ....

   ....

4. आधुनिक काल में आर्थिक भूगोल में किस पक्ष का अधिक प्रभाव रहा है?

   ....

   ....

5. अलेक्जेण्डर ने आर्थिक भूगोल की परिभाषा में किस नवीन शब्द को जोड़ा है ?

   ....

   ....

6. आर्थिक भूगोल के कोई दो उद्देश्य लिखिए।

   ....

   ....

1.6 आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र (Scope of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। इसकी प्रकृति में परिवर्तन के साथ इसके क्षेत्र का विस्तार भी हो रहा है। आर्थिक भूगोल एवं गत्यात्मक विषय है तथा अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य विषयों से प्रभावित होने के कारण इसकी विषय वस्तु में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वैसे आर्थिक भूगोल का क्षेत्र विवाद का विषय रहा है। यह तथ्य आर्थिक भूगोल के बारे में विभिन्न विद्वानों

द्वारा दी गई परिभाषाओं से भी स्पष्ट है। इसके विषय क्षेत्र के बारे में तीन मतों पर अधिक चर्चा हुई है जो निम्नलिखित है :

1. आर्थिक भूगोल में मानव की आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन होता है।
2. दूसरा मत नियतिवादी विचारधारा के अनुसार है कि आर्थिक भूगोल का क्षेत्र मानव की आर्थिक क्रियाओं तथा भौतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के परस्पर सम्बन्ध तक ही सीमित है।
3. तीसरी विचारधारा उन विद्वानों की है जो प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव की आर्थिक क्रियाओं जैसे उत्पादन, विनिमय, उपभोग, वाणिज्य, परिवहन आदि के विश्व वितरण से सम्बन्धित है।

इन विचारधाराओं से स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानव की आर्थिक क्रियाएँ हैं। सभ्यता के विकास तथा जीवन स्तर ऊँचा उठाने की लालसा ने मानव की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि की है। आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के साथ आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र में विस्तार होना स्वाभाविक है। आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र में मानव की आर्थिक क्रियाएँ तथा आर्थिक क्रियाओं के आधारी तत्वों की प्रधानता रहती है जो निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट है –

आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र

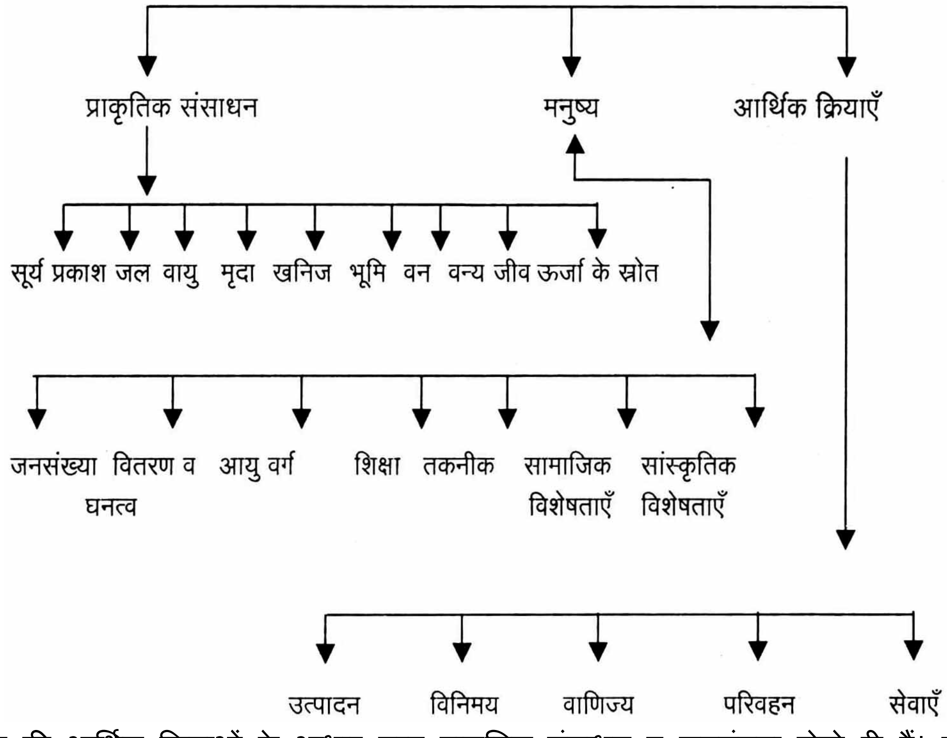

मानव की आर्थिक क्रियाओं के आधार तत्व प्राकृतिक संसाधन व जनसंख्या दोनो ही हैं। मानव की आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन, विनिमय और वितरण से सम्बन्धित होती हैं। इन क्रियाओं का सम्पादन बिना संसाधन, जनसंख्या और परिवहन के साधनों के सम्भव नहीं है। इस प्रकार मानव की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन ही आर्थिक भूगोल का विषय– क्षेत्र बनता है।

1.6.1 प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

प्राकृतिक संसाधन ही आर्थिक क्रियाओं के लिए कच्चे माल तथा क्रिया को सम्पन्न करने के लिए शक्ति के साधनों की आपूर्ति करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता का महत्व इन दो विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं से स्पष्ट है। **जिम्मरमैन के अनुसार "संसाधन पर्यावरण की वे विशेषताएँ है जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम मानी जाती है, उन्हें मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।"** इसी प्रकार **जैम्स फिशर के शब्दो में "संसाधन वह कोई भी वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति करता है।"** इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कोई भी प्राकृतिक तत्व या पदार्थ जब मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है तो वह संसाधन बन जाता है। अत: सौर ऊर्जा, जल, वायु, भूमि, मिट्टी, वनस्पति, जीव जन्तु, खनिज आदि सभी संसाधनों की श्रेणी में आते हैं। संसाधनों की किसी क्षेत्र में स्थिति एवं जलवायु के कारण स्थानिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इनकी मात्रा व गुण भी सर्वत्र समान नही होते हैं। इन प्राकृतिक संसाधनों की मानवीय क्रियाओं में पृथक –पृथक भूमिका होती है। उदाहरण के लिए भूमि और संसाधनों के रूप में मानव किसी कार्य को करने की पृष्ठ भूमि प्रदान करते है। आज के मशीनी युग में प्राय: समस्त आर्थिक क्रियाएँ मशीनों के द्वारा सम्पन्न होती है। अत: ऊर्जा के स्रोत जैसे कोयला, पेट्रोल, जल विद्युत, सौर ऊर्जा आदि इन मशीनों के लिए शक्ति प्रदान करते हैं। कुछ संसाधन जैसे खनिज, वन, प्राणी आदि आर्थिक क्रियाओं को कच्चे माल की आपूर्ति करते हैं। आर्थिक भूगोल में इन प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति, वितरण, गुणात्मकता एवं मात्रा का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही संसाधनों के विदोहन एवं उपभोग का ज्ञान प्राप्त करना भी आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में सम्मिलित है।

1.6.2 मानव संसाधन (Human Resources)

आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में मानव संसाधन का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक क्रियाओं और मनुष्य की सामाजिक दशाओं पर जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं यथा वितरण प्रारूप, घनत्व, लिंगानुपात, आयुवर्ग, साक्षरता, तकनीकी ज्ञान आदि का प्रभाव पड़ने के कारण इनको भी आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है। आज भी कुछ देश ऐसे हैं जहाँ जनसंख्या की कमी के कारण प्राकृतिक संसाधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसके विपरीत कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या तो अधिक है किन्तु शिक्षा की कमी एवं तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण वहाँ के संसाधनों का उपयोग नही हो पा रहा है। मानव वास्तव में संसाधन की श्रेणी में तभी सम्मिलित किया जा सकता है जब वह आर्थिक उत्पादन तथा देश के आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान की क्षमता रखता हो। अन्यथा अशिक्षित, रूढ़िवादी, तकनीकी ज्ञान रहित जनसंख्या किसी राष्ट्र के लिए संसाधन के स्थान पर भार होती है। आर्थिक भूगोल में जनसंख्या से सम्बन्धित इन सभी तत्वों को अध्ययन के लिए सम्मिलित किया जाता है।

1.6.3 आर्थिक क्रियाएँ (Economic Activities)

इन दो आधारी तत्वों के अतिरिक्त मानव की आर्थिक क्रियाएँ भी आर्थिक भूगोल की मुख्य अध्ययन सामग्री हैं । इन क्रियाओं के मुख्य तीन प्रकार हैं –

1. उत्पादन
2. विनिमय
3. उपभोग

1.6.3.1 उत्पादन

उत्पादन आर्थिक क्रिया का प्रमुख भाग है। इसी क्रिया पर मानव की अन्य आर्थिक क्रियाएँ निर्भर करती हैं। मानव की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति का उद्देश्य ही उत्पादन का अभिप्रेरक है। उत्पादन से आशय मानव के उन कार्यो से है जिनसे वस्तु का रूप परिवर्तन होकर उसमें मानव की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता बढ़ती है और वस्तु का रूप परिवर्तन होने से उसके मूल्य में वृद्धि होती है। इस मूल्य वृद्धि में स्थान और अधिकार परिवर्तन का भी योगदान होता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति एक बाल्टी चिकनी मिट्टी पाँच रूपये में एक कुम्हार को बेचता है। वह कुम्हार उस मिट्टी से दो मटके बनाता है और उनको 30 – 30 रूपयों में शहर में जाकर बेचता है। इसमें रूप परिवर्तन, स्थान व अधिकार परिवर्तन तीनों तत्व निहित है जिनके कारण मिट्टी के मूल्य में वृद्धि हुई।

उत्पादन सम्बन्धी कार्यो को चार वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है :– (1) प्राथमिक आर्थिक सम्बन्धी क्रियाएँ (2) द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ (3) तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ (4) चतुर्थक आर्थिक क्रियाएँ।

1. **प्राथमिक क्रियाएँ (Primary Economic Activities) :** इनमें मानव के वे कार्य सम्मिलित किये जाते हैं जिनमें मनुष्य प्रकृति से प्राप्त पदार्थो का सीधे उपयोग करता है। वन्य पदार्थो का संग्रह, मछली पकड़ना, कृषि करना, लकड़ी काटना, खनिज उत्पादन, पशुचारण आदि प्राथमिक क्रियाओं के अन्तर्गत आते हैं। एक प्रकार से आदि मानव द्वारा प्रारम्भ की गई जीविकोपार्जन की क्रियाएँ प्राथमिक उत्पादन क्रियाएँ हैं। वैसे वस्तुओं को रूप परिवर्तन से पूर्व उनके संग्रह करने से सम्बन्धित क्रियाओं को इसमें सम्मिलित किया जाता है। स्पष्ट है कि प्राथमिक उत्पादन की क्रियाओं से आशय कच्चे माल के उत्पादन से सम्बन्धित क्रियाओं से है। इसमें चार प्रकार की कच्चे माल से सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन होता है। प्रथम प्रकार में कृषि उपजों का अध्ययन किया जाता है जो कृषकों द्वारा पैदा की जाती है। दूसरे प्रकार का कच्चा माल पशुओं से प्राप्त होता है जैसे दूध, मांस, अण्डे, हड्डियाँ, ऊन, खाल आदि। तीसरे प्रकार के कच्चे माल में खनिज आते है जो खानों से उत्खनन द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। वनों से फल संग्रहण, कन्द –मूल प्राप्त करना व शहद एकत्रित करना चौथे प्रकार में सम्मिलित हैं।
2. **द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ (Secondary Economic Activities) :** इसके अन्तर्गत वे कार्य सम्मिलित हैं जिनमें प्रकृति से प्राप्त पदार्थो का सीधे उपयोग न होकर उनका रूप

परिवर्तन कर उनकी उपयोगिता में वृद्धि करके प्रयोग में लाया जाता है। स्वरूप परिवर्तन के कारण उनके मूल्य में भी वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए लोहा खनिज से इस्पात बनाकर अनेक उपकरणों में उसको परिवर्तित करना। इनके अन्तर्गत वस्तु निर्माणकारी उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है।

3. **तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ (Tertiary Economic Activities) :** इसके अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती हैं जो अप्रत्यक्ष रूप में प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन कार्य में सहायक होती हैं। कच्चे माल के स्थानान्तरण, वितरण, संचार एवं संवाद, वाहन, व्यापारी, बैंक कर्मचारी, सहायता देनी वाली संस्थाएँ, बीमा कम्पनी आदि की क्रियाएँ तृतीयक वर्ग में आती हैं। उत्पादन और विनिमय में सहयोग देने वाली सेवाएँ जैसे लेखाकार, प्रबन्धक, लिपिक, रक्षक, दुकानदार आदि भी इस श्रेणी में आते है।
4. **चतुर्थक आर्थिक क्रियाएँ (Quaternary Economic Activities) :** कुछ सेवाएँ ऐसी हैं जिनका प्रथम तीन उत्पादन कार्यो से कोई सम्बन्ध नही होता है लेकिन ये अप्रत्यक्ष रूप में उत्पादन प्रक्रिया में सहायक होती हैं। इस वर्ग में शिक्षक, चिकित्सक, वकील आदि की क्रियाएँ सम्मिलित की जाती है। उदाहरण के लिए शिक्षक उत्पादन कार्य में लगे व्यक्तियों में शिक्षण द्वारा उनके उत्पादन कौशल में वृद्धि करता है। इसी प्रकार चिकित्सक उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखकर उनकी उत्पादन क्षमता को कम नही होने देता है।

1.6.3.2 विनिमय (Exchange)

विनिमय वह प्रक्रिया है जिसमें वितरण और अधिकार परिवर्तन होता है और जिसके कारण वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होती है। इसमें यातायात एव परिवहन ऐसी क्रियाएँ है जो वितरण में सहायता करती हैं और व्यापार वह क्रिया है जो अधिकार परिवर्तन में सहायता करती है।

1.6.3.3 उपभोग (Consumption)

आर्थिक प्रक्रिया की अन्तिम अवस्था उपभोग की है जिसमें व्यक्तियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपभोग होता है। जितना अधिक उपभोग बढ़ेगा उतनी ही उन वस्तुओं की माँग में वृद्धि होगी। किसी वस्तु की माँग में वृद्धि उस वस्तु के उत्पादन तथा विनिमय को प्रभावित करेगी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्पादन, विनिमय व उपभोग से सम्बन्धित सभी क्रियाएँ परस्पर सम्बन्धित होती हैं। वे परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर होती हैं। इसमें संसाधन या कच्चे माल को उत्पादन केन्द्रों तक तथा उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाना आवश्यक है। इस कार्य में संचार माध्यम और परिवहन के साधनों का उपयोग होता है। अतः आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में इनको सम्मिलित करना आवश्यक है।

आर्थिक भूगोल में अध्ययन की केन्द्र बिन्दु मानव की आर्थिक क्रियाएँ होती हैं इनका अध्ययन करने के लिए इनसे सम्बन्धित बिन्दु यथा स्थिति, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन की विशेषताएँ तथा क्षेत्रीय वितरण आदि को आधार बनाया जाता है। कोई भी आर्थिक क्रिया की स्थापना चाहे जिस स्थान पर नहीं होती है, इसकी स्थापना के लिए कुछ कारक उत्तरदायी होते हैं। ये कारक ही सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में कार्यरत होते हैं। कुछ विद्वानों, जैसे–वान थ्यूनेन, वेबर तथा

क्रिस्टलर के सिद्धान्तों का विवेचन आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र का ही अंग हैं। आर्थिक भूगोल के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण विषय मानव–वातावरण के सम्बन्धों को अपनी अध्ययन सीमा में सम्मिलित करता है। मानव–वातावरण तंत्र की सीमा के अन्दर अध्ययन के मुख्य केन्द्र बिन्दु निम्न चार हैं –

1. **आर्थिक क्रियाओं या कारक के क्षेत्रीय वितरण प्रारूप का अध्ययन :** आर्थिक भूगोल में हम उन सभी आर्थिक कार्य कलापों का अध्ययन करते हैं जो पृथ्वीतल पर मूर्त रूप में स्थित हैं या पाये जाते हैं। वैसे तो प्रत्येक आर्थिक क्रिया का अध्ययन उससे सम्बन्धित विशिष्ट शाखा में किया है। लेकिन उनकी अध्ययन विधि आर्थिक भूगोल से भिन्न होती है। आर्थिक भूगोल में प्रत्येक आर्थिक क्रिया के क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप पर विशेष बल दिया जाता है। इससे भी बढ़कर यह विषय आर्थिक कार्यो के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले समुच्चयिक स्वरूप के अध्ययन को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करता है।
2. **अर्थतंत्र के भूवैन्यासिक संगठन पर प्राविधिक विकास का प्रभाव :** अर्थतंत्र का भूवैन्यासिक संगठन प्राविधिक ज्ञान से प्रभावित होकर सदैव परिवर्तनशील रहता है। यदि नवीन तकनीकी ज्ञान को आर्थिक कार्यो में नहीं अपनाया जाय तो अर्थतंत्र का कार्यात्मक संगठन असन्तुलन की दशा की ओर अग्रसर होने लगता है। प्राविधिकी, ऊर्जा के विभिन्न स्त्रोत कोयला, पेट्रोल, जलविद्युत आदि हैं। प्राविधिकी के प्रयोग से अर्थतंत्र के संगठन में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा हुआ। इससे वृहत उद्योगों की स्थापना एवं केन्द्रीयकरण का जन्म हुआ। नगरीयकरण की प्रवृत्ति को अभिप्रेरणा मिली। अर्थतंत्र में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने वहाँ के लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया। इस प्रक्रिया के कारण प्रदेशों में विषमता की अभिवृद्धि हुई और संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पैदा हुई। इसके परिणामस्वरूप विश्व में विकासशील, विकसित और निर्धन राष्ट्रों के वर्ग का जन्म हुआ। स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में आर्थिक क्रियाओं एवं तकनीकी की अन्तर्क्रिया एव इस अन्तर्सम्बन्ध से पैदा प्रादेशिक एवं कालक्रमिक भिन्नता का अध्ययन भी सम्मिलित है।
3. **अन्तर्प्रादेशिक एवं प्रदेशान्तरिक अन्तर्प्रक्रिया का विवेचन :** वैसे तो प्रादेशिक अर्थतंत्र परस्पर अलग और अपने आप में विशेष विशेषताओं से युक्त होते हैं किन्तु एक वृहद् आर्थिक तंत्र से जुड़े होने के कारण वे परस्पर आबद्ध होते हैं। साथ ही परस्पर निर्भरता के कारण वैश्वीकरण के विचार का उदय हुआ है। आज विश्व के किसी भाग में घटित घटना का विश्व के सभी राष्ट्रों द्वारा प्रभाव अनुभव किया जाता है। पेट्रोलियम उत्पादक देशों द्वारा अपने देश में उत्पन्न पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि करने पर उससे विश्व के सभी देश प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार कहीं खोजी गई नवीन प्राविधिकी का प्रभाव विश्वस्तर पर देखा जाता है। यह इस बात का प्रमाण है कि अन्तर्प्रादेशिक एवं प्रदेशान्तर अन्तर्प्रक्रिया कार्यरत रहती हैं। अन्तर्प्रक्रिया के संचालन में संचार एव परिवहन के साधनों की अहम् भूमिका होती है। आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में अन्तर्प्रक्रिया और उसके प्रभाव का अध्ययन भी सम्मिलित है।

4. पर्यावरण एवं जीवन स्तर पर गुणात्मक प्रभाव : किसी भी प्रदेश में विकसित अर्थतंत्र का वहाँ के स्थानीय वातावरण और वहाँ रहने वाले लोगों के जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि दोनों परस्पर क्रिया व प्रतिक्रिया करते हैं। उद्योगों से निकलने वाला धुआँ, गैसें, गन्दा पानी, विसर्जित कचरा आदि प्रदेश के पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। आज नदियों में प्रवाहित जल पीने के योग्य नहीं रहा है। प्रदूषण के कारण ओजोन पर्त में छिद्र हो गये हैं और भूमण्डल के तापमान में वृद्धि हो रही है। अनेक लोग गम्भीर बीमारियों से ग्रस्त हैं। संसाधनों का पर्याप्त के दोहन से पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो रहा है। इसके विपरीत जिन प्रदेशों में संसाधनों का पर्याप्त दोहन और उपयोग नहीं हो रहा है वहाँ के निवासी आज भी निर्धनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। इसलिए आवश्यक है कि पर्यावरण के सभी घटकों में आवश्यक समीकरण स्थापित किया जाय। वर्तमान काल में आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में इस बिन्दु को सम्मिलित करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

बोध प्रश्न – 2

1. उत्पादन से क्या आशय है ?

   ....

   ....

2. किन क्रियाओं को तृतीयक आर्थिक क्रियाओं में सम्मिलित किया जाता है ?

   ....

   ....

3. आर्थिक भूगोल में मानव की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित किन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है?

   ....

   ....

4. पर्यावरण प्रदूषण का मानव जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है?

   ....

   ....

5. पर्याप्त संसाधन दोहन और उपयोग न होने वाले क्षेत्र वासियों की आर्थिक दशा कैसी होगी?

   ....

   ....

1.7 आर्थिक भूगोल की परिवर्तित प्रकृति (Changing nature of Economic Geography)

मानव जीवन में आर्थिक क्रियाओं के निर्मित तथा पुनर्निमित जाल के कारण आर्थिक भूगोल की प्रकृति निरन्तर परिवर्तित हो रही है। इसके साथ इसके अध्ययन में आर्थिक विकास और जीवन की गुणवत्ता के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन इस विषय की परिवर्तनशीलता में मुख्य भूमिका

निभाता रहा है। अर्थतंत्र की रचना में आर्थिक भूदृश्यों की भूमिका, आर्थिक क्रियाओं के ध्रुवीकरण, आर्थिक विकास के प्रादेशीकरण तथा आर्थिक एव व्यापारिक संगठनों के अभ्युदय की अहम् भूमिका रही है। ये समस्त घटनाएँ आर्थिक भूगोल की प्रकृति को परिवर्तित करती रही हैं। आज आर्थिक विकास के आधार पर जीवन की गुणवत्ता का मूल्यांकन किया जाता है। लेकिन दु:ख इस बात का है कि 20वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आर्थिक विकास में ऐसी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप ऐसे अवरोधक पैदा हो गए जिनसे जीवन की गुणवत्ता को भयंकर खतरा अनुभव किया जाने लगा

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ (Stage of Economic Development) : मानव जीविकोपार्जन हेतु जो क्रियाएँ करता है उनके साथ ही आर्थिक विकास जुड़ा हु आ है। आर्थिक विकास और सभ्यता–संस्कृति का अभ्युदय परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं। आर्थिक विकास क्रम एक चरणबद्ध रूप में वर्तमान स्वरूप तक पहुँचा है। यह विकास क्रम छ : चरणों में विभक्त किया जा सकता है : (1) भोजन संग्रहण अवस्था (2) पशु चारण अवस्था (3) कृषि अवस्था (4) सामन्ती कृषि अवस्था (5) नगरीयकरण एव पूँजीवादी अर्थतन्त्र अवस्था (6) औद्योगिक समाज तथा आधुनिक नगरीयकरण की अवस्था ।

आर्थिक विकास की अवस्थाओं के बारे में कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं :

प्रो.बकर ने आर्थिक विकास की तीन अवस्थाएँ मानी है : (1) गृह अर्थव्यवस्था (2) नगरीय अर्थव्यवस्था (3) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था।

प्रो. फ्रेडरिक ने निम्न पाँच अवस्थाएँ मानी है : (1) जंगली अवस्था (2) चरागाह अवस्था (3) कृषि अवस्था (4) उद्योग अवस्था (5) उद्योग एवं वाणिज्य अवस्था।

प्रो. डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टोव के अनुसार अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं :

1. **परम्परागत समाज की अवस्थाएँ :** इस अवस्था की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं – (i) कृषि मुख्य व्यवसाय (ii) प्राविधिकी स्तर नीचा (iii) निर्माणकारी व सेवा सम्बन्धी कार्यो की न्यूनता (iv) शिक्षा का स्तर नीचा (v) पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्धों का महत्व।
2. **स्वयं स्फूर्ति की पूर्व अवस्था :** इस अवस्था की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं – (i) जनसंख्या अनुपात की उद्योगों में वृद्धि (ii) विदेशी पूँजी द्वारा संसाधन दोहन (iv) कृषि के क्षेत्र में नवीन परिवर्तन (iv) बैंकिंग, परिवहन व संचार व्यवस्था में सुधार
3. **स्वयं स्फूर्ति की अवस्था :** इसकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं: (i) औद्योगीकरण की तीव्र प्रवृति (ii) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (iii) विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन।
4. **परिपक्तता की दिशा :** निम्न विशेषताएँ इस अवस्था में पायी जाती हैं – (i) नगरीय जनसंख्या अनुपात में वृद्धि (ii) उद्योगों में नवीन तकनीक का उपयोग (iii) कृषि का गौण स्थान (iv) राजनीतिक चेतना में वृद्धि।
5. **अत्यधिक उपभोग की अवस्था :** इसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं – (i) व्यक्तिगत उपभोग को प्रोत्साहन (ii) उपभोग सामग्री का अधिक उत्पादन (iii) उत्पादन व उपभोग

का स्तर ऊँचा होना (iv) उद्योगों में नवीन तकनीक का उपयोग (v) कृषि की अपेक्षा उद्योगों को प्रधानता। विश्व में प्रारम्भ हुई आधुनिक औद्योगिक क्रान्ति ने मानव के सामाजिक व आर्थिक तंत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन द्वारा एक साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और जीवन शैली में नवीन प्रतिमान और नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना कर भौतिकवादी उपभोक्ता प्रधान जीवन शैली को जन्म दिया। इस काल के अर्थतंत्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं – (i) पूँजी का उत्पादन पर अधिक उपयोग (ii) मानव श्रम के विकल्प रूप में विविध तकनीकों और यंत्रों का आविष्कार (iii) ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग (iv) साधन और शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा उद्योगों तथा औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण (v) कच्चे माल और बाजार के लिए उपनिवेशवाद को प्रोत्साहन (vi) कृषि का कायाकल्प तथा नवीन तकनीकों के प्रयोग द्वारा कृषि का व्यवसायीकरण (vii) प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं में मशीनों के प्रयोग से आधुनिकीकरण (viii) भौतिकवादी जीवन शैली का प्रादुर्भाव (ix) नगरीयकरण और जनसंख्या वृद्धि में तीव्रता (x) निर्धन और धनवानों के मध्य खाई का विस्तार (xi) इन सब विशेषताओं के प्रतिफल के रूप में पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म।

उपरोक्त सभी विशेषताओं ने आर्थिक भूगोल की प्रकृति को प्रभावित किया। जहाँ पूर्व में आर्थिक भूगोल में मानव के आर्थिक क्रियाओं और उसके पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता था, वहीं अब आर्थिक भूगोल में पूँजी उत्पादन व पूँजी निवेश, आर्थिक भूदृश्यों की रचना, नगरीयकरण, विकसित और अविकसित राष्ट्रों के अर्थतंत्र की विशेषताओं, मानव की परिवर्तित जीवन शैली तथा मानव के द्वारा प्राकृतिक व्यवस्था में डाले गए विघ्न से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

आर्थिक विकास और वृद्धि विवादास्पद शब्द रहे हैं। प्राय: विद्वान दोनों को पर्यायवाची मानते हैं। लेकिन वस्तुत: इन दोनों शब्दों में अन्तर है। वृद्धि यथार्थ में मात्रात्मक परिवर्तन का बोध कराती है जबकि आर्थिक विकास में मात्रात्मक के साथ गुणात्मक पक्ष भी निहित है। वृद्धि विकास के लिए अनिवार्य है। वृद्धि के लिए कोई न्यूनतम आधार नहीं होता है जबकि विकास के लिए न्यूनतम आधार प्राप्त करना आवश्यक है। आर्थिक विकास विविध चरणों में एक समन्वित श्रृंखला के रूप में होता है। आर्थिक विकास का स्तर किसी प्रदेश या राष्ट्र के लोगों की प्रति व्यक्ति आय की आधार शिला बनती है। प्रति व्यक्ति आय का दोषपूर्ण वितरण धनी और निर्धन वर्गो को जन्म देता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास जनसंख्या के क्षेत्रीय वितरण और जीवन शैली को प्रभावित करता है। आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व इस प्रकार हैं -

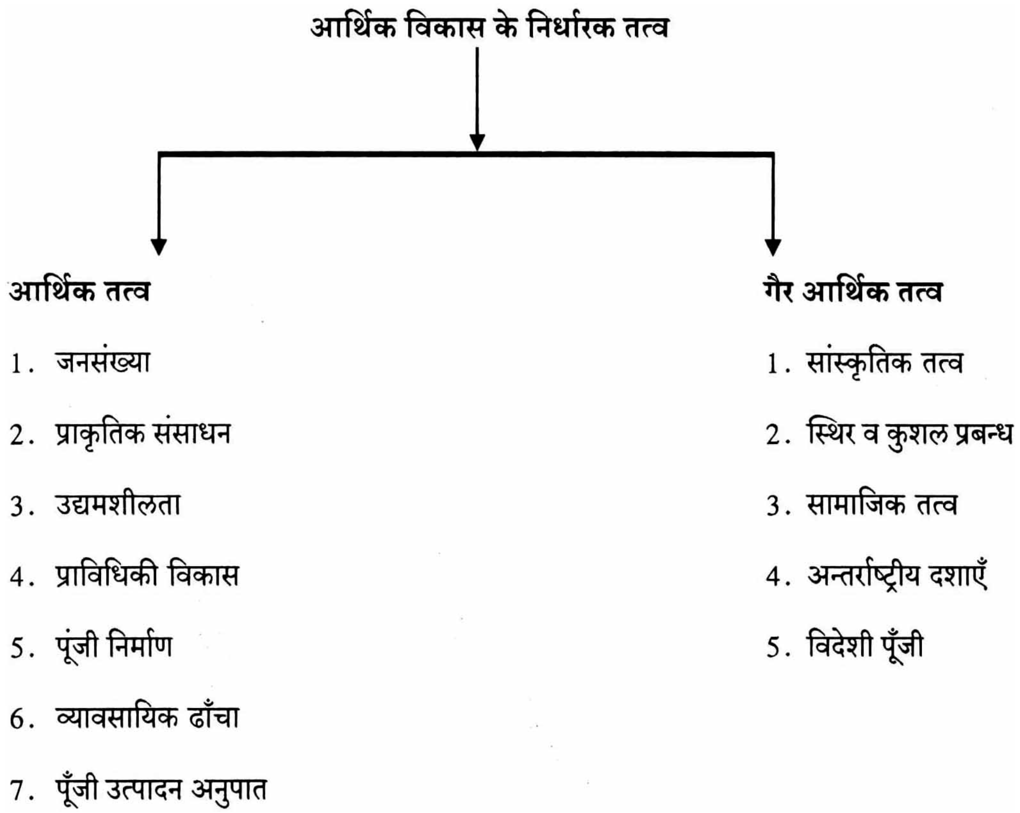

औद्योगिकीकरण के कारण नगरीयकरण बढ़ता है। इस तथ्य को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए कुछ विद्वानों ने सिद्धान्तों का निरूपण किया। सिद्धान्तों में अभिकल्पित रूपरेखा द्वारा उन परिस्थितियों और कारकों का विश्लेषण किया जाता है जो आर्थिक विकास को गतिमान रखते हैं। इन सिद्धान्तों के प्रतिपादकों में उल्लेखनीय नाम रिकार्डों, हैरोड डोमर, कार्लमार्क्स, प्रो. रोस्तोव, अलेक्जेंडर गर्जक्रेन के हैं। इनके कारण आर्थिक भूगोल की प्रकृति में पुन: परिवर्तन हुआ और आर्थिक भूगोल का सैद्धान्तिक पक्ष प्रबल हो गया।

आर्थिक तंत्र एवं प्रादेशीकरण (Economic System and Regionalization)

आर्थिक भूगोल में सन् 1960 के दशक में आर्थिक विकास के प्रादेशिक प्रसारण पर बल दिया क्योंकि आर्थिक विकास का प्रारूप क्षेत्रीय स्तर पर असमान पाया जाता है। विभिन्न देशों के क्षेत्रीय विकास के स्वरूप से इस तथ्य की पुष्टि होती है। आर्थिक भूगोल की प्रकृति में पुन: परिवर्तन हुआ और कुछ सिद्धान्तों द्वारा क्षेत्रीय विषमता का विवेचन किया। कुछ प्रमुख सिद्धान्तों में निर्यात आधार मॉडल, संचयी विकास एवं निस्त्राव मॉडल, वृद्धि ध्रुव सिद्धान्त, मौलिक आवश्यकता सिद्धान्त उल्लेखनीय है।

आर्थिक तंत्र का प्रारूप किसी क्षेत्र में लोगों द्वारा जीविकोपार्जन के लिए प्रयोग में लाई गई मशीनों, आर्थिक क्षमता, आर्थिक जीवन के विकास स्तर, आर्थिक एवं व्यावसायिक संगठनों के सामूहिक प्रभाव का प्रतिफल होता है। विश्व में आजकल पाँच प्रकार के अर्थतंत्र पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं – (i) भोजन संग्रह एवं आखेट प्रधान (ii) पशु चारण (iii) साधारण (iv) व्यापारिक कृषि (v) औद्योगिक तंत्र। इसी प्रकार वर्तमान आर्थिक भूगोल में प्रादेशीकरण का

अध्ययन होता है। प्रादेशीकरण एक कठिन प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों की उपलब्धता, यांत्रिक उपयोग, उद्योगों की स्थिति के लिए अनुकूल दशाएँ आदि आर्थिक विकास में असमानताएँ पैदा करके प्रदेशों में भिन्नता को जन्म देती हैं। प्रादेशीकरण की दिशा में बेरी का योगदान महत्वपूर्ण है। प्रो. काशीनाथ सिंह ने विश्व को औद्योगिक, व्यापारिक, आर्थिक तंत्र वाले विकसित प्रदेश, संक्रमण अर्थ तंत्र वाले प्रदेश, विकासोन्मुखी आर्थिक प्रदेश, अल्प विकसित प्रदेश, केन्द्रीय नियोजित विकासोन्मुखी आर्थिक प्रदेशों में विभक्त किया है।

आर्थिक भूगोल की प्रकृति में पुन: परिवर्तन हुआ जब इसने मानव जीवन की गुणवत्ता का अध्ययन अपने क्षेत्र में सम्मिलित किया। वैसे भी आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य जीवन की गुणवत्ता को सुधारना है। लेकिन विगत कुछ वर्षो में आर्थिक विकास की होड़ में मानव प्राकृतिक वातावरण के प्रति इतना निष्ठुर बन गया कि उसका परिणाम अब पर्यावरण अवनयन के रूप में दिखने लगा है। विश्व स्तर पर यह चिन्ता का विषय बन गया है।

बोध प्रश्न – 3

1. आर्थिक विकास और वृद्धि में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
   ....
   ....
2. आर्थिक विकास क्रम की किन्ही तीन अवस्थाओं के नाम लिखिये।
   ....
   ....
3. तात्कालिक अर्थतन्त्र की कोई दो विशेषताएँ लिखिए जिन्होंने आर्थिक भूगोल की प्रकृति को प्रभावित किया है।
   ....
   ....
4. अर्थतंत्र की रचना को कौन से तत्व प्रभावित करते हैं?
   ....
   ....

1.8 सारांश (Summary)

भूगोल की दो शाखाओं में से एक शाखा मानव भूगोल की उपशाखा के रूप में आर्थिक भूगोल का जन्म हुआ। प्रारम्भ में वाणिज्य भूगोल के नाम से प्रसिद्ध इस शाखा का नाम 1882 में प्रथम बार प्रो. गोट्ज ने आर्थिक भूगोल किया। आर्थिक भूगोल का विकास विविध चरणों में हुआ। आर्थिक भूगोल को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया। इन परिभाषाओं पर तत्कालीन भौगोलिक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। इस सम्बन्ध में अलेक्जेण्डर की परिभाषा अधिक उपयुक्त है। आर्थिक भूगोल के विविध उद्देश्य हैं। प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की मात्रा, गुणात्मक, वितरण और उपयोग का ज्ञान कराना तथा आर्थिक विकास के स्थानिक रूप का विवेचन करना आर्थिक भूगोल का मुख्य उद्देश्य है।

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र व्यापक है। इसके अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का मूल्यांकन करना, आर्थिक क्रियाओं जैसे उत्पादन, विनिमय व उपभोग का विवेचन, आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्रीय वितरण का विश्लेषण, अर्थतंत्र के रूपों एवं मानव जीवन एवं पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन सम्मिलित है।

आर्थिक भूगोल की प्रकृति गत्यात्मक है। प्राकृतिक संसाधनों और आर्थिक क्रियाओं के वितरण से प्रारम्भ होकर आर्थिक भूदृश्यों, प्रादेशीकरण एवं सिद्धान्तों के निरूपण तक इसकी प्रकृति में बदलाव आया है।

1.9 शब्दावली (Glossary)

- प्राकृतिक संसाधन : प्राकृतिक संसाधन वे संसाधन हैं जो प्रकृति प्रदत्त होते हैं और मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम होते हैं।
- उत्पादन : मानव की वे क्रियाएँ है जिनसे वस्तु का रूप परिवर्तित होकर उपयोगिता एवं मूल्य में वृद्धि होती है।
- विनिमय : विनिमय वह प्रक्रिया है जिसमें वितरण और स्वामित्व पीरवर्तन होता है।
- भूवैन्यासिक संगठन : मानव समाज द्वारा क्षेत्र के समाकलित उपयोग में मानव क्रियाओं
  के परस्पर अन्तर्सम्बन्धित पुंज को भूवैन्यासिक संगठन कहते हैं।
- आर्थिक भूदृश्य : अर्थतंत्र के विविध पक्षों जैसे कृषि, उत्खनन, उद्योग, व्यापार आदि से सम्बन्धित विविध तत्वों के समुच्चय रूप को आर्थिक भूदृश्य कहते हैं।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. सिंह, जगदीश और सिंह, काशीनाथ : **आर्थिक भूगोल के तत्व,** ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 1999
2. श्रीवास्तव, वी. के. एवं राव, वी.पी : **आर्थिक भूगोल,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1996
3. Carter, W.H & Dodge, R.E. : **Economic Geography,** New York, 1939
4. Alexander, J.N.: **Economic Geography,** Eglewood cliffs, New Jearsey.
5. Johns, C.F.: **Economic Geography,** New York, 1959.
6. जैन, हरक चन्द : **सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल,** कमलेश प्रकाशन, भीलवाड़ा (राज.) 1984

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. मानव भूगोल।

2. जर्मन विद्वान गोट्ज।
3. सी एफ. जोन्स।
4. सैद्धान्तिक पक्ष।
5. सम्पति।

   (1) आर्थिक विकास की योजना बनाने में सहायता करना।

   (2) प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन करना। (या अन्य कोई दो)

बोध प्रश्न – 2

1. वस्तुओं का रूप परिवर्तन करके उनकी उपयोगिता और मूल्य में वृद्धि करना ही उत्पादन है।
2. संचार के साधन, परिवहन, व्यापारी, बैंक कर्मचारी, बीमा कम्पनी, वित्तीय सहायता देने वाली संस्थाएँ, लेखाकार, प्रबन्धक, लिपिक आदि।
3. भौगोलिक दशाऐं, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन की विशिष्टताओं एवं क्षेत्रीय वितरण के आधार पर अध्ययन।
4. पर्यावरण प्रदूषण से बीमारियाँ फैलती हैं और कार्यक्षमता कम होती है।
5. निर्धनता की होगी।

बोध प्रश्न – 3

1. वृद्धि मात्रात्मक परिवर्तन और विकास मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन का बोध कराते हैं।
2. (1) भोजन संग्रह अवस्था (2) कृषि अवस्था (3) नगरीयकरण व पूंजीवादी अवस्था (या अन्य कोई तीन) ।
3. (1) भौतिकवादी जीवन शैली की लोकप्रियता (2) नगरीयकरण और जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि (या अन्य कोई दो) ।
4. मशीनों का प्रयोग, आर्थिक क्षमता, आर्थिक एवं व्यापारिक संगठन, वातावरण, मनुष्य।

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आर्थिक भूगोल के अर्थ और अध्ययन क्षेत्र को समझाइये।
2. मानव की आर्थिक क्रियाएँ कौन सी हैं? इनका अर्थतंत्र पर प्रभाव स्पष्ट कीजिये।
3. आर्थिक भूगोल की परिवर्तित प्रकृति का विवेचन कीजिये।

इकाई 2 : अर्थव्यवस्था: परिभाषा, सरलीकृत मॉडल, पर्यावरणीय सम्बन्ध एवं स्थानिक संरचना (Economic : Definition, Simple model Environment Relation and Structure)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अर्थव्यवस्था की परिभाषाएँ

2.3 अर्थव्यवस्था का सरलीकृत मॉडल

- 2.3.1 उपभोक्ता
- 2.3.2 फर्म
- 2.3.3 संसाधन मालिक
- 2.3.4 सरकार

2.4 अर्थव्यवस्था का पर्यावरणीय सम्बन्ध

- 2.4.1 सामाजिक सम्बन्ध
- 2.4.2 पारिस्थितिकीय सम्बन्ध

2.5 अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना

- 2.5.1 बन्द अर्थव्यवस्था
- 2.5.2 खुली या मुक्त अर्थव्यवस्था
- 2.5.3 समन्वित या मिश्रित अर्थव्यवस्था

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि :

- आर्थिक क्रियाएं व अर्थव्यवस्थाएँ,
- अर्थव्यवस्थाओं के प्रकार
- अर्थव्यवस्थाओं की अंतंप्रक्रियाएँ,
- अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति,
- अर्थव्यवस्थाओं की समस्याऐं।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

जिस संस्थागत संरचना के अन्तर्गत मानव की उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं का सम्पादन होता है, उस संस्थागत संरचना को ही अर्थव्यवस्था (Economic) या आर्थिक प्रणाली (Economic System) अथवा आर्थिक संगठन (Economic Organisation) की पद्धति कहते हैं।

इसके अन्तर्गत वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों की अनन्त आवश्यकताओं व साध्यों की पूर्ति के द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि के लिए चयन करने (Choice making) तथा निर्णय लेने (डDecision making) की जिन–जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन्हें अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्याएँ (Central Problems of Economy) या आर्थिक प्रणाली की केन्द्रीय समस्याएँ (Central Problems of Economy System) भी कहते हैं।

2.2 अर्थव्यवस्था की परिभाषाएँ (Definition of Economy)

प्रो. बकिंघम के अनुसार, अर्थव्यवस्था उत्पादन के सभी साधनों पर पारस्परिक रूप से आश्रित नियन्त्रणों का समूह है।

दूसरे शब्दों में आर्थिक प्रणाली का अभिप्राय उस वैधानिक तथा संस्थागत (Legal and Institutional Framework) ढाँचे से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का संचलन होता है। इससे स्पष्ट है कि जिस संस्थागत संरचना में मानव की आर्थिक क्रियाओं

– उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एव राजस्व का सम्पादन होता है, वही अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली (Economic System) कहलाती है।

अत्यंत सरल शब्दों में अर्थव्यवस्था (Economic) या आर्थिक प्रणाली (Economic System) से हमारा अभिप्राय उस पद्धति से है जिसके आधार पर किसी क्षेत्र विशेष के रहने वाले लोग वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन की व्यवस्था के लिए पारस्परिक सहयोग देते हैं ताकि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

प्रो. ए. जे. ब्राऊन के शब्दों में, "अर्थव्यवस्था शब्द का प्रयोग अधिकतर ऐसी प्रणाली के लिए किया जाता है जिसके द्वारा लोगों का जीवन निर्वाह होता है । जैसे रुसी अर्थव्यवस्था, अमरीकी अर्थव्यवस्था, भारतीय अर्थव्यवस्था आदि।"

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार, "जब किसी संगठन का प्रमुख उद्देश्य, वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग होता है उसे हम आर्थिक संगठन कहते हैं।"

हेरोल्ड मेकार्टी व जेम्स लिन्डबर्ग ने अपनी पुस्तक "A Preface to Economic Geography" में अर्थव्यवस्था को अत्यधिक आसानी से इस प्रकार परिभाषित किया है, "An economy may be define simply as a system of production, whose central purpose is to create a type of product, but whose operations also include all of the related activities present in the area of production and necessary to the creation of the product."

साधारणतया अर्थव्यवस्था को एक उत्पादन प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जिसका मूलभूत उद्देश्य एक प्रकार के उत्पाद को उत्पन्न या तैयार करना होता है । लेकिन अर्थव्यवस्था के संचालन में वे सभी सम्बन्धित क्रियाऐं सम्मिलित होती हैं जो उत्पादन क्षेत्र में पायी जाती हैं और उस उत्पाद को तैयार करने के लिये आवश्यक होती हैं।

उदाहरण के लिये गेहूँ उत्पादक अर्थव्यवस्था के संगठन में न केवल गेहूँ उत्पन्न करने वाले किसान ही सम्मिलित होते हैं बल्कि उसमें भार उठाने वाली मशीनों के संचालन करने वाले, ट्रक चालक, बाड़ बनाने वाले, बैंक कर्मचारी, व्यापारी तथा वे सभी उत्पादन कर्ता भी शामिल होते हैं जिनकी सेवाओं के योगदान से उस वस्तु का उत्पादन कार्य सम्पन्न हो पाता है। इसी प्रकार का विश्लेषण अन्य प्रकार की उत्पादन प्रणाली (अर्थव्यवस्था) के लिये भी किया जा सकता है।

यह अवधारणा किसी प्रदेश विशेष के आर्थिक भूदृश्य का भी विश्लेषण करती है। चूंकि यह अवधारणा उन विशेष प्रकार की क्रियाओं पर भी प्रकाश डालती है जो कि किसी विशेष प्रकार की उत्पादन प्रणाली (या अर्थव्यवस्था) के उत्पादन शुरु होने से पहले आवश्यक होती है।

माइकेल इलियट हर्स्ट के अनुसार मानवीय मान्यताएँ व हस्तक्षेप संयुक्त रूप से उपयोगिता (Utility) का सृजन करते हैं अर्थात् संसाधनों में इस प्रकार का परिवर्तन लाना कि वे मानव के लिये उपयोगी हो सके।

संसाधनों में उपयोगिता का तत्व मानव तीन तरह से उत्पन्न करता है–

1. विनिर्माण द्वारा मानव, संसाधन में रूप उपयोगिता (Form Utility) उत्पन्न करता है।
2. परिवहन द्वारा स्थान उपयोगिता (Place Utility) व
3. भण्डारण द्वारा समय उपयोगिता उत्पन्न (Time Utility) करता है।

मानव के सम्मिलित प्रयास से प्राकृतिक वातावरण को अवशोषण के अनुकूल करने से अर्थव्यवस्था का उद्भव होता है।

किसी अर्थव्यवस्था के दो मूल कार्य –

1. वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करना।
2. इन वस्तुओं व सेवाओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाना।

अर्थ तंत्र का वह भाग या प्रकार जो आर्थिक उत्पादन व वितरण का कार्य करते हैं उन्हें फर्म कहते है। अर्थव्यवस्था का वह भाग जो उत्पादन में संलग्न हैं इसकी आर्थिक क्रियाओं को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है : –

(1) प्राथमिक आर्थिक क्रियाएं,

(2) द्वितीयक आर्थिक क्रियाएं,

(3) तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ,

(4) चतुर्थक आर्थिक क्रियाएं,

(5) पंचम आर्थिक क्रियाएं।

"B.W.Holder and Roger Lee" ने अपनी पुस्तक "Economic Geography" में बताया कि "The term 'economy' refers to a network of economic decision makers."

अर्थव्यवस्था से तात्पर्य आर्थिक निर्णयकर्ताओं के समूह से है।

अर्थव्यवस्था का इस प्रकार का विश्लेषण अर्थव्यवस्था के नवशास्त्रीय संकल्पना से उत्पन्न हुआ। आज के वैज्ञानिक युग में मानव की आवश्यकताएं बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं । परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था का अर्थ जटिल होता जा रहा है और यही कारण है कि आज ऐसा आभास हो रहा है कि आर्थिक भूगोल अपनी पुरानी सीमित क्षेत्रीय संकल्पना की चार दीवारी से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है।

साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक भूगोल का कार्य क्षेत्र दिन –प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप उसके विश्लेषण में जटिलता आती जा रही है।

2.3 अर्थव्यवस्था का सरलीकृत मॉडल (Simple Model of Economy)

अर्थव्यवस्था का विश्लेषण उन सभी प्रभावोत्पादक (उपभोक्ता व फर्म) तत्वों के अभाव में नहीं किया जा सकता है जो कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिये आवश्यक होते हैं। ये अर्थव्यवस्थाएं किसी भी स्तर या पैमाने (Scale) पर पायी जा सकती है अर्थात् आज अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न स्तर देखने को मिलते हैं। गाँवों की साधारण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था से लेकर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और तत्पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था तक देखने को मिलती है। अर्थव्यवस्था का स्तर चाहे कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो और उसका कार्य क्षेत्र कितना भी सीमित क्यों न हो लेकिन उसके गुण (character) या विशेषताओं का निर्धारण अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से होता है। अर्थव्यवस्था के इस तत्व सम्मिश्रण को हम अर्थव्यवस्था का सरलीकृत मॉडल (Simple Model) कहते हैं।

अर्थव्यवस्था का साधारण प्रतिदर्श (Simple Model of Economy)

अर्थव्यवस्था के निम्न तत्व होते हैं –

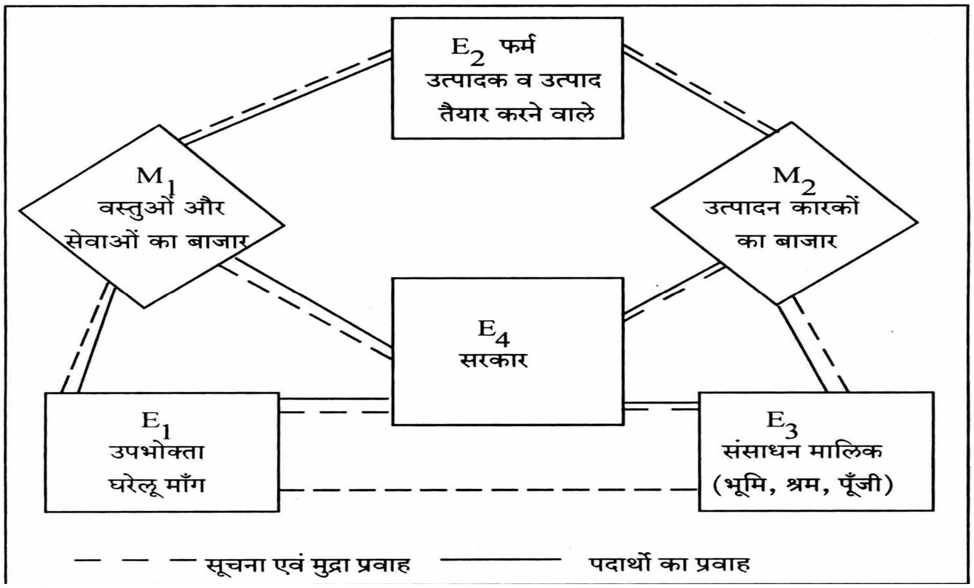

चित्र – 2.1 : अर्थव्यवस्था का सरलीकृत मॉडल

1. अर्थव्यवस्था का सरलीकृत मॉडल विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण द्वारा बना है –

   E_1 उपभोगकर्ता (Consumers)

   E_2 फर्म (Firm)

   E_3 संसाधन (Resource Owners

   E_4 सरकार (Government)

2. आरेख में विभिन्न तत्वों के बीच आपसी सम्बन्ध बतलाये गये हैं। इस आरेख में तत्वों के मध्य सम्बन्धों के एक समूह (जाल या तंत्र) को खण्डित और सतत् (Continuous) रेखाओं द्वारा दर्शाया गया है। खण्डित रेखाएं सूचना व मुद्रा के प्रवाह को तथा सतत् रेखाएं पदार्थ के प्रवाह को इंगित करती हैं। ये इन तत्वों को आपस में जोड़ती हैं। वस्तुओं व सेवाओं के लिए बाजार (M_1) व उत्पादन कारकों के लिये बाजार (M_2) की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।
3. अर्थव्यवस्था का यह मॉडल (Model) विभिन्न तत्वों व उसके चारों ओर पाये जाने वाले सम्पूर्ण पर्यावरण के मध्य स्थित अन्र्तसम्बन्धों का एक समूह है। यहाँ सम्पूर्ण पर्यावरण से तात्पर्य अर्थव्यवस्था के स्तर के ऊपर पाये जाने वाले उच्च अर्थव्यवस्था के स्तर से है।

इस अर्थ में आर्थिक–क्रिया चार तत्वों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं या पारस्परिक क्रियाओं से सम्बन्धित है।

2.3.1. उपभोक्ता (E_1 Consumer)

यह अर्थव्यवस्था का प्रथम तत्व है। इन चारों तत्वों में सबसे प्रमुख उपभोक्ता ही है। उपभोगकर्ता अपने जीवन को सक्षम बनाने के लिये और विशेषकर स्वयं को जीवित रखने के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वह मांग करता है। इससे ही वस्तुओं व सेवाओं के निर्माण के लिए आधार मिलता है। चित्र- 2.1 से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में विभिन्न तत्व आपस में सम्बन्धित रहते हैं।

2.3.2 फर्म (E_2 Firm)

यह अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। जिसको हम उत्पादन करने के लिये निर्मित तकनीकी व संगठनात्मक इकाई कह सकते हैं। जब उपभोक्ता किसी वस्तु की आवश्यकता महसूस करता है तो फर्म आवश्यकताओं की माँग के प्रति अपनी अभिव्यंजना व्यक्त करती है। यह फर्म निर्धारित करती है कि उपभोक्ताओं की माँग की पूर्ति कैसे की जाये। उपभोक्ता की मांगों की पूर्ति के लिये जब भी उत्पादनकर्ता मांग की गई वस्तुओं का निर्माण करना चाहता है तो उसे उत्पादन के लिये (अ) भूमि (ब) श्रम व (स) पूँजी की आवश्यकता होती है। इन तत्वों हेतु इच्छुक फर्म संसाधन मालिकों से सम्पर्क करती हैं। संसाधन मालिक का तात्पर्य उन इकाइयों से है जिनके पास भूमि, मजदूरी व पूँजी उपलब्ध है।

2.3.3 संसाधन मालिक (E_3 Resource Owner)

जब फर्म संसाधनों की मांग प्रस्तुत करती है और संसाधन मालिकों से उस मांग की पूर्ति की इच्छा करती है। फर्म संसाधनों की मांग के समय संसाधन मालिकों को भी उनके संसाधन के लिये कुछ न कुछ भुगतान का प्रस्ताव रखती है यदि इस प्रस्ताव से संसाधन मालिक संतुष्ट होते हैं तो संसाधन मालिक अपने संसाधनों का कुछ भाग फर्म को देने को तैयार हो जाते हैं। अब फर्म संसाधनों के इस्तेमाल से उत्पादक सेवाओं (या उत्पादन के कारकों) का सृजन करती है और इन उत्पादक सेवाओं के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्रण से वस्तुओं का उत्पादन करती है फिर फर्म इन निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ताओं के सम्मुख पेश करती है। यदि उपभोक्ता वस्तुओं से संतुष्ट हो जाता है व उन्हें स्वीकार करने का निर्णय करता है तो फर्म को इन वस्तुओं की उपयोगिता (Utility) के विनिमय से भुगतान की प्राप्ति होती है।

वास्तव में किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक रूप से सक्रिय सभी निवासी उपभोक्ता व संसाधन मालिक दोनों स्वयं में उपभोक्ता भी होते हैं । संसाधन मालिक अपने संसाधनों के बदले फर्म से जो भुगतान प्राप्त करते हैं तथा संसाधन मालिक इसी भुगतान से फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं का एक उपभोक्ता के रूप में क्रय भी करते हैं। इस प्रकार संसाधन मालिक उत्पादन की प्रक्रिया में दोहरी भूमिका संसाधन मालिक व उपभोक्ता के रूप में निर्वाह करते हैं।

2.3.4 बाजार (Market)

बाजार संचार की एक प्रक्रिया है जो क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य वास्तविक या संभावित मांग व उपलब्ध या संभावित आपूर्ति के सन्दर्भ में जानकारी के आदान–प्रदान को सम्भव बनाता है और उन्हें वस्तुओं व सेवाओं के क्रय–विक्रय को सुव्यवस्थित या संगठित रूप से मूर्तरूप देने में मददगार होता है। फर्म उपभोक्ताओं व संसाधन मालिकों से संचार साधनों के जाल से जुड़ी होती है। बाजार भी दो प्रकार के होते हैं– वस्तुओं व सेवाओं के बाजार तथा उत्पादन के तत्वों के बाजार। एक फर्म को इन दोनों से सम्बन्ध बनाये रखना पड़ता है। इस प्रकार की क्रिया बाजारी स्थानों में होती है जो क्रेताओं और विक्रेताओं के लिए व्यापारिक केन्द्रों का कार्य करते हैं। इन स्थानों को केन्द्रीय स्थान (Central Places) कहा जाता है, लेकिन सभी प्रकार की वस्तुओं और सूचनाओं का आदान–प्रदान एक केन्द्रीय स्थान पर नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए लौह अयस्क का बाजार विनिमय का कोई निश्चित स्थान नहीं होता है जिस पर उत्पादक अपनी आवश्यकताओं के लिए उस विशेष बाजार आपूर्ति क्षेत्र से आवश्यक लौह–अयस्क क्रय कर सकें।

2.3.5 सरकार (Government)

सरकार अर्थव्यवस्था का चौथा महत्वपूर्ण तत्व है। आर्थिक क्रियाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं का संचालन व नियंत्रण विकेन्द्रीकृत निर्णयकर्ताओं द्वारा होता है जिनकी क्रियाएं निजी लाभ से क्रियान्वित होती है। यद्यपि इस प्रकार की व्यवस्था के अच्छे सैद्धान्तिक कारण होते हैं लेकिन इनको वास्तविक संसार में लागू करना इतना आसान नहीं है। इतना ही नहीं, जहाँ तक सामान्य न्याय के आर्थिक मुद्दों व पारिस्थितिकीय संतुलन का सम्बन्ध है वहाँ

पर निजी निर्णय आधारित अर्थव्यवस्थाओं में इन पहलुओं की उपेक्षा की जाती है। इसके विपरीत आर्थिक क्रिया का संचालन व नियंत्रण एक केन्द्रीयकृत निर्णय लेने वाली संस्था द्वारा होता है जिसे हम तकनीकी भाषा में सरकार कहते हैं, जो सामाजिक हित एवं पर्यावरण की रक्षा हेतु सभी अंगों पर नियंत्रण रखती है।

आर्थिक क्रियाओं के उपरोक्त विवरण में यह स्पष्ट है कि इसे गति देने व नियंत्रित करने का कार्य विकेन्द्रित निर्णायक करते हैं जो निजी लाभ से प्रेरित व बाजार द्वारा संचालित होते हैं।

अर्थव्यवस्था के कुछ निवासी वृद्धावस्था, बीमारी या बेरोजगारी जैसे कई कारणों से आर्थिक रूप से सक्रिय रह पाने में स्वयं को अक्षम महसूस करते हैं तो सरकार उन्हें भत्ता देकर एक उपभोक्ता की भूमिका निभाते रहने के योग्य बनाये रखती है।

आर्थिक क्रियाओं का सृजन व नियन्त्रण दोनों ही एक केन्द्रीय निर्णायक मण्डल अर्थात् सरकार करती है। मांग, पूर्ति, संसाधनों के उपयोग, उपभोक्ताओं के व्यवहार आदि के बारे में सभी निर्णय केन्द्रीय नियन्त्रित आर्थिक योजना में होते हैं और ये सरकारी निर्णय निजी निर्णयों जितने स्वार्थ भरे व अल्पदृष्टि वाले नहीं होते है।

उपरोक्त दो विषम उदाहरणों के विपरीत अधिकांश उदाहरणों में विकेन्द्रीकृत व केन्द्रीकृत (De–centralized and centralized) निजी व सार्वजनिक (Private and Public) निर्णायकों का मिश्रण देखने को मिलता है, जहाँ सरकार व्यक्तिगत क्रियाओं को प्रभावित कर सकती है; सरकार एक उपभोक्ता, उत्पादक या संसाधन मालिक के रूप में कार्य कर सकती है और एक समन्वित (Coordinate) आर्थिक योजना का ढांचा बनाकर उसे कार्यरूप में परिणित कर सकती है।

इस प्रकार सरकार वह तंत्र है जो कि सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिकAकार्यों में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। इस प्रयास की प्राप्ति के लिये उसे कुछ निर्णय लेने पड़ते हैं। सरकार द्वारा लिये गये निर्णयों के द्वारा वस्तुओं, संसाधनों का उपयोग और व्यक्तिगत व्यवहार का भी नियंत्रण होता है। आर्थिक क्रियाओं में मांग, आपूर्ति, संसाधनों के उपयोग और व्यक्तिगत तत्वों के व्यवहार, केन्द्रीय नियंत्रित आर्थिक योजनाएं सरकार पर निर्भर करती है। सरकार की आर्थिक क्रियाओं में रुचि या हित निजी न होकर सार्वजनिक व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास का होता है। सामान्यतया अर्थव्यवस्थाओं (निजी या सार्वजनिक) में विकेन्द्रीकृत एवं केन्द्रीकृत निर्णय करने की प्रक्रिया का समन्वित या मिश्रित रुप मिलता है जिसमें सरकार व्यक्तिगत क्रियाओं को उपभोक्ता, उत्पादक या संसाधन मालिक के रुप में प्रभावित करके समन्वित आर्थिक योजना का प्रारुप बना सकती है और इसे क्रियान्वित भी कर सकती है। सरकार की कुछ केन्द्रीय आर्थिक योजनाएँ भी होती हैं जो कि स्थानीय व प्रादेशिक फर्म के उत्पादन को सकारात्मक व नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है जैसे किसी क्षेत्र में शराब की मांग अधिक हो तो उस क्षेत्र में शराब निर्माण उद्योग पनपेगा पर सरकार उस क्षेत्र पर पूर्ण मद्यनिषेध की योजना लागू कर सकती है जिससे यह उद्योग समाप्त हो जायेगा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था का चरित्र निर्धारण किसी एक तत्व से न होकर अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से होता है। किसी भी तत्व में आशिक परिवर्तन अर्थव्यवस्था के नाजुक संतुलन को अस्थिर कर सकता है।

2.4 अर्थव्यवस्था के पर्यावरणीय सम्बन्ध (Environmental Relations of Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था एक समग्र विस्तृत पर्यावरण का एक भाग होती है। पर्यावरण से स्वयं को पृथक् रखकर वह स्वयं को अस्तित्व में नहीं रख सकती है, अत: अर्थव्यवस्था के बाहरी सामाजिक व पारिस्थितिक सम्बन्धों का विवेचन करेंगे।

2.4.1 सामाजिक सम्बन्ध (Social Relation)

अर्थव्यवस्था का अध्ययन मात्र आर्थिक गतिविधियों की सूजक के रूप में ही करते हैं तो यह न केवल सामाजिक दृष्टि से अप्रासंगिक होगा बल्कि सैद्धान्तिक दृष्टि से अपरिपक्व भी होगा क्योंकि सभी समाज सभी स्तरों पर जिन समस्याओं का सामना कर रहे हैं उनमें से एक प्रमुख है 'आर्थिक शक्तियों के संकेन्द्रण के सामाजिक परिणाम'। यहाँ इस तथ्य से आशय अर्थव्यवस्थाओं या उनके व्यक्तिगत तत्वों द्‌वारा स्वयं के एक तरफा निर्णयों से आर्थिक घटनाओं की दिशा को बदल देने की शक्ति से है। आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय असमानताओं से तो सभी भलीभांति परिचित हैं। इस असमानता का ही परिणाम है कि विश्व की 25 प्रतिशत से कम जनसंख्या विश्व का 60 प्रतिशत से अधिक उत्पादों का उत्पादन करती है। शेष 75 प्रतिशत जनसंख्या विश्व अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता व उत्पादन में स्वयं का हिस्सा प्राप्त करने की सौदेबाजी में काफी अलाभप्रद अवस्था में रह जाती है, लेकिन कुछ विद्‌वान इससे भी आगे की बात करते हैं कि विश्व के किसी एक भाग में विकास की प्रक्रिया दूसरे भागों को निर्धन बनाती है क्योंकि विकसित क्षेत्र आर्थिक कुशलता के ऊँचे स्तरों पर कार्य करते हैं अत: कम कुशल उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा में आने ही नहीं देते हैं। इसके अतिरिक्त, विकसित अर्थव्यवस्थाएँ ऊँची कीमतें देकर कम–विकसित अर्थव्यवस्थाओं से संसाधनों का अवशोषण कर स्वयं की उत्पादक क्षमता बढ़ाती जाती है और संसाधन क्षेत्रों की क्षमता घटाती जाती है। पुर्नवितरण की सुसक्षम प्रणाली के अभाव में धन का यह क्षेत्रीय संकेन्द्रण सामाजिक विषमता के अन्तरों को बढ़ाता ही जायेगा। परन्तु विकास योजनाओं को लागू करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि एक प्रणाली के मूल्यों को दूसरी प्रणाली या स्थितियों में ज्यों का त्यों स्थानान्तरण न कर दिया जाये। किसी एक समूह में शामिल सांस्कृतिक व सामाजिक स्तरों की प्रणाली जिसमें कार्यो (Actions), इच्छाओं (Desires), दृष्टिकोणों (Attitudes) और आवश्यकताओं (Needs) को उसी स्तर के समूह के सदस्यों द्‌वारा आकलन तथा तुलना करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए प्रत्येक अर्द्धविकसित देश अपने विकसित होने का स्वप्न संजोये रखता है लेकिन वास्तविकता इतनी अधिक आसान नहीं है। इस प्रकार का विचार अत्यधिक विकसित स्थानीय संस्कृतियों की आसानी से अवहेलना कर सकता है।

आर्थिक शक्ति की असमानता का एक क्षेत्रीय और सार्वजनिक रुप से प्रचलित उदाहरण पूँजीवादी उत्पादन से एकत्रित धन की भागीदारी के लिए किये जाने वाले आर्थिक संघर्ष के प्रतीक के रुप मे है, जो एक तरफ पूँजी, फर्मों के मालिकों और नियत्रणकर्ताओं तथा दूसरी ओर श्रम संसाधनों के मालिकों के मध्य है।

आर्थिक शक्ति के इन तत्वों की असमानताओं का सम्बन्ध पूँजी के निजी मालिकाना अधिकार और बाकी संस्थानों के संसाधन। आवंटन करने के निर्णयों की सामर्थ्यता या क्षमता से है। इस प्रकार संसाधन मालिकों के मध्य आय वितरण का निर्धारण का प्रकार उसकी मात्रा और फर्म के संसाधन मूल्यांक एवं उसके सौदेबाजी (क्रय–विक्रय क्षमता) की संगठनात्मक शक्ति पर निर्भर है। जो संसाधन मालिकों की स्पष्ट आर्थिक शक्ति के लक्षण के रूप में है और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनैतिक प्रभाव के निर्धारक के रूप में है।

2.4.2 पारिस्थितिकीय सम्बन्ध (Ecological Relations)

बार–बार जनसाधारण व सरकारों के ध्यान में यह तथ्य लाया जा रहा है कि आर्थिक क्रियाएं पारिस्थितिकी के नाजुक संतुलन को ज्यादा असंतुलित कर रही हैं। चित्र– 2.2 में अर्थव्यवस्था व उसके पारिस्थितिक वातावरण के मध्य के सम्बन्धों को दिखाया गया है।

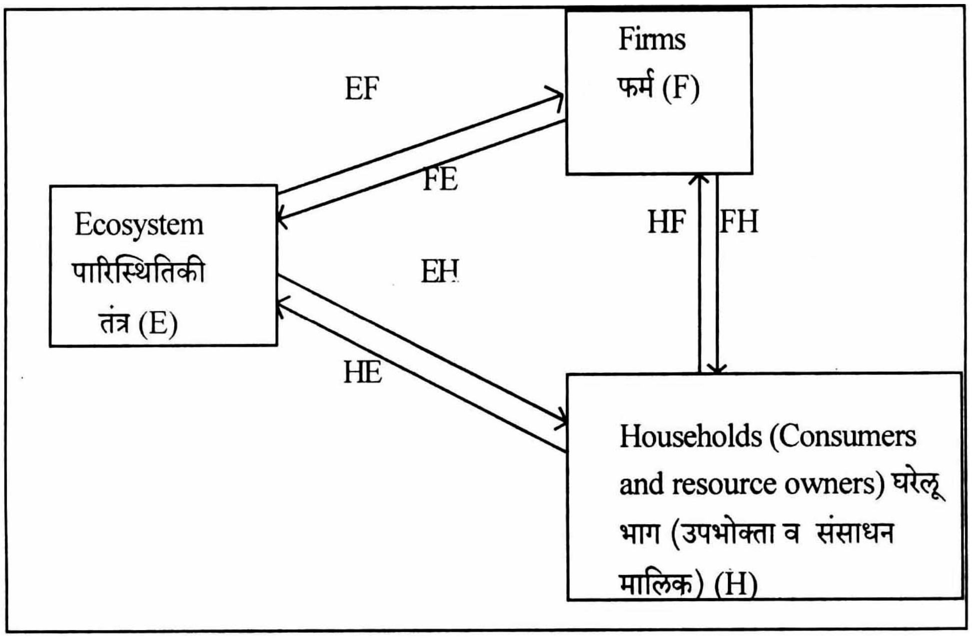

चित्र – 2.2 : अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकीय तंत्र (Economy and Eco–System)

पारिस्थितिकी तंत्र से अर्थव्यवस्था की ओर तथा अर्थव्यवस्था से पारिस्थितिकी तंत्र की ओर पदार्थों का वृत्ताकार भौतिक प्रवाह को आरेख के माध्यम से समझाया जा सकता है। पदार्थों का प्रवाह यह बताता है कि आर्थिक विकास की असमान नीति पारिस्थितिकी तंत्र पर दो तरीकों से आक्रमण करती है –

(अ) पारिस्थितिकी तंत्र (E से F) से फर्म की ओर पदार्थों का प्रवाह बढ़ने के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक संसाधनों में निरन्तर कमी आती है और दूसरी ओर इस प्रवाह से फर्म से (F से E) पारिस्थितिकी तंत्र की ओर उपभोक्ताओं व संसाधन मालिकों (घरेलू भाग H से E) से पारिस्थितिकी तंत्र की ओर पदार्थों का प्रवाह बढ़ता है।

(ब) पारिस्थितिकी तंत्र से फर्म की ओर पदार्थों का प्रवाह (E से F) के परिणाम स्वरूप फर्म उपभोक्ता व संसाधन मालिक द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र को अपने अवशिष्ट व विषाक्त पदार्थों द्वारा प्रदूषित करते हैं।

अब यह भली प्रकार महसूस किया जाने लगा है कि पारिस्थितिकी तंत्र इस दोहरे आक्रमण को झेलने में स्वयं को सक्षम महसूस नहीं कर रही है । इसी कारण पृथ्वी के पर्यावरण का संतुलन दिन–प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है।

दो कारणों से अर्थव्यवस्था पारिस्थितिकी तंत्र पर दबाव बढ़ाती ही जा रही है –

(1) विश्व जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि से अर्थव्यवस्थाओं कीं उत्पादक क्षमताओं पर दबाव बढ़ता जा रहा है और आंशिक रूप से तो यही तथ्य पारिस्थितिकी दृष्टि से खतरनाक तकनीकी के उपयोग के सामान्य होते जाने, विशेषकर रसायन तकनीक के लिये उत्तरदायी है ताकि अल्पकालिक रूप से वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जा सके।

(2) अति विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के निवासियों का तेजी से और अधिक उच्च स्तरों को प्राप्त कर रहे जीवन–स्तर ने उनकी रूचियों को बदल कर रख दिया है। उनकी व्यक्तिगत पहुंच बढ़ गयी है। अत: वे दूरस्थ, नाजुक संतुलन वाले वनीय निर्जन क्षेत्रों में आमोद–प्रमोद स्थल बनाकर इस संतुलन हेतु खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। नगरीय क्षेत्रों में निरन्तर बढ़ता जनसंख्या का दबाव व प्रदूषण उत्पन्न कर रहे हैं तथा संसाधनों का विशाल मात्रा में उपभोग कर रहे हैं इन सबके गम्भीर परिणाम प्रकृति व मानव को भी झेलने पड़ रहे है।

2.5 अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना (The Spatial Structure of the Economy)

अर्थतंत्र की स्थानिक संरचना से तात्पर्य अर्थ तंत्र के विन्यास से है दूसरे शब्दों में अर्थ तंत्र के विभिन्न क्रियात्मक तत्वों के मध्य के स्थानिक सम्बन्धों से है। ये तत्व स्थान घेरते है तथा इनकी सापेक्षिक स्थिति होती है। प्रत्येक तत्व किसी न किसी कार्य का केन्द्र होता है व किसी न किसी प्रकार का कार्य करता है, लेकिन इन कार्यों में भिन्नता पाई जाती है जिसके कारण उनका स्तर भिन्न– भिन्न प्रकार का होता है। प्रत्येक तत्व अन्य तत्वों के साथ अन्तर्प्रक्रिया करता है इसके कारण अर्थव्यवस्था के किसी एक भाग में परिवर्तन होने से उसका प्रभाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। अर्थ तंत्र के विकास में पूर्व में (भूतकाल में) लिये गये निर्णयों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। अर्थ तंत्र की स्थानिक संरचना के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त या अवधारणाऐं विकसित हुई है जो आर्थिक गतिविधियों की अवस्थिति निर्धारण करने या उत्पादन लागत कम करने या संसाधनों को एकत्रित करके अधिकतम लाभ प्राप्त करने में सहायक हो सकती हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य अर्थव्यवस्था की स्थानिक बनावट का यह है कि कम विकसित पृष्ठ–प्रदेश में कुछ तत्वों के एकत्रित हो जाने के कारण अधिक विकसित केन्द्रीय स्थान या हृदय प्रदेश विकसित हो जाते हैं। शहरी केन्द्र (केन्द्रीय स्थान) यद्यपि कई दृष्टियों से आत्म निर्भर होने के कारण बन्द व्यवस्था कहलाते है लेकिन इनकी सीमा का निर्धारण करना कठिन कार्य

है। शहर या केन्द्र की एक फर्म (आर्थिक इकाई) अपने उत्पादनों को स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक बेचने वाली हो सकती है और अपने उत्पादन हेतु संसाधन, विशेषकर पूंजीगत सामान या उपकरण इसी प्रकार विस्तृत फैले बाजार से प्राप्त कर सकती है। शहरी केन्द्र भी आस–पास के ग्रामीण प्रदेश से भोजन व कच्चा माल प्राप्त करते है अत: इनकी सीमा निर्धारित करना एक जटिल कार्य है। यह भी आवश्यक नहीं है कि अर्थव्यवस्थाओं की आपसी अन्तर्प्रक्रियाऐं राजनैतिक या प्राकृतिक सीमाओं के अस्तित्व पर निर्धारित या निर्भर होगी। इस प्रकार अर्थ तंत्र में अन्तर्प्रक्रिया एक स्वाभाविक एवं महत्वपूर्ण पक्ष है जो दूर की अपेक्षा पास में स्थित भागों में अधिक होती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन स्थानिक तत्वों के अतिरिक्त कुछ अस्थानिक तत्व जैसे - मानवीय पसन्द, जनसंख्या में वृद्धि आदि भी अर्थ तंत्र की प्रकृति निर्धारण में महत्वपूर्ण होते है। क्षेत्रीय आर्थिक संगठन को चित्र - 2.3,2.4,व 2.5 से आसानी से स्पष्ट किया क\जा सकता है।

2.5.1 बंध अर्थव्यवस्था (Closed Economy)

चित्र– 2.3 क्षेत्रीय दृष्टि से बंध अर्थव्यवस्थाओं को दिखला रहा है। इसमें एक–दूसरे से पूर्णत पृथक चार नगर–प्रदेश हैं जो अपनी–अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं ही कर लेते हैं। प्रत्येक नगर प्रदेश की अर्थव्यवस्था चार प्रमुख खण्डों A,B,C,D में विभाजित हैं और ये चारों खण्ड नगर– प्रदेश में ही अवस्थित हैं। इनमें प्रत्येक नगर–प्रदेश के भीतर अंतर–खण्डीय पैमाने पर तो वस्तुओं व सेवाओं का विनिमय होता है जैसे कृषि खण्ड का उत्पादन बढ़ाने हेतु इंजीनियरों या रासायनिक खण्ड की मदद लेता है पर इन चार नगर–प्रदेशों के मध्य आपस में कोई अंतराप्रतिक्रिया नहीं होती है,परिणामस्वरूप प्रत्येक खण्ड से न्यूनतम मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करना पड़ता है पर किसी भी एक खण्ड से बहुत ज़्यादा उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने पर अतिरिक्त उत्पादन भण्डारण का व्यर्थ बढ़ जायेगा।

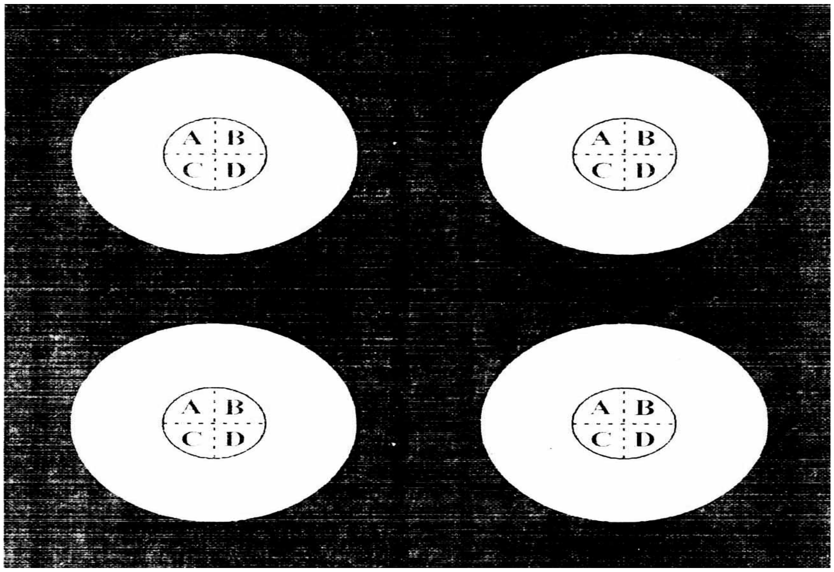

चित्र - 2.3 : बंद अर्थव्यवस्थाएँ (Closed Economies)

2.5.2 खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy)

चित्र–2.4 में पूर्णत: खुली (Open) अर्थव्यवस्थाएं एक अत्यंत संगठित के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करती दिखाई गई हैं। इसमें प्रत्येक केंद्र एक आर्थिक खण्ड में विशेषीकरण रखता है और संसाधन स्वयं के नगर से या सम्पूर्ण पृष्ठ प्रदेश से या अन्य तीनों नगरों से प्राप्त कर सकती है। इसके अलावा सभी नगरों के मध्य वस्तुओं व सेवाओं का मुक्त आदान–प्रदान हो सकता है, अंत: प्रत्येक नगर की मांग की पूर्ति पूरी तरह की जा सकती है। पूर्ण क्षेत्रीय विशेषीकरण के बावजूद तीन प्रमुख परिवर्तनों के कारण चित्र–2.3 व 2.4 में अंतर देखने को मिल रहा है–

(1) प्रत्येक खुली अर्थव्यवस्था के आर्थिक निर्णायक यह महसूस करते हैं कि स्थानीय आर्थिक विशेषीकरण (Local economic specialization) व विनिमय ज्यादा लाभप्रद रहता है।

(2) दूरी का घर्षणात्मक प्रभाव घट चुका है अत : आर्थिक अन्तर्प्रतिक्रिया काफी लम्बी दूरीयों तक संभव हैं।

(3) संसाधनों, वस्तुओं व सेवाओं के बड़े पैमाने पर व लम्बी दूरीयों तक आदान –प्रदान संभव बनाने हेतु आवश्यक संगठन अब विकसित हो चुके हैं।

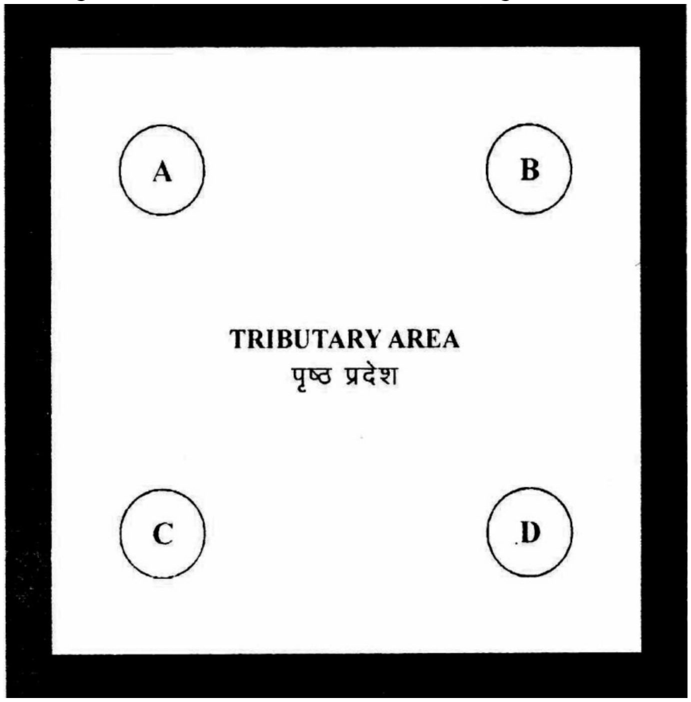

चित्र – 2.4 : खुली अर्थव्यवस्थाएँ (Open Economies)

2.5.3 समन्वित या मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ (Integrated Economy)

चित्र – 2.5 एक मध्यवर्ती व ज्यादा वास्तविक परिस्थिति को अवगत करा रहा है। विशेषज्ञता का विकास हुआ है पर वह पूरी तरह नहीं हुआ है, जबकि प्रत्येक अर्थव्यवस्था सम्पूर्ण ग्रामीण पृष्ठ प्रदेश से संसाधन प्राप्त कर सकती है। उत्पादनों को बेच सकती है, इस बात की ज्यादा

संभावना है प्रत्येक शहर अपने पृष्ठ प्रदेश व शहरों से पारस्परिक क्रिया करता है। अन्तर – खण्डीय (Intra–Sectoral) नगर के नजदीक के स्थानों में पारस्परिक क्रिया अधिक होगी व दूरी बढ़ने के साथ यह कम होती जायेगी।

अंत में यह बता देना आवश्यक है कि क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति के निर्धारण में कई बार अक्षेत्रीय कारक व अस्थानिक या मानवीय कारकों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं। उदाहरणार्थ जनसंख्या वृद्धि, बढ़ते पैमाने की बचतें और दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई वस्तुओं की माँग, वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन तथा अर्थव्यवस्थाओं में संवृद्धि एवं आर्थिक विभिन्नताओं को अभिप्रेरित करेगी।

उपर्युक्त विश्लेषण चार नगरीय प्रदेशों एवं उनके आर्थिक खण्डों के सन्दर्भ में किया गया है, लेकिन इसी विवेचन को आधार बना कर राष्ट्रों या विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

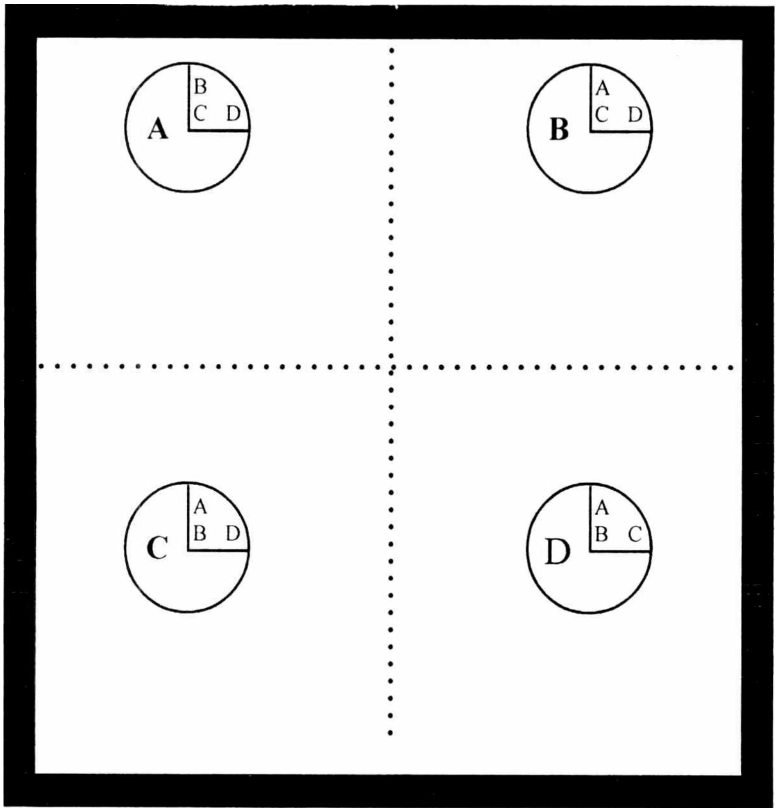

चित्र - 2.5 : समन्वित या मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ (Integrated Economies)

बोध प्रश्न – 1

1. आर्थिक क्रियाओं से आप क्या समझते हैं।

   ....

   ....

2. आर्थिक क्रियाओं से वर्गीकरण कीजिए।

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

3. अर्थव्यवस्था का अर्थ बतलाइये।

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

4. अर्थव्यवस्था के सरलीकृत मॉडल के तत्व कौन–कौन से हैं?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

5. अर्थव्यवस्थाओं के मुख्य प्रकार बताइये।

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

6. अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख कार्य कौन–कौन से हैं?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

7. केंद्रीय स्थान से आप क्या समझते हैं।

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

2.6 सारांश (Summary)

आर्थिक भूगोल के अध्ययन के आधार के रूप में अर्थव्यवस्था के प्रारम्भिक एवं अत्यधिक सरल वर्णन के बारे में तीन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। यह अवधारणा आवश्यक रूप से अर्थव्यवस्थाओं की समन्वित प्रकृति को समझाती है। आर्थिक क्रिया का जन्म अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत तत्वों, उपभोक्ताओं, फर्मो, संसाधन मालिकों और सरकारों द्वारा होता है। आर्थिक क्रियाओं के कार्यों में मांग, उत्पादन एवं उपभोग की प्रक्रियाओं को तथा उनके पारस्परिक क्रियाओं में सूचनाओं, वस्तुओं व भुगतान के आदान –प्रदान या विनिमय को शामिल करते हैं। अर्थव्यवस्था के इन सभी तत्वों में से कोई भी व्यक्तिगत ऐसा तत्व नहीं है जिसका कि अपनी स्वयं की अर्थव्यवस्था से बाहर कोई अपना अस्तित्व का औचित्य रखता हो। इस अर्थ में अर्थव्यवस्था आर्थिक भूगोल के विषय वस्तु के विभिन्न अवयवों या संघटकों पर प्रकाश डालती है तथा उनके लिए आधार प्रदान करती है। मुख्य तत्वों के सामान्यीकरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार का समन्वय उपर्युक्त तीनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के उदाहरण से बताया गया है वैसा ही समन्वय विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं में भी पाया जाता है। एक मुक्त और विशेषीकृत अर्थव्यवस्था में मोटर वाहन जोड़ने वाले आदमी की तुलना में बंद और अलग–थलग अर्थव्यवस्था का जीवन निर्वाह करने वाला किसान अत्यधिक जटिल आर्थिक व्यक्ति होता है। चूँकि जीवन निर्वाह करने वाला संसाधन मालिक और एक सरकार के कर्त्तव्यों का निर्वाह करता है। वह आमतौर पर अपने आप को अनार्थिक क्रियाओं में भी पूर्णतया आर्थिक

क्रियाओं से अलग नहीं कर पाता है। इसके विपरीत मुक्त अर्थव्यवस्था वाले मोटर वाहन जोड़ने वाले व्यक्ति की आर्थिक क्रियाएं स्पष्ट रूप से अलग होती हैं। उसकी क्रियाएं उपभोग एवं संसाधन विपणन तक ही सीमित होती हैं। अधिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में कार्यों के विशेषीकरण की क्रियाओं ने व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा किये जाने वाले बहुत से आवश्यक नियत कार्यों को बहुत कम कर दिया है, जबकि अर्थव्यवस्था सम्पूर्ण रूप में अत्यधिक जटिल हो गयी है चूँकि इसमें लाखों व्यक्तिगत निर्णयों का समन्वय किया जाता है इसके विपरीत, कम विशेषीकृत अर्थव्यवस्थाओं में समन्वय की यह क्रिया सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर नहीं की जाती है बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर ही की जाती है।

अर्थव्यवस्था की यह अवधारणा उन महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालती है जिनका सम्बन्ध आर्थिक भूगोल में दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के लिए क्षेत्रीय संरचना, आर्थिक कार्य कुशलता, दक्षता, निपुणता और सामाजिक न्याय के मध्य सम्बन्ध बताना।

2.7 शब्दावली (Glossary)

- अर्थव्यवस्था : अर्थव्यवस्था से तात्पर्य आर्थिक निर्णय कर्ताओं के समूह से है।
- आर्थिक प्रणाली : आर्थिक प्रणाली का अभिप्राय उस वैधानिक तथा संस्थागत (Legal and Institutional Framework)) ढाँचे से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता है। इससे स्पष्ट है कि जिस संस्थागत संरचना में मानव की आर्थिक क्रियाओं – उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व का सम्पादन होता है, वहीं अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली (Economic System) कहलाती है।
- आर्थिक क्रियाएँ : विश्व में मानव द्वारा मूल्यवान मदों के उत्पादन, विनिमय व उपभोग के लिए की जाने वाली सभी क्रियाएँ आर्थिक क्रियाओं में सम्मिलित होती हैं। मानव जिस कार्य के लिए मुद्रा, समय या प्रयास (श्रम) का भुगतान करें या बिना मुद्रा भुगतान के आर्थिक मद का आदान–प्रदान या वस्तु विनिमय करें या किसी आर्थिक मद के उत्पादन हेतु कार्य करें ये सभी क्रियाएँ आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं।
- बंद अर्थव्यवस्था : जिन अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक क्रियाओं में आपस में आदान–प्रदान या विनिमय नहीं होता है उन्हें बंद अर्थव्यवस्था कहते हैं।
- खुली अर्थव्यवस्थाएँ : जो अर्थव्यवस्थाएँ आर्थिक क्रियाओं हेतु आदान–प्रदान या विनिमय के लिए पूरी तरह स्वतंत्र या खुली होती है उन्हें खुली अर्थव्यवस्था कहते हैं।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. Harold Mc. Carty & James: **A Preface to Economic Geography,** Englewood B.Lindberg Cliffs, Prentic Hall, 1966.
2. Robinson H., : **Economic Geography,** Mac Donald Ltd., London
3. Thoman, R.S. : **The Geography of Economic Activity,** Mc Graw Hill, New York, 1962.

4. Hodder, B.W. & Roger Lee: **Economic Geography,** St. Martins Press, New York, 1974.
5. Jones, C.F. & Darken Wald, G.G.: **Economic Geography,** Mac Millan CO., New York, 1975.
6. Leong, G.C. & Morgan, G.C.: **Human & Economic Geography,** Oxford University Press, London, 1982.
7. Hartshorne, T.A.& : **Economic Geography Prentic Hall,** New Delhi, Alexander, J.W., 2002.

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विश्व में मानव द्वारा मूल्यवान मदों के उत्पादन, विनिमय व उपभोग के लिए की जाने वाली सभी क्रियाएँ आर्थिक क्रियाओं में सम्मिलित होती है। मानव जिस कार्य के लिए मुद्रा भुगतान करें या बिना मुद्रा भुगतान के आर्थिक मद का आदान–प्रदान या वस्तु विनिमय करें या किसी आर्थिक मद के उत्पादन हेतु कार्य करें ये सभी क्रियाएँ आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं।
2. आर्थिक क्रियाओं को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है – (1) प्राथमिक आर्थिक क्रियाएँ (2) द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ (3) तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ (4) चतुर्थक आर्थिक क्रियाएँ।
3. आर्थिक निर्णय कर्ताओं के समूह द्वारा उत्पन्न भूदृश्य को अर्थव्यवस्था कहा जाता है।
4. अर्थव्यवस्था के सरलीकृत मॉडल में निम्नलिखित तत्व शामिल होते हैं – (अ) उपभोक्ता (ब) फर्म (स) संसाधन मालिक (द) सरकार
5. अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख प्रकार हैं – (अ) बन्द अर्थव्यवस्था (ब) खुली या मुक्त अर्थव्यवस्था (स) समन्वित या मिश्रित अर्थव्यवस्था
6. अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख कार्य हैं – (1) वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन। (2) वस्तुओं और सेवाओं को उपभोक्ताओं में वितरित करना।
7. केन्द्रीय स्थान वे स्थान होते हैं जहाँ से माल व सेवाऐं प्रदान की जाती है।

2.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था की अवधारणा को समझाते हुए उसके सरलीकृत मॉडल को सचित्र समझाइये।
2. अर्थव्यवस्था से क्या अभिप्राय है? अर्थव्यवस्था के पर्यावरणीय सम्बन्धों को समझाइये।
3. अर्थव्यवस्था की अवधारणा का आकलन करते हुए अर्थव्यवस्थाओं की क्षेत्रीय संरचना का सचित्र विवेचन कीजिए।
4. आर्थिक भूगोल के अध्ययन में अर्थव्यवस्था की अवधारणा के महत्व की समीक्षा कीजिए।

इकाई 3 : आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक आधार : क्रमबद्ध और स्थानिक उपागम (Geographical Basis of Economic Activities : Systematic and Spatial Approach)

इकाई की रूप रेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आर्थिक क्रियाओं के भौगोलिक आधार

3.2.1 आर्थिक क्रियाओं के प्रकार

3.2.2 आर्थिक क्रियाओं की प्रादेशिक भिन्नता

3.2.3 आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारक

3.2.3.1 आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारक

3.2.3.2 सांस्कृतिक कारकों का आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव

3.3 आर्थिक भूगोल के अध्ययन उपागम

3.3.1 सामान्य वस्तु उपागम

3.3.2 प्रादेशिक उपागम

3.3.3 सैद्धान्तिक उपागम

3.3.4 तकनीकी उपागम

3.3.5 तंत्र विश्लेषण उपागम

3.4 क्रमबद्ध दृष्टिकोण

3.5 स्थानिक दृष्टिकोण

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि -

- आर्थिक क्रिया से आशय एवं प्रकार,
- आर्थिक क्रियाओं में प्रादेशिक भिन्नता,
- आर्थिक क्रियाओं पर भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव,

- आर्थिक भूगोल के अध्ययन उपागम
- क्रमबद्ध दृष्टिकोण,
- स्थानिक दृष्टिकोण ।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रथम इकाई में हमने आर्थिक भूगोल के स्वरूप का अध्ययन किया जिसमें हमको ज्ञात हुआ कि मानव अपने भरणपोषण के लिए आदि काल से कुछ न कुछ क्रियाएँ करता रहा है। उदाहरण के लिए मानव अपने वातावरण से भोजन प्राप्त करता है, मकान सुरक्षा के लिए बनाता है और शरीर को प्रकृति के प्रकोप से बचाने के लिए वस्त्र तैयार करता है। लेकिन ये तीनों कार्य प्राथमिक रूप में वह अपनी तथा परिवार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए करता है। जब वह भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से सन्तुष्ट हो जाता है तो वह अपने विकास तथा भविष्य के लिए धन संग्रह के बारे में विचार करना प्रारम्भ करता है। इस उद्देश्य कीं पूर्ति के लिए वह उपयुक्त विधियों का उपयोग करके आवश्यकता से अधिक उत्पादन प्रारम्भ करता है। संसाधन एवं उत्पादन क्षमता में विषमता के कारण वह अतिरिक्त उत्पादन को आवश्यकता वाले स्थानों पर विक्रय करता है और उन स्थानों से अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को क्रय करता है। इससे विनिमय की क्रिया प्रारम्भ होती है। स्पष्ट है कि आवश्यकताओं की पूर्ति एवं लाभ अर्जित करने की दृष्टि से किए गए कार्य आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत आते हैं और इनका अध्ययन ही भूगोल की विषयवस्तु बनता है।

3.2 आर्थिक क्रियाओं के भौगोलिक आधार (Geographical Basis of Economic Activities)

भूगोल की एक प्रमुख शाखा 'मानव भूगोल' में मानव और प्राकृतिक वातावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। इस परस्पर सम्बन्ध को लेकर मानव भूगोल में 'नियतिवाद' और 'सम्भववाद' नामक विचारधाराओं का जन्म हुआ। दोनों के मतभेद को मिटाने के लिए एक नवीन मत 'नव निश्चयवादी' का आविर्भाव हुआ जिसके अनुसार मानव की क्रियाओं पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव तो होता है लेकिन मानव द्वारा चुनाव भी प्रमुखता रखता है। इससे स्पष्ट है कि मानव की आर्थिक क्रियाएँ जहाँ सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं से प्रभावित होती हैं वही भौगोलिक तत्व भी इनको प्रभावित करने में अहम् भूमिका निभाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि प्रो. क्लिम की इस परिभाषा से होती है कि **"मानव की आर्थिक क्रियाओं के वितरण और प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ उनके सम्बन्धो के अध्ययन को आर्थिक भूगोल कहा जाता है।"** इसी तथ्य को **प्रो. मैकफरलैन** ने अपनी आर्थिक भूगोल की परिभाषा में और अधिक स्पष्ट किया है। उनके अनुसार **"आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों पर भौगोलिक तथा भौतिक परिस्थितियों, विशेषरूप से भूगर्भिक संरचना, जलवायु तथा भूमि की धरातलीय दशाओं के प्रभाव का अध्ययन करते है।"** उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मानव चाहे जितना वैज्ञानिक और प्राविधिक विकास कर ले लेकिन उसकी आर्थिक क्रियाओं की स्थिति

एव वितरण आज भी भौगोलिक दशाओं से प्रभावित होते हैं। अत: आर्थिक क्रियाओं के भौगोलिक आधारों का अध्ययन आर्थिक भूगोल का एक महत्वपूर्ण अंग है।

3.2.1 आर्थिक क्रियाओं के प्रकार (Types of Economic Activities)

प्रथम इकाई में आर्थिक क्रियाओं को विस्तार से समझाया गया है। वे कार्य जो मनुष्य लाभ कीं दृष्टि से करता है वे आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं। उदाहरण के लिए वनों में से फल संग्रह अपनी क्षुधा शान्त करने के उद्देश्य से करना आर्थिक क्रिया नही है लेकिन इन संग्रह किए गए फलों से परिवार की क्षुधा मिटाने के बाद शेष बचे फलों को बाजार में धन अथवा लाभ अर्जन की दृष्टि से बेचना ही आर्थिक क्रिया है। एक बात स्पष्ट है कि मानव द्वारा अपने निवास स्थल पर भरणपोषण के लिए अनेक क्रियाएँ की जाती है, लेकिन इन सभी क्रियाओं का अध्ययन भूगोल की एक मुख्य शाखा "मानव भूगोल" के अन्तर्गत किया जाता है। इसके विपरीत मानव द्वारा जो कार्य लाभ अर्जन की दृष्टि से किये जाते हैं उनको आर्थिक क्रिया कहते हैं। आर्थिक भूगोल में ऐसी क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है। वर्तमान युग में आर्थिक क्रियाओं की विविधता में इतनी वृद्धि हुई है कि उससे होने वाले लाभ के कारण विश्व में आर्थिक विकास के अनेक स्तर देखने को मिलते हैं। आर्थिक समृद्धि की भिन्नता के कारण विश्व में राष्ट्रों का वर्गीकरण विकसित, विकासशील और अविकसित राष्ट्रों के रूप में किया जाने लगा है। **प्रो. बुकानन** ने भी कहा है कि आर्थिक भूगोल में मानव की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। आर्थिक क्रियाएँ भी अनेक प्रकार की होती हैं। जिन लोगों की पिछड़ी अर्थव्यवस्था है या जो लोग अभी तक वनों में आदिम अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं वहाँ प्राथमिक क्रियाओं की प्रधानता रहती है। इसके विपरीत आर्थिक दृष्टि से समृद्ध समाज के लोग विविध प्रकार की आर्थिक क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। इनकी आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत विनिर्माण, व्यापारिक कार्य, परिवहन, विनिमय, उपभोग तथा अनेक सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। मानव की आर्थिक क्रियाओं को पाँच वर्गो में विभक्त किया जा सकता है –

1. **प्राथमिक आर्थिक क्रियाएँ :** इन क्रियाओं को आदि मानव द्वारा सर्वप्रथम प्रारम्भ करने के कारण भी प्राथमिक क्रियाएँ कहते हैं। इसके अन्तर्गत भोजन तथा वन सामग्री एकत्रित करना, आखेट, पशुचारण, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना, आदिम प्रकार की कृषि तथा खनन सम्बन्धी क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं।
2. **द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ :** यह उत्पादन सम्बन्धी ऐसी क्रियाएँ हैं जो प्राकृतिक संसाधनों के रूप में परिवर्तन करके उनकी उपयोगिता और मूल्य में वृद्धि करती है। इनके अन्तर्गत निर्माण, यांत्रिक, खनन उद्योग, व्यापारिक कृषि, विशेषीकृत पशुचारण एवं पशु पालन उद्योग, मत्स्य पालन उद्योग सम्मिलित किए जाते हैं।
3. **तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ :** ये प्रथम दो प्रकार की क्रियाओं से भिन्न होती हैं। इस वर्ग में वे क्रियाएँ या सेवाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो द्वितीय प्रकार की क्रियाओं के सम्पादन में अप्रत्यक्ष रूप में सहायता पहुँचाती है। परिवहन, व्यापार, बैंकिंग, संचार के साधन, कारखाने में स्टोर कीपर, लेखाकार, प्रबन्धक आदि के कार्य तृतीयक आर्थिक क्रिया के अन्तर्गत आते है।

4. **चतुर्थक वर्ग की आर्थिक क्रियाएँ :** ये क्रियाएँ समाज में रहने वाले विशेष प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों के द्वारा सम्पादित होती है। ये विशिष्ट सेवाएँ अप्रत्यक्ष रूप में उत्पादन वृद्धि में सहायता पहुँचाती है। शिक्षक, चिकित्सक, वकील, इन्जीनियर आदि के कार्य इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

टी.ए. हार्टशोर्न ने आर्थिक क्रियाओं का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

मुख्य क्रियाएँ	**उप आर्थिक क्रियाएँ**
1. उत्पादन से सम्बन्धित क्रियाएँ	(i) प्राथमिक आर्थिक क्रियाएँ
	(ii) द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ
	(iii) तृतीयक आर्थिक क्रियाएँ
	(iv) चतुर्थक आर्थिक क्रियाएँ
	(v) पंचम आर्थिक क्रियाएँ
2. विनिमय आधारित क्रियाएँ	(i) वस्तु स्थानान्तरण
	(ii) सूचना का आदान प्रदान
	(iii) गोदाम सुविधा व वितरण
	(iv) थोक व्यापार
	(v) फुटकर व्यापार
3. उपभोक्ता सम्बन्धी लाभ आधारित क्रियाएँ	(i) वस्तु और सेवाओं से उपभोक्ता की संतुष्टि से अर्जित लाभ

वैसे उपरोक्त विवरण से प्रतीत होता हैं कि आर्थिक क्रियाएँ परस्पर अलग– अलग अस्तित्व रखती हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। यथार्थ एवं व्यावहारिक रूप में आर्थिक क्रियाएँ अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। आज की अर्थव्यवस्था में कच्चे माल को कारखाने तक तथा उत्पादित माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए सभी लोगों की क्रियाएँ परस्पर निर्भर होती है।

3.2.2 आर्थिक क्रियाओं की प्रादेशिक भिन्नता (Regional Variations of Economic Activities)

आर्थिक क्रियाओं के वर्गीकरण को समझने के बाद यह देखना भी आवश्यक हैं कि आर्थिक क्रियाओं का स्वरूप भूतल पर स्थित सभी प्रदेशों में एक सा नहीं है। आर्थिक क्रियाओं की इस प्रादेशिक भिन्नता के लिए प्राकृतिक एवं सामाजिक कारक उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए विश्व के कुछ प्रदेशों में आज भी प्राथमिक कार्यो की प्रधानता है। हम अपने को सभ्य कहने में गौरव अनुभव करते हैं लेकिन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण आज भी विश्व में ऐसे प्रदेश हैं जहाँ लोग आदिम अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उदाहरण के लिए अफ्रीका के पिगमी, बुशमैन और आस्ट्रेलिया के ब्लैक फैलो प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त जड़ों, पत्तों, फूल, फलों आदि को एकत्रित कर अपनी सुधा शान्त करते हैं। टुण्ड्रा प्रदेश के एस्किमो मछलियों के शिकार पर तथा भारत में भील, नागा, संथाल पशुओं का शिकार कर उसके मांस द्वारा परिवार का पालन पोषण करते हैं। अफ्रीका, मध्य अमेरिका दक्षिणी अमेरिका और दक्षिणी एशिया के

वनों में रहने वाले आदिम जाति के लोग प्राचीन निर्वाहक कृषि करते हैं। मध्य एशिया के खिरगीज प्राचीन पद्धति से पशुचारण करते हैं। ये लोग अपने पशुओं को लेकर चरागाह की तलाश में घूमते रहते हैं।

आधुनिक काल में मानव की द्‌वितीयक वर्ग की आर्थिक क्रियाओं का अर्थतंत्र में वर्चस्व बढ़ा है। कारण स्पष्ट है कि किसी प्रदेश के आर्थिक विकास तथा जीवन की गुणवत्ता की वृद्धि में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। द्‌वितीयक एवं तृतीयक वर्ग की आर्थिक क्रियाओं में उत्पादन, विनिमय और परिवहन का महत्वपूर्ण स्थान है। द्‌वितीयक वर्ग की आर्थिक क्रियाओं में कुछ प्राथमिक आर्थिक क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं, लेकिन इनका रूप भिन्न प्रकार का होता है तथा लाभार्जन इनका उद्देश्य होता है। उदाहरण के लिए विस्तृत कृषि, व्यापारिक कृषि, मत्स्य उद्‌योग, पशुपालन एवं डेयरी फार्मिंग यांत्रिक ढंग से खनन आदि ऐसी ही आर्थिक क्रियाएँ हैं।

द्‌वितीयक आर्थिक क्रियाओं में निर्माण उद्‌योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्वस्तर पर इनका विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि इनमें भी प्रादेशिक भिन्नताऐं पायी जाती है।

विस्तृत व्यापारिक फसलों की कृषि सोवियत संघ में स्टेपीज घास के मैदान, संयुक्त राज्य तथा कनाडा के प्रेयरीज के मैदान, अर्जेण्टाइना का पम्पाज और आस्ट्रेलिया के डाउन्स नामक घास के मैदान में की जाती है। इसमें एक ही फसल के उत्पादन पर बल दिया जाता है। गेहूँ मक्का तथा कपास प्रमुख फसलें हैं। कृषि यंत्रों के द्‌वारा कृषि की जाती है।

द्‌वितीयक आर्थिक क्रियाओं में उष्णकटिबन्धीय रोपण कृषि को सम्मिलित करते हैं। इसमें रबड़, चाय, कहवा, गन्ना, केला में से कोई एक फसल बिक्री द्‌वारा मुद्रा प्राप्त करने के लिए पैदा की जाती है। इस कृषि का विकास पश्चिमी द्‌वीप समूह, मध्य अमेरिका में होण्डुरास, ग्वाटेमाला, दक्षिणी एशिया में भारत, श्रीलंका, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि देशों में होती है। इसी प्रकार दुग्ध उद्‌योग का विकास कुछ देशों के विशेष क्षेत्रों में विकसित हुआ है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य में विस्कोंसिन, मिशीगन, ओहियों राज्यों में तथा यूरोप में फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड और डेनमार्क आदि देशों में दुग्ध उद्‌योग का विकास हुआ है।

वस्तु निर्माण उद्‌योग भी द्‌वितीयक आर्थिक क्रिया है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इस आर्थिक क्रिया में प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का रूप परिवर्तन करके उनको उपयोगी बनाया जाता है। इससे उस वस्तु की गुण वृद्धि के साथ मूल्य वृद्धि भी होती है। यह प्रक्रिया वस्तु निर्माण कहलाती है। वस्तु निर्माण उद्‌योग श्रृंखलाबद्ध रूप से चलता है। आधुनिक उद्‌योगों के स्थानीयकरण में सहायक कारक पूँजी, कच्चा माल, श्रम, शक्ति के साधन, परिवहन के साधन, बाजार, तकनीकी प्रबन्धन, शोध, राजनीतिक व्यवस्था आदि हैं। इन कारकों की भूमिका के कारण विश्व के कुछ प्रदेशों में आधुनिक उद्‌योगों का अत्यधिक विकास हुआ है। कुछ देशों के विशिष्ट क्षेत्र औद्‌योगिक प्रदेश के रूप में विकसित हो गये हैं जबकि उसी देश के अन्य भाग इस दृष्टि से पिछड़े हुए है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य में उत्तरी–पूर्वी राज्यों, वृहद् झील क्षेत्र, मध्यवर्ती मैदानी भाग, खाड़ी तटीय भाग और प्रशान्त तटीय भागों में उद्‌योगों के विकास के कारण औद्‌योगिक प्रदेशों का विकास हुआ है। शेष क्षेत्र औद्‌योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

भारत का उदाहरण लेने पर हम पाते हैं कि यहाँ औद्योगिक प्रदेशों का विकास पश्चिमी बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में हुआ है। जबकि अन्य राज्यों में विकास कम हुआ है। राजस्थान राज्य द्वितीयक वर्ग की आर्थिक क्रियाओं के विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं में प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है। इस तथ्य की पुष्टि जे. डब्लू. अलेक्जेण्डर की आर्थिक भूगोल के बारे में दी गई परिभाषा से होती है। उनके अनुसार **"आर्थिक भूगोल पृथ्वी सतह पर सम्पादित उत्पादन, विनिमय और वस्तुओं एवं सेवाओं के उपयोग संबन्धित क्रियाकलापों की क्षेत्रीय विविधता का अध्ययन करता है।"**

3.2.3 आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factory Affecting Economic Activities)

मानव को अपने वातावरण की उपज कहा जाता है। अर्थात मानव जहाँ निवास करता है वहाँ का वातावरण उसके कार्यो को प्रभावित करता है। मानव का चिंतन, व्यवहार, रहने का ढंग, वस्त्र आदि सभी वातावरण के प्रभाव से निश्चित होते हैं। प्रकृति तथा मानव के चारों ओर के भूदृश्य ही वातावरण कहलाते हैं। स्पष्ट है कि वातावरण दो प्रकार का होता है एक प्राकृतिक वातावरण और दूसरा सांस्कृतिक वातावरण। इन दोनों प्रकार के वातावरण के कारक मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इन कारकों का विवेचन आवश्यक हैं।

3.2.3.1 आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारक

प्राकृतिक वातावरण के मुख्य कारक : स्थिति, धरातल, जलवायु, जल भण्डार, वनस्पति, मृदा, जीव जन्तु आदि हैं जो मानव के आर्थिक कार्यो पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

- **अवस्थिति का प्रभाव :** लोगों के निवास की स्थिति का उनकी आर्थिक क्रियाओं पर अधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए समुद्र तटीय भागों में रहने वाले निवासी मत्स्य उद्योग में संलग्न रहते हैं अथवा जल परिवहन सम्बन्धी क्रियाओं को प्राथमिकता देते हैं। जापान देश के तटीय भाग में रहने वाले लोग इसके उत्तम उदाहरण हैं। मैदानी भागों में निवास करने वाले निवासियों की आर्थिक क्रिया कृषि करना है। जो लोग खानों के निकट रहते हैं, वे खनिज उत्खनन कार्य को प्राथमिकता देते हैं। वस्तु निर्माण उद्योगों की स्थापना में अवस्थिति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये ऐसे स्थानों पर स्थित होते हैं जहाँ समतल भूमि हो तथा परिवहन के साधन की समुचित व्यवस्था हो। जिससे कच्चा माल मंगाने तथा निर्मित माल बाजार तक पहुँचाया जा सके। जो निर्माण उद्योग विदेशी आयातित कच्चे माल पर निर्भर होते हैं उनके लिए उपयुक्त अवस्थिति समुद्र तटीय भागों में होती है।
- **धरातल :** धरातल से आशय विभिन्न स्थानों की समुद्रतल से ऊँचाई से हैं। धरातल सर्वत्र समान नही है। धरातल पर स्थल के विविध स्वरूप जैसे पर्वत, पठार, मैदान, घाटियाँ आदि पाये जाते हैं । इन भूदृश्यों का मानव की आर्थिक क्रियाओं पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। मैदानी प्रदेशों में समतल भूमि होने से यहाँ कृषि बड़े पैमाने पर की जाती है। मैदानी भागों में यातायात के साधनों के जाल बिछे होने, बड़े–बड़े नगर स्थित होने तथा उपभोक्ताओं का

जमाव होने से यहाँ निर्माण उद्योगों के स्थापित होने के साथ–साथ मैदान के निवासी तृतीयक, चतुर्थक आर्थिक क्रियाओं में भी संलग्न रहते हैं। पहाड़ी भागों में प्राथमिक कार्यो की प्रधानता रहती है क्योंकि यहाँ सड़कें बनाना, निर्माण उद्योग स्थापित करना तथा बाजार उपलब्ध करवाना कठिन है। पर्वत–पठारों पर पशुचारण होता है तथा जहाँ खनिज मिलते हैं वहाँ लोग उत्खनन कार्य करते हैं।

- **जलवायु का प्रभाव :** मानव की आर्थिक क्रियाओं को निश्चित करने वाला एक प्रभावी कारक जलवायु भी है। जलवायु के विविध तत्व जैसे तापमान, आर्द्रता, वर्षा, हवा की गति आदि मानव को प्रभावित करते हैं। विश्व के उष्ण–आर्द्र जलवायु के प्रदेशों में उच्च तापमान और उच्च आर्द्रता के कारण आज भी आधुनिक आर्थिक विकास नहीं हुआ है। इसी प्रकार टुण्ड्रा जैसे अतिशीत प्रदेश और सहारा जैसे उच्च ताप तथा न्यून आर्द्रता वाले प्रदेशों में वस्तु निर्माण उद्योग स्थापित नहीं किए जा सकते हैं।

  मध्य अक्षांशों में अनुकूल जलवायु के कारण ही सर्वाधिक औद्योगिक विकास हुआ है। ठण्डे पर्वतीय भाग और उच्च अक्षांशों में अधिक ठण्ड के कारण लोगों के व्यवसाय पशु चारण, शिकार करना और मछली पकड़ना हैं। यहाँ अधिक सर्दी के कारण लोग घरों में ही कुटीर उद्योगों में जैसे नमदे, कम्बल, कालीन आदि बनाने का काम करते हैं। गर्म मरुस्थलों में उच्च तापमान तथा जल के अभाव के कारण भेड़–बकरी पालन ही होता है। लेकिन मरुस्थलों में जहाँ खनिज मिल रहे हैं वहाँ लोग खनिज उत्खनन कार्य करने लगे हैं।
- **जल भण्डार :** नदी, झील और समुद्र जल के बड़े भण्डार हैं। नदियों के किनारे रहने वाले निवासी अधिकतर कृषि और मछली पकड़ने का कार्य करते हैं। प्राचीन काल में नदियों में जल परिवहन का कार्य भी होता था। बड़ी–बड़ी झीलों के तट पर जल परिवहन की सुविधा के कारण निर्माण उद्योगों का विकास हुआ है। इसका उदाहरण संयुक्त राज्य का महान झीलों का प्रदेश है।
- समुद्र भी तटीय प्रदेश के निवासियों की आर्थिक क्रियाओं पर अपना प्रभाव डालते हैं। समुद्र के निकट तापमान सम तथा वायु में आर्द्रता रहती है। इस कारण यहाँ सूती वस्त्र उद्योग का विशेष रूप में विकास हुआ है। जल परिवहन की सुविधा के कारण जापान, संयुक्त राज्य, इंग्लैण्ड आदि देशों के तटीय भागों में निर्माण उद्योगों का अधिक विकास हुआ है। समुद्र के तटीय भागों में मछली पकड़ना भी लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। जापान के पूर्वी तट, डागर बैंक, ग्राण्ड बैंक आदि क्षेत्रों में मत्स्य उद्योग सर्वाधिक विकसित हुआ है।
- **प्राकृतिक वनस्पति :** वनस्पति भी मानव की आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। शीतोष्ण कटिबन्धीय वनों में मुलायम लकड़ी होने से वहाँ के लोगों के आर्थिक कार्य लकड़ी काटना, लुगदी बनाना और उससे विविध प्रकार के कागज बनाना आदि हैं। इसके विपरीत भूमध्य रेखीय वनों के वृक्ष कठोर लकड़ी के होते हैं यहां यातायात के साधनों के अभाव से लकड़ी काटने का व्यवसाय विकसित नहीं हुआ है।
- **मिट्टी :** मिट्टी मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाला स्व प्रमुख कारक है। जिन प्रदेशों की मिट्टी उर्वरा होती है। वहाँ के निवासी कृषि कार्य को प्राथमिकता देते हैं।

3.2.4 सांस्कृतिक कारकों का आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव (Effect of Cultural Factors on Economic Activities)

कुछ सांस्कृतिक कारक निम्नलिखित हैं जो मानवीय क्रिया कलापों को प्रभावित करते हैं –

- **तकनीकी ज्ञान का प्रभाव :** तकनीकी ज्ञान के आधार पर नवीन मशीनों का अविष्कार होता हैं। इन मशीनों की सहायता से निर्माण उद्योग स्थापित होते हैं। संयुक्त राज्य, यूरोप के देशों व सोवियत रूस में आधुनिक उद्योगों का विकास तकनीकी क्षमता के आधार पर ही हुआ है। यहाँ के निवासी उत्पादक कार्यो को अपनी जीविका का साधन बनाते हैं।
- **परिवहन साधनों का प्रभाव :** औद्योगिक विकास का आधार परिवहन के साधन होते हैं। ऐसे क्षेत्रों में अनेक लोग परिवहन के कार्य को प्राथमिकता देते हैं।

  इन कारकों के अतिरिक्त विकास के स्तर, पूँजी, राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था, धार्मिकता, शैक्षणिक स्तर आदि भी मानव के क्रियाकलापों को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न –1

1. प्राथमिक और द्वितीयक आर्थिक क्रियाओ में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

   ....

   ....

2. आर्थिक समृद्धि के स्तर के आधार पर राष्ट्रों को कितने प्रकार में बांटा जाता है?

   ....

   ....

3. विनिमय आधारित किन्ही तीन क्रियाओ के नाम लिखिए।

   ....

   ....

4. विस्तृत व्यापारिक कृषि सोवियत संघ और अर्जेंटाइना के किन मैदानों में होती है?

   ....

   ....

5. पर्वतीय भागो में निम्न में से कौन–सी आर्थिक क्रिया प्रमुख है?

   (अ) वृहत उद्योग (ब) कुटीर उद्योग

   (स) परिवहन सम्बन्धित कार्य (द) परामर्श सेवाएँ ( )

3.3 आर्थिक भूगोल के अध्ययन उपागम (Approaches of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल आज के युग में विकसित होकर अपने आप में एक पूर्ण वैज्ञानिक विषय हो गया हैं। इसका विषय क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हैं। विषय क्षेत्र में विभिन्न प्रदेशों में रहने वाला मानव क्या करता है? यह ज्ञात करना ही पर्याप्त नहीं है। आर्थिक भूगोल में वह यह क्रिया क्यों करता है ? और कैसे करता है ? का अध्ययन करना अधिक महत्वपूर्ण है। दृष्ट पर कुछ प्रदेश उत्पादन में तो कुछ प्रदेश उपभोग में अग्रणी क्यों हैं? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उन कारकों को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है जो आर्थिक विकास तथा प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से प्रादेशिक भिन्नता को जन्म देते हैं। इससे स्पष्ट है कि अध्ययन में हम कार्य–कारण सम्बन्ध अथवा आर्थिक क्रियाओं और भौगोलिक तत्वों के मध्य अन्र्तसम्बन्ध को ज्ञात करते हैं। ऐसा अध्ययन करने के लिए भूगोलवेत्ता अनेक अध्ययन विधियों को प्रयोग में लाते हैं। इन अध्ययन विधियों को ही उपागम कहते हैं। इन उपागमों को निम्न वर्गो में बाँट सकते हैं

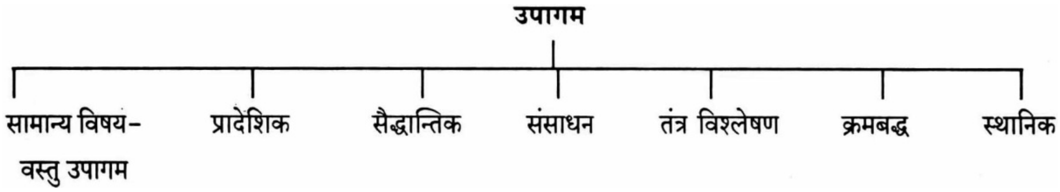

3.3.1 सामान्य विषय वस्तु उपागम (Commodity Approach)

इस उपागम में किसी वस्तु विशेष, सेवा या तत्व के विश्व वितरण प्रतिरूप की व्याख्या की जाती है। इसमें प्रत्येक तत्व का पृथक–पृथक अध्ययन होता है। सामान्य विषय–वस्तु उपागम दो प्रकार के होते हैं। एक वस्तु उपागम है जिसमें भूगोलवेत्ता किसी वस्तु या उपज जैसे गेहूँ चावल, कोयला, वस्त्र उद्योग, कागज लुग्दी उद्योग का अलग–अलग विश्लेषण करते हैं। दूसरा व्यवसाय उपागम है जिसमें एक वस्तु के स्थान पर व्यवसाय जैसे खनन उद्योग, निर्माण उद्योग, परिवहन व्यवसाय का पृथक–पृथक विश्लेषण करते हैं। इस उपागम में प्रत्येक व्यवसाय के बारे में सिद्धान्त निरूपण का कार्य सरल होता हैं।

3.3.2 प्रादेशिक उपागम (Regional Approach)

आर्थिक भूगोल के अध्ययन में प्रादेशिक उपागम का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ प्रदेश का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्रदेश पृथ्वी तल का वह इकाई क्षेत्र है जो अपने विशिष्ट गुणों के कारण अपने समीपवर्ती अन्य ईकाई क्षेत्रों से भिन्न समझा जाता है। अनेक विद्वानों जैसे अनस्टेड, लिंटन, ठिटिलसी आदि ने विभिन्न आधारों पर प्रदेशों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। लेकिन कुछ विद्वानों ने प्रदेशों के लक्षण व कार्य के आधार पर सामान्य रूप में उनको वर्गीकृत किया है। इस आधार पर वर्गीकृत प्रदेश आकृति प्रदेश, कर्मोपलक्षी प्रदेश, विशिष्ट प्रदेश, प्राकृतिक प्रदेश, भौगोलिक प्रदेश हैं। प्रादेशिक उपागम का उपयोग आर्थिक भूगोल के प्रारम्भिक काल से ही हो रहा है। प्रारम्भ में प्रादेशिक विभाजन का आधार राजनीतिक इकाईयाँ

होती थी। इसके बाद नियतिवाद के प्रभाव के कारण प्रादेशिक इकाईयों के रूप में प्राकृतिक प्रदेशों को अध्ययन का आधार बनाया जाने लगा। उस समय प्रादेशिक विभाजन का आधार जलवायु को बनाया। बाद में अर्थतंत्र की विशिष्टता को आधार बनाकर प्रदेशों की रचना की जाने लगी। प्रादेशिक अध्ययन में सभी तत्वों के वितरण और उनके अन्र्तसम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

3.3.3 सैद्धान्तिक उपागम (Theoretical Approach)

इस उपागम में कुछ प्रतिपादित सिद्धान्तों के सन्दर्भ में किसी तत्व के वितरण प्रारूप की व्याख्या की जाती है। इसमें मुख्यत: किसी तत्व या प्रदेश का उदाहरण देकर सिद्धान्त की व्याख्या की जाती है। इस उपागम में हम सामान्यीकरण प्रस्तुत कर सकते है जिन्हें सिद्धान्त कहते है। ये सामान्यीकरण या तो सांख्यिकी के रूप में या मॉडल के रूप में आते है। इनके आधार पर वास्तविक जगत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के वितरण एवं संचालन के बारे में अध्ययन किया जाता है।

3.3.4 संसाधन उपभोग –क्रिया उपागम (Resources Consumption–Process Approach)

संसाधन उपभोग में तकनीक के प्रयोग की भूमिका का विश्लेषण करना इसका उद्देश्य है। संसाधन उपयोग से सम्बन्धित प्रक्रियाओं के दो वर्ग हैं – एक वर्ग उन प्रक्रियाओं का है जो संसाधन उपयोग से सम्बन्धित है और दूसरा वर्ग उन प्रक्रियाओं का है जो तत्वों के क्षेत्रीय अन्तराल को समाप्त करती है। संसाधन विदोहन, संसाधन परिष्करण, स्थैतिक अन्तराल, समायोजन तकनीक, गहन भूमि उपयोग तकनीक सम्बन्धी चार प्रमुख तकनीक उभर कर आती हैं।

3.3.5 तंत्र विश्लेषण उपागम (System Analysis Approach)

यह उपागम अर्थतंत्र के क्षेत्रीय संगठन के विश्लेषण के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता हैं। तंत्र, तत्वों का एक समूह होता है। जिसमें उपस्थित तत्व और उनकी विशेषताएँ अन्र्तसम्बन्धित होती है। वर्तमान समय में तंत्र विश्लेषण उपागम को अधिक महत्व दिया जाता है। इस उपागम में व्यवस्था विश्लेषण, व्यवस्था की जटिल बनावट व प्रक्रिया के लिये संकल्पना का आधार प्रस्तुत होता है इसमें विभिन्न तत्व एवं तत्वों के गुणों को पहचान कर उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है क्योंकि अर्थतंत्र विभिन्न तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों का समूह होता है। यद्यपि इसके उपयोग में कई कठिनाईयां है। तथापि आर्थिक भूगोल के विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

3.4 क्रमबद्ध दृष्टिकोण (Systematic Approach)

इसको प्रकरण उपागम भी कहते हैं क्योंकि इस में भूगोल के तत्वों के प्रकरणों का अलग–अलग अध्ययन होता है। अध्ययन के इस उपागम का जन्म मानव क्रियाओं पर पड़ने वाले वातावरण के प्रभाव के परिपेक्ष्य में हुआ हैं। प्रारम्भ में अनेक विद्वानों ने आर्थिक क्रियाओं पर वातावरण

के प्रभाव का अध्ययन इसी दृष्टिकोण से किया। सर्वप्रथम **चिशोल्म** ने उन राष्ट्रों का अध्ययन किया जो उत्पादन कार्य में अग्रणी थे। इसमें उन्होंने इससे सम्बन्धित उत्पादन, वितरण और विनिमय पर प्राकृतिक वातावरण के प्रभाव का विश्लेषण किया। सन् 1930 में ब्राउन ने मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर जड़ व चेतन वातावरण के प्रभाव की व्याख्या की। सन् 1969 में **होप** द्वारा आर्थिक भूगोल के सम्बन्ध में कहा गया कथन कि **"आर्थिक भूगोल एक संकरण विज्ञान है.... इसमें क्रमबद्ध रूप में सम्पदा का अध्ययन होता है जिसकी उत्पत्ति के स्त्रोत पृथ्वी, महासागर, सागर और वायुमण्डल हैं।"** क्रमबद्ध आर्थिक भूगोल के प्रोत्साहन में **बुकानन** का योगदान महत्वपूर्ण है जिन्होंने अपने पूर्वजों की विधि से भिन्न रूप अपनाया। इसका उदाहरण उनके द्वारा लिखित पुस्तक न्यूजीलैण्ड का पशुचारण उद्योग में मिलता है। बुकानन ने इस पुस्तक में अपने उपागम को स्पष्ट किया। उन्होंने व्यावसायिक दृष्टिकोण से किए जाने वाले आर्थिक कार्यो और जीवन निर्वाही आर्थिक कार्यो में अन्तर करते हुए भौगोलिक प्रभावों का मुद्रा के सन्दर्भ में आकलन बताया और कहा कि भौगोलिक दशाएँ भी आर्थिक दशाओं के स्वरूप पर आश्रित होती हैं। भौगोलिक मानदण्ड तत्कालीन मानव द्वारा अर्जित संस्कृति के स्तर से प्रभावित होता है। इससे स्पष्ट होता है कि क्षेत्र विशेष की संस्कृति आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। इस आधार पर क्रमबद्ध आर्थिक भूगोल में अनेक अध्ययन हुए तथा कार्टर और डोज, यीट्स, अलैक्जेण्डर आदि विद्वानों ने अपनी रचनाओं में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण इसी आधार पर प्रस्तुत किया।

वाइज महोदय के अनुसार क्रमबद्ध आर्थिक भूगोल यथार्थ में भूगोल और अर्थशास्त्र के मध्य अन्तराल को पाटने का प्रयास है। इस अन्तराल को वाइज ने 'no–man's land' कहा है। इन दो विषयों को परस्पर मिलाने में चिशोल्म की पुस्तक 'Geography and economics' का योगदान महत्वपूर्ण है। यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखें तो हम पाते हैं कि उत्तर मध्यकालीन भूगोल के पुनर्जागरण काल में भौगोलिक ज्ञान का क्रमबद्ध रूप आरम्भ हो गया था। इस युग में मार्कोपोलो, रिचर्ड हकलुइत आदि ने नये–नये देशों की यात्राएँ की और इन नये देशों के भौगोलिक वर्णन में क्रमबद्ध उपागम को अपनाया। हम्बोल्ट ने भी क्रमबद्ध विधि को अपनाया। रेटजल ने मानव भूगोल का वर्णन क्रमबद्ध विधि से किया था। क्रमबद्ध भूगोल का महान भूगोलवेत्ता हम्बोल्ट को ही माना जाता है। उसकी प्रसिद्ध ग्रंथमाला कॉसमोंस में क्रमबद्ध विधि को ही अपनाया गया है।

- **क्रमबद्ध उपागम में अध्ययन विधि :** इसी उपागम को प्रकरण उपागम भी कहते हैं। इस उपागम में भूगोल के तत्वों को पृथक –पृथक प्रकरणों में बाँटा जाता है और उसके बाद उन प्रकरणों का पृथक–पृथक अध्ययन किया जाता है। यदि हमको सम्पूर्ण पृथ्वी का सामान्य अध्ययन करना है तो पृथ्वी को तीन प्रकरणों जैसे थल मण्डल, जल मण्डल और वायु मण्डल में बाँट कर प्रत्येक मण्डल का अलग–अलग अध्ययन करना ही क्रमबद्ध उपागम है। पुन : प्रत्येक मण्डल को प्रकरणों में बाँट सकते हैं। जैसे थल मण्डल का उपविभाजन पर्वत, पठार, मैदानों के रूप में करके प्रत्येक का पृथक–पृथक अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार आर्थिक भूगोल में मानव की आर्थिक क्रियाओं को पृथक–पृथक प्रकरण में बाँटकर और

उनमें भी प्रत्येक के प्रकरण विभाजित करके अध्ययन करना क्रमबद्ध दृष्टिकोण का उदाहरण है।

उदाहरण के लिए मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक में वर्गीकृत किया जाता हैं। अब प्राथमिक क्रिया का उपविभाजन वनों से फल–फूल और अन्य वन सामग्री का संग्रह करना, लकड़ी काटना, शिकार करना, स्थानान्तरित कृषि करना, मछली पकड़ना आदि के रूप में किया जाता है। अब इनमें से प्रत्येक आर्थिक क्रिया का विश्व वितरण, उस स्थान की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दशाओं के साथ अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन किया जाएगा। इसी प्रकार कृषि कार्य का वर्गीकरण करके प्रत्येक प्रकार की कृषि का उपविभाजन वहाँ उगाई जाने वाली फसलों के रूप में करके उनमें से पृथक फसल के उत्पादन के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाओं, उगाने की प्रक्रिया, वितरण, उत्पादन तथा व्यापार आदि शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करना क्रमबद्ध उपागम का उदाहरण है। इसी प्रकार वस्तु निर्माण उद्योगों का वर्गीकरण लोहा–इस्पात उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, रसायन उद्योग आदि के रूप में करके उनका क्रमबद्ध दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक उद्योग की स्थिति, उद्योग की स्थिति में सहायक भौगोलिक सांस्कृतिक कारक, निर्माण प्रक्रिया, उत्पादन, उत्पादित पदार्थ का स्थानान्तरण आदि शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन क्रमबद्ध उपागम का उदाहरण है। भौगोलिक अध्ययन की इस प्रणाली को वर्गीकरण भूगोल भी कह सकते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भूगोल के अध्ययन की दोनों विधियाँ क्रमबद्ध और प्रादेशिक एक दूसरे की पूरक होती हैं। जब क्रमबद्ध दृष्टि से हम गेहूँ की फसल का अध्ययन करते हैं तो गेहूँ उत्पादन क्षेत्रों का वितरण समझाने के लिए प्रादेशिक विधि को अपनाया जाता है। इसी प्रकार प्रादेशिक विधि में किसी क्षेत्र को छोटे–छोटे प्रदेशों में वर्गीकृत करने के बाद प्रत्येक का भौगोलिक वितरण स्थिति व विस्तार, धरातल, जलवायु, वनस्पति, जनसंख्या, मानव क्रियाओं आदि प्रकरणों के अन्तर्गत प्रस्तुत करना क्रमबद्ध विधि का द्योतक होता है। इससे स्पष्ट है कि ये दोनों विधियाँ एक दूसरे की पूरक होती हैं।

3.5 स्थानिक उपागम (Spatial Approach)

आर्थिक भूगोल के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उपागम स्थानिक विश्लेषण है। इसमें आर्थिक क्रियाओं के भौगोलिक आधारों विश्लेषण स्थान विशेष के सन्दर्भ में किया जाता है। हम्बोल्ट ने भूगोल को विश्व के स्थानिक वितरणों का विज्ञान कहा। बाद भूगोलवेत्ताओं ने भी स्थानिक वितरणों की संकल्पना को स्वीकार किया। इसी मूलभूत संकल्पना पर भूगोल का विकास हुआ। उसके अनुसार स्थानिक वितरण के अन्तर्गत केवल भौतिक तथ्यों का ही अध्ययन नही होता है, अपितु उन स्थानों का अध्ययन होता है जहाँ मानव निवास करता है और अपनी आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करता है। होडर और ली ने अपनी पुस्तक 'Economic Geography' में उन विद्वानों के कार्य का उल्लेख किया हैं जिन्होंने स्थानिक उपागम को अपने अध्ययन का आधार बनाया। होडर के अनुसार आर्थिक और राजनीतिक क्रियाओं में घनिष्ठ रूप में परस्पर निर्भरता होती हैं। प्राय: देखा गया है कि राष्ट्रीय सरकारें आर्थिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित

करती हैं। चिशोल्म के अनुसार सरकारें अपने राजनीतिक सीमाओं में तथा कभी–कभी सीमाओं के बाहर आर्थिक क्रियाओं के वातावरण को नियंत्रित करती हैं और उसमें परिवर्तन भी करती हैं। आर्थिक सन्दर्भ में देश की आकड़ों की इकाई और सामाजिक दृष्टि से जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली इकाई के रूप में होता है। इसी का प्रतिफल है कि आर्थिक भूगोल में स्थानिक इकाई के रूप में देश को मानकर भूगोल लिखा गया हैं। स्मिथ ने 1949 में ब्रिटेन का आर्थिक भूगोल इसी आधार पर लिखा है। हाउस, लेविस और जोन्स, हम्फ्रे आदि विद्वानों ने भी ब्रिटेन के औद्योगिक भूगोल पर पुस्तकें लिखी हैं जिसमें सरकार की भूमिका पर बल दिया है। हगेट के अनुसार प्रादेशिक और आर्थिक भूगोल के समन्वय ने प्रादेशिक विज्ञान की तीव्र वृद्धि में अत्यधिक योगदान किया है। इस प्रकार अध्ययन की इस बहु विषय विधि ने सैद्धान्तिक प्रत्यय और तकनीक को जन्म दिया जो स्थानिक विश्लेषण के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इसका उदाहरण दक्षिण–पश्चिमी इग्लैण्ड में ब्रिस्टल प्रदेश का ब्रिटेन द्वारा किया गया अध्ययन था जिसमें में उसने उस प्रदेश की आतंरिक संरचना और बाहय स्थानिक सम्बन्धों के परीक्षण में प्रादेशिक विज्ञान के प्रत्यय और तकनीक का प्रयोग किया। सन् 1972 में लायड व डिकिन ने कहा कि आर्थिक भूगोल का सम्बन्ध उन सामान्य सिद्धान्तों और परिकल्पनाओं से होता है जो अर्थतंत्र के स्थानिक संचलन से सम्बन्धित हैं । उन्होंने स्थान को एक आर्थिक तत्व माना और उसे एक कारक के रूप में स्वीकार किया।

- **स्थानिक दृष्टिकोण की विधि :** उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्थिक क्रिया का अध्ययन स्थान विशेष के आधार पर करना स्थानिक दृष्टिकोण कहलाता है। स्थानिक में आर्थिक क्रिया के विकास में स्थान की भूमिका का विवेचन किया जाता है। आर्थिक क्रिया की स्थापना तथा उसके विकास के लिए उत्तरदायी भौगोलिक आधारों का विश्लेषण उस स्थान के सन्दर्भ में किया जाता है जहाँ वह आर्थिक क्रिया स्थित है। इसमें उस स्थान पर उपस्थित भौगोलिक– सांस्कृतिक कारकों के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन आवश्यक है। उदाहरण के लिए प्रेयरीज घास के मैदान में की जाने वाली विस्तृत खाद्यान्न उत्पादन कृषि का विवेचन उस क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं तथा उन भौगोलिक दशाओं के मध्य सम्बन्ध के आधार पर किया जायेगा। इसी प्रकार वस्तु निर्माण उद्योग जिस स्थान पर स्थित है तो उस स्थान की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक वे दशाएँ रु की जाएगी जिनके अन्तर्सम्बन्ध ने उद्योग के विकास में योगदान किया। यहाँ स्थान की सीमा का निर्धारण आर्थिक क्रिया के विस्तार क्षेत्र के आधार पर होगा।

  स्थानिक दृष्टिकोण में निकटवर्ती आर्थिक क्रिया के स्थानों के साथ सम्बन्धों का विवेचन भी आवश्यक है। इससे स्थानों की परस्पर निर्भरता का ज्ञान होगा। स्थानिक दृष्टि में आर्थिक भूदृश्यों की समानता व विषमता, उनकी परस्पर निर्भरता तथा उनका पदानुक्रम विश्लेषण होता है।

  इसी प्रकार आर्थिक क्रिया के केन्द्रों के आधार, उनके कार्यो एव उनकी पारस्परिक दूरियों के आधार पर उनके परस्पर सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। इन कार्यो एव सम्बन्धों के आधार पर एक पदानुक्रम ज्ञात किया जाता है। इस पदानुक्रम में केन्द्रों के अनेक सोपान होते हैं। इससे केन्द्रों या भूदृश्यों की कार्यात्मक विशालता का ज्ञान होता है। फिल्ब्रिक का समावेशी

पदानुक्रम सिद्धान्त मुख्यत : व्यवसायों के आधार पर किया गया अध्ययन है। इसी प्रकार बाजार क्षेत्र, सेवा केन्द्रों आदि का पदानुक्रम ज्ञात किया जा सकता है।

इस प्रकार स्थानिक दृष्टिकोण आर्थिक क्रियाओं के अध्ययन में अधिक उपयोगी हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. आर्थिक भूगोल में प्रदेश की रचना का आधार क्या होता है?

....

....

2. सामान्य विषय वस्तु उपागम में अध्ययन का रूप क्या होता हैं?

....

....

3. क्रमबद्ध दृष्टिकोण को अन्य किस नाम से पुकारते हैं?

....

....

4. बुकानन ने अपनी किस पुस्तक के द्वारा क्रमबद्ध भूगोल को प्रोत्साहन दिया ।

....

....

5. निम्न में से किस उपागम में आर्थिक केन्द्रों का पदानुक्रम ज्ञात किया जाता हैं?

(अ) प्रादेशिक (ब) सैद्धान्तिक

(स) स्थानिक (द) क्रमबद्ध ( )

6. किन विद्वानों ने स्थान को एक आर्थिक तत्व के रूप में स्वीकार किया?

....

....

3.6 सारांश (Summary)

आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाओं में संलग्न मनुष्य को आर्थिक मानव कहा जाता है। लाभ अर्जित करने की दृष्टि से किए गए कार्य आर्थिक क्रिया कहलाते हैं। इन आर्थिक क्रियाओं का निर्धारण उस क्षेत्र के भौगोलिक व सांस्कृतिक कारकों द्वारा होता है। मानव के आर्थिक कार्यो का वर्गीकरण प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक आदि वर्गो के अन्तर्गत किया जाता है। ये सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ अन्तर्सम्बन्धित होती हैं।

आर्थिक क्रियाएँ पृथ्वी तल पर एक समान नहीं हैं। इनमें प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है। पृथ्वी तल पर आज भी ऐसे प्रदेश यत्र–तत्र फैले हुए है जहाँ लोग प्राथमिक क्रियाओं के माध्यम से जीवन निर्वाह करते हैं। प्राथमिक वर्ग के कार्यो के अन्तर्गत फल–फूल संग्रह, मछली पकड़ना, शिकार करना, पशु चारण, प्राच्य निर्वाहक कृषि आदि को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीयक क्रियाएँ विस्तृत व व्यवसायिक कृषि, पशुपालन, मत्स्य उद्योग, खनन तथा वस्तु निर्माण

उद्योग आदि हैं। इनमें भी प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है। आर्थिक क्रियाओं के आधारभूत भौगोलिक व सांस्कृतिक कारक अवस्थिति, धरातल, जलवायु, जलभण्डार, मिट्टी, तकनीकी ज्ञान, परिवहन के साधन, पूँजी, सरकारी नीति आदि हैं।

आर्थिक भूगोल के अध्ययन उपागम अनेक हैं। जिनमें सामान्य विषयवस्तु उपागम, प्रादेशिक उपागम, सैद्धान्तिक उपागम, संसाधन उपागम, तंत्र विश्लेषण उपागम आदि महत्वपूर्ण हैं।

क्रमबद्ध दृष्टिकोण को प्रकरण उपागम भी कहते हैं। आर्थिक भूगोल में विषयवस्तु को पृथक–पृथक प्रकरणों में बाँट कर प्रत्येक प्रकरण का अलग–अलग अध्ययन करना ही क्रमबद्ध उपागम कहलाता है।

स्थानिक दृष्टिकोण में आर्थिक क्रियाओं के भौगोलिक आधारों का अध्ययन स्थान विशेष के सन्दर्भ में किया जाता है।

3.7 शब्दावली (Glossary)

- **पदानुक्रम :** आर्थिक क्रियाओं की संख्या या अन्य आधार पर किसी स्थान या प्रदेश के पद की पहचान करना।
- **क्रमबद्ध दृष्टिकोण :** भूगोल के तत्वों को प्रकरणों में बाँटकर प्रत्येक प्रकरण का पृथक से अध्ययन करना।
- **आर्थिक क्रिया :** मानव द्वारा लाभ अर्जन की दृष्टि से किए जाने वाले कार्य आर्थिक क्रिया कहलाते हैं।
- **औद्योगिक संश्लिष्ट :** जहाँ आधारी उद्योग से सम्बन्धित अन्य उद्योगों एवं सेवाओं की श्रृंखला मिलती है, उसे औद्योगिक संश्लिष्ट कहते हैं।
- **विकसित देश :** वे देश जहाँ द्वितीय व तृतीय वर्ग की क्रियाओं के विकास के कारण प्रति व्यक्ति अर्जित आय अधिकतम होती है, वे विकसित देश कहलाते हैं।
- **निर्वाहक कृषि :** कम कृषि क्षेत्र से अधिक मानवीय श्रम के उपयोग द्वारा खाद्यान्न फसल का इतना उत्पादन प्राप्त करना जो परिवार के लिए पर्याप्त हो।
- **रोपण कृषि :** जिस कृषि में कोई फसल जैसे रबड़, चाय, कहवा, गन्ना आदि केवल बिक्री द्वारा मुद्रा प्राप्त करने की दृष्टि से पैदा की जाती है, रोपण कृषि कहलाती है।

3.8 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. राव एवं श्रीवास्तव : **आर्थिक भूगोल –2007,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
2. कौशिक एस. डी. : **भौगोलिक विचार धाराएं एवं विधि तंत्र,** रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ 1994।
3. सिंह, जगदीश एवं सिंह, काशीनाथ : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व,** ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 1999।
4. Hooder & Lee: **Economic Geography,** Methuen&Co. Ltd.
5. Alexander, J.W.: **Economic Geography,** Englewood cliffs, N.J.1963.

6. Britton J.N.H.: **Regional Analysis and economic geography,** a case study of manufacturing in the Bristol region, London.

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. प्राथमिक क्रियाओं मे संसाधनों का सीधे उपयोग होता है जबकि द्वितीयक वर्ग की क्रियाओं द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के रूप व गुण में परिवर्तन कर उनकी उपयोगिता में वृद्धि होती है।
2. (i) विकसित (ii) विकासशील और (iii) अविकसित।
3. (i) वस्तु स्थानान्तरण (ii) सूचना का आदान–प्रदान और (iii) थोक व्यापार।
4. सोवियत संघ के प्रेयरीज के मैदान और अर्जेण्टाइना के पम्पाज घास के मैदान।
5. (ब)

बोध प्रश्न – 2

1. अर्थतंत्र।
2. एक वस्तु का अध्ययन।
3. प्रकरण उपागम।
4. 'न्यूजीलैण्ड का पशुचारण उद्योग'।
5. (स)
6. लायड व डिकिन

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कृषि कार्य पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारकों की समीक्षा कीजिये।
2. मानव की आर्थिक क्रियाओं के भौगेलिक आधारों का विवेचन कीजिये।
3. आर्थिक प्रदेशों की भिन्नता से क्या आशय है? प्रादेशिक भिन्नता के कारकों की समीक्षा कीजिये।
4. क्रमबद्ध उपागम को विस्तार से समझाइये।
5. क्रमबद्ध और स्थानिक दृष्टिकोण में अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

इकाई 4 :निर्वाहक, बागाती एवं भूमध्य सागरीय कृषि (Subsistance, Plantation and Mediterraneon Agriculture)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कृषि के प्रकार
4.3 निर्वाहक कृषि
4.3.1 स्थानान्तरित कृषि
4.3.2 स्थायी कृषि
4.3.3 चावल प्रधान गहन निर्वाहक कृषि
4.3.4 चावल विहीन गहन निर्वाहक कृषि बागाती कृषि
4.4 बागाती कृषि
4.4.1 बागाती कृषि क्षेत्र
4.4.2 भौगोलिक दशाऐं
4.4.3 प्रमुख विशेषताऐ
4.4.4 प्रमुख फसलें
4.5 भूमध्यसागरीय कृषि
4.5.1 भूमध्यसागरीय कृषि क्षेत्र
4.5.2 भौगोलिक दशाऐं
4.5.3 प्रमुख विशेषतायें
4.5.4 प्रमुख फसलें
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 संदर्भग्रंथ
4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप समझ सकेंगे कि :

- विश्व में कृषि के विभिन्न प्रकार,
- विश्व में निर्वाहक कृषि क्षेत्र एवं विशेषतायें,
- विश्व में बताती कृषि की विशेषतायें व फसलें,

- भूमध्यसागरीय कृषि के क्षेत्र, विशेषतायें व उत्पादित फसलें।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

कृषि मानव जगत की बहुत बड़ी पुरानी परम्परा रही है। इसमें मानव की सम्पूर्ण सभ्यता निहित है। कृषि एक व्यापक शब्द है, जो अंग्रेजी के Agriculture से लिया गया है। यह दो शब्दों 'ऐगर' (Ager) जिसका अर्थ है क्षेत्र या मिट्टी है तथा 'कल्चर' Culture देख रेख से मिलकर बना है। लेकिन कृषि का अर्थ इतना संकुचित नहीं है। इसमें खेत की जुताई व फसल की बुआई के अलावा फलोत्पादक, वृक्षारोपण, पशुपालन आदि सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत मानव की उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से खाद्य और कच्चे माल की प्राप्ति के लिए मिट्टी का उपयोग होता है।

कृषि इस बात का भी सबसे उत्तम उदाहरण है कि किस प्रकार मनुष्य ने पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। वास्तव में मनुष्य के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण कड़ी तब जुड़ी जब उसने पौधों एव पशुओं को पालतू बनाना सीखा। इससे उसके जीवन में स्थायित्व आया, प्राकृतिक नियंत्रण में कमी आयी और भविष्य के लिए खाद्य पदार्थों के संचयन की प्रवृति का विकास हुआ। मानव विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि जीवन यापन का माध्यम थी, लेकिन आज कृषि केवल खाद्यान्न का ही उत्पादन नहीं करती बल्कि इससे उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति भी होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृषि मनुष्य का एक आदिम व्यवसाय है, यद्यपि इसका ढंग एवं इसकी प्रणालियाँ समय–समय पर बदलती रही हैं। उपयोगिता की दृष्टि से कृषि मनुष्य को खाद्य, वस्त्र एव गृह निर्माण का साधन मात्र ही प्रदान नहीं करती अपितु यह आवासीय विकास, उद्योग और व्यापार का भी उद्योतक है। इस प्रकार कृषि के अन्तर्गत फसलों, पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं का पालन पोषण किया जाता है। अत: इसके माध्यम से प्रकृति में जैविक सन्तुलन बनाये रखने में सहायता मिलती है। कृषि से मानव एवं मानव संस्कृति हेतु भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि एवं मनोरंजन के साधन विकसित होते हैं। इस प्रकार कृषि मानव जीवन का मुख्य आधार है।

4.2 कृषि के प्रकार (Types of Agriculture)

कृषि प्रकार खेती को सुनिश्चित करने की कार्य पद्धति है जिसके द्वारा क्षेत्र विशेष की पहचान कर सीमांकित करते हैं। कृषि प्रकार का निर्धारण भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कारकों से होता है। जलवायु, उच्चावच, मृदा की उत्पादकता, भूमि की उपलब्धता, मानव श्रम, पशु शक्ति, कृषि में मशीनीकरण उर्वरक, सिंचाई, मिट्टी की उर्वरता की मात्रा आदि चरों में विभिन्नता के कारण कृषि प्रकार में भी भिन्नता पायी जाती है। किसी भी प्रदेश में कृषि प्राकृतिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी आदि सभी कारकों का योग है। इन्हीं कारकों के परिवर्तन के फलस्वरूप कृषिगत विशेषताओं में भी भिन्नता मिलती है। वही दूसरी ओर कई क्षेत्रों में दशाऐं समान होने से कृषि कार्यों में भी समानता मिलती है। इस आधार पर इन्हें समान विशेषता समूह में सम्मिलित किया जाता है। विश्व में समान विशेषता समूह

वाले कृषि प्रकार एक विशेष पर्यावरण के अन्तर्गत ही पाये जाते हैं। इस प्रकार इन्हें एक विशिष्ट कृषि प्रदेश की संज्ञा दी जाती है, जैसे – निर्वाहक कृषि क्षेत्र, व्यापारिक कृषि क्षेत्र, भूमध्य सागरीय कृषि आदि।

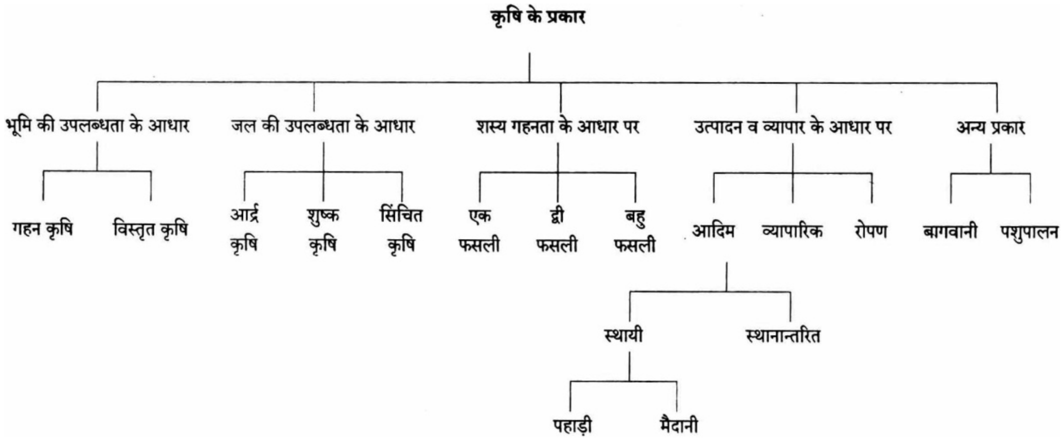

एक ही क्षेत्र में एक से अधिक कृषि प्रकारों के समावेश से क्षेत्रीय जटिलता का स्वरूप उभरता है। कृषि प्रकारों के इसी सम्मिलित रूप का वृहद क्षेत्र पर विस्तार होने से प्रणाली का जन्म होता है। इस प्रकार एक ही प्रणाली के अन्तर्गत अनेक कृषि प्रकार हो सकते हैं और एक वृहद कृषि प्रकार में बहु त सी प्रणालियाँ भी हो सकती हैं।

कृषि व्यवस्था धरातल, जलवायु, मिट्टी, जल उपलब्धता, सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का परिणाम होती है। सर्वप्रथम 1936 में डी. ह्विटलसी ने कृषि प्रणालियों के सीमांकन में निम्न तत्वों को आधार माना –

(i) फसलों तथा पशुओं का संयोजन,

(ii) फसलों का उत्पादन व पशुपालन की विधियाँ,

(iii) कृषि में श्रम, पूँजी, संगठन आदि के विनियोग की मात्रा,

(iv) उत्पादित पदार्थों के उपयोग का ढंग,

(v) कृषि कार्य में यंत्रों, उपकरणों, आवागमन के साधनों आदि का प्रयोग।

उपरोक्त तत्व किसी भी प्रदेश में अन्तर्सम्बन्धित होकर विशिष्ट भूदृश्य का निर्माण करते हैं, परन्तु कृषि में श्रम, पूंजी, विनियोग, उत्पादन की खपत, उपकरणों का प्रयोग आदि में भिन्नता के साथ–साथ प्राकृतिक वातावरण जैसे – धरातल, जलवायु दशाओं, मिट्टी की विभिन्नता, जल की उपलब्धता आदि तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। अत: प्राकृतिक एवं मानवीय वातावरण के संयोजन से भिन्न–भिन्न कृषि प्रणालियों का स्वरूप बनता है। विश्व स्तर पर हीटलसी के कृषि प्रदेशों का विभाजन सर्वाधिक मान्य है। ह्वीटलसी ने सम्पूर्ण विश्व को 13 कृषि प्रदेशों में विभक्त किया –

(i) चलवासी पशु चारण प्रदेश

(ii) व्यापारिक पशुपालन प्रदेश

(iii) स्थानान्तरित कृषि प्रदेश

(iv) प्रारम्भिक स्थायी कृषि प्रदेश
(v) चावल प्रधान गहन निर्वाहक कृषि प्रदेश
(vi) चावल विहीन गहन निर्वाहक कृषि प्रदेश
(vii) व्यापारिक बागाती कृषि प्रदेश
(viii) भूमध्य सागरीय कृषि प्रदेश
(ix) व्यापारिक अन्न उत्पादक कृषि प्रदेश
(x) व्यापारिक फसल एवं पशु उत्पादन कृषि प्रदेश
(xi) निर्वाहक फसल एवं पशु उत्पादक कृषि प्रदेश
(xii) व्यापारिक दुग्ध पशुपालन उत्पादक कृषि प्रदेश
(xiii) विशिष्ट बागाती कृषि प्रदेश

4.3 निर्वाहक कृषि (Subsistance Agriculture)

स्थानिक जनसंख्या के भरण पोषण के लिए की जाने वाली कृषि को निर्वाहन कृषि कहते हैं। इस कृषि का मुख्य उद्देश्य उस प्रदेश की जनसंख्या की खाद्य आवश्यकता जितना उत्पादन करना होता है। इसलिए इसमें खाद्यान्न फसलों की प्रधानता होती है। यह आदिम प्रकार की कृषि होती है जिसमें आधुनिक कृषि उपकरणों, वैज्ञानिक विधियों, उन्नत बीजों, उर्वरकों आदि का प्रयोग बहुत कम मात्रा में किया जाता है। फलस्वरूप प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी कम होता हैं।

जलवायु दशाओं, भूमि की उपलब्धता, जनसंख्या दबाव आदि के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रदेशों में निर्वाहक कृषि के भिन्न–भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इस आधार पर निर्वाहक कृषि के चार रूप प्रचलित हैं –

(i) स्थानान्तरित कृषि
(ii) स्थायी कृषि
(iii) चावल प्रधान गहन निर्वाहन कृषि
(iv) चावल विहीन गहन निर्वाहन कृषि

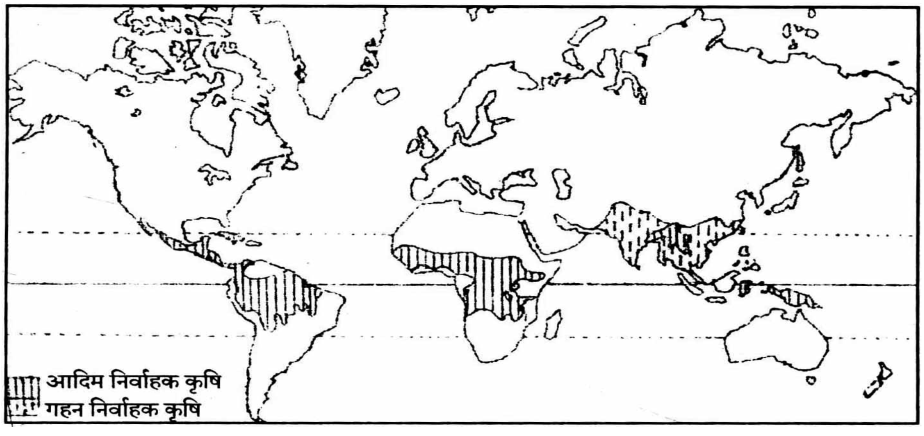

मानचित्र – 4.1 : विश्व में निर्वाहक कृषि क्षेत्र

4.3.1 स्थानान्तरित कृषि (Shifting Cultivation)

इस पद्धति में कृषक अपना खेत व आवास निरन्तर बदलते रहते हैं। किसान जंगल साफ करके दो या तीन वर्ष कृषि करने के बाद दूसरी जगह भूमि साफ करके कृषि करते हैं।

(i) **क्षेत्र :** इस प्रकार की कृषि अधिकांशतया आर्द्र उष्ण कटिबंध भागों – दक्षिणी अमेरिका के अमेजन बेसिन, मध्य अमेरिका, दक्षिणी पूर्वी एशिया में मलेशिया, थाइलैण्ड, म्यांमार, कम्पूचिया, इण्डोनेशिया, भारत की उत्तरी –पूर्वी पर्वतीय भागों आदि में की जाती है। असम में इस प्रकार की कृषि को 'झूमिंग', श्रीलंका में 'चेना', मलेशिया व इण्डोनेशिया में 'लदांग', रोडेशिया में 'मिल्पा', सूडान में 'नगासु' आदि भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। यूरोप में नये प्रस्तुर युग में इसे 'स्वीद्देन' कहा जाता था। मध्य अमेरिका में इसे 'मिल्पा', ब्राजील में 'रोका', दक्षिणी राजस्थान में 'वालरा' कहते हैं।

(ii) **भौगोलिक दशाऐं :** स्थानान्तरित कृषि आर्द्र –उष्ण कटिबंधीय जलवायु से सम्बन्धित है। वर्ष भर उच्च तापमान एव अधिक वर्षा के कारण इन क्षेत्रों में सघन वन पाये जाते हैं। अत: कृषि के लिए भूमि की कमी रहती है। अतिशीघ्र वनस्पति के बढ़ने एव अत्यधिक वर्षा के कारण मिट्टी में अपक्षालन की समस्या के कारण कृषक खेत बदलने को बाध्य हो जाते हैं। यह जलवायु पशुपालन के अनुकूल नहीं होने के कारण पशुओं का अभाव रहता है। फलस्वरूप कृषकों को समस्त कार्य अपने शारीरिक श्रम से ही करना पड़ता है।

(iii) **विशेषताऐं (Characteristics)**

(क) इस कृषि में वनों को साफ करके खेत बनाये जाते हैं तथा दो–तीन साल बाद इन्हें छोड़कर अन्यत्र खेत बनाते रहते हैं। अत : खेत वनों में बिखरे हुये रहते हैं।

(ख) यह कृषि प्रारम्भिक दशा का प्रतीक है क्योंकि खेतों के साथ यहाँ के निवासियों का जीवन भी स्थानान्तरणशील होता है।

(ग) इस कृषि में खाद्यान्न फसलों की प्रधानता रहती है परन्तु भिन्न–भिन्न जलवायु दशाओं के कारण भिन्न–भित्र क्षेत्रों में अलग–अलग फसलें बोयी जाती है।

(घ) इस कृषि में मानव श्रम की प्रधानता रहती है। केवल खुर्पी, कुदाल, हंसिया या नुकीली लकड़ी जैसे पुरातन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

(ङ) कृषि फार्म में किसान का सम्पूर्ण परिवार लगा रहता है तथा प्रति हेक्टेयर उत्पादन अत्यन्त कम है। अत: जीवन यापन के लिए मुर्गी पालन एवं सुअर पालन भी किया जाता है।

(च) इस कृषि व्यवस्था को अपनाने वाले लोग अशिक्षित व रूढ़िवादी हैं जो अपनी इस परम्परागत कृषि पद्धति को छोड़ने को तत्पर नहीं होते।

(छ) इस प्रकार की कृषि में वृक्षों को काटकर जलाया जाता है।

(ज) भूमि की उर्वरता को बनाऐ रखने के लिए प्राकृतिक वनस्पति को पुन: उगने के लिये छोड़ दिया जाता है।

(झ) खेतों का आकार छोटा होता है। बीज बिखेर कर बोये जाते है।

(ञ) विभिन्न प्रकार की फसलें एक साथ बोई जाती हैं।

(ट) इस कृषि में पर्याप्त उत्पादन न होने के कारण, मछली पकड़ना व जंगली वस्तुऐं एकत्र करना व शिकार करना भी साथ–साथ चलता है।

(iv) **फसलें :** इस कृषि प्रणाली में खाद्यान्न फसलों की प्रधानता रहती है। मक्का, ज्वार, बाजरा, चावल केला आदि प्रमुख फसलें पैदा की जाती है। अमेजन घाटी व मध्य अमेरिका में मक्का, अफ्रीका में ज्वार, बाजरा एशिया में चावल पैदा होता है। इसके अलावा याम कसावा, गन्ना, मूंगफली, सेम तथा सब्जियाँ गौण रूप में पैदा किया जाता है।

इस प्रकार स्थानान्तरण कृषि प्राकृतिक संसाधनों को बुरी तरह प्रभावित करती है खास कर मिट्टी का अपरदन व वनों को हास मुख्य समस्या है इससे पारिस्थितिकी में असंतुलन आता है। यह एक प्रकार का जीवन दर्शन बनाया है जिसे आसानी से नहीं बदला जा सकता है। इस प्रक्रिया या प्रणाली को अधिक उत्पादक बनाना आवश्यक है ताकि जनसंख्या के बढ़ते दबाव को कम किया जा सके। मुख्य रूप से इसे स्थायी कृषि के रूप में विकसित करने की शिक्षा दी जाये, वृक्ष उगाने व पशुपालन की शिक्षा भी साथ दी जा सकती है। साथ ही सहकारी बाजार की सुविधा व वनों पर आधारित लघु उद्योग लगाकर वहां की अर्थव्यवस्था को उबारा जा सकता है।

4.3.2 स्थायी कृषि (Sedentary Agriculture)

यह स्थानान्तरणशील कृषि का ही विकसित रूप है। स्थानान्तरणशील कृषि प्रदेशों में जहाँ प्राकृतिक व मानवीय तत्व अनुकूल होते हैं, वहां स्थायी कृषि पद्धति बन जाती है। प्राकृतिक सुविधाऐं अधिक होने के कारण यहां की जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है जिसके कारण इन क्षेत्रों में कृषि का यह स्वरूप मिलता है। पहाड़ी ढालों व घाटियों में इस प्रकार की कृषि होती है।

(i) **क्षेत्र :** स्थायी कृषि मध्य अमेरिका के पठारी एवं पहाड़ी भागों, पश्चिमी द्वीप समूह के कुछ द्वीपों, एण्डिज पर्वत के उष्ण कटिबन्धीय भागों, पूर्वी अफ्रीका के पठारी भागों, कीनिया, घाना, नाइजीरिया एवं पूर्वी द्वीप समूह में की जाती है।

इस प्रकार आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय भागों में जहाँ प्राकृतिक वातावरण एव मानवीय परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल मिलती हैं, वहाँ स्थायी कृषि प्रचलित है।

(ii) **भौगोलिक दशाऐं :** स्थायी कृषि उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों से सम्बन्धित हैं, जहाँ ऊँचे पठारी भाग, जलोढ़ मैदान एवं द्वीपीय भू–आकृति मिली है। उपजाऊ मिट्टी, उपोष्ण व शीतोष्ण जलवायु एवं मानवीय आवास यहाँ स्थायी कृषि के लिए सुविधाजनक है। यही कारण है कि यहाँ अपेक्षाकृत अधिक जनसंख्या मिलती है।

(iii) **विशेषताऐ :**

(क) इस कृषि प्रणाली में मैदानी भागों में उपजाऊ जलोढ़ मिट्टियों के जमाव के कारण स्थायी कृषि का प्रचलन है क्योंकि नयी भूमि साफ करने एवं मिट्टी में उर्वरता हास की समस्या नहीं है।

(ख) स्थायी कृषि के क्षेत्र बागाती कृषि क्षेत्रों के निकट पायी जाती हैं इसलिए मिर्च, मसाले, रबर जैसी स्थायी फसलें पैदा की जाने लगी हैं।

(ग) इस कृषि में फसलों एवं पशुओं का साहचर्य मिलता है अर्थात पठारी भागों में घोड़े, खच्चर, भेड़–बकरियाँ तथा मैदानी भागों में गायें पाली जाती हैं।

(घ) भूमध्यरेखीय जलवायु के सीमान्त भागों में वर्षा कम एवं शुष्क मौसम रहने से अनावश्यक वनस्पति के बढ़ने एवं मिट्टी अपक्षालन की समस्या नहीं रहती।

(ङ) कृषक अपने आदिम औजारों का उपयोग करते हैं। खेत में थोड़ी–2 दूरी पर मेडें बना देते हैं ताकि पौधे जल से सुरक्षित रहें।

(च) एक खेत में कई फसलें एक साथ बोई जाती है ताकि लम्बे समय तक खाद्य सामग्री मिलती रहती है।

(iv) प्रमुख फसलें : स्थायी कृषि में मक्का, चावल, गन्ना, रबर, कपास, मसाले, सोरघम, मैनियाक, सब्जियाँ, फल आदि फसलें पैदा की जाती है। पठारी भागों में ऊँचाई व जलवायु के अनुसार फसलों की सुस्पष्ट पेटियाँ पायी जाती है। अनाज एव कन्द वाली फसलें यहाँ की खाद्य फसलें हैं।

4.3.3 चावल प्रधान गहन निर्वाहक कृषि (Intensive Subsistence Agriculture Dominated by Rice)

(i) क्षेत्र : यह सीमित भूमि और अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों की कृषि पद्धति है जहाँ खाद्यान्न फसलों का उत्पादन स्थानीय उपभोग के लिए किया जाता है। इस प्रकार की कृषि मानसून एशिया में प्रचलित है जहाँ ग्रीष्म ऋतु में मानसूनी वर्षा होती है तथा शीत ऋतु शुष्क होती है। भौगोलिक दशाओं की अनुकूलता के कारण चावल प्रमुख फसल है, जिसकी वर्ष में तीन फसलें ली जाती है।

(ii) भौगोलिक दशाऐं : चावल प्रधान गहन निर्वाहक कृषि मानसूनी प्रदेशों में होतीं है। मानसूनी जलवायु में वर्षा एवं तापमान में मौसमी भिन्नता पायी जाती है। जहाँ वर्ष भर ऊँचे तापमान एवं 200 सेमी वर्षा होती है, वहाँ एक ही खेत में चावल की दो–तीन फसलें पैदा की जाती है। कम वर्षा वाले भागों में चावल की एक फसल ली जाती है। इस कृषि में समतल मैदानी भागों एवं तटीय भागों में चावल तथा पठारी भागों में मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। मानसूनी प्रदेश में नदियों के विस्तृत मैदान मिलते हैं, जहाँ उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी उपलब्ध हो जाती है। ये प्रदेश सघन बसे हुये क्षेत्र हैं जिनकी खाद्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए गहन कृषि का स्वरूप विकसित हुआ है। इस प्रकार चावल प्रधान गहन निर्वाहक कृषि का भौगोलिक दशाओं से अत्यधिक सामंजस्य बना हुआ है।

(iii) विशेषताएँ :

(क) इस कृषि पद्धति में चावल मुख्य उपज तथा गेहूँ र जी. मक्का, सोयाबीन आदि पूरक के रूप में पैदा की जाती है।

(ख) पारिवारिक बंटवारे के कारण खेत छोटे व बिखरे हुये मिलते है, जिससे सिंचाई करने एवं मशीनों के प्रयोग में कठिनाई आती है।

(ग) इस कृषि में मानव श्रम की प्रधानता रहती है। खेतों को जोतने, सिंचाई करने, अनाज को ढोने आदि कार्य पशुओं द्‌वारा किया जाता है।

(घ) मिट्टी की उर्वरता के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद आदि का प्रयोग अधिक तथा उर्वरकों का प्रयोग कम किया जाता है।

(ङ) फसलों के भूसे से यहाँ पशुपालन किया जाता है। सघन कृषि के कारण पशुओं के लिए चरागाहों के लिए भूमि बचती ही नहीं है। अत: गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरियाँ, मुर्गियाँ आदि पाले जाते हैं।

(च) इस कृषि पद्धति का स्वरूप अधिकांशत: आत्मनिर्वाहक है। खाद्‌यान्नों का उत्पादन कम होता है क्योंकि जनसंख्या अधिक होने के कारण स्थानीय पूर्ति भी कठिनाई से होती है। अत: अनेक देशों को खाद्‌यान्नों का आयात करना पड़ता है। इस प्रदेश के किसानों का जीवन स्तर निम्न कोटि का मिलता है।

(छ) चावल के साथ–साथ जलाशयों में मछली पालन का कार्य भी होता है।

(ज) खेतों का आकार छोटा होने के कारण बैलों का खेती में अधिक प्रयोग होता है। अधिकांश कार्य पशुओं की सहायता से किया जाता है।

(झ) सघन जनसंख्या, प्रति व्यक्ति कम उत्पादन, खेतों का छोटा आकार, उच्च ब्याज दर पर पूंजी की उपलब्धता से बढ़ती गरीबी, अशिक्षा का उच्च स्तर आदि मुख्य विशेषताऐं है।

(iv) प्रमुख फसलें : इस कृषि प्रणाली में खाद्‌यान्न फसलों की प्रधानता है। चावल मुख्य फसल है जो सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रमुखता से पैदा की जाती है। इसके अलावा गेहूँ, जौ, मक्का, दालें, तिलहन, सब्जियाँ आदि गौण फसलों के रूप में पैदा किया जाता है। भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन आदि देशों के आन्तरिक कम वर्षा वाले भागों में कपास, चना आदि फसलें भी पैदा की जाती है।

4.3.4 चावल विहीन गहन निर्वाहन कृषि (Intensive Subsistence Agriculture Dominated by other Food Crops)

(i) क्षेत्र : मानसून एशिया के ऐसे भागों में जहाँ औसत वर्षा 100 सेमी से कम होती है, वहाँ चावल के अलावा अन्य खाद्‌यान्न फसलें स्थानीय उपयोग के लिए उत्पन्न की जाती है। जलवायु, मिट्टी, उच्चावच आदि की भिन्नताओं के कारण फसल उत्पादन में भी भिन्नता मिलती है। उत्तरी चीन, मंचूरिया, कोरिया, उत्तरी जापान, भारत के उत्तरी–पश्चिमी भाग व दक्कन पठार, म्यांमार के शुष्क क्षेत्र, थाइलैण्ड का पठार एवं हिन्दचीन के आन्तरिक भागों में गेहूँ, सोयाबीन, जौ, कपास, मूंगफली, मक्का, ज्वार –बाजरा, दालें, तिलहन आदि उत्पन्न किये जाते हैं। मौसमी परिवर्तन के साथ

वर्षाकाल में ज्वार– बाजरा, मक्का, गन्ना, सोयाबीन, शीतकाल में गेहूँ र जी, चना तथा ग्रीष्मकाल में दालें, सब्जियों व हरे चारे का उत्पादन होता है।

(ii) भौगोलिक दशाऐं. चावल विहीन गहन कृषि मानसून एशिया के उन भागों में की जाती है, जहाँ 100 सेमी से कम वर्षा होती है। उच्चावच भिन्नता, जलवायु दशाओं, मृदा की उर्वरता एवं अन्य भौगोलिक कारकों के कारण चावल की कृषि संभव नहीं होती। इन प्रदेशों का धरातल मैदानी व पठारी दोनों प्रकार का है। उत्तरी भागों में औसत तापमान 1700 तथा भीतरी भागों में 25^0C रहता है । वर्षा का औसत 50 से 100 सेमी के लगभग रहता है। वर्षा मौसमी एवं अविश्वसनीय होती है। इस प्रदेश में मृदाओं में विभिन्नता पायी जाती है। नदियों की घाटियों में दोमट मिट्टी तथा पठारी भागों में लाल मिट्टियाँ मिलती है। जनसंख्या घनत्व अपेक्षाकृत अधिक होने से खाद्यान्न उत्पादन पर अधिक दबाव रहता है।

(iii) विशेषतायें :

(क) यह कृषि पद्धति 100 सेमी से कम वर्षा वाले मानसूनी क्षेत्रों में प्रचलित है, जहाँ पर्यावरण की अनुकूलता मिलती है।

(ख) खाद्यान्नों का क्षेत्र अधिक तथा मुद्रादायिनी फसलों का क्षेत्र कम होता है।

(ग) इस कृषि में उत्पादन का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय जीवन निर्वाह होता है।

(घ) कृषि में मानव श्रम व पशुओं की प्रधानता रहती है।

(ङ) यद्यपि पशुपालन का स्थान गौण है, परन्तु नगरों के समीपवर्ती भागों में पशुपालन का व्यावसायिक स्वरूप डेयरी उद्योग विकसित हुआ है।

(च) वर्षा अनिश्चित एवं अविश्वसनीय होने के कारण इस कृषि में सिंचाई का अत्यधिक महत्व है।

(iv) प्रमुख फसलें : इस कृषि व्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों में फसल उत्पादन में विविधता मिलती है। गेहूँ, जौ, चना, मक्का, कपास, दालें, सोरघम, सोयाबीन, गन्ना, सब्जियाँ, हरा चारा आदि फसलें पैदा की जाती हैं। अधिक वर्षा वाले भागों में चावल और कम वर्षा वाले भागों में ज्वार–बाजरा, एव तिलहन पैदा किये जाते हैं मौसमी परिवर्तन के कारण जीवन निर्वाह कृषि में फसलों के तीन वर्ग मिलते है – वर्षाकाल में ज्वार, बाजरा, चावल, मक्का, गन्ना आदि शीतकाल में गेहूँ, जौ, चना, राई, तिलहन तथा ग्रीष्मकाल में सब्जियाँ, दालें और हरा चारा पैदा किया जाता है।

बोध प्रश्न– 1

1. हीटलसी ने विश्व को कितने कृषि प्रदेशों में बांटा है?

....

....

2. निर्वाहन कृषि से क्या तात्पर्य है?

....

....

3. स्थानान्तरित कृषि किसे कहते हे?

....

....

4. संसार के विभिन्न देशों में स्थानान्तरित कृषि को किन –किन नामों से पुकारा जाता है?

....

....

5. गहन निर्वाहन कृषि कहाँ प्रचलित हैं?

....

....

4.4 बागाती कृषि (Plantation Agriculture)

कुछ विशेष उपजे बागान लगाकर व्यापारिक दृष्टि से उत्पन्न करने वाली पद्धति, बागाती कृषि कहलाती है। इस व्यवस्था में चाय, कहवा, नारियल, केला, मसाले, रबर, गन्ना आदि फसलों को एक बार बागानों में रोपण करके कई वर्षों तक उत्पादन लिया जाता है,अत: इसे व्यापारिक पादप रोपण कृषि भी कहा जाता है। इस कृषि का विकास व प्रोत्साहन शीतोष्ण कटिबन्धीय देशों को निर्यात करने के उद्देश्य से अनेक उष्ण कटिबन्धीय देशों में उपनिवेशवाद के दौरान किया गया था। बागानों के विकास में यूरोपियन की प्रमुख भूमिका रही है। कई प्रकार के फल और फूल डस प्रकार की कृषि की प्रधानता है।

4.4.1 बागाती कृषि क्षेत्र (Area of Plantation Agriculture)

बागाती कृषि के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं –

(i) लैटिन अमेरिका : इसमें मेक्सिकों, क्यूबा, जमैका, ब्यूर्टोरिको, ग्वाटेमाला,कोस्टारिका, ब्राजील, कोलम्बिया तथा हान्डुरास प्रमुख हैं।

(ii) एशिया : यहाँ दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी भागों में बागाती कृषि की जाती है। दक्षिणी भारत, श्रीलंका, म्यांमार, थाइलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि प्रमुख देशों में बागाती कृषि की जाती है।

(iii) अफ्रीका : अफ्रीका में आइवरी कोस्ट, जेरे, कीनिया, तंजानिया, इथोपिया, मालागासी,यूगाण्डा आदि बागाती कृषि हैं।

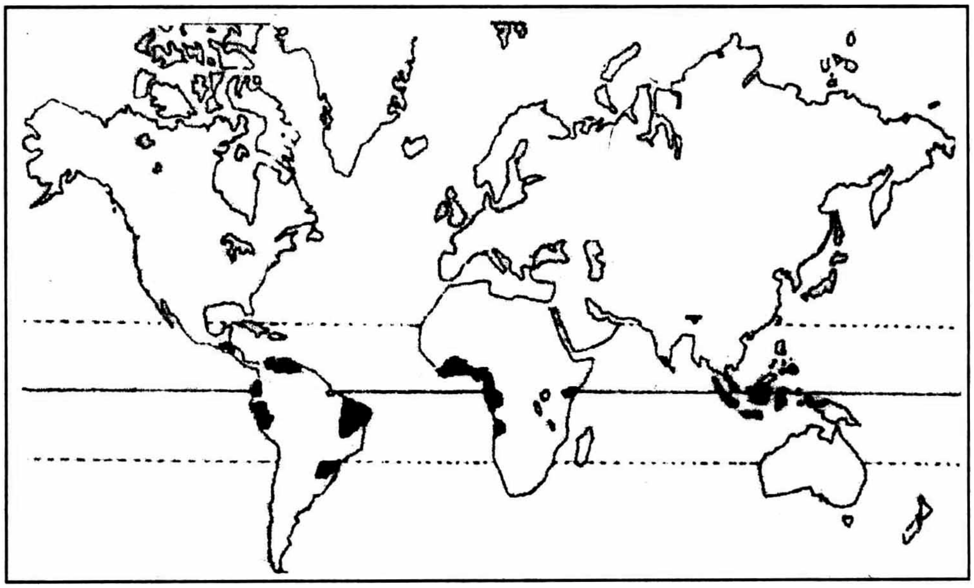

मानचित्र – 4.2 : विश्व में बागाती कृषि क्षेत्र

4.4.2 भौगोलिक दशाऐं (Geographical Conditions)

बागाती कृषि व्यवस्था वाले क्षेत्रों में वर्ष भर उच्च तापमान, अत्यधिक वर्षा, उर्वर मृदाऐं, समतल विस्तृत भूमि आदि भौगोलिक कारकों की फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका है। उच्च ताप एवं अत्यधिक नमी के कारण कभी–कभी विविध प्रकार के रोग भी पौधों को लग जाते हैं जिससे सम्पूर्ण बागान की फसल नष्ट हो जाती है और बागान का स्थान भी बदलना पड़ता है। हवा की दिशा व गति, भूमि का ढाल, मिट्टी की प्रकृति एवं तटीय स्थिति भी बागानों की स्थिति को प्रभावित करते हैं। श्रम की प्रधानता के कारण यह कृषि अधिक जन घनत्व वाले उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में अधिक उन्नति कर गयी है। परिवहन के साधनों की उपलब्धता कारण समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में बागाती कृषि का केन्द्रीयकरण मिलता है या फिर छोटे–छोटे क्षेत्रों में इस प्रकार की कृषि होती है।

4.4.3 बागाती कृषि की विशेषतायें (Characteristics of Plantation Agriculture)

इस कृषि पद्धति में निम्नलिखित विशेषताऐं पायी जाती हैं –

(i) बड़े पैमाने पर कृषि : बागाती कृषि बड़े–बड़े फार्मों पर की जाती हैं प्राय: बागान 20 से 40 हेक्टेयर तक होते हैं। फार्मों पर ही बागान, कार्यालय, फसल प्रशोधन के कारखाने, गोदाम, श्रमिकों के आवास आदि व्यवस्था रहती है।

(ii) फसलों का विशिष्टीकरण : बागाती कृषि प्रणाली में फसलों का विशिष्टीकरण मिलता है। एक क्षेत्र में एक या दो फसलों का प्रमुखता से उत्पादन किया जाता है। जैसे– ब्राजील में कहवा, मलेशिया में रबर, भारत के असम में चाय व दक्षिणी भारत में नारियल प्रमुख रूप से पैदा किया जाता है।

(iii) **अत्यधिक श्रम :** बागाती कृषि में श्रमिकों की आवश्यकता अधिक रहती है। खेतों को तैयार करने, पौध तैयार करने व रोपण करने, उर्वरकों का प्रयोग, फसलों की चुनाई, प्रशोधन, पैकिंग आदि कार्यों में श्रमिकों की महती आवश्यकता रहती है। अत: बागाती कृषि अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में उन्नति कर गयी है।

(iv) **पूँजी व प्रबन्ध :** बागाती कृषि व्यवस्था विदेशी पूँजी व प्रबन्ध से प्रारम्भ हुई तथा आज भी अधिकांश बागानों में विदेशी पूँजी लगी हुई है, क्योंकि इस कृषि में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

(v) **व्यापारिक स्वरूप :** इस कृषि का प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादों का निर्यात करना है जिससे इस कृषि ने व्यापारिक स्वरूप ले लिया है। अधिकांश क्षेत्रों में विदेशी मांग के अनुरूप ही फसल के बागान लगाये जाते हैं।

(vi) **उत्तम परिवहन :** बागानों की स्थिति निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उन क्षेत्रों को विश्व का अन्य क्षेत्रों से यातायात उपयुक्त, सुगम व सस्ता हो। विशाल बागानों के आन्तरिक भागों में भी उत्पाद को संग्रहित करने के लिए सड़क या रेलमार्ग की व्यवस्था होती है।

(vii) **बागानों में प्रशोधन प्रक्रिया :** बागाती फसलों जैसे—रबर, गन्ना, चाय, कहवा आदि को प्राप्त कर सीधा ही बाजारों में न भेजकर बागानों में प्रशोधन करना पड़ता है । अत: फसलों को तैयार करने के संयंत्र बागानों में ही स्थापित होते हैं।

4.4.4 प्रमुख फसलें (Major Crops)

बागाती कृषि में उन फसलों का उत्पादन किया जाता है जिनकी मांग नगरीय संस्कृति के विकास के साथ बढ़ती गयी। बागाती कृषि में निम्न फसलें पैदा की जाती हैं –

(i) **चाय :** चाय के बागान भारत, चीन, श्रीलंका, बांग्लादेश, इण्डोनेशिया, मलेशिया, ईरान, कीनिया, अर्जेण्टाइना आदि में विस्तृत हैं।

(ii) **रबर :** रबर भूमध्यरेखीय प्रदेश की प्रमुख उपज है जो मानसून एशिया में मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, श्रीलंका, भारत, सिंगापुर, फिलीपाइन, अफ्रीका के गिनी तटीय देश घाना व नाईजीरिया तथा दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील में पैदा किया जाता है।

(iii) **कहवा :** ब्राजील विश्व का सबसे बड़ा कहवा उत्पादक देश है। जहाँ कहवा के बागानों का 'फजेन्डा' कहा जाता है । इसके अलावा कोलम्बिया, वेनेजुएला, इक्वेडोर, पेरू, आइवरी कोस्ट, घाना, अंगोला, युगाण्डा, इथोपिया, भारत एवं इण्डोनेशिया में कहवा की कृषि की जाती है।

(iv) **नारियल :** मानसूनी एशिया में नारियल बहुतायत से पैदा किया जाता है। भारत, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, फिलीपाइन, मलेशिया, थाइलैण्ड, भूमध्यरेखीय अफ्रीका एव तटीय दक्षिणी अमेरिका में नारियल की कृषि की जाती है।

(v) **केला :** भारत, फिलीपाइन, इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, अफ्रीका व दक्षिणी अमेरिका के भूमध्यरेखीय प्रदेश में केले का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है।

(vi) अन्य फसलें : उपरोक्त फसलों के अलावा गन्ना, गरम मसाले जैसी फसलें भी पैदा की जाती हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. बागाती कृषि किसे कहते हैं?

....

....

2. बागाती कृषि किन क्षेत्रों में प्रचलित है?

....

....

3. फसलों के विशिष्टीकरण से क्या तात्पर्य है?

....

....

4. बागाती कृषि में परिवहन के साधनों की क्या भूमिका है?

....

....

5. 'फेजेण्डा' किसे कहते है?

....

....

4.5 भूमध्यसागरीय कृषि (Mediterranean Agriculture)

यह कृषि व्यवस्था भूमध्यसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों में प्रचलित हैं जहाँ निर्वाहन एवं व्यापारिक दोनों प्रकार की कृषि एक ही क्षेत्र के विभिन्न भागों में की जाती है। इसी कारण इस कृषि का नामकरण कृषि विशेषता पर नहीं वरन् भौगोलिक प्रदेश के आधार पर किया गया है। यह कृषि सघन, उच्च विशेषीकृत तथा अधिक फसली विविधता वाली है जिसमें कुछ विशिष्ट फसलों का उत्पादन होता है। यहाँ कृषि के साथ –साथ पशुपालन भी किया जाता है।

4.5.1 भूमध्यसागरीय कृषि क्षेत्र (Area of Mediterranean Agriculture)

भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश का विस्तार 300 से 400 उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर मिलता है । इसके पाँच मुख्य क्षेत्र हैं –

(i) भूमध्यसागर के समीपवर्ती देश : 'स्पेन, पुर्तगाल, दक्षिणी फ्रांस, इटली, युगोस्लाविया, सिरिया, इजराइल एवं उत्तरी अफ्रीका के तटीय क्षेत्र।

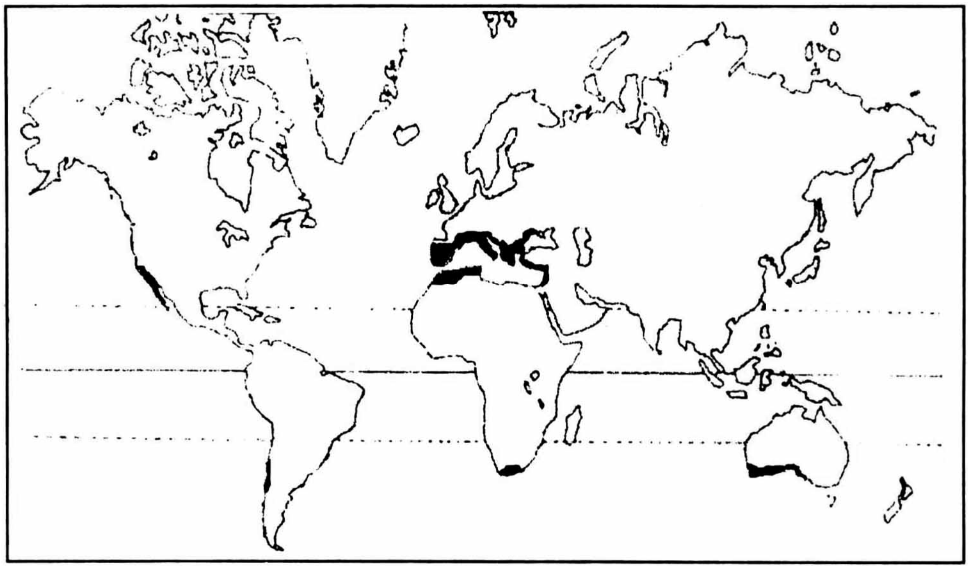

मानचित्र– 4. 3: भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश

(ii) संयुक्त राज्य अमेरिका में केलिफोर्निया घाटी।

(iii) दक्षिणी अमेरिका में मध्य चिली।

(iv) अफ्रीका का केप प्रान्त।

(v) दक्षिणी पश्चिमी आस्ट्रेलिया एवं उत्तरी न्यूजीलैण्ड।

यूरोप व एशिया के आन्तरिक भागों में निर्वाहन कृषि की जाती है जबकि दक्षिणी फ्रांस, इटली व स्पेन के तटवर्ती भागों, केलिफोर्निया घाटी एवं चिली में रसदार फलों व सब्जियों की व्यापारिक खेती की जाती है।

4.5.2 भौगोलिक दशाऐं (Geographical Conditions)

भूमध्य सागरीय कृषि प्रदेश की विलक्षण विशेषता यहाँ की भौगोलिक दशाओं का परिणाम है। यहां विशिष्ट प्रकार की जलवायु मिलती है जिसमें शीतकाल में वर्षा एवं ग्रीष्मकाल शुष्क रहता है। वर्षा व तापमान में ऋत्विक भिन्नता मिलती है। ऊंची पर्वत चोटियाँ, समुद्र तटीय मैदान, सँकरी घाटियों आदि धरातलीय विभिन्नताओं ने इस कृषि प्रणाली को विशिष्ट पहचान दी है। ग्रीष्म ऋतु में पर्वतीय भागों की बर्फ पिघलने से घाटियों में सिंचाई के जल की उपलब्धता हो जाने से शुष्क मौसम में भी सब्जियाँ व फल उत्पादन व्यापारिक महत्व का हो गया है। जनसंख्या घनत्व, परिवहन सुलभता, नगरों की निकटता, शीतलन की सुविधा आदि तत्वों से भूमध्यसागरीय कृषि को प्रोत्साहन मिला है।

4.5.3 भूमध्यसागरीय कृषि की विशेषतायें (Characteristics of Mediterranean Agriculture)

(i) इस प्रदेश में शीतकाल में वर्षा होती है एवं ग्रीष्म काल शुष्क रहता है। वर्षा का औसत 25 से 75 सेमी तक मिलता है। फलस्वरूप फसलोत्पादन एवं पशुपालन में क्षेत्रीय भिन्नता मिलती है ।

(ii) भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की फसलों एवं पशुओं का अद्भुत साहचर्य मिलता है। फसलों में खाद्यान्न व फलों का संयोजन पाया जाता है।

(iii) पर्वतीय एवं पठारी भागों में पशु पालन किया जाता है । पशुपालन दुग्ध, मांस और ऊन के लिए किया जाता है।

(iv) भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था में कृषि का स्वरूप निर्वाहन एवं व्यापारिक दोनों स्तर का मिलता है। गेहूँ जी, मक्का, सब्जियों आदि की कृषि स्थानीय निर्वहन के लिए तथा रसदार फल, दुग्ध उत्पाद व मांस व्यापार के लिए उत्पन्न किये जाते है।

(v) भूमध्यसागरीय कृषि वर्षा की कुल प्राप्ति, शुष्कता की अवधि, सिंचाई, स्थानीय मृदा की दशायें, कृषक की आर्थिक क्षमता एवं विश्व बाजार मे कीमतों के उतार–चढाव पर निर्भर है।

4.5.4 प्रमुख फसलें (Major Crops)

भूमध्यसागरीय कृषि में तीन प्रकार की फसलें पैदा की जाती है –

(i) **शीतकालीन फसलें :** शीतकाल में वर्षा आरम्भ होते ही गेहूँ जी एव मक्का की फसलें बो दी जाती है जो बसन्त ऋतु तक पककर तैयार हो जाती है। खाद्यान्नों के अलावा आलू टमाटर, सेम, गाजर, मटर, प्याज, चुकन्दर आदि सब्जियों उत्पन्न जाती है जो स्थानीय मांग के अलावा निर्यात भी की जाती है।

(ii) **ग्रीष्मकालीन फसलें :** इन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु शुष्क होने के कारण सिंचाई के द्वारा चारे की फसलें जैसे – क्लोवर घास, अल्फाफा घास, बरसीम, टुपाइन आदि पैदा की जाती है। सिंचित फलोत्पादन में अंगूर उत्पादन का प्रमुख स्थान है। इसके अलावा नाशपाती, सेब, अलूचा आदि फलों का उत्पादन किया जाता है। इसी कारण भूमध्यसागरीय भूमि को विश्व की फलोद्यान भूमि (Orchard land of the World)कहा जाता है।

(iii) **असिंचित फसलें :** बिना सिंचाई के जैतून, खूबानी, अंजीर, खजूर आदि फलों की कृषि की जाती है । विश्व का 90% जैतून भूमध्यसागरीय प्रदेश में पैदा होता है। जहाँ 35 सेमी से अधिक वर्षा होती है, वहाँ अंगूर बिना सिंचाई के पैदा किया जाता है। इनके अलावा खट्टे रसदार फल सन्तरा, नींबू , नारंगी, चकोतरा आदि फल बहुतायत से पैदा होता है।

पशुपालन : भूमध्यसागरीय प्रदेश में पशुपालन दो प्रकार का होता है। प्रथम–सिंचाई द्वारा चारे की फसलें पैदा कर मांस व डेयरी पशुओं को पाला जाता है। नगरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में गाय व सुअर पाले जाते हैं। द्वितीय– प्रकार का पशुपालन प्राकृतिक वनस्पति पर आधारित भेड़–बकरी पालन का है जो ऊँचे पहाड़ी भागों में चराये जाते हैं, जहाँ अपेक्षाकृत अधिक वर्षा व कम वाष्पीकरण के कारण शुष्क ग्रीष्म ऋतु में भी वातावरण सम शीतोष्ण रहता है । भेड़–बकरी पालन मांस व ऊन के लिए किया जाता है।

बोध प्रश्न –3

1. भूमध्यसागरीय कृषि में कैसा प्रतिरूप मिलता है?

   ....

   ....

2. भूमध्यसागरीय कृषि कहाँ–कहाँ होती है?

....

....

3. विश्व की फलोद्यान भूमि किसे कहा जाता है?

....

....

4. भूमध्यसागरीय प्रदेश में कौन –कौन से फल पैदा होते हैं?

....

....

5. भूमध्यसागरीय कृषि में पशुपालन कितने प्रकार का होता है?

....

....

4.6 सारांश (Summary)

कृषि मानव जीवन का महत्वपूर्ण आधार है, जिससे भोजन, वस्त्र, आवास जैसी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति होती है। मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि जीवन यापन का साधन मात्र थी, परन्तु आधुनिक समय में उद्योगों के लिए कच्चा माल, व्यापार के लिए विभिन्न वस्तुऐं रथ विकास का पर्याय बन चुकी है। विश्व के विभिन्न भागों में धरातल, जलवायु, मिट्टियाँ, जल संसाधन आदि में क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रकार की कृषि का विकास हुआ है। यहाँ तक कि एक ही भौगोलिक प्रदेश में विभिन्न प्रकार की कृषि प्रणालियाँ देखी जा सकती हैं।

उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में जहाँ एक ओर कम जनसंख्या वाले आदिम जातीय क्षेत्रों में आज भी आदिम प्रकार की स्थानान्तरित कृषि की जाती है, वहीं दूसरी ओर इन्हीं प्रदेशों में अधिक जनसंख्या वाले भागों में स्थानान्तरित के स्थान पर स्थायी कृषि प्रचलित है। घने बसे मानसूनी प्रदेश में कृषि भूमि की कमी व घनी जनसंख्या की खाद्यान्न मांग के कारण सघन निर्वाहन कृषि का स्वरूप विकसित हुआ है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में ही उपनिवेशवाद के दौरान कुछ विशेष बागाती फसलें पैदा किये जाने के फलस्वरूप आज विशाल स्तर पर व्यापारिक बागाती कृषि का विकास देखा जा सकता है, जो फसल विशिष्टीकरण का पर्याय बन गयी है। बागाती कृषि ने औद्योगिक कृषि रूप धारण कर लिया है। बड़े–बड़े फार्मों पर फसल उत्पादन से लेकर उनके प्रशोधन, डिब्बा पैकिंग आदि की औद्योगिक इकाईयों कृषि का ही एक अंग है।

भूमध्यसागर के समीपवर्ती क्षेत्र में विशिष्ट प्रकार की जलवायु दशाओं के कारण संसार के इस जलवायु वाले अन्य क्षेत्रों में खाद्यान्न कृषि रम्य फल उत्पादन की कृषि का साहचर्य पाया जाता है, जो विश्व में 'फलोद्यान भूमि' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ शीतकालीन वर्षा आधारित फसलें, ग्रीष्मकालीन सिंचित फसलें, पशुपालन आदि यहाँ की जलवायु व धरातल के उपयोग के सामंजस्य का अनूठा उदाहरण मिलता है। भूमध्य सागरीय प्रदेश सम्पूर्ण विश्व में रसदार फलों व सूखे मेवों की आपूर्ति के केन्द्र बन गये हैं।

4.7 शब्दावली (Glossary)

- **आदिम :** मानव विकास की प्रारम्भिक अविकसित अवस्था।
- **फसल प्रतिरूप :** किसी क्षेत्र विशेष में बोयी जाने वाली फसलों का दृश्य।
- **गहन कृषि :** कम से कम भूमि पर अधिकतम व एक से अधिक फसलों का उत्पादन करना
- **निर्वाहन कृषि :** स्थानिक जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए की जाने वाली कृषि।
- **विस्तृत कृषि :** यन्त्रों की सहायता से विस्तृत क्षेत्रों में व्यापार के लिए की जाने वाली कृषि।
- **शुष्क कृषि :** 5० सेमी से कम वर्षा वाले भागों में प्राकृतिक नमी का संरक्षण करके की जाने वाली कृषि।
- **झूमिंग :** असम में की जाने वाली स्थानान्तरणशील कृषि।
- **फसल विशिष्टीकरण :** विस्तृत क्षेत्र में एक ही फसल का उत्पादन करना।
- **प्रशोधन :** कृषि उत्पाद को साफ करने या नवीनीकरण करने की प्रक्रिया।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. कौशिक एस डी. : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व,** रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, 2003
2. मामोरिया एवं शर्मा : **आर्थिक भूगोल,** साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003
3. मोहम्मद हारून : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2003
4. तिवारी, रामचन्द्र : **कृषि भूगोल,** प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1998
5. गुर्जर एव जाट : **मानव व आर्थिक भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. ह्वीटलसी ने विश्व को 13 कृषि प्रदेशों में बांटा।
2. निर्वाहक कृषि से तात्पर्य स्थानिक जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए की जाने वाली कृषि से है।
3. एक स्थान के वनों को साफ करके 2–3 वर्ष कृषि उत्पादन लेने के बाद अन्यत्र वनों को साफ कर कृषि करने की प्रणाली स्थानान्तरी कृषि कहलाती है।
4. स्थानान्तरी कृषि को असम में 'झूमिंग', श्रीलंका में 'चेना', मलेशिया एवं इण्डोनेशिया में 'लदांग ', रोडेशिया में 'मिल्पा' तथा सूडान में 'नगासु' नामों से पुकारा जाता है।
5. गहन निर्वाहक कृषि मानसून एशिया में प्रचलित है।

बोध प्रश्न – 2

1. कुछ विशेष उपजों के बागान लगाकर व्यापारिक दृष्टि से उत्पन्न कल वाली पद्धति, बागाती कृषि कहलाती है।
2. बागाती कृषि लैटिन अमेरिकी देशों, उष्ण कटिबंधीय एशिया व अफ्रीकी देशों में प्रचलित हैं।
3. फसलों का विशिष्टीकरण से तात्पर्य है – एक क्षेत्र में एक या दो फसलों का प्रमुखता से उत्पादन करना।

4. विशाल बागानों के आन्तरिक भागों में उत्पाद को संग्रहित करने एवं तैयार फसलों को निर्यात करने में सस्ते व उत्तम यातायात के साधनों की महत्ती भूमिका है।
5. ब्राजील में कहवा के विस्तृत बागानों को 'फजेण्डा' कहा जाता है।

बोध प्रश्न – 3

1. भूमध्य सागरीय कृषि में निर्वाहन एवं व्यापारिक दोनों कृषि प्रतिरूप पाये जाते हैं।
2. भूमध्य सागरीय कृषि भूमध्यसागर के समीपवर्ती भागों, यू.एस.ए. की केलिफोर्निया घाटी, मध्य चिली, द. अफ्रीका के केप प्रान्त, द प. आस्ट्रेलिया एवं उत्तरी न्यूजीलैण्ड में होती है।
3. भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश को विश्व की फलोद्यान भूमि कहा जाता है।
4. भूमध्यसागरीय प्रदेश में अंजीर, जैतून, मह, खूबानी, सेब, नाशपाती, सन्तरा, नारंगी, खजूर आदि फल पैदा होते हैं।
5. भूमध्य सागरीय कृषि में चारे की फसलों पर डेयरी पशुपालन एवं प्राकृतिक वनस्पति पर भेड़–बकरी पालन किया जाता है।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व में निर्वाहन कृषि के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिये।
2. स्थानान्तरित कृषि एवं गहन कृषि में अन्तर बताइये।
3. विश्व में बागाती कृषि क्षेत्रों, विशेषताओं एवं प्रमुख फसलों का वर्णन कीजिये।
4. भूमध्यसागरीय कृषि की विशेषतायें बताइये तथा इस कृषि पद्धति में फसल साहचर्य का विवेचन कीजिये।
5. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये –
   (i) झूमिंग कृषि
   (ii) स्थायी कृषि
   (iii) बागाती कृषि क्षेत्रों की भौगोलिक दशाऐं
   (iv) विश्व में भूमध्यसागरीय कृषि क्षेत्र

इकाई 5 : मिश्रित कृषि,व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि(Mixed Farming, Commercial Grain Farming)

इकाई संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मिश्रित कृषि

5.2.1 मिश्रित कृषि के क्षेत्र

5.2.2 भौगोलिक परिस्थितियां

5.2.3 मिश्रित कृषि की विशेषताएँ

5.2.4 प्रमुख फसलें

5.2.5 पशुपालन

5.3 व्यापारिक खाद्यान्न कृषि

5.3.1 व्यापारिक खाद्यान्न कृषि के क्षेत्र

5.3.2 भौगोलिक परिस्थितियाँ

5.3.3 सामाजिक–आर्थिक दशाऐं

5.3.4 व्यापारिक खाद्यान्न कृषि की विशेषताऐ

5.3.5 प्रमुख फसलें

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- संसार के मिश्रित व व्यापारिक खाद्यान्न कृषि क्षेत्रों के बारे में,
- उक्त कृषि प्रदेशों की भौगोलिक दशाओं की जानकारी,
- मिश्रित व व्यापारिक खाद्यान्न कृषि की विशेषताऐं,
- इनमें उत्पन्न की जाने वाली फसलों एवं पाले जाने वाले पशुओं के बारे में ।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

कृषि मानव का प्राथमिक व्यवसाय है जो जलवायु वनस्पति तथा मिट्टी की दशाओं के अनुकूल होने पर की जाती है। कृषि का प्रसार व प्रचलन उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वाले वनों से लेकर

सहारा के मरूद्यानों तक तथा उत्तरी कनाडा के प्रेयरी से मध्य एशिया के स्टेपी घास के मैदानों तक मिलता है। प्राकृतिक दशाओं के अलावा अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कारक भी कृषि को विविधता प्रदान करते हैं। कृषि योग्य भूमि का विस्तार या उपलब्धता, वर्षा की मात्रा, फसल गहनता, उत्पादन, व्यापारीकरण का स्तर आदि के आधार पर कृषि का स्वरूप निर्धारित होता हैं।

यांत्रिक क्रान्ति के पश्चात कृषि का स्वरूप ही बदल गया है जिससे उद्योग व व्यापार भी प्रभावित हुए है। कृषि क्षेत्र में यांत्रिक क्रान्ति का प्रभाव यह हुआ कि एकाकीपन, स्वावलम्बन और अस्थिरता के स्थान पर कृषि में पारस्परिक निर्भरता, विशिष्टीकरण, व्यावसायिक आदान–प्रदान तथा गतिशीलता का विकास हुआ है। कृषि में विशिष्टीकरण होने लगा है। विश्व के विभिन्न भागों में कृषि के भिन्न–भिन्न स्वरूप, प्रणाली, उत्पादन आदि का अध्ययन वहाँ की भौगोलिक दशाओं के साहचर्य के आधार पर किया जाता है।

5.2 मिश्रित कृषि (Mixed Farming)

शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में कृषि एवं पशुपालन दोनों साथ–साथ व्यापारिक एवं स्थानीय उपयोग की दृष्टि से किये जाते हैं अर्थात् इन प्रदेशों में कृषि एव पशुपालन दोनों का साहचर्य मिलता है। एक ही समय में फसल एवं पशुओं का साहचर्य कई भौगोलिक कारकों का परिणाम है, जिनमें कार्य की अवस्थिति, मिट्टी की उर्वरता, भूमि की पशु वहन क्षमता, बाजारीय मांग, कृषि पद्धतियाँ, सरकारी नीतियाँ आदि मुख्य है। मिश्रित कृषि में तीन प्रकार का उत्पादन किया जाता है –

(i) स्थानीय बाजार के लिए खाद्य फसलों का उत्पादन,

(ii) पशुओं को खिलाने के लिए चारे की फसलों का उत्पादन,

(iii) बिक्री द्वारा मुद्रा प्राप्त करने के लिए नकदी फसलों का उत्पादन।

5.2.1 मिश्रित कृषि के क्षेत्र (Areas of Mixed Farming)

इस प्रकार की कृषि मुख्यत : दो प्रदेशों में अधिक प्रचलित है – (अ) यूरेशिया में फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, फिनलैण्ड, जर्मनी, पौलेण्ड, रूमानिया, हंगरी, रूस एवं चेकेस्लोवाकिया राज्यों में। (ब) संयुक्त राज्य अमेरिका के इण्डियाना, ओहियो, आयोवा, नेब्रास्का, इलिनोइस, वर्जीनिया, टेनेसी, जार्जिया एवं ओक्लाहामो राज्यों में। इसके अलावा मध्य मेक्सिको, ब्राजील एवं दक्षिणी अफ्रीका में भी मिश्रित कृषि प्रचलित है।

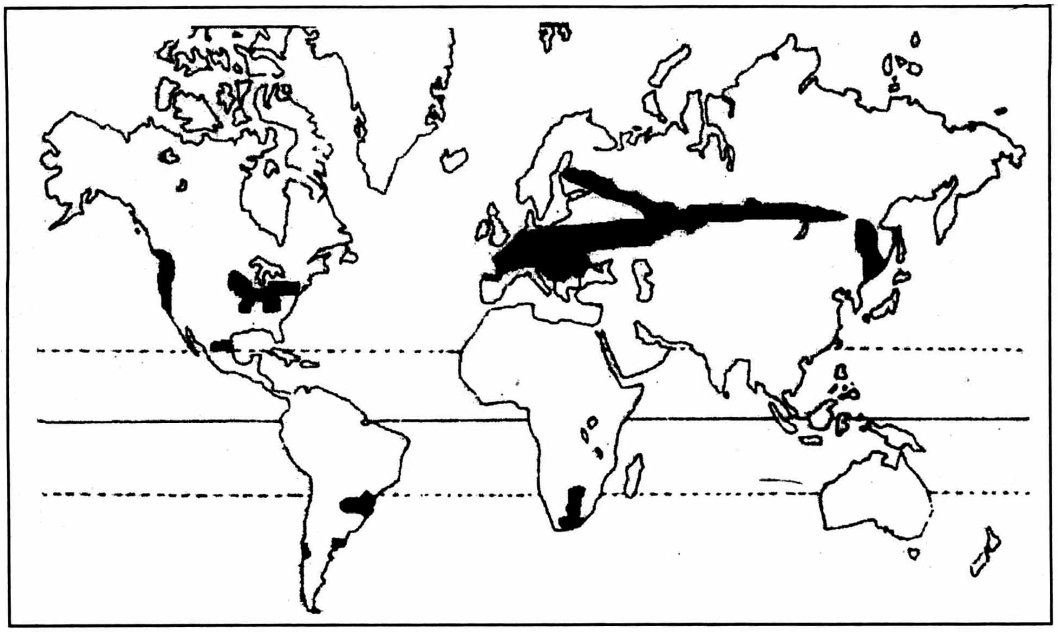

मानचित्र – 5.1 : विश्व में मिश्रित कृषि क्षेत्र

5.2.2 भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geography Conditions)

(i) जलवायु : मिश्रित कृषि क्षेत्रों में शीत शीतोष्ण जलवायु मिलती है। जहाँ औसत वार्षिक तापमान 0^0C से 22^0C तक रहते हैं। अत: घाटियों एवं पर्वतीय ढालों पर अच्छी घास व चारे की फसलें आसानी से पैदा की जाती है।

(ii) वर्षा : ये प्रदेश पछुआ हवाओं की पेटी में आने के कारण इनमें वर्षभर चक्रवातों से 50 से 150 सेमी. वर्षा होती है जिसने कृषि व पशुपालन साहचर्य को प्रोत्साहित किया है।

(iii) मृदा : भिन्न–भिन्न प्रदेशों में मिट्टियों में भिन्नताऐं पायी जाती है, फलस्वरूप चारे की फसलों में भी भिन्नता मिलती है।

(iv) यूरोपीय देशों में भूमि की कमी से छोटे–छोटे कृषि फार्म तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में विस्तृत भूमि से बड़े –बड़े कृषि फार्मों पर कृषि व पशुपालन का स्वरूप मिलता है।

5.2.3 मिश्रित कृषि की विशेषताऐं (Characteristics of Mixed Farming)

(i) फसल उत्पादन एवं पशुपालन का साहचर्य : मिश्रित कृषि पद्धति में फसल उत्पादन व पशुपालन साथ–साथ किया जाता है। पशुओं को खिलाने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का व गेहूँ का उत्पादन तथा यूरोपीय देशों में चारे व कन्द की फसलें पैदा की जाती हैं।

(ii) फार्मों का आकार :मिश्रित कृषि प्रदेशों में फार्मों का औसत आकार 60 हेक्टेयर से छोटे हैं, परन्तु यूरोपीय देशों में 30 हेक्टेयर से भी छोटे तथा यू.एस.ए. में 400 से 800 हेक्टेयर तक होते हैं

(iii) आधुनिक फार्म : फार्मों पर ही आवास, पशुओं के बाडे, फसल प्रशोधन व पशु उत्पाद के कारखाने मशीन घर आदि सभी व्यवस्था मिलती है। जहाँ फसल के सुखाने प्रशोधन करने, पैकिंग करने, निर्यात करने आदि का कार्य सम्पन्न होता है।

(iv) विशेषीकरण : मिश्रित कृषि में फसलों का विशेषीकरण हुआ है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का व गेहूँ का तथा यूरोपीय देशों में जी रख कन्द फसलों का विशेषीकरण मिलता है।

(v) अधिक पूँजी विनियोग : मिश्रित कृषि में सघन खेती की जाती है जहाँ उर्वरक व खादों, उत्तम बीजों, कीटनाशकों, कृषि मशीनरी, प्रशोधन उपकरणों, श्रमिकों आदि में अत्यधिक पूँजी निवेश करना पड़ता है। अत: इस पद्धति में अधिक पूंजी की आवश्यकता रहती है।

(vi) वैज्ञानिक कृषि : इस कृषि में फसल एवं पशु उत्पाद की प्राप्ति विधियों में अत्यधिक वैज्ञानिकीकरण मिलता है, अर्थात् अधिकांश कार्य मशीनों एव वैज्ञानिक विधियों से किया जाता है।

(vii) फसल–चक्रण पद्धति : फसल–चक्रण पद्धति मिश्रित कृषि की प्रमुख विशेषता है जिससे मिट्टियों की उपजाऊ क्षमता बनी रहती है यहाँ 6 वर्षीय फसल परिवर्तन पद्धति में प्रथम वर्ष जई, दूसरे वर्ष आलू तीसरे वर्ष जई तथा अन्य तीन वर्षों में घास उत्पन्न की जाती है।

(viii) उत्पादन का स्वरूप : मिश्रित कृषि प्रदेशों में गेहूँ व पशु उत्पाद, व्यापारिक उद्देश्य से तथा चारे की फसलें, कन्द मूल आदि स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए पैदा की जाती हैं। इस प्रकार मिश्रित कृषि में उत्पादन का स्वरूप दो प्रकार का – व्यापारिक व स्थानीय उपभोग का मिलता है।

5.2.4 प्रमुख फसलें (Main Crops)

मिश्रित कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में गेहूँ जौ, राई, ओट्स, आलू चुकन्दर, मटर, तिलहन, मक्का, सब्जियाँ आदि पैदा होती है।

(i) गेहूँ : गेहूँ की फसल का केन्द्रीयकरण घास के मैदानों व नदी घाटियों में मिलता है। फ्रांस, जर्मनी, रूस, बेल्जियम, हंगरी, उ.इटली, पूर्वी ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र है। ब्रिटेन, डेनमार्क, पौलेण्ड, नीदरलैण्ड आदि शीत आर्द्र भागों में जी पैदा किया जाता है जो मॉल्ट तैयार करने के काम आता है। यह पशुओं का भोजन हैं।

(ii) मक्का: संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का की फसल पर पशुपालन किया जाता है। मक्का से सेलूलोज तैयार कर पशुओं को खिलाया जाता है। फ्रांस, इटली, हंगरी, रोमानिया आदि अन्य मक्का उत्पादक देश है। यूरोप के उत्तरी शीत–आर्द्र भागों में राई का उत्पादन किया जाता हैं।

(iii) ओट्स : ओट्स भी शीत आर्द्र जलवायु की उपज है। इसके लिए भी अधिक उर्वरा भूमि की आवश्यकता नहीं रहती। फिनलैण्ड, बेल्जियम, ग्रेटब्रिटेन, आयरलैण्ड आदि देशों में ओट्स का उत्पादन अधिक किया जाता हैं।

(iv) आलू: आलू शीत–शीतोष्ण प्रदेशों की महत्वपूर्ण उपज है जो यहाँ का मुख्य भोज्य पदार्थ हैं। बलुई मिट्टी व शीत–आर्द्र जलवायु में आलू की प्रति हेक्टेयर उपज गेहूँ की तुलना में चार गुना अधिक है। जर्मनी, फिनलैण्ड, ब्रिटेन, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, फ्रांस आदि देशों के सघन बसे क्षेत्रों के लिए यह महत्वपूर्ण उपज बन गयी है जिससे स्टार्च, शराब, आटा आदि बनाने के अलावा पशुओं को भी खिलाया जाता हैं।

(v) सब्जियाँ व फल: नगरीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मिश्रित कृषि प्रणाली में सब्जियों व फलों का भी विशाल स्तर पर उत्पादन किया जाता है। नकदी फसलों के रूप में सभी क्षेत्रों में सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। फ्रांस, जर्मनी, युक्रेन, पौलेण्ड, रूस, नीदरलैण्ड, रोमानिया आदि देशों में चुकन्दर की कृषि की जाती है जिससे चीनी बनायी जाती है तथा पशुओं को खिलाया जाता है। इसके अलावा डेयरी व मांस हेतु पशुओं के लिए चारे की फसलें भी प्राथमिकता से पैदा होती है। डेनमार्क, नीदरलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन आदि देशों में चारे का उत्पादन होता है।

5.2.5 पशुपालन (Livestock)

मिश्रित कृषि प्रदेशों में पशुपालन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि फसल उत्पादन का है। मांग व भौगोलिक दशाओं के अनुसार कृषि रण पशुपालन का अनुपात भिन्न–भिन्न हो सकता है। जैसे –संयुक्त राज्य अमेरिका में पशुपालन मक्का की खेती पर निर्भर है जबकि फ्रांस व रोमानिया में फसल

परिवर्तन में मक्का एक प्रमुख मौद्रिक फसल के रूप में बोई जाती है। इन प्रदेशों में पशुपालन के लिए निम्न अनुकूल दशाऐं पायी जाती हैं –

(i) आर्द्र जलवायु एवं हल्की शीत ऋतु के कारण प्राकृतिक घास अथवा चारे की कृषि सरलता से हो जाती है।

(ii) वर्ष भर वर्षा के कारण प्रत्येक समय हरी घास उपलब्ध रहती है और पशुओं के लिए चारे की समस्या नहीं होती।

(iii) कृषि परिवर्तन पद्धति में घास के लिए पर्याप्त भूमि छोड़ी जाती है। यूरोप के कई देशों में कृषि भूमि के 374 भाग में चरागाह हैं।

(iv) चुकन्दर व टरनिज जैसी कन्द वाली फसलों के पौधों को गर्मी में जाड़े में पशुओं को खिलाने से पौष्टिक चारे का काम करता हैं।

(v) नगरीय जनसंख्या में मांस व दुग्ध पदार्थों की मांग का बड़ा बाजार पशुपालन को प्रोत्साहित करता है।

(vi) तीव्रगामी यातायात तथा प्रशीतक सुविधाओं से पशुपालन का तीव्र गीत से विकास हुआ है। (पशु) पशुओं की उन्नत नस्लें, पशु उत्पाद को सुरक्षित रखने, पैकिंग करने और ताजा ही बाजार में पहुँचाने की वैज्ञानिक प्रक्रिया ने मिश्रित कृषि तंत्र में पशुपालन व्यवसाय को उन्नत बना दिया है।

(vii) स्थानीय उत्पादन से खाद्यान्नों की मांग पूरी नहीं होती और आयात द्वारा अर्पित की जाती है, अत: पशुपालन पर अधिक जोर दिया गया।

प्रमुख पशु : मिश्रित कृषि क्षेत्रों में मांस हेतु चौपाये, भेड़े तथा सुअर पाले जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में गायें दूध तथा माँस दोनों के लिए पाली जाती है, जबकि यूरोपीय देशों में गायें अधिकांशत: दुग्ध व्यवसाय के लिए पाली जाती हैं। मिश्रित प्रणाली वाले कृषि प्रदेशों में संयुक्त राज्य अमेरिका सुअर पालन में प्रमुख स्थान रखता है जहाँ मक्का पर सुअर पाले जाते है। इसके अलावा रूस, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी आदि देशों में भी सूअर पाले जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका व यूरोपीय देशों में भेड़ व मुर्गीपालन भी किया जाता है। मुर्गीपालन मिश्रित कृषि व्यवस्था में अतिरिक्त आमदनी का स्थायी स्त्रोत है जो यूरोपीय देशों में खूब पनपा है।

इस प्रकार मिश्रित कृषि प्रदेशों में स्व फसल के खराब होने पर अन्य फसलों का पर्याप्त उत्पादन हो जाता है और पशुओं को चारा भी प्राप्त होता रहता है जिससे कृषकों को किसी भी वर्ष घाटा नहीं होता। इसी कारण मिश्रित कृषि व्यवस्था में कृषि व पशुपालन का सर्वश्रेष्ठ साहचर्य पाया जाता है।

बोध प्रश्न – 1

1. मिश्रित कृषि की प्रमुख विशेषता है –

   (अ) वैज्ञानिक कृषि

   (ब) फसल व पशुओं का साहचर्य

   (स) खाद्यान्न फसलें

   (द) फार्मो का बड़ा आकार

2. फसल–चक्रण पद्धति का उद्देश्य क्या है?

   ....

   ....

3. मिश्रित कृषि व्यवस्था में कितने प्रकार का उत्पादन होता है?

   ....

   ....

4. मिश्रित कृषि में कौन–कौन सी फसलों का विशेषीकरण मिलता है?

   ....

   ....

5. मिश्रित कृषि प्रणाली किन क्षेत्रों में प्रचलित है?

   ....

   ....

6. मिश्रित कृषि में कौन–कौन से पशु पाले जाते हैं?

   ....

   ....

5.3 व्यापारिक खाद्यान्न कृषि (Commercial Grain Farming)

मध्य अंक्षाशीय कम वर्षा एवं अर्द्ध शुष्क वातावरण वाले शीतोष्ण घास के मैदानों में व्यापारिक उद्देश्य से खाद्यान्नों की कृषि प्रचलित है। इस प्रकार की कृषि का विकास वर्तमान सभ्य समाज की देन है। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ शीतोष्ण घास के मैदानों को साफ करके खाद्यान्न पूर्ति हेतु विस्तृत फार्मों पर अनाज की वैज्ञानिक कृषि की जाने लगी। इन मैदानों में जीवांश युक्त हिम युग की अत्यधिक उपजाऊ मिट्टी के कारण गेहूँ की व्यापारिक कृषि को प्रोत्साहित किया है। बड़े पैमाने पर खाद्यान्न उत्पादन भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है।

5.3.1 व्यापारिक खाद्यान्न कृषि के क्षेत्र (Areas of Commercial Grain Farming)

व्यापारिक खाद्यान्न कृषि विश्व के सभी महाद्वीपों में विस्तृत है। इसका विस्तार उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी, प्लेन व रूस के स्टेपी, अर्जेण्टाइना के पम्पास, द. अफ्रीका के वेल्ड तथा आस्ट्रेलिया के डाउन्स में मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मैनीटोबा, डकाटा, कन्सास, वाशिंगटन व ओरेगन राज्यों में, कनाडा के एलबर्टा व सस्केचवान राज्यों में प्रेयरी घास क्षेत्रों में इस कृषि का विस्तार पाया जाता है। यूरेशिया में युक्रेन से व रूस के साइबेरिया के मध्य फैला हुआ चरनोजम मिट्टी वाला स्टेप्स घास क्षेत्र, अर्जेण्टाइना में बाहियाब्लाँका से सान्ताफे तक हृदय स्थल, पम्पा घास क्षेत्र, दक्षिणी अफ्रीका में वेल्ड घास क्षेत्र एव आस्ट्रेलिया में मरे व डार्लिंग नदियों की घाटियों में डाउन्स घास क्षेत्रों में व्यापारिक खाद्यान्न कृषि की जाती है।

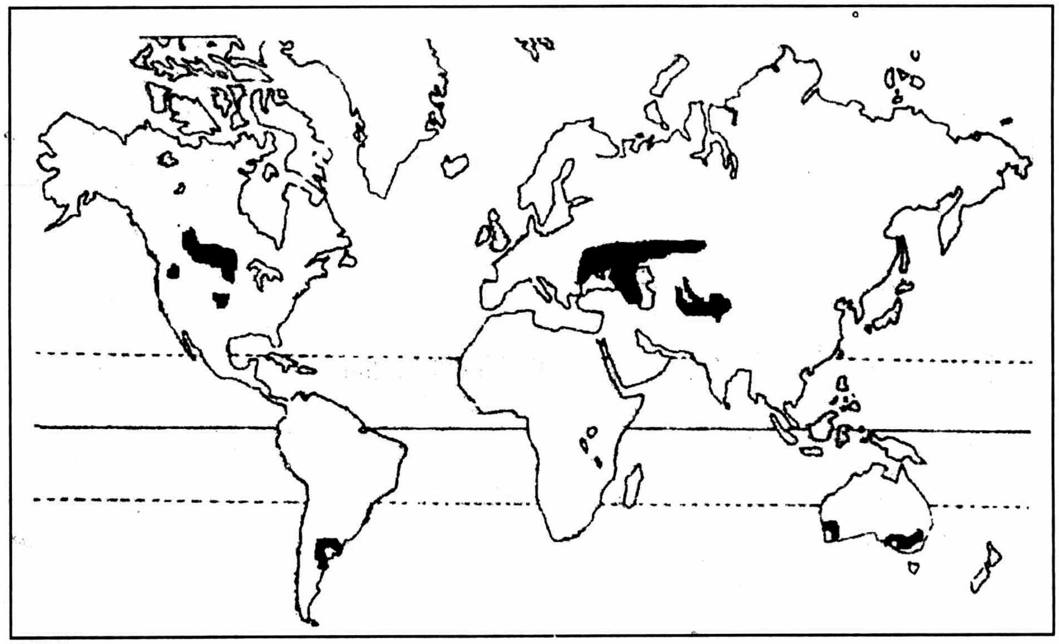

मानचित्र– 5.2 : विश्व में व्यापारिक अन्न कृषि क्षेत्र

5.3.2 भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions)

(i) जलवायु: व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि क्षेत्र मध्य अक्षांशों में विस्तृत हैं जहाँ उष्ण–शीतोष्ण जलवायु पायी जाती

(अ) तापमान: शीत ऋतु लम्बी होती है और तापमान हिमांक से नीचे चले जाते हैं । ग्रीष्मकाल में तापमान 15° से 21°C तक रहते हैं। कम तापमान के कारण कम वर्षा में भी कृषि उत्पादन संभव हो जाता है, क्योंकि वाष्पीकरण अपेक्षाकृत कम होता है। वार्षिक तापान्तर अधिक रहते हैं।

(ब) वर्षा: समुद्र से दूर होने के कारण यहाँ पहुँचते–पहुँचते हवाओं की आर्द्रता कम हो जाती है तथा कुछ भाग पर्वतीय वृष्टि छाया में पड़ते हैं। अत: वर्षा का औसत 25 से 50 सेमी रहता है। पछुआ हवाओं से इन प्रदेशों में वर्षा अधिक नहीं हो पाती। शीतकाल में तापमान हिमांक से नीचे होने के कारण हिमपात होता है।

(ii) मृदाऐं: प्रारम्भ में ये क्षेत्र पशुपालन के क्षेत्र रहे हैं जहाँ विस्तृत चरागाहों में प्रतिवर्ष घास सूखती थी और मिट्टी में मिलती रहती थी। इसलिए मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा अत्यधिक होती है। कम वर्षा के कारण घुलनशील रसायन भी मिट्टी में ही बने रहते हैं। अत: यहाँ संसार की उर्वर मिट्टियों का पाया जाना व्यापारिक कृषि के लिए वरदान साबित हुआ हैं।

5.3.3 सामाजिक तथा आर्थिक दशाऐं (Social and Economic Conditions)

व्यापारिक अन्न उत्पादक कृषि क्षेत्र नये बसे हुये क्षेत्र हैं, जहाँ पहले केवल पशुचारण करने वाले लोग निवास करते थे। व्यापारिक कृषि के विकास के बाद ही यहाँ अधिवासों का विकास हुआ। अत: इन प्रदेशों में निम्न दशाओं के कारण भी व्यापारिक कृषि का विकास हुआ –

(i) अल्प जनसंख्या : यहाँ जनसंख्या बहुत कम है। अधिकांश भागों में 25 से 50 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी हैं। कुछ भागों में विशिष्ट प्रदेशों में 100 से 150 व्यक्ति तक रहते हैं । अत: अल्प जनसंख्या के कारण जहाँ एक ओर कृषि में अधिकांश कार्य मशीनों से किया जाता है, वहीं दूसरी ओर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है। इसीलिए अत्यधिक मात्रा में खाद्यान्न व्यापार के लिए बच जाता है, जिससे व्यापारिक खेती को बल मिला है।

(ii) विकसित यातायात के साधन : इस कृषि में विशाल आकार के फार्मों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने–आने, मशीनों को लाने–ले जाने, अन्न को बन्दरगाह तक या निर्यात केन्द्रों तक पहुँचाने के लिए यातायात के साधनों का विकास तीव्र गति से हुआ है। फलस्वरूप उत्पादन क्षेत्रों से उत्पाद को सुगमता से पहुँचाया जाता हैं

(iii) विस्तृत बाजार : व्यापारिक अन्न उत्पादक क्षेत्रों के निकट ही औद्योगिक सघन बसे क्षेत्रों में खाद्यान्नों की मांग है। जैसे–स्टेपी प्रदेशों के समीप यूरोपीय देश तथा प्रेयरीज क्षेत्रों के निकट संयुक्त राज्य अमेरिका का झील क्षेत्र व अटलांटिक तटीय क्षेत्र में खाद्यान्नों की मांग रहती है। अत: इन प्रदेशों का खाद्यान्न सघन बसे क्षेत्रों के विस्तृत बाजार की मांग की पूर्ति करता है।

(iv) प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम : अर्द्ध शुष्क जलवायु के कारण इन प्रदेशों में प्रति एकड़ उत्पादन कम होता है। यदि मानवीय श्रम एवं पशु शक्ति से कृषि की जाये तो अधिक लाभ नहीं होगा। यही कारण है कि यहाँ अधिकांश कार्य मशीनों से ही किया जाता है। विशाल कृषि फार्मों पर मानव श्रम से कृषि संभव नहीं है।

इस प्रकार कई भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के परिणामस्वरूप विस्तृत व्यापारिक कृषि का स्वरूप देखने को मिलता है।

5.3.4 विशेषताएँ (Characteristics)

(i) एक फसल प्रधान कृषि : इस कृषि में एक ही फसल के उत्पादन पूरा बल दिया गया है। जिसमें गेहूँ प्रमुख फसल है जो व्यापार करने के उद्देश्य से उत्पन्न की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकांशत: गेहूँ की कृषि की जाती है, परन्तु एक पेटी में मक्का का उत्पादन होता है। अन्य क्षेत्रों में जौ, जई, राई आदि फसलें भी आवश्यकतानुसार उत्पन्न की जाती है।

(ii) पशुपालन का गौण स्वरूप : इस प्रदेश में पशुपालन नगण्य है। कुछ प्रदेशों में दुग्ध व मांस हेतु चौपाये, सुअर एवं मुर्गीपालन किया जाता है। अर्जेण्टाइना में पशुओं के लिए फसल उत्पादन भी किया जाता है। स्टेपी प्रदेशों में घोड़े भी पाले जाते हैं।

(iii) यंत्रीकृत कृषि : कृषि में सर्वाधिक यंत्रीकरण हुआ है। खेत जोतने के लिए ट्रेक्टर, डिस्क, भूमि तैयार करने के लिए हैरो–मशीन, निराई करने के बीडिंग मशीन, सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर, कीटनाशक छिड़कने के लिए छोटे वायुयान, फसल की

(iv) कटाई के लिए हारवेस्टर, तैयार करने के लिए कम्बाइन, थ्रेसर आदि तथा परिवहन के लिए ट्रक व मालगाडियों का प्रयोग किया जाता है। अत: अत्यधिक मशीनीकरण से मानव श्रम की आवश्यकता बहुत कम है।

(v) विस्तृत आकार के फार्म : इन प्रदेशों मे कृषि फार्मों का आकार बहुत बड़ा है जिससे भूमि का अपव्यय नहीं होता और मशीनों का प्रयोग सरल रहता है। उत्तरी अमेरिका में फार्म 500 से 1000 एकड़ तक तथा कहीं 2000 एकड़ तक भी मिलते हैं।

(vi) वर्षा आधारित कृषि प्रणाली : यहाँ फसल उत्पादन प्राकृतिक दशाओं पर अधिक निर्भर है। सिंचाई बहुत कम होती है। तथा कुछ क्षेत्रों में शुष्क कृषि की जाती है। भूमि की प्राकृतिक उर्वरता पर फसल उत्पादन किया जाता है। एक ही फसल पैदा करने के कारण फसलों का हेर–फेर भी नहीं होता है। अत: प्रति एकड़ उपज कम है।

(vii) व्यापारिक स्वरूप : इन प्रदेशों में कृषि का व्यापारिक स्वरूप मिलता है। धान्य उत्पादन वर्तमान औद्योगिक काल की देन है। औद्योगिक क्षेत्रों में भोजन की मांग बढ़ने से इन घास स्थलों मे खाद्यान्न कृषि का व्यापारिक स्वरूप विकसित हुआ है। घरेलू मांग पूर्ति के अलावा अधिकांश खाद्यान्नों का निर्यात किया जाता है। गेहूँ का व्यापार सम्पूर्ण विश्व में किया जाता है।

(viii)विशिष्ट कृषि भूदृश्य : विस्तृत फार्म के मध्य कृषक का आवास, मशीनों को रखने के गोदाम, फार्मों के मध्य रेलमार्ग व एलीवेटर, माल गोदाम आदि की व्यवस्था रहती है, जो एक विशिष्ट कृषि भूदृश्य का परिचायक हैं।

5.3.5 प्रमुख फसलें (Main Crops)

व्यापारिक अन्न उत्पादक कृषि व्यवस्था में गेहूँ का विशेषीकरण देखने को मिलता है। इसके अलावा मक्का, जौ, जई, राई एवं चुकन्दर भी पैदा किया जाता है।

1. **गेहूँ :**गेहूँ इस प्रदेश की प्रधान एवं महत्वपूर्ण व्यापारिक फसल है जो कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, अर्जेण्टाइना, आस्ट्रेलिया, यूरोपीय देशों में प्रमुखता से पैदा होता है। बड़े–बड़े फार्मों में गेहूँ की वैज्ञानिक यंत्रीकृत कृषि की जाती है। उत्तरी अमेरिका में रेड नदी की घाटी से लेकर उत्तर में कनाडा के अलबर्टा राज्य तक गेहूँ की पेटी विस्तृत है, जिसे विश्व की रोटी की टोकरी (Bread basket of the world) कहा जाता है। मिनियापोलिस, डूलुथ, विनिपेग व आर्थर प्रमुख गेहूँ की मण्डियाँ है। पूर्व सोवियत संघ के वोल्गा बेसिन, यूराल प्रदेश एवं कज्जाक प्रदेश का स्टेपी प्रदेश विश्व का दूसरा महत्वपूर्ण गेहूँ उत्पादक क्षेत्र है। देश के उत्पादन का 65% गेहूँ बसन्त कालीन गेहूँ पैदा होता है, जहाँ मास्को, गोर्की व ओरेनबर्ग प्रमुख मण्डियाँ हैं।

   अर्जेण्टाइना में पम्पाप्रदेश में बाहियाब्लांका नगर से सान्ताफे नगर तक गेहूँ की विस्तृत कृषि की जाती है। यहाँ से कुल गेहूँ उत्पादन का 60% निर्यात किया जाता है। आस्ट्रेलिया की मरे डार्लिंग नदियों की घाटियों में डाउन्स घास के मैदानों में बड़े–बड़े फार्मों पर गेहूँ पैदा किया जाता है। यहाँ न्यूसाउथवैल्स तथा प्रिटोरिया राज्य देश का 60% गेहूँ उत्पन्न करते हैं। आस्ट्रेलिया भी गेहूँ का प्रमुख निर्यातक देश हैं। इसके अलावा द. अफ्रीका के वेल्ड प्रदेश में भी कुछ मात्रा में गेहूँ पैदा किया जाता हैं।
2. **मक्का :** व्यापारिक खाद्यान्न कृषि प्रदेश की दूसरी खाद्यान्न फसल मक्का है जिसका मुख्य उत्पादक क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रेयरी प्रदेश का दक्षिणी भाग है। यहाँ डकोटा व कन्सास राज्यों में मक्का की गहन कृषि की जाती है। वनस्पति अंश युक्त मिट्टी रख फुहार के रूप में वर्षा ने मक्का की खेती को प्रोत्साहित किया है। अर्जेण्टाइना के पम्पा प्रदेश के उत्तरी–पूर्वी भाग में भी मक्का पैदा की जाती है। यहाँ से मक्का का निर्यात यूरोपीय देशों को किया जाता है। इसके अलावा रूस के यूराल प्रदेश, द. अफ्रीका में वेल्ड प्रदेश के ट्रांसवाल एवं औरेन्ज फ्री स्टेट में भी मक्का उत्पन्न की जाती है।
3. **जौ :** इस प्रदेश में जी एक सहायक फसल के रूप में पैदा की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा के प्रेयरी प्रदेश में कम नमी में भी जी का उत्पादन किया जाता है। इसके अलावा रूस, अर्जेण्टाइना एवं आस्ट्रेलिया में भी जो पैदा किया जता है। गत दशक से रूस एवं युक्रेन में जौ के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। रूस के मास्को के उत्तरी भाग में जी का सर्वाधिक उत्पादन होता है।

4. अन्य फसलें: उपरोक्त फसलों के अलावा व्यापारिक अन्न उत्पादक कृषि क्षेत्रों में जई, चुकन्दर, राई आलू एवं सब्जियों का उत्पादन भी किया जाता है।

बोध प्रश्न – 2

1. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि किन भागों में प्रचलित है।

....

....

2. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि में किस खाद्यान्न की कृषि की जाती है?

....

....

3. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि को यंत्रीकृत कृषि क्यों कहा जाता है?

....

....

4. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि में फार्मों का आकार कैसा होता है?

....

....

5. फसल विशेषीकरण से क्या अभिप्राय है?

....

....

6. संसार की 'रोटी की टोकरी' कौन सा प्रदेश कहलाता हैं?

....

....

7. पम्पा प्रदेश में गेहूँ उत्पादक क्षेत्र का विस्तार बताइये?

....

....

5.4 सारांश (Summary)

विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न भौगोलिक दशाओं एवं मानव बसाव के फलस्वरूप कृषि के भिन्न–भिन्न रूप विकसित हुये हैं। शीतोष्ण औद्योगिक प्रदेशों में नगरीय जनसंख्या की आवश्यकतानुसार कृषि रख पशु उत्पादों की पूर्ति की जाती है। शीतोष्ण जलवायु में पशुओं के लिए चारे की फसलें, खाद्यान्न, सब्जियाँ, फल आदि का फसल चक्रण के माध्यम से अधिकतम उत्पादन किया जात है। यह व्यवस्था बाजारीय मांग, भूमि की उपलब्धता एवं वैज्ञानिक विधियों का संयोजन है।

मध्य अंक्षाशीय शीतोष्ण घास के मैदानों में बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न पूर्ति हेतु विस्तृत खाद्यान्न उत्पादन की व्यापारिक कृषि व्यवस्था पाई जाती है। यह आधुनिक वैज्ञानिक कृषि का रूप है। जिसमें विशाल फार्मो पर कम आबादी वाले क्षेत्रों में कृषि का समस्त कार्य यंत्रों व मशीनों द्वारा ही किया जाता है। विश्व के सभी महाद्वीपों के शीतोष्ण घास के मैदानों में

प्राकृतिक घास को साफ करके गेहूँ की व्यापारिक कृषि का विकास देखने को मिलता हैं, जो उपजाऊ मिट्टी, निम्न तापमान, कम वर्षा, अल्प जलघनत्व, हजारों एकड के फार्म आदि तत्वों के संयोजन का परिणाम हैं।

5.5 शब्दावली (Glossary)

- **साहचर्य :** कृषि भूमि पर फसल उत्पादन एवं पशुओं को पालने में दोनों का बराबर सन्तुलन।
- **विशेषीकरण :** विस्तृत भूमि पर एक ही फसल उत्पादन की प्रधानता।
- **फसल–चक्रण :** भूमि पर बारी–बारी से प्रतिवर्ष बदलकर फसलें बोना।
- **नकदी फसलें :** जिन फसलों को बाजार में बेचने पर तुरन्त नकद धन प्राप्त होता है।
- **जीवांश युक्त :** वनस्पति आदि के अवशेषों के सड़ने से प्राप्त तत्व।
- **शुष्क कृषि :** वर्षा की नमी को बनाये रखकर बिना सिंचाई की कृषि।
- **हिमांक :** जल के जमने या हिम में बदलने का ताप बिन्दु।
- **कृषि भूदृश्य :** कृषि क्षेत्रों में कृषि कार्यों से सम्बन्धित कृषक का आवास, फसलें ट्रेक्टर, यंत्र स्थल, गोदाम, पशु रखने के स्थान आदि की सामूहिक दृश्यावली।

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Alexander, J.W.: Economic Geography, Prem. Hall, New Delhi
2. सिंह एवं सिंह : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
3. गुर्जर एवं जाट : मानव व आर्थिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
4. मामोरिया व शर्मा : आर्थिक भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
5. कौशिक, एस डी. : आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ।
6. हारून मो. : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
7. तिवारी : कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. ब
2. फसल चक्रण पद्धति का उद्देश्य मिट्टियों की उपजाऊ क्षमता बनाये रखना है।
3. मिश्रित कृषि व्यवस्था में तीन प्रकार – खाद्य फसलों, चारे की फसलों एवं व्यापारिक या नगदी फसलों का उत्पादन होता है।
4. मिश्रित कृषि में सभी महाद्वीपों में गेहूँ, जौ तथा मक्का का विशेषीकरण मिलता है।
5. मिश्रित कृषि प्रणाली राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन, स्वीट्जरलैण्ड, आस्ट्रिया, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, फिनलैण्ड, जर्मनी, रूस, मध्य मेक्सिकों, ब्राजील एवं द. अफ्रीका में प्रचलित है।

6. मिश्रित कृषि में चौपाये, भेड़े तथा सुअर पाले जाते हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि मध्य अंक्षाशीय कम वर्षा व अर्द्ध शुष्क वातावरण वाले शीतोष्ण घास के मैदानों में की जाती है।
2. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि में गेहूँ की कृषि प्रमुखता से की जाती है। तथा मक्का गौण रूप में उत्पन्न की जाती है।
3. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि में समस्त कार्य मशीनों एवं यंत्रों से किये जाते है।
4. इस प्रणाली में फार्मों का औसत आकार 500 से 1000 एकड़ होता है तथा कहीं–कहीं 2000 एकड़ तक भी होता है।
5. फसल विशेषीकरण से तात्पर्य विस्तृत भूमि में एक ही फसल के उत्पादन से है।
6. संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा में फैले हुआ प्रेयरी प्रदेश संसार की रोटी की टोकरी कहलाता है।
7. अर्जेण्टाइना में पम्पा प्रदेश बाहियाब्लांका नगर से सान्ताफे नगर तक (गेहूँ उत्पादक क्षेत्र) विस्तृत हैं।

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मिश्रित कृषि की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. मिश्रित कृषि की प्रमुख फसलों एवं पशुपालन का विवेचन कीजिये।
3. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि की भौगोलिक एवं सामाजिक–आर्थिक दशाओं का वर्णन कीजिये।
4. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि प्रणाली में उत्पन्न फसलों का विवरण दीजिये।
5. व्यापारिक खाद्यान्न कृषि की प्रमुख विशेषताऐं बताइये।

इकाई 6 : पशुपालन – दुग्ध व्यवसाय (Live Stock and Dairy Farming)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पशुपालन के लिए आवश्यक दशाऐं

6.3 पशुपालन के प्रमुख प्रदेश

6.3.1 शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों में पशुपालन

6.3.2 उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों में पशुपालन

6.4 पशुपालन का महत्व

6.5 दुग्ध व्यवसाय

6.6 दुग्ध उत्पादन के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाऐं

6.7 विश्व में दुग्ध उत्पादक क्षेत्र

6.8 दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों का विश्व व्यापार

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे : –

- पशुपालन एवं दुग्ध व्यवसाय के लिए आवश्यक दशाओं के बारे में,
- विश्व के प्रमुख पशुपालन व दुग्ध क्षेत्रों की जानकारी,
- पशुपालन की महता,
- दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों का व्यापार।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक क्रियाकलापों में भी परिवर्तन हुआ है। शिकार करने की अवस्था के पश्चात् मानव ने पशुओं को पालतू बनाना प्रारम्भ किया, तभी से पशुपालन व्यवसाय की शुरूआत मानी जाती है। मध्य पाषाण काल से नवपाषाण काल तक कुत्ते, भेड़, बकरी तथा सुअर का पालन प्रारम्भ हो चुका था। सर्वप्रथम दक्षिणी–पश्चिमी एशिया में पशुपालन किया जाने लगा।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कृषि कार्य, बोझा व सवारी ढोने, खाद्य पदार्थ, खालें, ऊन, चमड़ा आदि अनेक पदार्थों की प्राप्ति के लिए पशुओं का अमूल्य योगदान होता है। सम्पूर्ण विश्व की लगभग 1% जनसंख्या इस व्यवसाय में लगी है। विश्व में पशुपालन चलवासी एवं स्थायी दो रूपों में प्रचलित है।

6.2 पशुपालन के लिए आवश्यक दशाऐं (Condition of Livestock)

पशुपालन के लिए निम्नांकित भौगोलिक दशाऐं अनुकूल रहती हैं –

(i) **जलवायु** : सम जलवायु वाली दशाऐं जिसमें तापमान 16° से 35° C तक तथा वर्षा 50 से 75 सेमी तक हो, वहाँ पशुपालन व्यवसाय सुगमता से किया जाता है। इसी कारण स्टेपी व भूमध्य सागरीय क्षेत्र इस व्यवसाय के लिए आदर्श माने जाते है।

(ii) **विस्तृत चरागाह** : पशुचारण के लिए पौष्टिक सस्ता चारा आवश्यक है। इसके लिए विस्तृत चरागाह होने चाहिए। प्रेयरी, स्टेपी, पम्पास, वेल्ड, लानोज, डाउन्स आदि घास के मैदान पशुचारण के लिए विश्व विख्यात है।

(iii) **पर्याप्त स्वच्छ जल** : पशुओं को पिलाने, रखरखाव, उत्पाद व उप उत्पाद तैयार करने आदि में पर्याप्त स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है।

(iv) **यातायात के साधन** : पशु उत्पाद को बाजारों तक पहुँचाने में तीव्रगामी व सस्ते यातायात के साधन होने चाहिए।

(v) **स्वास्थ्य सुविधायें** :पशुओं के लिए उत्तम स्वास्थ्य सुविधाऐं होनी चाहिए ताकि रोग न फैले।

(vi) पूँजी : पशु पालन व्यवसाय में उत्पाद को सुरक्षित रखने, उप उत्पादन निर्माण करने, डिब्बा पैकिंग आदि कार्यो में पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है।

6.3 विश्व में पशुपालन के प्रमुख प्रदेश (Important Regions in the World)

संसार में पशुपालन शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में किया जाता है। पश्चिमी उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका के पेटागोनिया चाको एवं ब्राजील का पठार, दक्षिणी–पूर्वी अफ्रीका के पठारी भाग, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, रूस के पश्चिमी क्षेत्र, उत्तरी–पश्चिमी यूरोप, चीन, भारत आदि प्रमुख पशुपालन के क्षेत्र हैं।

6.3.1 शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों में पशुपालन (Livestock in Temperate Grass Land)

शीतोष्ण घास के मैदानों में मुख्यतया पाँच क्षेत्रों में पशुपालन होता है –

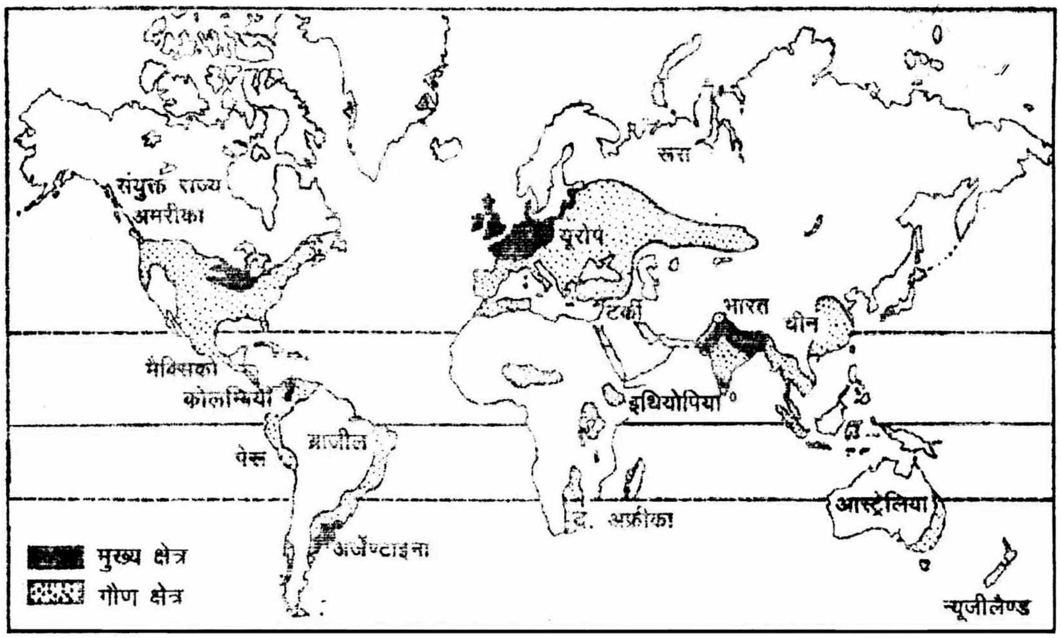

मानचित्र – 6. 1: विश्व के प्रमुख पशुपालन क्षेत्र

(i) उत्तरी अमेरिका : उत्तरी अमेरिका में कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेयरी मैदान तथा उत्तरी मेक्सिकों में वृहत स्तर पर पशु पालन होता है। ऊँचे पर्वतीय ढालों व पठारों में घास कम मिलती है, परन्तु निचले भागों में छोटी गुच्छे वाली घास पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उत्तरी कनाडा में 3 से 5 माह तथा शेष भागों में 7 से 12 माह चराई कार मौसम होता है। इस क्षेत्र में हियरफोर्ड व अंगुल नस्ल के गाय–बैल पाले जाते है।

(ii) दक्षिणी अमेरिका : इस महाद्वीप में अर्जेण्टाइना, ब्राजील तथा युरूग्वे में पशुपालन होता है। अर्जेण्टाइना में पम्पास मैदान व पराना घाटी, पश्चिमी शुष्क मैदान व पर्वतीय भाग एवं दक्षिणी पेटागोनिया; ब्राजील के पठारी भाग, दक्षिणी चिली, टेराडेलफ़्यूगो तथा फाकलैण्ड द्वीप प्रमुख पशुपालक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में अल्फाफा, राई, जई आदि घासों पर पशुपालन निर्भर है। यहाँ डरहम, हियरफोर्ड डाउन्स व लिंकोलन नस्ल की भेड़ें पाली जाती है।

(iii) आस्ट्रेलिया–न्यूजीलैण्ड : विश्व में पशुपालन का तीसरा मुख्य क्षेत्र आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है। यहाँ दुग्ध, मक्खन, ऊन, मांस आदि के लिए पशुपालन किया जाता है। आस्ट्रेलिया में दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश एवं दक्षिणी–पश्चिमी शुष्क तटीय प्रदेश में पशुपालन किया जाता है। न्यूजीलैण्ड के सम्पूर्ण भागों में उत्तम जलवायु व खुले चरागाह की अनुकूल दशाओं के कारण पशुचारण व्यवसाय अत्यधिक उन्नति कर गया है। यहाँ एक तिहाई भाग में पशुओं के लिए पौष्टिक घास पैदा की जाती है। आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में मांस के लिए पशुपालन अधिक होता है। यहाँ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मुख्यत: पशु उत्पादनों पर ही निर्भर है।

(iv) दक्षिणी अफ्रीका : दक्षिणी अफ्रीका में वेल्ड घास के मैदान पशुपालन के लिए आदर्श हैं। इसके अलावा 2500 मीटर ऊँचाई वाले भागों में भी पशुपालन किया जाता है। कास पठारी प्रदेश, कैप प्रान्त का उत्तरी शुष्क भाग, औरेन्ज फ्री स्टेट, पर्वतीय तलहटी में पशु पाले जाते हैं। यहाँ चौपाये, मेरिनो भेड़ें, अंगोरा नस्ल की बकरियाँ पाली जाती हैं। ऊन उत्पादन के लिए क्रॉसब्रीड भेडों की नस्ल विकसित की है।

(v) यूरोप : सघन जनसंख्या होने से यूरोपीय देशों में पशु उत्पाद की मांग अधिक होने से पशुपालन का विकास हुआ है। उत्तरी शीत प्रदेश में पशुपालन के लिए अनुकूल दशाऐं पायी जाती है। यहाँ ग्रेट ब्रिटेन के मूरलैण्ड, आल्पस के पर्वतीय ढालों, नीदरलैण्ड, डेनमार्क, स्कॉटलैण्ड एवं बेल्जियम प्रमुख पशुपालन क्षेत्र हैं। यूरोपीय देशों में दुग्ध पदार्थ, मांस तथा ऊन के लिए पशुपालन किया जाता है।

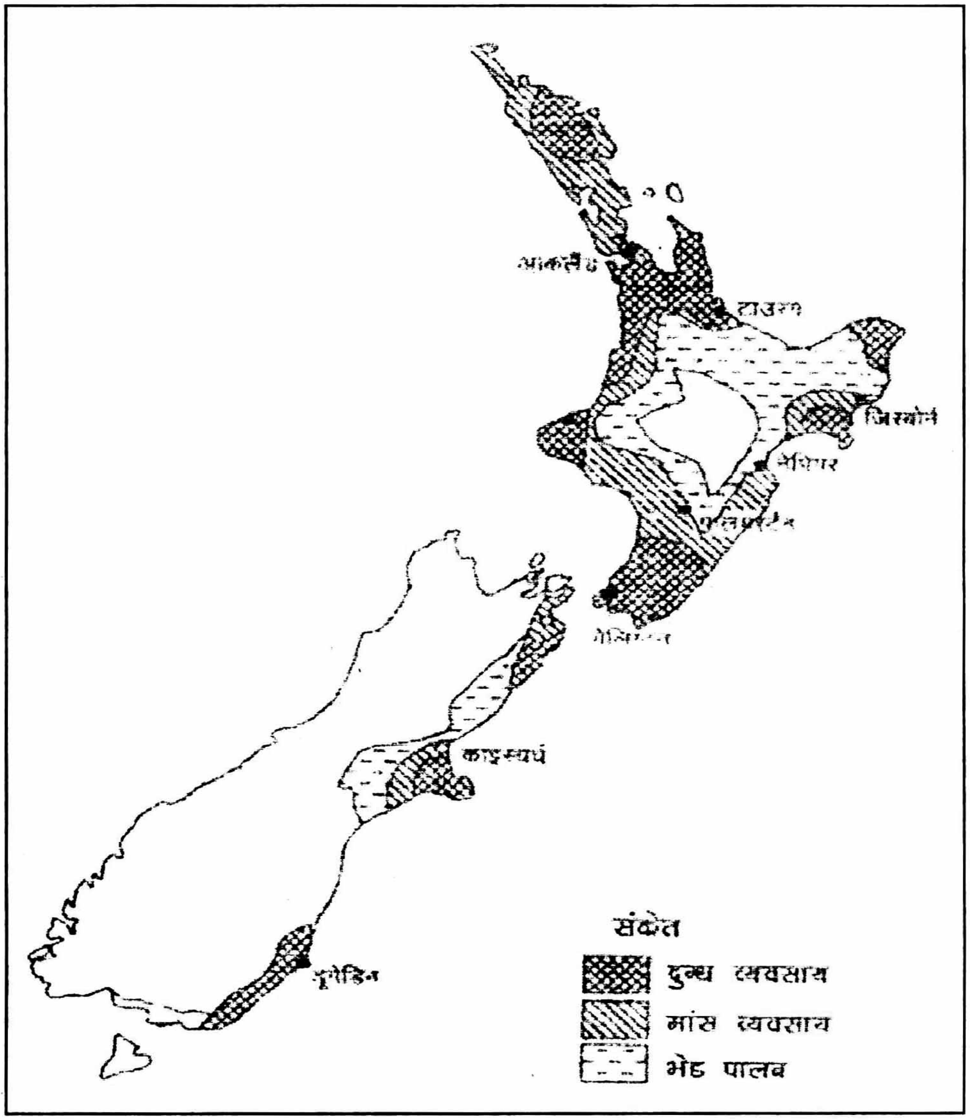

मानचित्र – 6. 2:न्यूजीलैण्ड में पशुपालन

(vi) एशिया : एशिया महाद्वीप में भारत, चीन एवं टर्की में शीतोष्ण भागों में पशुपालन होता है। भारत के जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, अरुणाचल प्रदेश आदि राज्यों के पर्वतीय ढालों, चीन के पश्चिमी भाग में पठारी व पहाड़ी प्रदेश में प्रमुखतया पशुपालन होता है।

तालिका – 6.1 : विश्व के प्रमुख देशों में पशुओं की संख्या

देश	**पशु संख्या (करोड़ में)**	**प्रति लाख जनसंख्या पर पशुसंख्या (हजार में)**
चीन	39.75	50
रूस	36.73	130
भारत	35.30	56
आस्ट्रेलिया	35.00	2100
सं.रा.अमेरिका	22.50	110
ब्राजील	17.27	200
अर्जेण्टाइना	10.11	450

6.3.2 उष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों में पशुपालन (Livestock in Tropical Grass Land)

निम्न अंक्षाशीय प्रदेशों में जहाँ वर्षा की मात्रा 26 से 75 सेमी तक होती है, घास के मैदान पाये जाते हैं। इन घास के मैदानों में अफ्रीका में सवाना, दक्षिणी अमेरिका में कम्पाज व लानोज, आस्ट्रेलिया के क्वींसलैण्ड आदि प्रमुख है, जहाँ विषम परिस्थितियों में भी पशुपालन किया जाता है। यहाँ पशुओं की नस्ल शीतोष्ण प्रदेशों से भिन्न होती है। उष्ण प्रदेशों में पशुपालन में प्रमुख क्षेत्र निम्न है–

(i) अफ्रीका : अफ्रीका के सूडान प्रदेश में वृहत स्तर पर पशुपालन का कार्य होता है। यहाँ गायें,भेड़, बकरियाँ तथा ऊँट पाले जाते है। पश्चिमी अफ्रीका में मौरिटानिया से लेकर सहारा तक चलवासी पशुचारण का कार्य प्रचलित है। घटिया नस्लें, ग्रीष्म ऋतु में उच्च तापमान, यातायात के साधनों के अभाव, पालतू पशुओं की सुरक्षा का अभाव आदि कारणों से पशुपालन का बहुत ज्यादा विकास नहीं हुआ।

(ii) दक्षिणी अमेरिका :यहाँ ब्राजील के पठारी प्रदेश, उत्तरी अर्जेण्टाइना, पश्चिमी पराग्वे, दक्षिणी बोलिविया के ग्रान चाको क्षेत्र में वृहत स्तर पर पशुपालन किया जाता है। यहाँ कम्पाज,लानोज जैसे घास के मैदानों में सवाना, पारा व गिनी घासों पर चौपाये, भेड़, बकरियाँ, मुर्गियाँ आदि पाली जाती है। यहाँ वर्ण संकर नस्ल के पशु पाले जाते हैं। यूरोपीय बाजारों में यहाँ के मांस की मांग अधिक होने के कारण पशुपालन की अत्यधिक प्रगति हुई है।

(iii) एशिया :एशिया में भारत व चीन प्रमुख पशुपालक देश है जहाँ क्रमश: 40 करोड़ व 35 करोड़ पशुओं की संख्या है। भारत में दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों की अत्यधिक मांग के

कारण पशुपालन व्यवसाय उन्नति कर गया है। उत्तरी भारत में गायें, भैंसे, भेड़ – बकरियाँ, ऊँट आदि पाले जाते है, जबकि दक्षिणी भारत में चौपाये अधिक पाले जाते हैं।

(iv) आस्ट्रेलिया :यहाँ क्वीन्सलैण्ड प्रान्त में निचेल एवं कंगारू घासे पायी जाती है जहाँ चौपाये व भेड़ें पाली जाती है।

6.4 पशुपालन का महत्व (Important of Livestock)

पशु मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं जो कि मानव के लिए भोजन, वस्त्र एवं औद्योगिक कच्चा माल की आपूर्ति करते हैं। प्रदेश विशेष की प्राकृतिक अवस्था, जलवायु, वनस्पति आदि की भिन्नता के कारण पालतू पशुओं में भी भिन्नताऐं मिलती है। मानव जीवन के लिए पशुपालन का महत्व निम्न तथ्यों से प्रकट होता है –

(i) मानव के भोजन में एक तिहाई भोज्य पदार्थ पशुओं से प्राप्त होते हैं।

(ii) प्रतिवर्ष दो अरब डालर मूल्य का परिवहन पशुओं से प्राप्त किया जाता है।

(iii) पशुओं से प्राप्त पौष्टिक भोज्य पदार्थों में दूध, दही, मक्खन, पनीर, अण्डे, आदि प्रमुख हैं।

(iv) पशुओं से एक अरब डालर का ऊन व चमड़े का वार्षिक उत्पादन होता है।

(v) पशुओं से अनेक गौण वस्तुऐं यथा हड्डियाँ, सींग, चर्बी, खुर, समूर आदि प्राप्त होती है जो कई छोटे–छोटे उद्योगों में प्रयुक्त की जाती हैं।

(vi) मरूस्थलीय प्रदेशों में ऊँट, पहाड़ी प्रदेशों में घोड़ा व खच्चर, हिमाच्छादित प्रदेशों में कुत्ते व रेनडियर सवारी व बोझा ढोने के काम आते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पशुओं का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। इसी कारण संसार के प्रत्येक देश में किसी न किसी पशु का पालन अवश्य किया जाता है।

बोध प्रश्न – 1

1. अल्फाफा घास पायी जाती है –
   (अ) संयुक्त राज्य अमेरिका (ब) अर्जेन्टाइना
   (स) रूस (द) आस्ट्रेलिया ( )
2. पशुपालन के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र हैं –
   (अ) वन क्षेत्र (ब) पर्वतीय क्षेत्र
   (स) शीतोष्ण घास के मैदान (द) मरूस्थलीय क्षेत्र ( )
3. न्यूजीलैण्ड में पशुपालन क्यों उन्नति पर हैं?
   ....
   ....
4. अर्जेन्टाइना में कौनसी नस्ल की भेड़ें पाली जाती है?
   ....
   ....
5. उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों के नाम बताइये।

....

....

6. संयुक्त राज्य अमेरिका में कौनसी नस्ल की गायें पाली जाती है?

....

....

7. आधुनिक पशुपालन व्यवसाय में अधिक पूँजी की आवश्यकता क्यों होती है?

....

....

6.5 दुग्ध व्यवसाय (Dairy Farming)

पशुओं पर आधारित यह महत्वपूर्ण उद्योग है। प्राचीन काल से ही भारत, चीन, मध्य एशिया, अमेरिका, अफ्रीका के सवाना प्रदेश आदि में दुग्ध के लिए पशुपालन किया जाता रहा है। यद्यपि दुग्ध पशुओं में गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, याचक आदि की गणना की जाती है, परन्तु विश्व में 84% दुग्ध गाय से, 10% भैंस से तथा 1% अन्य पशुओं से प्राप्त होता है।

6.6 दुग्ध उत्पादन के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाऐं (Geographical Conditions for Dairy Farming)

दुग्ध उत्पादन के लिए निम्न भौगोलिक दशाऐं आवश्यक हैं –

(i) जलवायु :दुग्ध उद्योग समशीतोष्ण जलवायु के शीतल आर्द्र प्रदेशों में सबसे उपयुक्त है क्योंकि डेयरी पशु शीतल आर्द्र जलवायु में हृष्ट–पुष्ट होते हैं और दूध की मात्रा भी अधिक होती है। दुग्ध पशुओं के लिए औसत तापमान 10^0 से $17^\circ C$ होने चाहिए। शीतकाल में हिमांक से नीचे तथा ग्रीष्मकाल में $27^\circ C$ से ऊपर नही जाने चाहिए। सामुद्रिक जलवायु दुग्ध उद्योग के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसी कारण पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैण्ड आदि देशों में दुग्ध उद्योग उन्नति कर गया है।

(ii) विस्तृत चरागाह एवं पौष्टिक चारा :दुधारू पशुओं के लिए वर्ष भर पौष्टिक चारा खिलाना आवश्यक है। अत: सस्ते व पौष्टिक चारा (घास) के लिए विस्तृत चरागाह होना चाहिए। वर्तमान समय में जई, क्लोवर, बरसीम आदि घासें तथा गाजर, शलजम, ज्वार, मक्का आदि फसलें उत्पन्न कर दुधारू पशुओं को खिलाई जाती है।

(iii) स्वच्छ जल की उपलब्धता :दुधारू पशुओं को पीने रख नहलाने के लिए बड़ी मात्रा में स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। एक गाय को औसत रूप में प्रतिदिन 200 लीटर जल की आवश्यकता होती है। अत: स्वच्छ जल की पर्याप्तता होनी चाहिए। तीव्रगामी परिवहन के साधन :दुग्ध रण दुग्ध पदार्थों को ताजा दशा में उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए तीव्रगामी साधनों की सुलभता होनी चाहिए। प्रशीतक युक्त स्थानीय व प्रादेशिक परिवहन व्यवस्था से दुग्ध उद्योग का विकास निर्भर करता है।

(iv) पूँजी : दुग्ध उद्योग में दुग्ध संकलन, अवशीतलन यंत्रों, पशुओं, भूमि, प्रशीतक युक्त परिवहन व्यवस्था आदि में अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

(v) बाजार की समीपता :दुग्ध उद्योग मुख्यत : सघन जनसंख्या के क्षेत्रों एवं नगरों के समीप स्थापित होते हैं जहाँ रहन–सहन व आर्थिक स्तर ऊँचा होने से दुग्ध पदार्थों की खपत अधिक रहती है।

(vi) छाछ पर सुअर पालन :दूध से मक्खन व क्रीम निकालने के बाद बची हुई छाछ से सुअर पालन करने से अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होती है। यू.एस.ए, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, न्यूज़ीलैण्ड आदि देशों में दुग्ध व्यवसाय से सुअर पालन भी होता

(vii) शोध एवं आविष्कार :दुग्ध पशुओं की नस्लों, उनके स्वास्थ्य पौष्टिक चारे, जल, रहन–सहन, दुग्ध क्षमता में वृद्धि, मक्खन की मात्रा आदि के विषय में निरन्तर शोध एवं वैज्ञानिक आविष्कार होते रहना चाहिए।

(viii) कुशल श्रमिक :पशुओं की देखभाल, दुग्ध निकालने, पशुओं के रख–रखाव, दुग्ध पदार्थों को बाजारों तक पहुँचाने आदि में अत्यधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अत: घने बसे क्षेत्रों में गहन कृषि के साथ दुग्ध व्यवसाय विकसित हुआ है।

6.7 विश्व में दुग्ध उत्पादक क्षेत्र (Dairy Farming Areas in the World)

वर्तमान समय में पशु आधारित उद्योगों में दुग्ध व्यवसाय सबसे महत्वपूर्ण उद्योग है। शीत भण्डारों के विस्तार, प्रशीतक युक्त परिवहन साधनों का विकास, दुग्ध व दुग्ध उत्पादों की बढ़ती मांग ने इस उद्योग का तीव्र विस्तार किया है। एक मोटे अनुमान के अनुसार विश्व के कुल दूध के उत्पादन का 37.5% यूरोप में, 20.5% उत्तरी अमेरिका से, 7% रूस से, 7% भारत से एवं 5% ब्राजील से पैदा होता है। विश्व के प्रमुख दुग्ध उत्पादक प्रदेश इस प्रकार हैं : –

(i) रूस एवं अन्य गणराज्य :रूस एवं अन्य गणराज्य मिलकर विश्व का 20% दुग्ध का उत्पादन करके प्रथम स्थान पर हैं। युक्रेन, काकेशिया, लटविया, लिथुआनिया, अजरबेजान, कजाकिस्तान आदि गणराज्यों में दुग्ध उद्योग का विकास हुआ है। रूस में मास्को क्षेत्र तथा साइबेरिया क्षेत्र में दुग्ध व्यवसाय उन्नति पर हैं। यहाँ डेयरी फार्मों का वैज्ञानिक ढंग से विकास किया गया है जिसमें पौष्टिक चारे का उत्पादन, पशुओं की उन्नत नस्ल, पशु स्वास्थ्य व चिकित्सा सुविधाऐं,अवशीतलन मशीनें, प्रशीतक भण्डारण, उत्तम व तीव्रगामी परिवहन आदि सुविधाऐं मिलती हैं। इन गणराज्यों में 10 करोड़ मैट्रिक टन दूध का वार्षिक उत्पादन होता है । सम्पूर्ण उत्पादन देश की स्थानीय मांग को पूरा करता है।

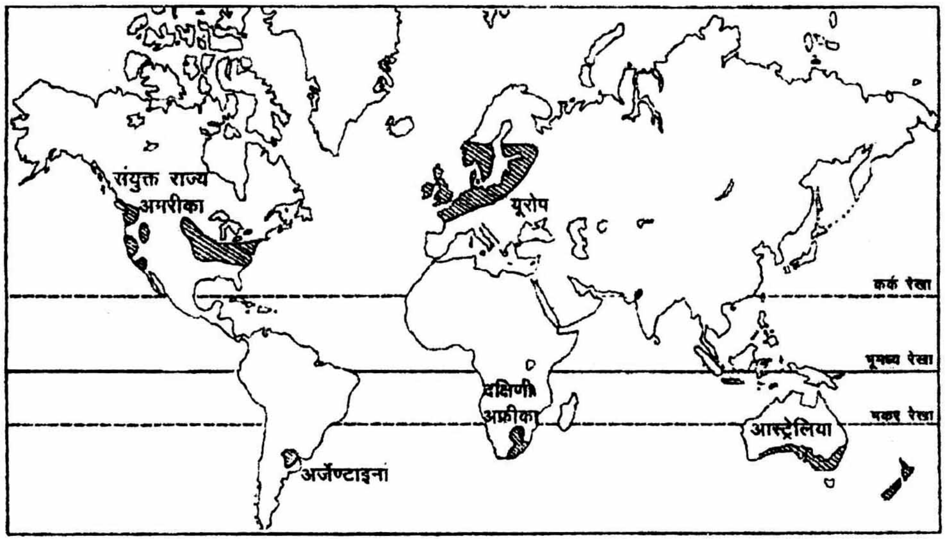

मानचित्र– 6.3 : विश्व के प्रमुख डेयरी क्षेत्र

(ii) संयुक्त राज्य अमेरिका : यह विश्व का दूसरा बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है, जहाँ विश्व का 12.5% दुग्ध का उत्पादन होता है। यहाँ दुग्ध व्यवसाय एक पेटी के रूप में विस्तृत है जो पूर्व में अटलांटिक तट से लेकर पश्चिम में मिसौरी नदी तट तथा उत्तर में कनाडा से दक्षिण में पोटोमैक व ओहियो नदियों तक फैली हुई हैं। विस्कोंसिन, मिशीगन, मिनेसोटा, इलिनोइस, इन्डियाना, ओहियो, आयोवा, पेसिंलवानिया, नेब्रास्का, न्यूयार्क, 'न्यूजर्सी, मैरीलैण्ड तथा डेलावेयर प्रमुख दुग्ध उत्पादक राज्य हैं। औद्योगिक व सघन जनसंख्या वाला क्षेत्र होने के कारण दुग्ध की मांग अधिक रहती है। इसीलिए इस क्षेत्र में डेयरी उद्योग का विकास हुआ है। यहाँ कुल दूध उत्पादन का 45% ताजा दूध के रूप में, 35% मक्खन के रूप में, 6% पनीर के रूप में, 6% आईसक्रीम के रूप में, 5%' दुग्ध चूर्ण एवं 3% अन्य उपयोग में लिया जाता है।

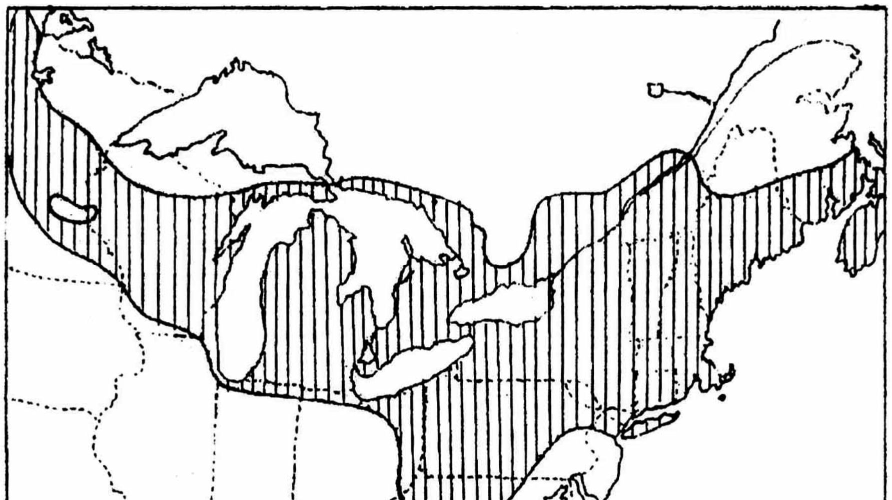

मानचित्र– 6.4 : उत्तरी अमरीका के दुग्ध उत्पादक क्षेत्र

(iii) भारत : विश्व का तीसरा बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है जो गत पांच वर्षों में दुग्ध उत्पादन में अग्रणी बन गया है। सर 2003–04 में यहाँ 10 करोड़ मीट्रिक टन दूध का उत्पादन हुआ। यहाँ संसार का सर्वाधिक पशुधन है। कुल उत्पादित दूध का 58% भैसों से, 41% गायों से तथा शेष अन्य पशुओं से प्राप्त होता है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि प्रमुख दुग्ध उत्पादक राज्य हैं। गत दशक में पशुनस्ल में सुधार, श्वेत क्रान्ति में डेयरी उद्योग के विकास पर ध्यान देने, पौष्टिक चारा उत्पादन, दुग्ध उत्पादक सहकारी संघों का विस्तार आदि कारणों से दुग्ध उत्पादन में तीव्र प्रगति हुई है। भारत में कुल उत्पादित दूध का 68% ताजा दूध के रूप में, 14% घी, 10% दही, 6% खोया तथा शेष 2% अन्य उपयोग में लिया जाता है। विश्व में मक्खन उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है।

(iv) फ्रांस : फ्रांस यूरोप का प्रथम तथा विश्व का चौथा बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है जो विश्व का 5% दूध का उत्पादन करता है। यहाँ नॉर्मण्डी, फ्लेण्डर्स, पेरिस बेसिन, ब्रिटानी, रोन डेल्टा आदि प्रमुख दुग्ध उत्पादक क्षेत्र है। अधिकांश दूध का पनीर व मक्खन बनाया जाता है जो निर्यात भी किया जाता है। फ्रांस में प्रतिव्यक्ति दुग्ध का उपभोग अधिक है जो 99% गायों से ही प्राप्त होता है।

(v) जर्मनी :यह विश्व का पाँचवा दुग्ध उत्पादक देश है जहाँ 283 लाख मीट्रिक टन दूध का वार्षिक उत्पादन होता है। जर्मनी में बवेरिया अग्रभूमि तथा मध्यवर्ती उच्च भूमि प्रमुख डेयरी उद्योग क्षेत्र हैं। यहाँ उत्पादित दूध व दुग्ध पदार्थों की स्थानीय मांग में खपत हो जाती हैं।

(vi) नीदरलैण्ड : यह प्राचीन समय से दुधारू पशुओं के पालन के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ आर्द्र मैदानी भाग में उत्तम चारा व घास उत्पन्न होती है जहाँ डच गायों को पाला जाता है। यहाँ का एडाम पनीर विश्व विख्यात है। दुग्ध का वार्षिक उत्पादन 110 लाख मीट्रिक टन है।

(vii) डेनमार्क : डेनमार्क का दुग्ध व्यवसाय विश्व विख्यात है। यहाँ भूमि अनुपजाऊ होने से अनाज व चारे का आयात करके दुग्ध हेतु पशुपालन किया जाता है। यहाँ उत्पादित दूध का 80% का मक्खन, 10% का पनीर और 10% दूध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियों द्वारा होता है।

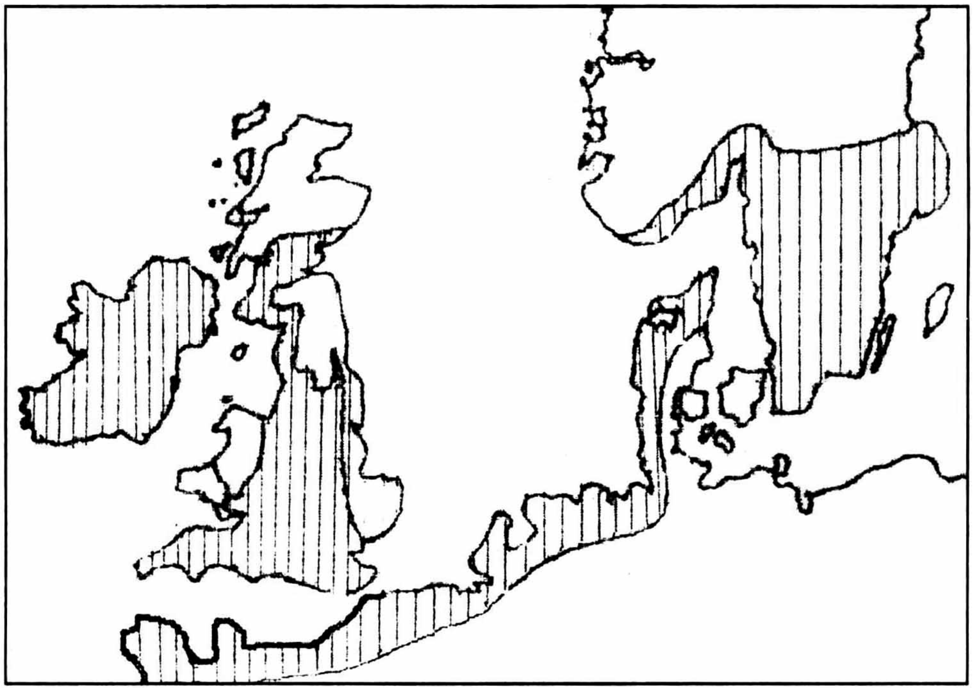

मानचित्र– 6.5 : यूरोप में दुग्ध व्यवसाय क्षेत्र

(viii) पौलेण्ड : पौलेण्ड विश्व का 3% दूध का उत्पादन कर विश्व में छठे स्थान पर है। शीतोष्ण जलवायु एवं विशाल स्टेपी घास क्षेत्र की सुविधा के कारण यहाँ डेयरी व्यवसाय उन्नति कर गया है। वार्षिक उत्पादन 160 मीट्रिक टन दूध का है।

(ix) ग्रेट ब्रिटेन : ब्रिटेन 160 लाख मीट्रिक टन दुग्ध का उत्पादन कर विश्व के कुल उत्पादन में 3% योगदान रखता है। यद्यपि यहाँ व्यापक क्षेत्र में पशुपालन किया जाता है, परन्तु यहाँ के दुग्ध उत्पादन से स्थानीय मांग पूरी नहीं होती, अत : ब्रिटेन दुग्ध व दुग्ध पदार्थों का आयात करता है।

(x) न्यूज़ीलैण्ड : न्यूज़ीलैण्ड की अर्थव्यवस्था पशुपालन पर निर्भर है। यहाँ तारानाकी निम्न भूमि, आकलैण्ड प्रायद्वीप एवं तटवर्ती भागों में डेयरी व्यवसाय हेतु पशुपालन होता हैं। वेलिंगटन, नेपियर, वेगानुई, न्यूप्लाईमाउथ, क्राइस्टचर्च आदि प्रमुख डेयरी केन्द्र है। दुग्ध का वार्षिक उत्पादन 130 लाख मीट्रिक टन है। दूध निर्यात में विश्व में प्रथम स्थान पर है। आर्द्र शीतोष्ण जलवायु, विस्तृत चरागाह, उन्नत नस्ल की गायें, मशीनीकृत स्वचालित डेयरी फार्म आदि सुविधाओं के कारण न्यूज़ीलैण्ड में दुग्ध व्यवसाय उन्नति कर गया है।

(xi) आस्ट्रेलिया : यहाँ आधुनिक ढंग का दुग्ध व्यवसाय प्रचलित है। उत्तरी ब्रिस्बेन से लेकर, साउथवेल्स, विक्टोरिया तक फैले हुये तटवर्ती प्रदेश में अंग्रेज पूँजीपतियों द्वारा बड़े–बड़े डेयरी फार्म बनाये गये हैं, जहाँ पातालतोड़ कुओं से जल प्राप्त कर पौष्टिक चारे का उत्पादन किया जाता है। यहाँ उन्नत नस्ल की गायें दुग्ध हेतु पाली जाती है। दुग्ध का वार्षिक उत्पादन 105 लाख टन है। मक्खन व पनीर बनाने के कारखाने सम्पूर्ण फार्मों पर

फैले हुये हैं। कुल दूध उत्पादन का 68% मक्खन में, 6% पनीर में, 5% पाउडर में और 21% दूध के रूप में काम आता है। यहाँ से मक्खन, पनीर दूध का निर्यात किया जाता हैं

(xii) अन्य देश : उपरोक्त देशों के अलावा ब्राजील, मेक्सिको, जापान, कनाडा, चीन, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, टर्की, अर्जेन्टाइना, यूगाण्डा, तंजानिया, कीनिया आदि देशों में दुग्ध व्यवसाय उन्नति पर है।

6.8 दुग्ध एव दुग्ध पदार्थो का विश्व व्यापार (World Trade of Milk and their Products)

विश्व में दुग्ध पदार्थों का व्यापार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संसार के कुछ देश तो ऐसे हैं जहाँ सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पशु उत्पादों का ही होता है जैसे न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, बेल्जियम आदि देश पशुपालन पर ही निर्भर हैं।

1. **प्रमुख निर्यातक देश** : विश्व में दुग्ध का निर्यात करने वाले देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, न्यूज़ीलैण्ड, डेनमार्क आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना व हालैण्ड प्रमुख है, जबकि मक्खन का निर्यात डेनमार्क, हालैण्ड, आस्ट्रेलिया, पौलेण्ड न्यूज़ीलैण्ड देशों द्वारा किया जाता है। नीदरलैण्ड, पौलेण्ड, न्यूज़ीलैण्ड, कनाडा, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों से पनीर का निर्यात भी किया जाता है।
2. **प्रमुख आयातक देश** : दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों का आयात मुख्यत : ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, यू.एस.ए., भारत, जापान एवं अन्य यूरोपीय देश हैं।

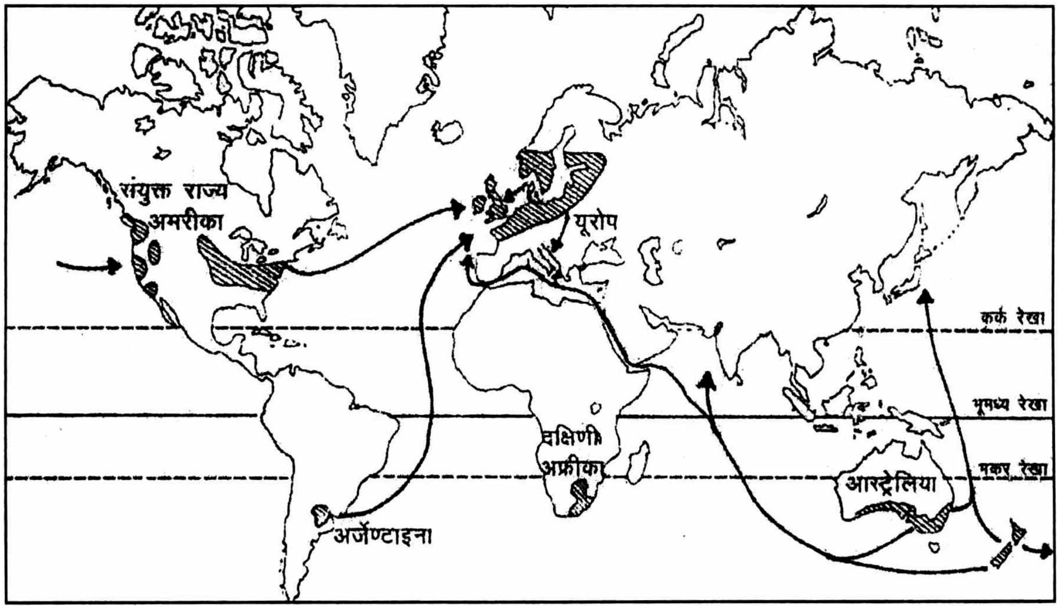

मानचित्र– 6.6 : विश्व में दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थो का व्यापार

बोध प्रश्न – 2

1. विश्व में सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन कौन से महाद्वीप में होता हैं –
   (अ) एशिया (ब) आस्ट्रेलिया

(स) यूरोप (द) उत्तरी अमेरिका ( )

2. विश्व में मक्खन उत्पादन में अग्रणी राष्ट्र है –

(अ) डेनमार्क (ब) स.रा.अमेरिका

(स) रूस (द) भारत ( )

3. न्यूजीलैण्ड में दुग्ध उद्योग की उन्नति के क्या कारण हैं?

………..

....

4. स.रा.अमेरिका की दुग्ध पेटी का विस्तार बताइये ।

………..

....

5. दुग्ध व्यवसाय हेतु कौनसी जलवायु उपयुक्त रहती है?

………..

....

6. विश्व में दुग्ध निर्यातक देश कौन –कौनसे है?

………..

....

6.9 सारांश (Summary)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पशुपालन एक आर्थिक क्रिया है जो संसार के विभिन्न प्रदेशों में स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति तथा व्यापारिक उद्देश्य से की जाती है। सघन जनसंख्या के समीपवर्ती प्रदेशों में दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थो की मांग पूर्ति हेतु पशुपालन का विकास देखने को मिलता है जबकि दूर–दराज के अल्प जनसंख्या वाले भागों में मांस, ऊन, चमड़ा आदि की पूर्ति हेतु पशुपालन प्रचलित है। भिन्न –भिन्न भौगोलिक दशाओं के कारण पशुपालन व्यवसाय में भी भिन्नता देखने को मिलती है। शीतोष्ण कटिबन्धीय घास प्रदेशों में शीतोष्ण जलवायु, उन्नत घास, विस्तृत बाजार, उपजाऊ मिट्टी में चारा उत्पादन, पर्याप्त जल, उत्तम व तीव्रगामी यातायात आदि सुविधाओं के कारण पशुपालन का अत्यधिक विकास हुआ है, जबकि उष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों व मरूस्थलीय क्षेत्रों में पशुपालन भेड़ पालन के रूप में अधिक प्रचलित है। प्रशीतक सुविधाओं के विकास एवं तीव्रगामी परिवहन की सुलभता ने डेयरी व मांस व्यवस्था को चरम स्तर तक पहुँचा दिया है, जो आज एक उद्योग का दर्जा प्राप्त कर चुका है। दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों की मांग प्राय: सभी देशों में होने से इनका अन्तराष्ट्रीय व्यापार महत्वपूर्ण हो गया है।

6.10 शब्दावली (Glossary)

- **चलवासी** : एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहकर अपने पशुओं को लेकर घूमते रहने वाले पशुपालक।

- **चरागाह** : ऐसे खुले घास के क्षेत्र जिनमें पशु चराये जाते हैं।
- **प्रशीतक** : वस्तुओं को कम तापमान पर लम्बे समय तक ताजा रखने की कृत्रिम विधि,
- **अल्फाफा** : अर्जेन्टाइना में पशुओं के लिए पैदा की जाने वाली एक प्रकार की घास ।

6.11 संदर्भ गन्ध (Reference Books)

1. Siddhartha, K.: **Economic Geography**, Kisalaya Pub. New Delhi
2. राव व श्रीवास्तव : **आर्थिक भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
3. **कौशिक**, एस डी. : आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त, रस्तोगी प्रकाशन
4. तिवारी : **कृषि भूगोल**, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. गौतम, अलका : **विश्व भूगोल**, शारदा पुस्तक सदन, नई दिल्ली

6.12 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न – 1

1. (ब) अर्जेन्टाइना में।
2. (स) शीतोष्ण घास के मैदान।
3. उत्तम जलवायु, खुले चरागाह, उन्नत नस्ल की गायें व भेड़ें आदि कारणों से पशुपालन व्यवसाय उन्नति कर गया है।
4. अर्जेन्टाइना में रोमनी मार्श, आक्सफार्ड डाउन्स व लिंकोलन नस्ल की भेड़ें पाली जाती है।
5. उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों को अफ्रीका में सवाना; द. अमेरिका में कम्पाज व लानोज के नामों से जाना जाता है।
6. संयुक्त राज्य अमेरिका में हियरफोर्ड व अंगुल नस्ल की गायें पाली जाती है।
7. पशुओं के रखरखाव, पशुउत्पाद दूध, मांस आदि को सुरक्षित व ताजा रखने के लिए रेफ्रीजरेशनयुक्त सुविधाऐं, परिवहन साधन, मशीनों आदि में अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न – 2

1. (स) यूरोप
2. (द) भारत
3. आर्द्र शीतोष्ण जलवायु, विस्तृत चरागाह, उन्नत नस्ल की गायें, मशीनीकृत स्वचालित डेयरी फार्म आदि सुविधाओं से न्यूजीलैण्ड में दुग्ध व्यवसाय उन्नत कर गया है।
4. उत्तर में कनाडा की सीमा से लेकर दक्षिण में पोटोमैक तथा ओहियो नदियों की घाटियों तक दुग्ध पेटी का विस्तार मिलता है।
5. दुग्ध व्यवसाय हेतु समशीतोष्ण आर्द्र जलवायु सबसे उपयुक्त रहती है।
6. संयुक्त राज्य अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना व हालैण्ड प्रमुख दुग्ध निर्यातक देश हैं।

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुपालन हेतु आवश्यक भौगोलिक दशाओं का वर्णन कीजिये।
2. संसार में पशुपालन क्षेत्रों का विवरण दीजिये तथा उनकी अर्थव्यवस्था में पशुपालन का महत्व बताइये।
3. दुग्ध व्यवसाय के लिए किन –किन भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता होती है ?
4. विश्व के प्रमुख दुग्ध उत्पादक क्षेत्रों एवं विश्व व्यापार का वर्णन कीजिये।

इकाई 7 : ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

इकाई की रूप रेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 ऊर्जा संसाधनों का वर्गीकरण

7.3 कोयला

7.3.1 कोयले के प्रकार

7.3.2 कोयले का संचित भण्डार

7.3.3 कोयले का विश्व वितरण

7.3.4 कोयले का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

7.4 पेट्रोलियम

7.4.1 पेट्रोलियम की उत्पत्ति

7.4.2 पेट्रोलियम के भण्डार

7.4.3 पेट्रोलियम का विश्व वितरण

7.4.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

7.5 जल विद्युत

7.5.1 जल विद्युत के उत्पादन के लिए आवश्यक

7.5.2 जल विद्युत शक्ति का महत्व

7.5.3 विश्व में जल शक्ति संभाव्य क्षमता

7.5.4 विश्व में जल विद्युत शक्ति का विकास

7.6 परमाणु ऊर्जा

7.6.1 परमाणु ऊर्जा की प्राप्ति

7.6.2 परमाणु ऊर्जा का उत्पादन एवं वितरण

7.7 सौर ऊर्जा

7.8 पवन ऊर्जा

7.9 भू–तापीय ऊर्जा

7.10 ज्वारीय ऊर्जा

7.11 सारांश

7.12 शब्दावली

7.13 संदर्भ ग्रन्थ

7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- विभिन्न प्रकार के ऊर्जा संसाधन
- ऊर्जा संसाधनों का महत्व
- ऊर्जा संसाधनों का उत्पादन
- ऊर्जा संसाधनों का प्रादेशिक वितरण,
- ऊर्जा संसाधनों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य अन्त: क्रिया को बनाये रखने का आधार तत्व है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा एक स्वाभाविक प्रकृति से विभिन्न पोषण स्तरों में मौजूद रहती है। प्राथमिक उत्पादक वनस्पति से लेकर विभिन्न जीव स्तरों में ऊर्जा का उपयोग होता है। अत: प्राचीन काल से ही पृथ्वी पर ऊर्जा विभिन्न रूपों में मिलती रही है, जिसका उपयोग मनुष्य ने अपने प्रौद्योगिकी ज्ञान से विकसित करके किया है। वर्तमान समय में ऊर्जा के इन्हीं रूपों का मानव द्वारा शक्ति संसाधनों के रूप में व्यापारिक उपयोग किया जाने लगा है।

आज मानव द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली कुल ऊर्जा के उपयोग का 1% मानव शक्ति, 6% लकड़ियों द्वारा (वनस्पति), 4% पशुओं से, 29% कोयला से, 39% खनिज तेल से, 19% प्राकृतिक गैस और 27% जल शक्ति से, अणु शक्ति आदि का योगदान रहता है।

7.2 ऊर्जा संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Energy Resources)

ऊर्जा प्राप्ति के स्रोतों के आधार पर दो वर्गों में रखा जा सकता है – (i) प्राणिज ऊर्जा – जो जीवों से प्राप्त होती है और (ii) अप्राणिज ऊर्जा – जो कि निर्जीवों से प्राप्त होती है। उपयोगिता की दृष्टि से अप्राणिज ऊर्जा संसाधनों को दो भागों में नव्यकरणीय एवं अनव्यकरणीय में बांटा जा सकता हैं। ऊर्जा संसाधनों को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है –

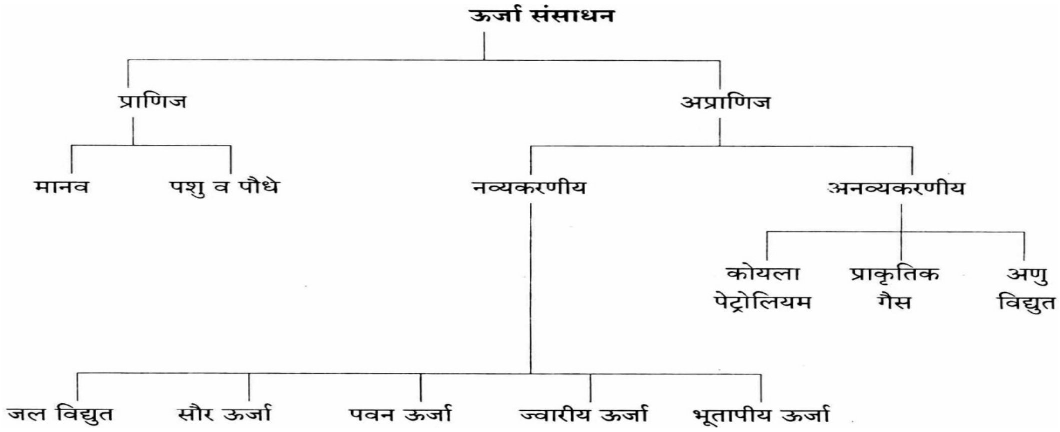

7.3 कोयला (Coal)

कोयला एक महत्वपूर्ण शक्ति संसाधन है जो 20 वीं सदी के मध्य तक विश्व की 90% औद्योगिक शक्ति का आधार था। कोयले के आधार पर ही 20 वीं सदी में ब्रिटेन ने अपनी औद्योगिक और महासागरीय प्रभुता–प्राप्त की थी। चीन और भारत की औद्योगिक उन्नति का आधार भी कोयला ही रहा है। वर्तमान समय में ताप विद्युत उत्पादन में कोयला एक प्रमुख स्त्रोत बन गया है। विश्व की 40% औद्योगिक शक्ति कोयले से ही प्रात होती है। कोयला किसी भी देश के आर्थिक एवं राजनीतिक स्वरूप को निर्धारित करता है।

7.3.1 कोयले के प्रकार (Types of Coal)

कोयला कार्बन युक्त जीवाश्म ईंधन है जो अवसादी चट्टानों में पाया जाता है। कोयले की उत्पत्ति वनस्पति के भूगर्भ में दब जाने से ताप व दाब के कारण अपघटन से हुई है। कार्बन की मात्रा के आधार पर कोयला चार प्रकार का होता है –

(क) **ऐन्थ्रेसाइट कोयला:** यह सबसे उतम किस्म का कठोर, चमकदार, भंगूर, रवेदार होता है। इसमें कार्बन की मात्रा 90 से 95% तक पायी जाती है। जलने में धुआं कम व ताप अधिक देता है। विश्व के कुल कोयले का 5% ऐन्थ्रेसाइट कोयला के भण्डार हैं।

(ख) **बिटुमिनस कोयला**: यह काले रंग का चमकदार कोयला है जिसमें कार्बन की मात्रा 70 से 90% तक पायी जाती है। जलने में धुआँ देता है और पीली लो के साथ जलता है। संसार के कुल उत्पादन का 80% उत्पादन इसी कोयले का होता है तथा इसका उपयोग औद्योगिक प्रक्रिया में सर्वाधिक होता है।

(ग) **लिग्नाइट कोयला या भूरा कोयला**: इसमें कार्बन की मात्रा 45 से 70% होती है तथा भूरे रंग का होता है। बहुत अधिक धुआं देता है तथा राख भी अधिक बचती है। इसका उपयोग भाप देने एवं ताप विद्युत उत्पादन में अधिक होता हैं।

(घ) **पीट कोयला**: यह कोयला बनने की प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें कार्बन की मात्रा 55% तक ही होती है। यह लकड़ी की भाँति जलता है और अत्यधिक धुआँ देता है। इसका उपयोग घरेलु ईंधन में होता है।

7.3.2 कोयले का संचित भण्डार

विश्व में कोयले के संचित भण्डार 819000 करोड़ टन है। सर्वाधिक कोयला भण्डार संयुक्त राज्य अमेरिका में 28%, रूस 20%, चीन 12% है। इसके अलावा जर्मनी, पौलेण्ड, ग्रेट ब्रिटेन, भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा आदि देशों में कोयला के प्रमुख संचित भण्डार हैं। विश्व का 97% कोयला यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिकी महाद्वीपों में संचित है।

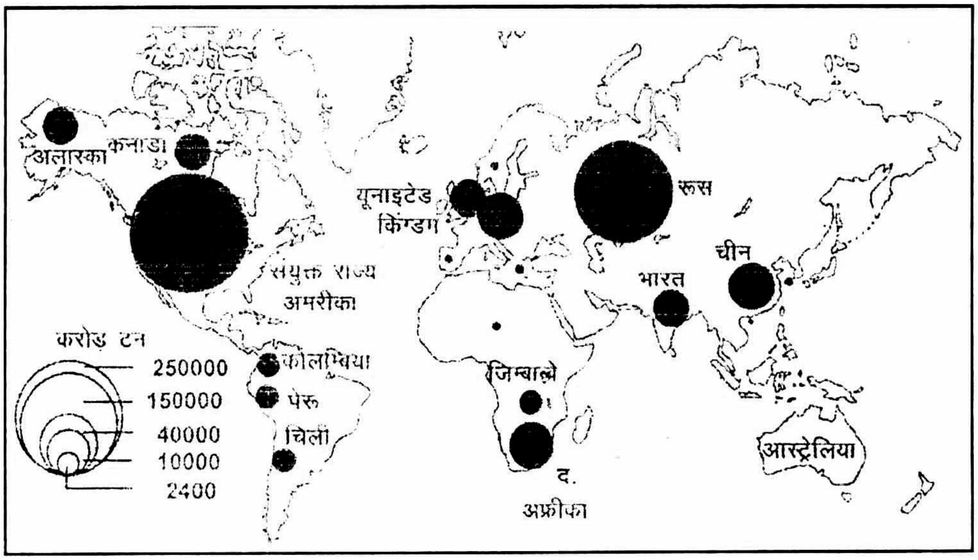

मानचित्र – 7.1 : विश्व में कोयला के संचित भण्डार

7.3.3 कोयले का विश्व वितरण (World Distribution of Coal)

विश्व में कोयले का उत्पादन सर्वप्रथम ब्रिटेन में हुआ। विश्व में 1860 में 20 करोड़ टन कोयले का उत्पादन होता था जो 1960 में 262 करोड़ टन और आज 470 करोड़ टन पहुँच गया है। प्रमुख कोयला उत्पादक देश इस प्रकार हैं –

(1) **चीन :** चीन विश्व का सबसे बड़ा कोयला उत्पादक देश बन गया है जो विश्व का 30% कोयला का उत्पादन करता है। यहाँ कोयले का वार्षिक उत्पादन 100 करोड़ मीट्रिक टन से अधिक है प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र ह्वाँगहो तथा यांगटिसी बेसिन में स्थित हैं। अधिकतर कोयला बिटुमिनस किस्म का है।

(i) हुपे बीजिंग क्षेत्र : यह चीन का प्रमुख कोयला क्षेत्र है जो चीन का 50% कोयले का उत्पादन करता है। यहाँ बीजिंग से होनान नगर तक कोयले का जमाव मिलता है। यहाँ उच्च कोटि का ऐन्थ्रेसाइट व बिटुमिनस कोयला के

(ii) शान्सी–शेन्सी क्षेत्र : बीजिंग से दक्षिण–पश्चिम में शान्सी व शेन्सी राज्यों में विस्तृत यह विश्व का दूसरा बड़ा बिटुमिनस कोयला भंडार है। यहाँ से चीन का 20% कोयला प्राप्त होता है।

(iii) मंचूरिया क्षेत्र : मंचूरिया में उच्च कोटि का बिटुमिनस कोयला मिलता है। यहाँ कोयले की 120 मीटर मोटी परतें हैं। यहाँ उत्पादन लागत कम आती है। यहाँ फुशुन व फुशिन दो मुख्य क्षेत्र है। यहाँ 120 मीटर मोटी कोयले की पर्ते है।

(iv) शान्टुग क्षेत्र : शान्टुग प्रायद्वीप पर विस्तृत चुंगसिंग व लूटा प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है।

(v) जेचवान बेसिन व कान्सू अन्य क्षेत्र है।

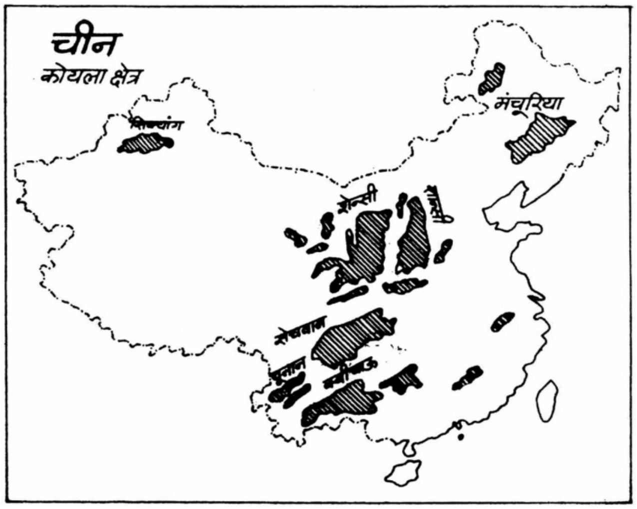

मानचित्र – 7.2 : चीन में कोयला क्षेत्र

(2) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** कोयला भण्डार की दृष्टि से प्रथम एवं उत्पादन की दृष्टि से दूसरा बड़ा देश है। यहाँ कोयला भण्डार अप्लेशियन के पश्चिम एवं महान झीलों के दक्षिण में स्थित हैं जो मांग क्षेत्रों के निकट हैं। संयुक्त राज्य के प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न है।

(i) अप्लेशियन क्षेत्र: यह देश का सबसे बड़ा कोयला क्षेत्र है जहाँ संयुक्त राज्य का 74% कोयला भण्डार हैं तथा आवश्यकता का 50% कोयला यहीं से प्राप्त होता है। इस क्षेत्र को तीन उपक्षेत्रों में बांटा गया है -

(क) उत्तरी अप्लेशियन या पिट्सबर्ग क्षेत्र: यह ओहियो तथा पेसिंलवानिया राज्यों में 15500 वर्ग किमी में फैला है। नदियों ने इस क्षेत्र को विच्छेदित कर दिया है जिससे कोयले की परतें ऊपर ही आ गई हैं। यहाँ विश्व प्रसिद्ध ड्रिफ्ट खानें हैं। इस क्षेत्र से ऐन्थ्रेसाइट व बिटुमिनस कोयला प्राप्त होता है।

(ख) मध्य अप्लेशियन क्षेत्र: यह पश्चिमी वर्जीनिया, केन्चुकी व टेनेसी राज्यों में विस्तृत है जहाँ उत्तम कोटि का बिटुमिनस कोयला प्राप्त होता हैं।

(ग) अलाबामा या दक्षिणी अप्लेशियन क्षेत्र: अप्लेशियन के दक्षिणी भाग में अलाबामा राज्य में विस्तृत इस क्षेत्र में उत्तम कोटि का कोयला प्राप्त होता हैं।

(ii) **आन्तरिक कोयला क्षेत्र :** मिसीसिपी एवं मिसौरी नदियों की घाटियों में स्थित आयोवा, कन्सास, इलीनोइस, इण्डियाना, मिसौरी, डकोटा व नेब्रास्का राज्यों में फैले हुये इस क्षेत्र में निम्न कोटि का बिटुमिनस कोयला मिलता है।

(iii) **खाड़ी तटीय क्षेत्र :** मेक्सिको की खाड़ी के सहारे अलाबामा से टेक्सास राज्यों तक लिग्नाइट कोयला के जमाव मिलते हैं।

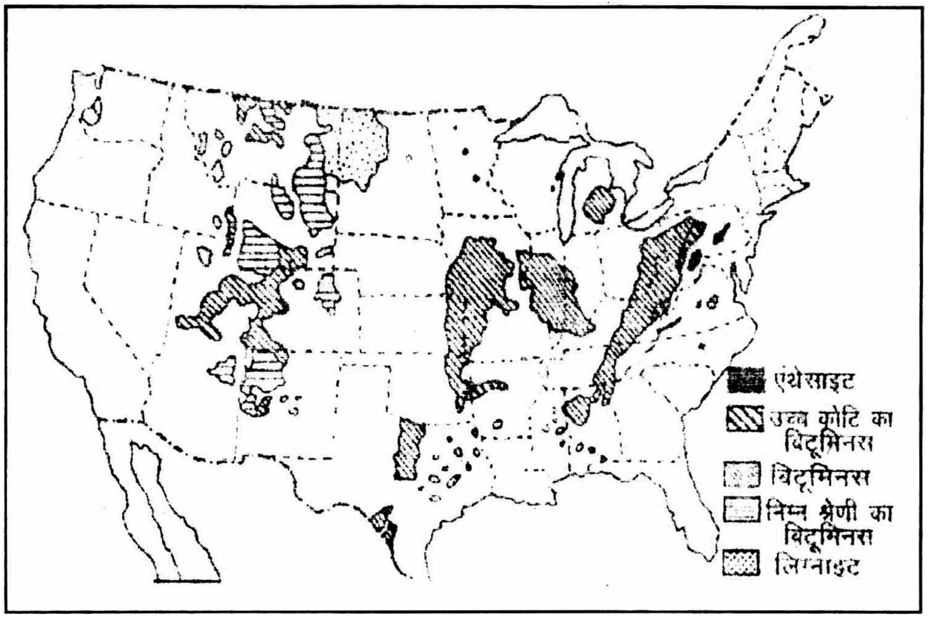

मानचित्र– 7.3 : संयुक्त राज्य अमेरिका के कोयला क्षेत्र

(iv) **प्रशान्त तटीय क्षेत्र:** यू.एस.ए. के उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र में वाशिंगटन, ओरेगन तथा केलिफोर्निया राज्यों में लिग्नाइट कोयला प्राप्त होता है।

(v) **उत्तरी मैदान क्षेत्र :** कनाडा की सीमा के सहारे उत्तरी डकोटा, मोन्टाना व्योमिंग, ऊटा, कोलोरेडो राज्यों में लिग्नाइट कोयला व निम्न कोटि का बिटुमिनस कोयला प्राप्त होता है।

(vi) **रॉकी पर्वतीय क्षेत्र :**इस क्षेत्र में रॉकी पर्वत के पूर्वी ढालों पर मोन्टाना से न्यूमेक्सिकों राज्य तक बिटुमिनस कोयला मिलता है। औद्योगिक विकास के कारण अब इस क्षेत्र का महत्व बढ़ गया है। इसका विस्तार व्योमिंग, कोलोरेडो, न्यूमेक्सिको राज्यों में फैला है।

(3) **रूस एवं अन्य गणराज्य :** रूस में विश्व का 20% कोयला भण्डार है। उत्पादन की दृष्टि से यह विश्व का चौथा देश है। यहाँ 90% कोयला भण्डार एशियाई भाग में है जबकि 75% जनसंख्या यूरोपीय रूस में रहती है। अत: प्रादेशिक असन्तुलन के कारण यातायात लागत अधिक आती है । प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न हैं –

(i) कुजबास क्षेत्र : यह रूस का सबसे वृहत्त कोयला क्षेत्र है जो टोम नदी बेसिन में 300 किमी लम्बे व 160 किमी चौड़े क्षेत्र में विस्तृत है। यहां खुली खानों में खुदाई होती है।

(ii) डोनबास क्षेत्र : कालासागर के उत्तरी –पूर्वी भाग में फैले इस क्षेत्र में यद्यपि रूस का 5% ही कोयला संचित है, परन्तु लोहे की खानों के समीप होने के कारण लोहा इस्पात उद्योग में उपयोग की दृष्टि से इसका महत्व अधिक है। यह क्षेत्र डोन नदी के बेसिन में स्थित है इसमें उत्तम किस्म का बिटुमिनस एवं ऐन्थ्रेसाइट कोयला मिलता है।

(iii) मास्को–टुला क्षेत्र : यद्यपि यहाँ लिग्नाइट कोयला प्राप्त होता है, परन्तु रूस के इस्पात केन्द्रों के समीप तथा मास्को औद्योगिक प्रदेश के मध्य में स्थित होने के कारण यहाँ के कोयले की मांग अधिक रहती है।

(iv) साइबेरिया क्षेत्र : रूस के सर्वाधिक कोयला भण्डार इसी क्षेत्र में होने से रूस के भविष्य के विकास का आधार है। इस प्रदेश में क्रास्नोयार्स्क–आचिंस्क व पूर्वी साइबेरिया में कोयला का उत्पादन होता है।

(v) कारागण्डा क्षेत्र : उत्तरी कजाकिस्तान में प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ से यूराल क्षेत्र को कोयला भेजा जाता है।

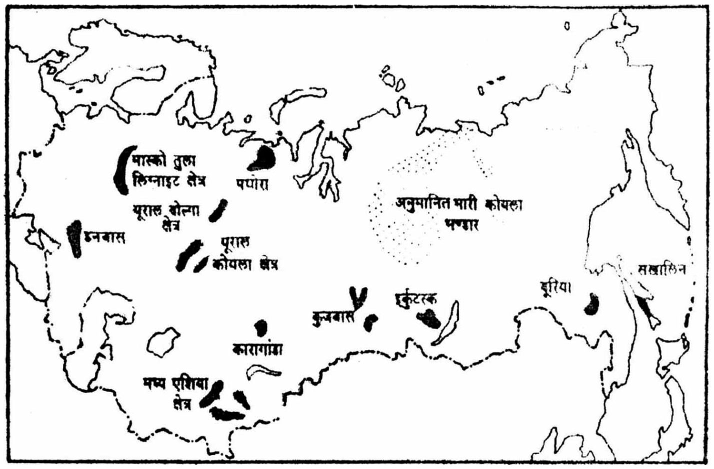

मानचित्र – 7.4 : रूस एवं अन्य स्वतंत्र गणराज्यों के कोयला क्षेत्र

(vi) यूराल क्षेत्र : यहाँ किजिल बेसिन व चेलियाविंस्क में कोयला का उत्पादन होता है।

(vii) अन्य क्षेत्र : उपरोक्त क्षेत्रों के अलावा काकेशस क्षेत्र, लीना बेसिन, आमूर घाटी, इर्कुटस्क बेसिन, पिचोरा बेसिन, सखालिन द्वीप एव कमचटका प्रायद्वीप में भी कोयला के जमाव मिलते हैं।

4. **भारत :** कोयला उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। जो विश्व का 85% कोयला का उत्पादन करता है। यहाँ गोण्डवाना एवं टरशियरी युग की चट्टानों में कोयला के जमाव मिलते हैं। 98% कोयला गोण्डवाना क्षेत्र से प्राप्त होता है। भारत के प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न नदी घाटियों में संचित हैं -

(i) **दामोदर घाटी कोयला क्षेत्र:** यह क्षेत्र बंगाल व झारखण्ड राज्यों में फैला हुआ है। भारत का 70% कोयला इसी प्रदेश से प्राप्त होता है। यहाँ उत्तम किस्म का कोयला प्राप्त होता है। रानीगंज, झरिया, रामगढ़, बोकारो, गिरडिह तथा कर्णपुरा यहाँ की प्रसिद्ध खाने हैं।

(ii) **सोन घाटी कोयला क्षेत्र:** इस क्षेत्र में झारखण्ड में डाल्टनगंज, मध्यप्रदेश में सोहागपुर, उमरिया, सिंगरौली, तातापानी, रामकोला तथा उड़ीसा में हुटार व औरंगा प्रमुख कोयला खाने हैं।

(iii) **महानदी घाटी कोयला क्षेत्र:** यह उड़ीसा व मध्य प्रदेश राज्यों में विस्तृत है। उड़ीसा में तलचर व संमलपुर, मध्य प्रदेश में कोरबा, सिनहट, झिलमिली–चिरमरी, रामगढ़, विश्रामपुर आदि प्रमुख कोयला खदानें हैं।

(iv) **गोदावरी घाटी कोयला क्षेत्र:** आन्ध्र प्रदेश में सिंगरैनी, सास्तो, तंदूर; महाराष्ट्र में बल्लारपुर व चाँदा की खानों से कोयला प्राप्त होता है।

(v) **वर्धा घाटी क्षेत्र :**नर्मदा नदी के दक्षिण में मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा एव नरसिंहपुर तथा महाराष्ट्र के यवतमाल न नागपुर क्षेत्र में कोयला मिलता है।

(vi) **अन्य क्षेत्र :**सतपुड़ा पर्वतीय क्षेत्र में मोहपानी, कान्हन घाटी व पेंच घाटी क्षेत्र में भी कोयला प्राप्त होता है। इसके अलावा टर्शियरी कोयला क्षेत्रों में असम में माकूम क्षेत्र, मिकिर क्षेत्र, मेघालय में गारो, खासी व जयन्तिया की खानें, राजस्थान में पलाना व कपूरड़ी, तमिलनाडु में नवेली अरगनूर, कन्नानोर की खानें; जम्मू कश्मीर में कालाकोट, महोगला लड्डा व उण्डवारा की खानें प्रमुख है।

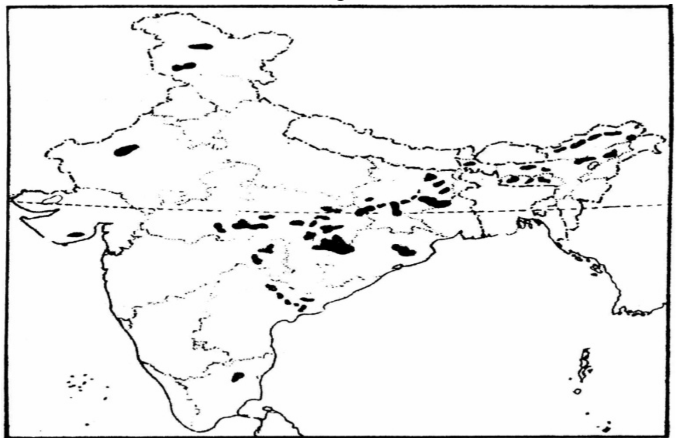

मानचित्र – 7.5 : भारत में कोयला क्षेत्र

5. **यूरोपीय देश :** सम्पूर्ण विश्व के कोयला भण्डारों का 9% तथा उत्पादन का 36% यूरोपीय देशों से प्राप्त होता है। प्रमुख कोयला उत्पादक देश निम्न हैं –

(i) जर्मनी : यह यूरोप का प्रमुख कोयला उत्पादक देश था, परन्तु अब उत्पादनकम होता जा रहा है। यहाँ रूर घाटी प्रसिद्ध कोयला क्षेत्र है, जिसे 'वेस्टफालिया क्षेत्र' भी कहा जाता है। यहाँ उच्च कोटि का बिटुमिनस कोयला मिलता है। इसके अलावा सार बेसिन, सैक्सोनी क्षेत्र में भी कोयले का उत्पादन होता है।

(ii) पोलैण्ड: यह यूरोप का प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र बन गया हैं यहाँ संसार का 2.3%, कोयला का उत्पादन होता है। यहाँ ऊपरी साइलेशिया क्षेत्र प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त जेफजर व कोनिन अन्य कोयला खनन हैं।

(iii) ब्रिटेन: कोयला उत्पादन में ब्रिटेन पहले अग्रणी देश था। ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति का आधार कोयला ही था, परन्तु अब गहरी खदानें, कोयले की पतली परतें, अधिक उत्पादन लागत, जल विद्युत से प्रतिस्पर्धा, पूंजी की कमी आदि कारणों से उत्पादन बहुत कम हो गया है। यहाँ यार्कशायर–डर्बीशायर, नाटिंघम क्षेत्र, लंकाशायर क्षेत्र, दक्षिणी वेल्स, क्लाइड घाटी, कम्बरलैण्ड, कैंट आदि कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं। अन्य में नार्दम्बर लैंड–डरहम, उत्तरी व दक्षिणी स्टेफर्डशायर बारविकशायर आदि प्रमुख है।

(iv) **फ्रांस:** फ्रांस के उत्तर–पश्चिमी भाग में कोयले की पेटी पायी जाती हैं, जहाँ नोर्द, पास–दी–कैले, लारैन, ली क्रयूजोत, सेट एतिने आदि प्रमुख कोयला खानें हैं।

(v) **अन्य यूरोपीय देश :** यूरोप के अन्य देशों में बेल्जियम, चेकेस्लोवाकिया, नीदरलैण्ड, युगोस्लाविया, बुल्गारिया, हंगरी, रोमानिया तथा स्पेन में भी कोयला प्राप्त होता है।

6. **आस्ट्रेलिया:** गत कुछ वर्षों से आस्ट्रेलिया कोयला उत्पादन में विश्व का पाँचवा देश बन गया है जो संसार का 6.5% कोयला उत्पन्न करता है। यहाँ न्यू साउथवेल्स, क्वींसलैण्ड एवं विक्टोरिया प्रान्तों में कोयला निकाला जाता है। न्यू साउथवेल्स में न्यूकैसल सबसे बड़ी खान है जो आस्ट्रेलिया का 80% कोयला उत्पन्न करती है। विक्टोरिया में लिग्नाइट कोयला मिलता है।
7. **दक्षिणी अफ्रीका :** द. अफ्रीका विश्व का छठा बड़ा कोयला उत्पादक देश है, जहाँ प्रतिवर्ष 22 करोड़ टन कोयला उत्पादित किया जाता है। यहाँ ट्रांसवाल, नेटाल व औरंज फ्री स्टेट राज्यों से कोयला प्राप्त होता है। मिडिल बर्ग, विट बैंक, वेरीनिजिंग आदि प्रमुख कोयला खदानें हैं।
8. **कनाडा:** विश्व का 2.5% कोयला उत्पन्न करने वाला कनाडा विश्व में 8 वें स्थान पर है। यहाँ 90% कोयला भण्डार सस्केचवान अल्बर्टा, एव ब्रिटिश कोलम्बिया में मिलते हैं।
9. **द. अमेरिका देश :** द. अमेरिका के ब्राजील में पोर्टो अलेग्रे; अर्जेन्टाइना में पुण्टा आरेनाज, कोलम्बिया में बोगोटा व काउका घाटी तथा चिली में लोटा व स्वागोर प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं।
10. **अन्य कोयला उत्पादक देश :** उपरोक्त देशों के अलावा उत्तरी कोरिया, जापान, टर्की, वियतनाम, मंगोलिया, फिलीपाइन, पाकिस्तान, श्रीलंका, रोडेशिया, नाइजीरिया, मोजम्बिक आदि देशों में भी कुछ न कुछ मात्रा में कोयला निकाला जाता है।

7.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade)

विश्व के कुल कोयला उत्पादन में से 10% ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन, पोलैण्ड एव दक्षिणी अफ्रीका प्रमुख कोयला निर्यातक देश हैं। जबकि आयात करने वाले देशों में कनाडा, फ्रांस, जापान, इटली, स्पेन, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, भारत, अर्जेन्टाइना व पाकिस्तान प्रमुख केन्द्र हैं।

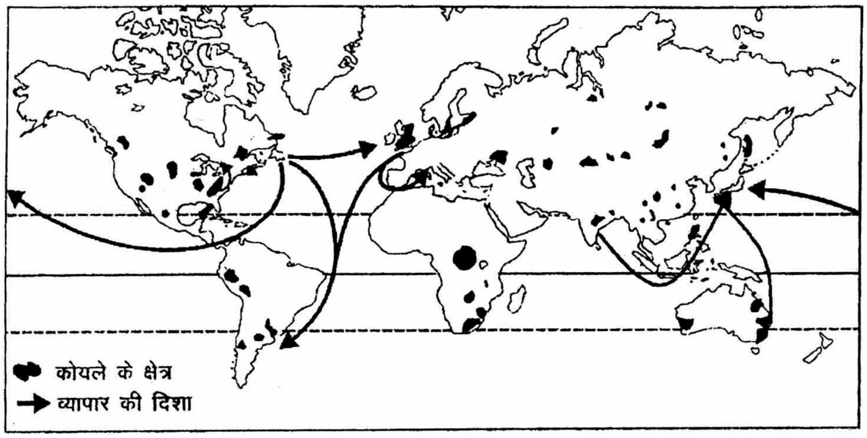

मानचित्र– 7.6: कोयले का विश्व व्यापार

बोध प्रश्न– 1

1. निम्नलिखित में से कौनसा कोयला सर्वोत्तम किस्म का होता है?

   (अ) ऐन्थ्रेसाइट (ब) बिटुमिनस

   (स) लिग्नाइट (द) पीट ( )

2. कोयला क्षेत्र सम्बन्धित है–

   (अ) आग्नेय चट्टानों से (ब) कायान्तरित चट्टानों से

   (स) अवसादी चट्टानों से (द) उपरोक्त में से कोई नहीं। ( )

3. ………………… संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रमुख कोयला क्षेत्र है।

4. विश्व की कुल औद्योगिक शक्ति का…… प्रतिशत कोयले से प्राप्त होता है।

5. ऊर्जा संसाधनों को मुख्य रूप से कितने भागों में बाटा गया है।

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

6. कोयला कितने प्रकार का होता है?

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

7. चीन के प्रमुख कोयला क्षेत्रों के नाम बताइये?

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

8. ब्रिटेन में कोयला उत्पादन में हास के क्या कारण हैं?

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

9. भारत में कोयला क्षेत्रों से सम्बन्धित दो पेटियों के नाम बताइये।

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

10. कोयला निर्यातक देश कौन–कौन से हैं?

   ………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………

7.4 पेट्रोलियम (Petroleum)

ऊर्जा संसाधन में पेट्रोलियम का महत्व सर्वाधिक एवं व्यापक है। कोयले की अपेक्षा हल्का और कई गुना अधिक ताप देने वाला है। इसी कारण मोटर गाड़ियों, रेल इंजनों, जलपोतों, वायुयानों, कृषि मशीनों आदि में पेट्रोलियम का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। शक्ति संसाधन के अलावा उद्योगों में कच्चे माल के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। मशीनों व कल पुर्जों में स्नेहक के रूप में, कृत्रिम रबर, प्लास्टिक, नायलोन, दवाइयाँ, पेन्ट व वार्निश सामग्री आदि में पेट्रोलियम

का उपयोग होता है। अत: वर्तमान समय में पेट्रोलियम किसी भी देश की औद्योगिक व आर्थिक सम्पन्नता का सूचक बन गया है। यह 'तरल सोने' के रूप में जाना जाता है।

7.4.1 पेट्रोलियम की उत्पत्ति (Origin of Petroleum)

वैज्ञानिकों का मत है कि अतीत काल में सागरीय जीवों एवं लघु वनस्पति के भूमि में दबने के बाद, अत्यधिक ताप व दाब तथा जीवाण्विक क्रिया द्वारा अपघटन से रासायनिक परिवर्तन के कारण पेट्रोलियम की उत्पति हुई है। भू पटल की अवसादी चट्टानों, समुद्रतली एवं तलछटीय मैदानों में पेट्रोलियम मिलता हैं। कच्चे तेल का शोधन करने पर गैसोलीन, पेट्रोल, डीजल, केरोसीन, स्नेहक, ग्रीस तथा बचा हुआ भाग कोलतार के रूप में प्राप्त होते हैं।

7.4.2 पेट्रोलियम के संचित भण्डार

संयुक्त राष्ट्र संघ के नवीनतम् अनुमान के अनुसार विश्व में लगभग 11,000 करोड़ मीट्रिक टन पेट्रोलियम के संचित भण्डार हैं, जिसका 50% मध्यपूर्व के देशों में, 12% उत्तरी अफ्रीका, द. अमेरिका व यूरोपीय देशों में, 10% उत्तरी अमेरिकी देशों में, 18% रूस में तथा 10% दक्षिणी पूर्वी एवं पूर्वी एशियाई देशों में सुरक्षित है। विश्व का दो–तिहाई पेट्रोलियम भण्डार एशिया महाद्वीप में संचित है। रूस एवं पूर्व सो. संघ के अन्य गणराज्य मिलकर विश्व का 28% पेट्रोलियम भण्डार रखते है।

7.4.3 पेट्रोलियम का विश्व वितरण (World distribution of Petroleum)

सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के पेसिंलवानिया के अलेगनी नदी बेसिन में सर 1854 में सेम्यूअल कीर ने पेट्रोलियम प्राप्त किया था। इसके बाद 1859 से इसका व्यावसायिक उत्पादन प्रारम्भ हो गया। वर्तमान में विश्व का सबसे अधिक पेट्रोलियम सऊदी अरब उत्पादित करता है। दूसरा व तीसरा स्थान क्रमश: रूस व संयुक्त राज्य अमेरिका का है। इनके अलावा ईरान, चीन, वेनेजुएला, मेक्सिको, इराक, कुवेत, नार्वे, कनाडा, लीबिया, मिश्र, इण्डोनेशिया, ब्राजील, भारत आदि प्रमुख हैं –

1. **पश्चिमी एशिया (मध्य पूर्व) :** विश्व का लगभग 67% पेट्रोलियम पश्चिमी एशिया में संचित हैं। खाड़ी के देशों की अर्थव्यवस्था का आधार ही पेट्रोलियम हैं। जैसा कि कुवैत का 1% सऊदी अरब का 99% इराक का 90% व ईरान का 85% निर्यात ही पेट्रोलियम पदार्थ हैं।
   (i) **सऊदी अरब :** यह विश्व का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है जहाँ विश्व का 12% तेल का उत्पादन होता है। यहाँ सर्वप्रथम 1906 में धहरान में तेल कूप खोदा गया। आज 13 लाख वर्ग किमी क्षेत्र में तेल कूप फैले हुये हैं। धहरान, दम्मान, अबकाइक, आइनेदार, कातिफ, घावर आदि अरब के तेल उत्पादक क्षेत्र हैं। यहाँ का तेल रासतनूरा की शोधन शाला में शोधित कर यूरोपीय एवं अमेरिकी देशों को निर्यात किया जाता है।

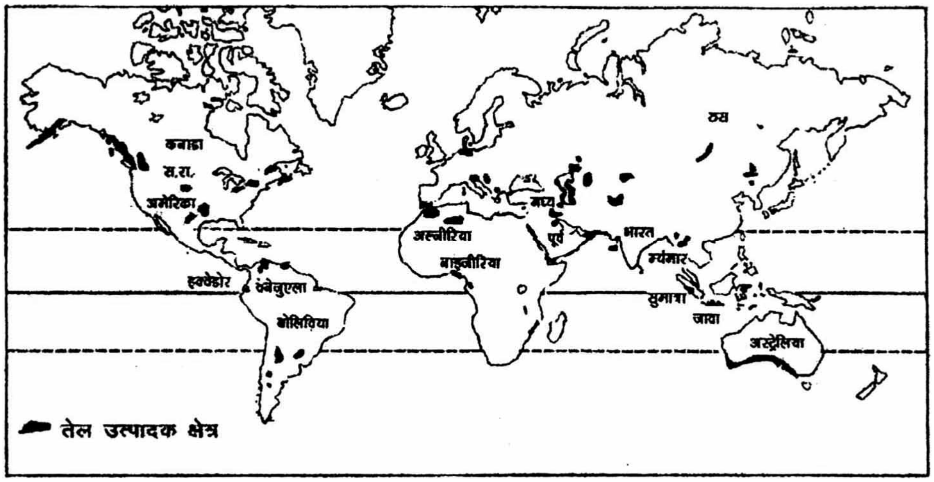

मानचित्र – 7.7 : विश्व में पेट्रोलियम क्षेत्र

(ii) **ईरान :** प. एशिया का दूसरा एवं विश्व का चौथा बड़ा तेल उत्पादक देश है, जो विश्व का 5.5% तेल का उत्पादन करता है। यहाँ सर्वप्रथम 1908 में मस्जिदे सुलेमान में तेल का उत्पादन प्रारम्भ किया था। इसके अलावा हफ्त केल, नफ्द सईद, गचसारन, अगाजरी, करमनशाह, लाली, कुमकुम आदि प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र हैं। यहाँ का तेल आबादान एवं करमन शाह की शोधनशाला में शोधित किया जाता है।

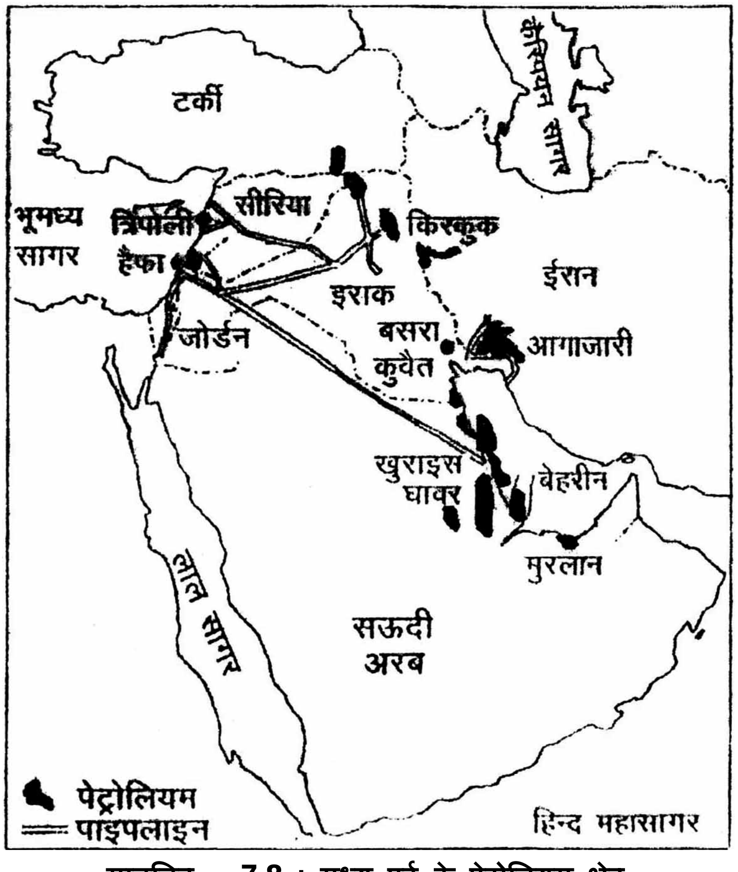

मानचित्र – 7.8 : मध्य पूर्व के पेट्रोलियम क्षेत्र

(iii) **ईराक :** मध्य पूर्व का तीसरा बड़ा तेल उत्पादक देश हैं जो विश्व का 4% तेल का उत्पादन करता है। यहाँ किरकुक, नफ्तखान, बुटमाह, जुबैर, बसरा तथा रूमाइला प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र हैं।

(iv) **कुवैत :** यह छोटा सा मरूस्थलीय देश है, परन्तु विश्व के 8% तेल भण्डार हैं। यहाँ की अर्थव्यवस्था पूर्णत : पेट्रोलियम पर निर्भर है। बुरघान पहाडी प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है,जहाँ से पाइपलाइन द्वारा मीना अलअहमदी बन्दरगाह को भेजा जाता है। अन्य तेल क्षेत्र मागवा अहमदी, रोधातेन, गिनागिश आदि है।

(v) **संयुक्त अरब अमीरात :** यहाँ लगभग 10 करोड़ मीट्रिक टन तेल का उत्पादनहोता हैं आबूधाबी, दुबई तथा शारजाह प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है। इस देश की अर्थव्यवस्था पूर्णत: तेल निर्यात पर निर्भर है।

(vi) **कतार:** यहां दुरवान मुख्य देश है।

(vii) **अन्य देश:** मध्य पूर्व के अन्य पेट्रोलियम उत्पादक देशों में बहरीन, ओमान, कातार, टर्की, इजराइल, सिरिया आदि प्रमुख हैं।

2. **रूस :** विश्व का दूसरा बड़ा तेल उत्पादक देश है जो प्रतिवर्ष 30 करोड़ टन पेट्रोलियम का उत्पादन करता है। यहाँ प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र निन्म हैं।

(i) **वोल्गा–यूराल क्षेत्र :** यह रूस का प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है जो देश का तीन–चौथाई तेल का उत्पादन करता है। यह मास्को से 1600 किमी. दूर यूरालपर्वत एवं वोल्गा नदी के मध्य चतुर्भुजाकार आकृति में विस्तृत है। यहाँ पर्म, उफा तथा कुइबीशेव प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र हैं।

(ii) **एम्बा क्षेत्र :** केस्पियन सागर के उत्तर–पूर्व में एम्बा बेसिन में पेट्रोलियम का उत्पादन किया जाता है, जिसे यूराल के औद्योगिक केन्द्रों को भेजा जाता है।

(iii) **साइबेरिया क्षेत्र :** यहाँ रूस के वृहतम तेल भण्डार हैं जहाँ पश्चिमी साइबेरिया में ओब तथा येनेसी नदी बेसिन में पेट्रोलियम प्राप्त होता है।

(iv) **काकेशस प्रदेश :** केस्पियन सागर के पश्चिम में ग्रोजनी तथा माइकोप प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र हैं।

(v) **बाकू तेल क्षेत्र :** इसे काकेशस क्षेत्र भी करते है यहां बाकू, मैकोप, ग्रोजोनी, रकूसा मुख्य तेल क्षेत्र है।

(vi) **अन्य क्षेत्र :** सखालिन द्वीप में ओखा, पिचौरा घाटी, लीना बेसिन, कोलिमा बेसिन आदि में भी तेल का उत्पादन होता है।

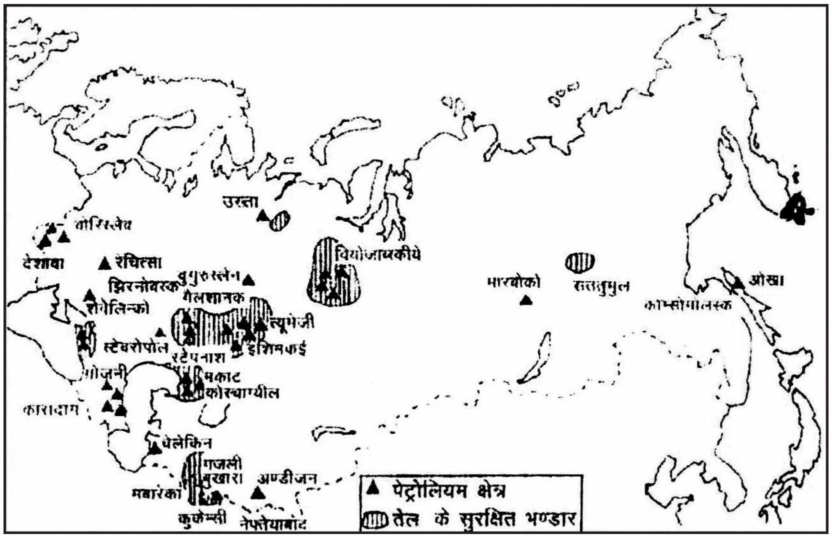

मानचित्र – 7.9 : रूस एवं गणराज्यों के तेल क्षेत्र

3. **उत्तरी अमेरिका :** उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा मेक्सिको प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक देश हैं –

(i) **संयुक्त राज्य अमेरिका:** यह विश्व का तीसरा बड़ा देश तेल उत्पादक देश है जहाँ विश्व का 9% पेट्रोलियम उत्पन्न होता है। यहाँ 4 लाख से भी अधिक तेल के कुऐं हैं। प्रमुख उत्पादक क्षेत्र निम्नांकित हैं –

(अ) मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र: यह कन्सास, ओकलाहमा, टेक्सास, उत्तरी लुजियाना तथा अरकन्सास राज्यों में विस्तृत

(ब) खाड़ी तटीय क्षेत्र:यू.एस.ए. का 22% तेल का उत्पादन करने वाला क्षेत्र है जो मिसीसिपी, टेक्सास, अलाबामा, लुजियाना तथा फ्लोरिडा राज्यों में फैला हुआ है।

(स) केलिफोर्निया क्षेत्र : देश का 16% तेल का उत्पादन करने वाला क्षेत्र में लॉस एंजिल्स, सॉन जोक्विन घाटी तथा तटीय भागों में तेल मिलता हैं।

(द) रॉकी पर्वतीय क्षेत्र : मोन्टाना, व्योमिंग तथा न्यू मेक्सिको राज्यों में छोटे–छोटे तेल क्षेत्र फैले हुये हैं।

(य) अप्लेशियन क्षेत्र : संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वप्रथम तेल का उत्पादन इसी क्षेत्र से प्रारम्भ हुआ था। यहाँ न्यूयार्क, पेसिंलवानिया, ओहियो, वर्जीनिया तथा केन्चुकी राज्यों तक तेल क्षेत्र मिलते हैं। परन्तु उत्पादन निरन्तर घटता जा रहा है।

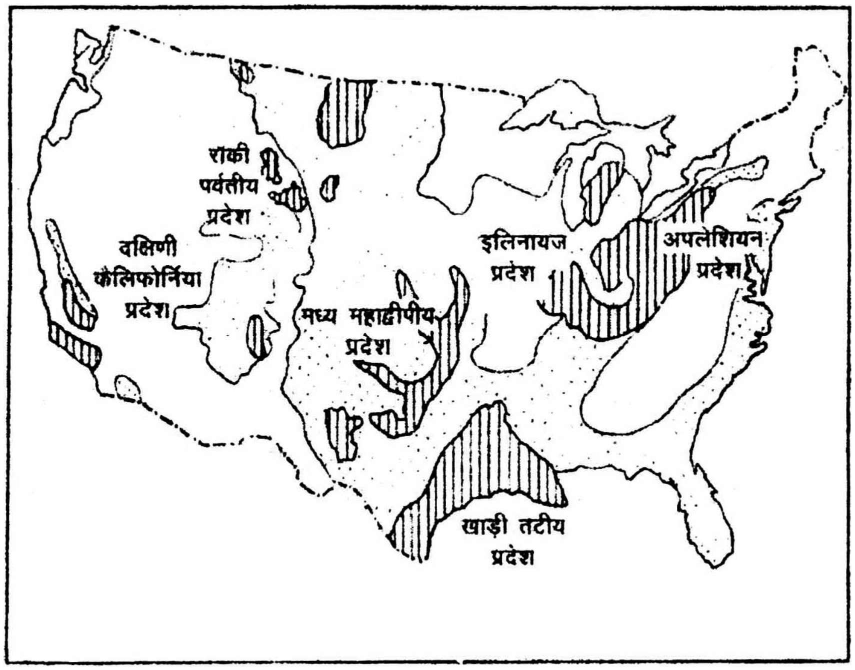

मानचित्र – 7.10 : संयुक्त राज्य अमेरिका के पेट्रोलियम क्षेत्र

(र) अन्य क्षेत्र : संयुक्त राज्य अमेरिका के इण्डियाना–इलिनोइस क्षेत्र, लीमा–इण्डियाना–मिशीगन क्षेत्र तथा अलास्का में भी पेट्रोलियम का उत्पादन किया जाता है।

(ii) **मेक्सिकों** :उत्तरी अमेरिका का दूसरा बड़ा तेल उत्पादक देश है जहाँ विश्व का 5%, पेट्रोलियम का उत्पादन होता है। यहाँ टैम्पिको से टक्सपान तक तथा पेबुको व तोमसी नदियों के मध्य त्रिभुजाकार आकृति में प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र फैला हुआ है। इबानो तथा पेलुको मुख्य केन्द्र हैं।

(iii) **कनाडा: यह** विश्व का 2.5% तेल का उत्पादन करता है। यहाँ अल्बर्टा, सस्केचवान, मैनीटोबा तथा ब्रिटिश कोलम्बिया में तेल मिलता है।

4. **दक्षिणी अमेरिका :**द. अमेरिका विश्व का 6% तेल का उत्पादन करता है। यहाँ वेनेजुएला सबसे बड़ा तेल उत्पादक है। विश्व के तेल भण्डारों का 4% इसी महाद्वीप में संचित हैं।

(i) वेनेजुएला:विश्व का छठा बड़ा तेल उत्पादक देश है, जहाँ विश्व का 5% तेल का उत्पादन होता हे। यहाँ मेरीकेबो झील क्षेत्र, ओरिनिको बेसिन एवं आपुरे बेसिन प्रमुख तेल क्षेत्र है। यहाँ से 90% तेल का निर्यात किया जाता है।

(ii) ब्राजील: द. अमेरिका का दूसरा तेल उत्पादक देश हैं जहाँ विश्व का 1% तेल उत्पन्न होता है। यहाँ बाहिया एवं रियो–डि–जेनरों में तेल का उत्पादन होता हैं।

(iii) कोलम्बिया : यहाँ मेगडालेना घाटी एवं दक्षिणी मेरीकेबो क्षेत्र में तेल निकाला जाता है।

(iv) अर्जेन्टाइना : यहाँ पेटागोनिया मरू क्षेत्र के चुबुट, एण्डीज पर्वत पदीय क्षेत्र मेण्डोजा, कोमाड़ोरा में तेल का उत्पादन होता है।

(v) अन्य क्षेत्र : दक्षिणी अमेरिका के अन्य देशों में इक्वेडोर, पेरू, चिली एवं बोलिविया में भी तेल का उत्पादन होता

5. **अफ्रीका :** विश्व का 10% तेल भण्डार अफ्रीका में संचित है। विश्व का 10% तेल इसी महाद्वीप से उत्पन्न होता है।

   (i) **नाईजीरिया :** यह अफ्रीका का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है। यहाँ 11 करोड़मीट्रिक टन तेल प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। ओलाईबिरी तथा उघेली प्रमुख तेल क्षेत्र हैं।

   (ii) **लीबिया :** यह विश्व का 2% तेल उत्पन्न करता है। यहाँ जेलटन एवं दहरा में तेल का उत्पादन होता है।

   (iii) **अल्जीरिया :** यहाँ 4 करोड़ मीट्रिक टन तेल प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। अधिकांश उत्पादन हासी मसूद एवं एदजेल क्षेत्रों में होता है ।

   (iv) **मिश्र :** मिश्र में लाल सागर तट पर स्थित रास गरीब एवं हुरघाड़ा क्षेत्रों में पेट्रोलियम प्राप्त होता है। सिनाई प्रायद्वीप से भी कुछ मात्रा में तेल का उत्पादन होता है।

6. **दक्षिणी, दक्षिणी–**पूर्वी एशियाई देश : यद्यपि एशिया महाद्वीप के दक्षिणी, दक्षिणी पूर्वी एवं देशों में पेट्रोलियम का उत्पादन होता है, परन्तु म्यांमार व इण्डोनेशिया को छोडकर सभी तेल का आयात करते हैं।

   (i) **चीन :** पूर्वी एशिया में चीन सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है जो विश्व का 5४० तेल का उत्पादन करता है। तेल उत्पादन में विश्व में पांचवीं स्थान है। यहाँ जुंगेरियन बेसिन में कारामाई, साइदाम बेसिन में मानराई, मंचूरिया में लियाओं व सुंगारी घाटी, क्वीचाऊ, बुरफान, लांग्चाऊ आदि प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र हैं।

   (ii) **भारत :** भारत द. एशिया का सबसे छोटा तेल उत्पादक देश है जहाँ विश्व का 1% तेल का उत्पादन होता है। यहाँ बोम्बेहाई प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है जो देश का 61% तेल उत्पन्न करता है। इसके अलावा आसाम में डिगबोई, नाहर कटिया, बप्पापांग, माकुम, पथरिया, रूद्रसागर, लकवा आदि क्षेत्र तथा गुजरात में अंकलेश्वर, कलोल, लुनेज आदि क्षेत्रों में तेल उत्पन्न होता है।

   (iii) **इण्डोनेशिया :** यहाँ विश्व के 2% तेल भण्डार संचित है। यहाँ सुमात्रा द्वीप में पालेम्बांग व जाम्बी, जावा में काबेनगान व सुरावाया तथा कालीमन्टन में सेरिया व मिरी में पेट्रोलियम प्राप्त होता है। यह तेल का निर्यातक देश

   (iv) **म्यांमार :** म्यांमार में 8 लाख मीट्रिक टन तेल का वार्षिक उत्पादन होता है। यहाँ इरावदी घाटी में येनागयोंग, सिंगू चौक, अकयाब क्षेत्रों में तेल उत्पादन होता है।

   (v) **पाकिस्तान :** यहाँ पंजाब व बलुचिस्तान में तेल मिलता है। खोर, कुलियन तथा जोवोमोर मुख्य तेल उत्पादक क्षेत्र हैं। यहाँ 5 लाख टन तेल का वार्षिक उत्पादन होता हैं।

   (vi) **जापान :**यहाँ होंशू द्वीप के उत्तरी पश्चिमी भाग में अकीता व नगीता और होकैडो द्वीप के तटीय भागों में तेल प्राप्त होता है।

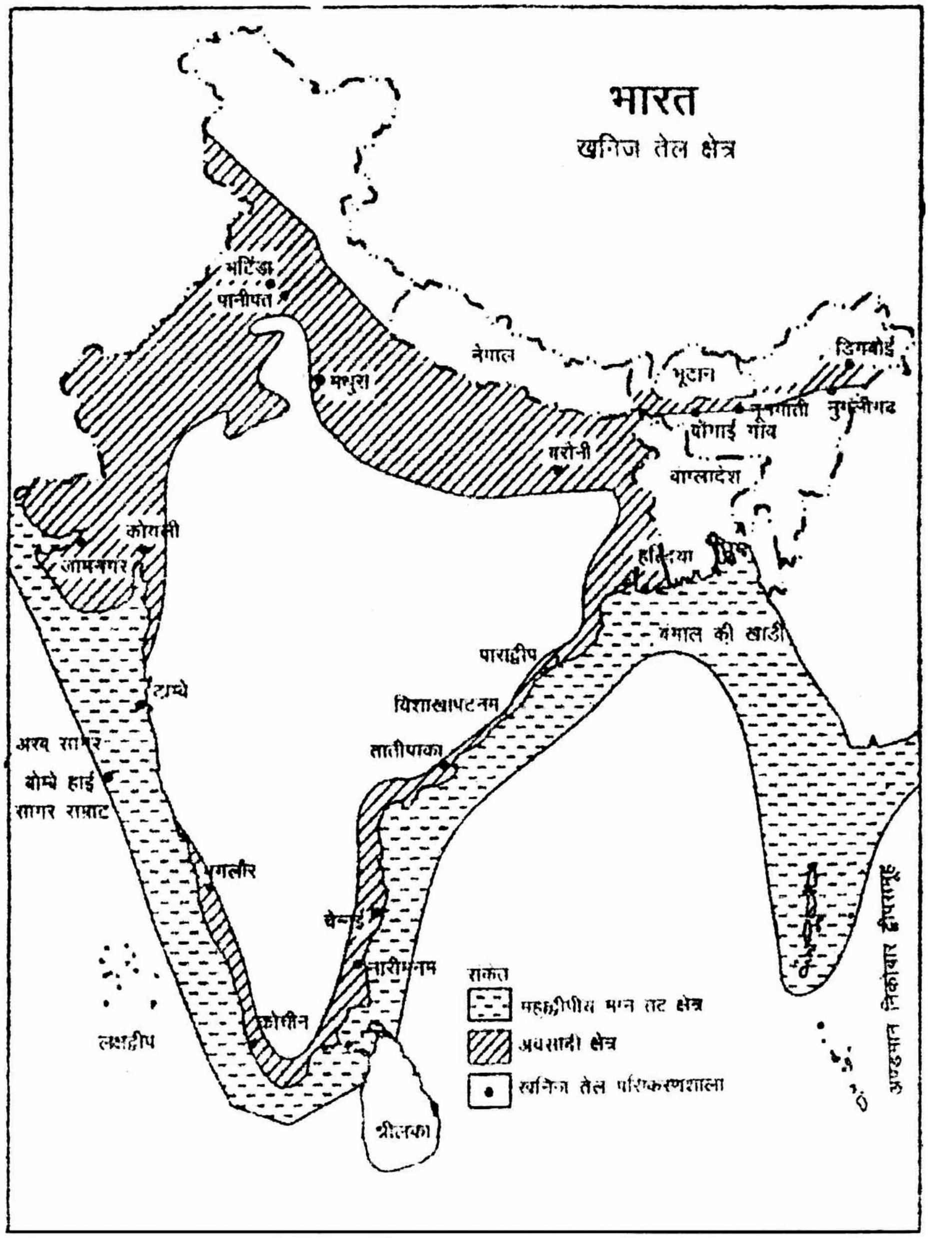

मानचित्र–7.11 : भारत के पेट्रोलियम क्षेत्र

7. **यूरोपीय देश :** यूरोपीयन देशों में ग्रेट ब्रिटेन प्रमुख उत्पादक देश है जहाँ 15 करोड़ मीट्रिक टन तेल का वार्षिक उत्पादन होता है। गत कुछ वर्षों से नार्वे यूरोप का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश बन गया है। रोमानिया, जर्मनी आदि अन्य तेल उत्पादक देश हैं।
8. **आस्ट्रेलिया :** आस्ट्रेलिया में विक्टोरिया के दक्षिणी–पूर्वी तटवर्ती भाग, क्वींसलैण्ड में मूनी – रोमा तथा दक्षिणी आस्ट्रेलिया में कपूर बेसिन में पेट्रोलियम प्राप्त होता है।

7.4.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade)

पेट्रोलियम के उत्पादन एवं उपभोग के क्षेत्रों में अत्यधिक अन्तर पाया जाता है। तेल का अधिकांश उत्पादन विकासशील देशों में और उपभोग विकसित देशों में होता है। सऊदी अरब विश्व का सबसे बड़ा तेल निर्यातक देश है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे बड़ा तेल आयातक देश है। तेल के बड़े उपभोक्ताओं में रूस ही एक मात्र देश है जिसका उत्पादन उपभोग से अधिक है।

निर्यातक देश : सऊदी अरब, रूस, ईरान, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, कतर, ओमान, बहरीन, वेनेजुएला, कोलम्बिया, लिबिया, अल्जीरिया, इण्डोनेशिया, म्यांमार, मेक्सिको आदि प्रमुख हैं।

आयातक देश : संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान, जर्मनी, इटली, स्पेन, भारत, ब्रिटेन, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, स्वीडन, पौलेण्ड, चीन, ब्राजील आदि प्रमुख हैं।

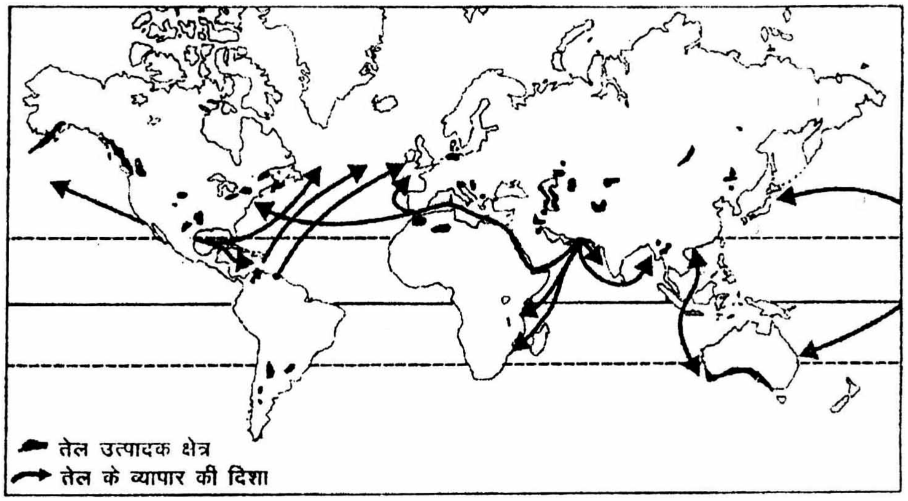

मानचित्र –7.12 :पेट्रोलियम का विश्व व्यापार

बोध प्रश्न : 2

1. खनिज तेल की उपयोगिता बताइये?

   ....

   ....

2. विश्व में सर्वाधिक भण्डार कहाँ हैं?

   (अ) रूस (ब) यू.एस.ए

   (स) चीन (द) प. एशिया ( )

3. दक्षिणी अमेरिका में सर्वाधिक पेट्रोलियम उत्पादक देश हैं?

   (अ) ब्राजील (ब) वेनेजुएला

   (स) कोलम्बिया (द) अर्जेन्टाइना ( )

4. पेट्रोलियम की उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

....

....

5. विश्व में सर्वप्रथम पेट्रोलियम कहाँ, और कब प्राप्त किया था?

....

....

6. रूस के प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्रों के नाम लिखिये ।

....

....

7. भारत का प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र कौनसा है?

....

....

8. विश्व का सर्वाधिक तेल निर्यातक देश कौनसा है?

....

....

7.5 जल विद्युत शक्ति (Hydal Power)

जल विद्युत, शक्ति संसाधनों में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, अणु विद्युत आदि की अपेक्षा सतत् एवं सनातन संसाधन है। पृथ्वी पर कोयले एवं पेट्रोलियम के भण्डार प्राय: सीमित और संभवत: वे कुछ ही शताब्दियों में समाप्त हो जायेंगे, परन्तु जल शक्ति एक अटूट संसाधन है, जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। कोयले तथा तेल की अपेक्षा जल की अधिक क्षेत्रों में बहुतायत है तथा इसका उपयोग उत्पादन क्षेत्रों से दूर तक आसानी से किया जा सकता है।

7.5.1 जल विद्युत उत्पादन के लिए आवश्यक दशाऐं (Conditions for hydro power Production)

(अ) भौतिक दशाऐं: जल शक्ति जल के आयतन तथा वेग पर निर्भर करती है। जल शक्ति के विकास के लिए निम्न भौतिक दशाऐं आवश्यक हैं–

- **(i) पर्याप्त जल प्रवाह :** विद्युत उत्पादन के लिए जल प्रवाह पर्याप्त होना चाहिए। इसके लिए नदी का प्रवाह क्षेत्र बड़ा, तथा प्रवाह क्षेत्र में पर्याप्त वर्षा होना आवश्यक है। जिससे पर्याप्त मात्रा में जल प्राप्त होता रहे।
- **(ii) तीव्र ढाल या ऊँचाई :** नदी का जल जितना अधिक तीव्र ढाल या अधिक ऊँचाई से बहकर आ रहा होगा,उतनी ही अधिक मात्रा में शक्ति उत्पन्न होगी। यही कारण है कि जल प्रपात की स्थिति जल विद्युत के लिए आदर्श मानी गयी है।
- **(iii) निरन्तर प्रवाह :** जल का प्रवाह वर्षभर निरन्तर बना रहना चाहिए। इसीलिए नदियों पर बांध बनाकर वर्षा न होने पर बांध के जल से वर्ष भर जल प्रवाह को बनाये रखा जा सके।

(iv) तापमान : तापमान शीतकाल में भी हिमांक से ऊपर रहना चाहिये ताकि जल नहीं जमे। उच्च अक्षांशों में जल के जम जाने से विद्युत उत्पादन बन्द हो जाता है।

(v) अन्य कारक : अन्य कारकों में मार्ग में झीलों की स्थिति, तीव्र वेग से जल का प्रवाह, अन्य ऊर्जा संसाधनों का अभाव आदि सहायक कारक है।

(ब) आर्थिक दशाऐं (Economic Conditions)

(i) **बाजार की समीपता :** विद्युत की मांग का समीपवर्ती बाजार होना चाहिए क्योंकि अधिक दूरवर्ती क्षेत्रों में विद्युत पहुँचाने में शक्ति का हास अधिक होता है। अत: सघन जनसंख्या वाले औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र की समीपता होनी चाहिए।

(ii) **पूँजी :** बांध बनाने, शक्ति ग्रहों का निर्माण, विद्युत यंत्रों, सम्प्रेषण लाईनों, तकनीकी, स्टाफ, बस्तियों आदि का निर्माण व्यय साध्य कार्य हैं जिनके लिए अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है, जो कि सरकारें ही वहन करती है। जो कि कालान्तर में बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, नौका परिवहन, ऊर्जा उत्पादन आदि में समायोजन कर लिया जाता है।

(iii) **प्राविधिक ज्ञान:** जल विद्युत उत्पादन में उच्च तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता रहती है। इसके लिए उच्च दक्ष इंजीनियरों की आवश्यकता रहती है।

(iv) **परिवहन के साधन :** बड़े–बड़े जलाशयों, विद्युत ग्रहों आदि निर्माण में प्रयुक्त सामग्री को लाने–ले जाने में परिवहन के साधनों की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए।

(v) **विकेन्द्रीकरण में सहायक :** विद्युत को कच्चे माल, श्रमिक व बाजारों तक पहुँचा कर उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायक माना जाता है, जबकि कोयला भारी होने के कारण खदानों के समीप ही औद्योगिक क्रियाऐं केन्द्रित हो जाती हैं।

(vi) **दुर्गम स्थानों तक पहुँच :** अपेक्षाकृत कम व्यय में दुर्गम क्षेत्रों में आसानी से संप्रेषण लाइनों द्वारा विद्युत को पहुँचाया जा सकता है।

(vii) इसके अलावा घरेलु कार्यो में आसानी से उपयोग, कम व्यय, कुछ विशेष उद्योगों में उपयोगी होने के कारण जल विद्युत का महत्व दिनों दिन बढ़ता जारहा है।

7.5.3 जल विद्युत शक्ति की सम्भाव्य क्षमता (Probable Potential of Hydal Power)

जल विद्युत उत्पादन की संभावित क्षमता विश्व के विभिन्न देशों मे भिन्न–भिन्न है। जल शक्ति की सर्वाधिक विभव (41%) अफ्रीका में है, परन्तु वहाँ विश्व की 1% जल शक्ति का विकास हुआ है। विकसित देशों में रूस में सर्वाधिक क्षमता है। दूसरा स्थान संयुक्त राज्य अमेरिका का है। एशिया में विश्व की 23%, द. अमेरिका में 8.0%, उ. अमेरिका में 13.5% यूरोप में 10.5 और आस्ट्रेलिया में 3.0% संभाव्य क्षमता है।

तालिका–7.1 : विश्व में जल विद्युत शक्ति की संभाव्य क्षमता (करोड़ अश्व शक्ति)

महाद्वीप	संभाव्य क्षमता	विश्व का प्रतिशत

अफ्रीका	27.2	42.0
एशिया	15.1	23.0
उ. अमेरिका	8.7	13.5
द. अमेरिका	5.5	8.0
यूरोप	6.9	10.5
आस्ट्रेलिया	2.3	3.0

7.5.4 विश्व मे जल विद्युत का विकास (Development of Hydal Power in the world)

विश्व में जल विद्युत शक्ति का विकास विभिन्न देशों में हुआ है। जल विद्युत की संभाव्य क्षमता का अधिकतम विकास संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा एवं यूरोपीय देशों में हुआ है। जल विद्युत उत्पादन करने वाले प्रमुख देश निम्न है -

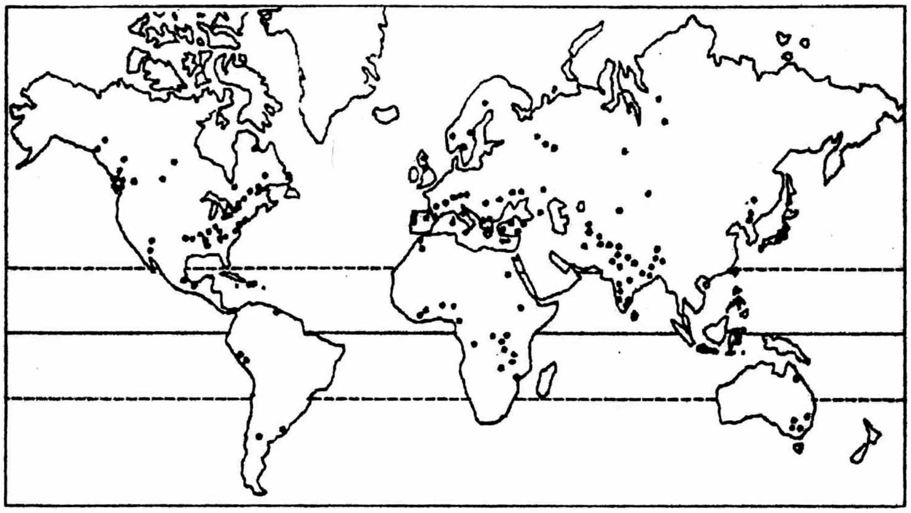

मानचित्र–7.13 : विश्व में जल विद्युत उत्पादन केन्द्र

1. **उत्तरी अमेरिका :** इस महाद्वीप में विश्व की 30% जल विद्युत का उत्पादन होता है। यहाँ कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका प्रमुख उत्पादक देश है–

   (i) कनाडा: कनाडा विश्व का सर्वाधिक जल विद्युत उत्पादक देश है, जहाँ विश्व की 12.5% विद्युत पैदा होती है। अपनी कुल संभाव्य क्षमता की 50% ही विकसित कर सका है। यहाँ तीन क्षेत्रों में विद्युत उत्पादन केन्द्र स्थित हैं–

   (अ) न्याग्रा क्षेत्र: सीमावर्ती भाग में ईरी व ओटारियों झीलों के मध्य अनेक विद्युत केन्द्र स्थापित है। कनाडा की एक तिहाई विद्युत इसी प्रदेश से प्राप्त होती है।

   (ब) सेन्ट लारेन्स क्षेत्र: इस प्रदेश में प्रेस्कोट से मॉण्ट्रियल तक सेन लारेन्स व उसकी सहायक नदियों पर अनेक विद्युत केन्द्रों से जल विद्युत उत्पन्न की जाती है।

   (स) प्रशान्त तटीय क्षेत्र: ब्रिटिश कोलम्बिया राज्य में प्राकृतिक जल प्रपातों तथा फ्रेजर व कोलम्बिया नदी पर बनाये गये बांधों पर विद्युत उत्पादन केन्द्र स्थापित है। कनाडा में

कोयला व पेट्रोलियम का अभाव होने से जल विद्युत का तीव्र गति से विकास हुआ। यहाँ 332 अरब किलोवाट विद्युत का उत्पादन होता है।

(ii) **संयुक्त राज्य अमेरिका :**यह विश्व का दूसरा बड़ा जल विद्युत उत्पादक देश हैजहाँ विश्व की 12.2% विद्युत का उत्पादन होता है। विद्युत उत्पादन के निम्न क्षेत्र हैं –

(अ) पश्चिमी क्षेत्र: इस क्षेत्र में केस्केड, सियरानैवादा व अन्य पर्वतीय क्षेत्र में भारी वर्षा तथा ग्रीष्मकाल में हिम पिघलने से कोलम्बिया और उसकी सहायक नदियों की घाटियों में नियमित जल प्रवाह के कारण यू.एस.ए. के सर्वाधिक विद्युत उत्पादन केन्द्र है। केलिफोर्निया में सेनजेक्विन व सेक्रामेन्टो घाटियों में जलाशय निर्माण कर विद्युत उत्पादन किया जा रहा है।

(ब) न्यू –इंग्लैण्ड क्षेत्र : मेन से मिनेसोटा राज्य तक जल विद्युत केन्द्र स्थापित है। न्याग्रा जल प्रपात पर कनाडा से संयुक्त रूप में सबसे विशाल जल शक्ति केन्द्र बनाया गया है।

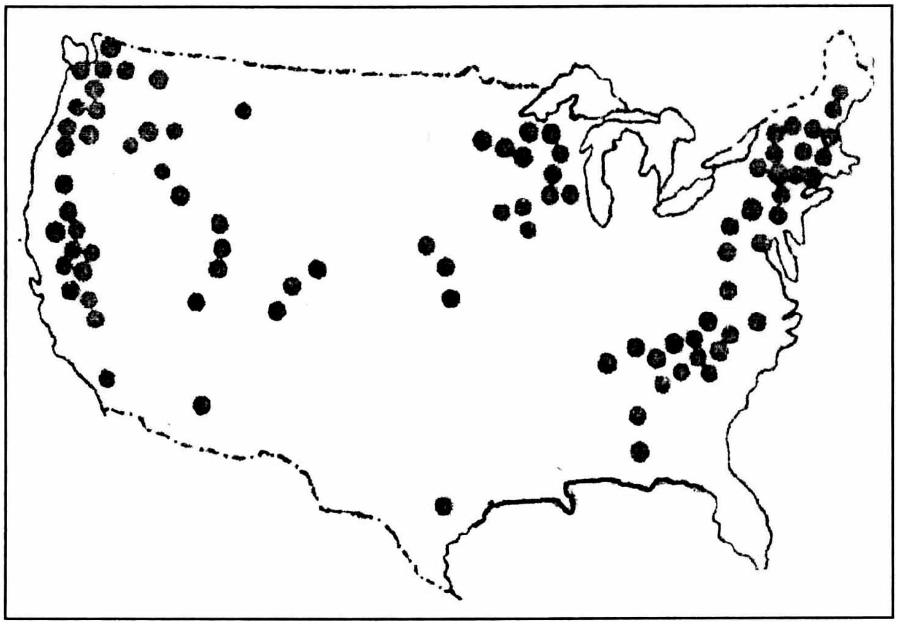

मानचित्र – 7.14 : संयुक्त राज्य अमेरिका में जल विद्युत केन्द्र

(स) दक्षिणी अप्लेशियन प्रदेश : विश्व प्रसिद्ध टेनेसी घाटी योजना इसी प्रदेश में है। यहाँ टेनेसी नदी पर 9 बांध बनाकर विद्युत केन्द्र बनाये गये हैं। पर्वत व पीडमाउन क्षेत्र में प्रपात रेखा पर अनेक केन्द्रों से जल विद्युत उत्पन्न होती है। पेन्सिलवेनिया से लेकर अलाबामा तक का क्षेत्र है।

(द) महान झीलों का दक्षिणी क्षेत्र : विस्कोंसिन व मिशीगन राज्यों में छोटी व द्रुतगामी नदियों पर विद्युत उत्पादन किया जाता है।

(य) रॉकी पर्वतीय क्षेत्र : इस क्षेत्र में हूवर व बाउल्डर जैसी वृहत विद्युत परियोजनाऐं कोलोरेडो व एरिजोना लाइन पर स्थापित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 323 अरब किलोवाट विद्युत का उत्पादन होता है।

2. **ब्राजील:** जल विद्युत में ब्राज़ील का विश्व में तीसरा स्थान है जो विश्व की 11% विद्युत पैदा करता है। ब्राजील पठार के पूर्वी व पश्चिमी ढालों पर बहने वाली तीव्रगामी नदियों पर प्राकृतिक प्रपात पाये जाते हैं, जिससे जल विद्युत का अत्यधिक विकास हुआ है। यहाँ फ्रांसिस्को, अरागूआया, उपरीपराना, टोंकँटिस, ऊपरी उरुग्वे, साओपोलो, रियोग्राण्डे आदि मुख्य नदियों एवं इनकी सहायक नदियों पर जल शक्ति का उत्पादन होता है। कनाडा की भांति यहाँ भी अन्य शक्ति संसाधनों की कमी के कारण जल विद्युत का सर्वाधिक विकास हुआ। ब्राजील में 290 अरब किलोवाट विद्युत का वार्षिक उत्पादन होता है।
3. **यूरोपीय देश :** विश्व में सर्वाधिक जलशक्ति का विकास यूरोप महाद्वीप में हुआ हैं। विश्व की 35% जल विद्युत यूरोप में उत्पन्न होती हैं प्रमुख उत्पादक देश निम्न हैं –
   (i) **रूस :** विश्व का पांचवाँ बड़ा विद्युत उत्पादक देश है जो संसार की 6% जल विद्युत का उत्पादन करता है। यहाँ जल विद्युत का विकास दो क्षेत्रों में किया गया है– (i) पश्चिमी क्षेत्र – वोल्गा, बोरखोव तथा सीवर नदियों पर बांध बनाकर विद्युत केन्द्र स्थापित किए हैं। वोल्गा नदी पर गोर्की, साराटोव, बोल्गोग्राद, साइबेरिया में ओबे नदी पर कोमनोगोर्स्के, नोवोसिबिर्स्क; येनेसी नदी पर सापनोगोर्स्के, ब्राटस्क, क्रास्नोयार्स्के तथा लीना नदी पर विलपूव प्रमुख है। इसके अलावा अनेक नदियों व नहरों पर जल विद्युत उत्पादक केन्द्र स्थापित किये हैं। ब्राजस्क प्राजेक्ट विश्व का सबसे बड़ा विद्युत केन्द्र है जिसकी क्षमता 45 लाख किलोवाट है।
   (ii) **इटली :** यहाँ पीडमाण्ट का लोम्बार्डी व वैनिशिया प्रमुख विद्युत उत्पादक क्षेत्र है। इसके अलावा अम्बरिया, इमेलिया एवं टसकानी में विद्युत का उत्पादन होता है।
   (iii) **नार्वे :** यहाँ हिमनदियों व जल प्रपातों की आदर्श दशाओं के कारण जल विद्युत का सर्वाधिक विकास हुआ है विश्व की 4.4% जल शक्ति अकेला नार्वे उत्पन्न करता है।
   (iv) **फ्रांस :** यहाँ आल्पस व पिरेनीज पर्वतीय क्षेत्र व पठारी भागों में रोन नदी, राइन नदी एवं वासजेस नदियों पर जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। यहाँ 66 अरब किलोवाट विद्युत पैदा होती है।
   (v) **स्विट्जरलैण्ड :** यहाँ जल विद्युत से उद्योग व रेलों का संचालन किया जाता है। यहाँ तीव्र गामी नदियों पर जल शक्ति केन्द्र स्थापित हैं।
   (vi) **स्वीडन :** यहाँ वर्ष भर जल प्रवाह एवं प्रपातों की सुलभता के कारण जल विद्युत का पर्याप्त विकास हुआ है। स्वीडन के पश्चिमी भाग में जल विद्युत केन्द्र स्थापित है। कोयला व पेट्रोलियम के अभाव के कारण लोहा इस्पात उद्योग जल विद्युत से ही संचालित होते हैं।
   (vii) **जर्मनी :** जर्मनी ने जल विद्युत क्षमता का पर्याप्त विकास किया है। यहाँ आल्पस पर्वत के उत्तरी ढालों से निकलने वाली नदियों पर जलाशयों का निर्माण कर विद्युत उत्पादन केन्द्र स्थापित किये है।
4. **एशियाई देश :** एशिया महाद्वीप में विश्व की 23% जल विद्युत क्षमता है, परन्तु अभी तक विकास 11% का ही हुआ है। प्रमुख जल विद्युत उत्पादक देश निम्न है –

(i) चीन : चीन में कुल विद्युत उत्पादन में 20% जल विद्युत का योगदान है। यहाँ उत्तरी चीन में सुंगारी नदी पर फेंगमेन, ह्रांगहो नदी पर सानमेन, लिडकिया, मुंगीतिंग नदी पर कुआंतिग, जेचवान प्रान्त में शिल्सेतान, द. चीन में ल्यूची नदी पर शांग्यू सिनान आन्हवे एव शिम्याग प्रमुख जल विद्युत उत्पादक केन्द्र हैं। चीन में विश्व की 5% जल विद्युत शक्ति का उत्पादन होता है। यांगटिसी क्यांग, सीक्याग व ह्रांगहो नदियों पर कई शक्ति केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

(ii) जापान. जापान विश्व का सातवाँ बड़ा जल विद्युत उत्पादक देश हैं, जहाँ संसार की 4% जल विद्युत का उत्पादन होता है। यहाँ होन्शू द्वीप में 100 तथा अन्य द्वीपों पर 500 विद्युत केन्द्र स्थापित किये गये हैं। पर्वतीय स्थलाकृति, अत्यधिक वर्षा, औद्योगिक ऊर्जा की आवश्यकता, पूंजी व तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता आदि अनुकूल कारकों के कारण जल विद्युत शक्ति का तीव्र गति से विकास हुआ है। यहाँ कुल संभाव्य क्षमता का 75% तक विकास किया जा चुका है। होन्शु द्वीप में टोहकू व चिबू विशालतम् जल शक्ति केन्द्र हैं। यहाँ 102 अरब किलोवाट विद्युत प्रतिवर्ष पैदा होती है।

(iii) भारत : एशिया का तीसरा बड़ा जल विद्युत उत्पादक देश है जहाँ विश्व की 3% जल विद्युत पैदा की जाती है। पंचवर्षीय योजनाओं में नदी घाटी परियोजनाओं में विद्युत केन्द्रों की स्थापना की गयी। भारत में सर्वप्रथम 1902 में कर्नाटक में कावेरी नदी पर शिव समुद्रम जल प्रपात पर जल विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुण्ड, तुगंभद्रा, रिहन्द, काकरापारा, माताटीला, चम्बल, कोयना, मयूराक्षी, भद्रावती, गंगा–शारदा, कोसी, नागार्जुन सागर, माही, मचकुंद, सलाल आदि नदी घाटी परियोजनाओं में जल विद्युत का उत्पादन किया जा रहा है। भारत में 82 अरब किलोवाट जल विद्युत का वार्षिक उत्पादन होता है।

(iv) अन्य देश. इनके अलावा कोरिया, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश, टर्की, म्यानमार, थाईलैण्ड, मलेशिया आदि एशियाई देशों में भी जल विद्युत का उत्पादन होता है।

5. **अफ्रीका :** अफ्रीका में संसार की सर्वाधिक विभव जल शक्ति 41% पायी जाती है, परन्तु विकास 1% हुआ है। महाद्वीप का उत्तरी भाग शुष्क होने के कारण अधिकांश संभाव्यता दक्षिणी भाग में ही है। जेरे के कटांगा व रोडेशिया में विक्टोरिया जल प्रपात से जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। मिश्र में नील नदी पर अस्वान बांध से विद्युत उत्पादन होता है। इसके अलावा नाइजीरिया, घाना, सूडान, यूगाण्डा, लाइबीरिया, मोरक्को आदि देशों में भी विद्युत योजनाएँ निर्माणाधीन हैं।

6. **दक्षिणी अमेरिका :** द. अमेरिका में संसार की 8% संभाव्य जल राशि है, परन्तु विश्व की 3% जल विद्युत का ही उत्पादन होता हैं यहाँ ब्राजील, अर्जेन्टाइना, वेनेजुएला, युरूग्वे, चिली, पेरू, पराग्वे, बोलिविया आदि देशों में जल विद्युत का विकास किया गया है।

7. **आस्ट्रेलिया.** शुष्क जलवायु, कम वर्षा, सदावाही नदियों की कमी तथा मरूस्थलीय दशाओं की बहुलता के कारण जल विद्युत शक्ति के विकास की संभावना बहुत कम है। न्यूसाउथ

वेल्स, क्वींसलैण्ड एवं तस्मानिया के अधिक वर्षा वाले भागों में जल विद्युत केन्द्रों की स्थापना की है। वार्षिक उत्पादन 15 अरब किलोवाट हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. जल विद्युत शक्ति किस प्रकार का शक्ति संसाधन है?
   (अ) क्षय (ब) अक्षय
   (स) जीवाश्मीय (द) प्राणिज ( )
2. जल विद्युत संभाव्यता किस महाद्वीप में सर्वाधिक है?
   (अ) एशिया (ब) यूरोप
   (स) द. अमेरिका (द) अफ्रीका ( )
3. जल विद्युत उत्पादन की आवश्यक भौगोलिक दशाऐं क्या हैं?
   ....
   ....
4. स्विट्जरलैण्ड में जल विद्युत के अत्यधिक विकास के क्या कारण है?
   ....
   ....
5. जापान में जल विद्युत उत्पादन के लिए अनुकूल दशाऐं कौनसी हैं?
   ....
   ....
6. विश्व की सबसे बड़ी जल विद्युत परियोजना कौनसी और कहाँ है?
   ....
   ....

7.6 परमाणु ऊर्जा (Atomic Power)

यूरेनियम व थोरियम खनिजों के परमाणु विखण्डन से प्राप्त ऊर्जा परमाणु ऊर्जा कहलाती है। परमाणु ऊर्जा विखण्डन एवं संगलन दो विधियों से प्राप्त की जाती है। यूरेनियम से परमाणु के विखण्डन की खोज 1930 से 1949 के मध्य हुई थी। इसका वाणिज्यिक एव सामरिक उपभोग 1945 से प्रारम्भ हुआ। परमाणु के विखण्डन से महान शक्ति प्राप्त होती है, जिसे नाभिकीय ऊर्जा भी कहते हैं। एक किलोग्राम यूरेनियम से 25 लाख किलोग्राम कोयले के बराबर शक्ति प्राप्त होती है। अन्य ऊर्जा संसाधनों की कमी वाले प्रदेशों तथा अधिक ऊर्जा खपत वाले देशों में परमाणु ऊर्जा उत्पादन अपेक्षाकृत सस्ता ही पड़ता हैं।

7.6.1 परमाणु ऊर्जा की प्राप्ति

परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने के लिए यूरेनियम तथा थोरियम का प्रयोग किया जाता हैं रेडियोधर्मी तत्वों वाले इन खनिजों के साथ–साथ बैनेलियम, लीथियम जैसे खनिज भी शामिल किये जाते हैं। यूरेनियम दूधिया रंग की कठोर व भारी खनिज है जो मिश्रित रूप में मिलती है यह

पिचब्लैंड तथा कारनोटाइट अयस्क के रूप में प्राप्त होती है। विश्व का 50% यूरेनियम उत्तरी अमेरिका व अफ्रीका महाद्वीप में संचित है। इसके अलावा आस्ट्रेलिया, फ्रांस, ब्राजील, भारत आदि में भी यूरेनियम प्राप्त होता है। थोरियम काली खनिज रेत मोनोजाइट से प्राप्त की जाती है जो भारत में केरल तटीय क्षेत्र में बहुतायत से मिलती है। इसके अलावा संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, जापान, मालागासी, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशों में मिलती है।

7.6.2 परमाणु ऊर्जा का उत्पादन एवं वितरण (Production and Distribution of Atomic Power)

संसार में सर्वप्रथम 1951 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अणु विद्युत केन्द्र स्थापित किया था। इसके बाद विभिन्न देशों में परमाणु शक्ति उत्पादन के प्रयास किये गये। वर्तमान में विश्व के विभिन्न देशों में सौ से अधिक केन्द्रों पर परमाणु विद्युत का उत्पादन हो
रहा है और इतने ही केन्द्र निर्माणाधीन है। विश्व की 29% अणु विद्युत उत्पादन कर संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम स्थान पर है। इसके अलावा फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, जापान, रूस, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, स्पेन, चीन, भारत आदि प्रमुख परमाणु विद्युत. उत्पादक देश हैं।

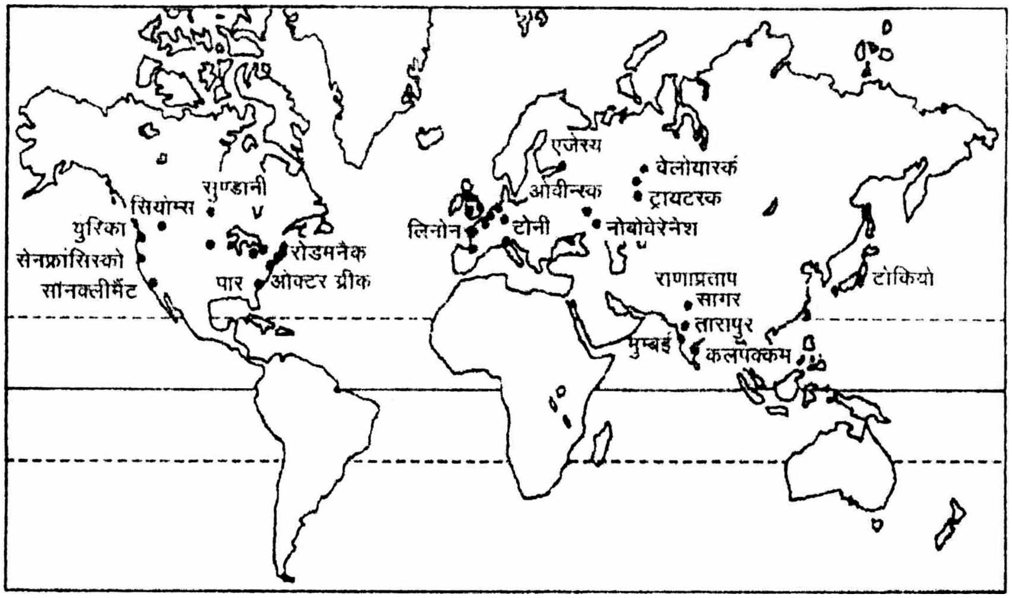

मानचित्र – 7.15 : विश्व में परमाणु शक्ति केन्द्र

1. **संयुक्त राज्य अमेरिका :** संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रथम अणु शक्ति ग्रह 1951 में पिट्सबर्ग के निकट शिपिंगपोर्ट में स्थापित हुआ था। इसके पश्चात् अणुशक्ति आयोग ने केलिफोर्निया में बर्कले, लिवरमोर, ओहियो में टेनेसी व कोलम्बिया, वाशिंगटन में हैंसफोर्ड, नेवादा में लास बेगास, इडाहों में आर्को, न्यूयार्क में सेनेक्टैडी एवं ब्रुक हेवेन, न्यूमैक्सिको में लॉस अलसास तथा जार्जिया में सवाना प्रमुख अणु शक्ति केन्द्र स्थापित किये। यू.एस.ए. विश्व की 29% अणु शक्ति का उत्पादन कर रहा है। यहाँ अनेक नये केन्द्र निर्माण अवस्था में हैं।

2. **रूस :** रूस में सर्वप्रथम सन् 1954 में प्रथम परमाणु शक्ति गृह नोवीवोरोनेश में स्थापित हुआ था, जिसकी उत्पादन क्षमता 5000 किलोवाट थी। इसके बाद बोलोयार्स्के, कोया, लैनिनग्राड़, कोलो, बिलबिना, मानग्रीलास्क आदि परमाणु शक्ति केन्द्र स्थापित किये गये। मानग्रीलास्क विश्व का सबसे बड़ा अणुशक्ति ग्रह है जिसकी क्षमता 3.5 लाख किलोवाट है।
3. **ग्रेट ब्रिटेन :** यहाँ सर्वप्रथम 1957 में कैल्डरहाल स्थान पर प्रथम अणु शक्ति केन्द्र स्थापित किया गया, जिसकी क्षमता 65000 किलोवाट थी। इसके बाद तटीय प्रदेश में अनेक केन्द्र बनाये गये। हंटर्सन, केले, विंडस्केल, ओल्डबरी, हिंकले, चैकलक्रास, विनफ्रिथ, प्वाइण्ट, सादूज्वेल, डाउनरे आदि प्रमुख अणु विद्युत उत्पादक केन्द्र हैं।
4. **फ्रांस :** फ्रांस विश्व का चौथा बड़ा परमाणु विद्युत उत्पादक देश है जो विश्व की 15४० अणु विद्युत का उत्पादन करता है। यहाँ मारकूले में प्रथम अणु विद्युत उत्पादक केन्द्र बनाया गया, जिसकी क्षमता 40 मेगावाट है। यहाँ दूसरा केन्द्र B–1 की क्षमता 1457 मेगावाट है। अन्य केन्द्र निर्माण अवस्था में हे।
5. **जापान :** जापान की कुल विद्युत शक्ति का 40% अणु विद्युत से प्राप्त होता है। यहाँ सर्वप्रथम 1957 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सहयोग से टोकाइ में अणु विद्युत संयंत्र लगाया गया है। सुरूगा दूसरा प्रमुख संयंत्र है। इसी के समीप 4 अन्य संयंत्र निर्माण अवस्था में हैं।
6. **कनाडा :** कनाडा विश्व का सर्वाधिक यूरेनियम उत्पादक देश है। यहाँ अणु विद्युत उत्पादन की असीम क्षमता है। यहाँ अनेक अणु विद्युत संयंत्र स्थापित है जिनकी क्षमता 70 अरब किलोवाट है।
7. **भारत :** भारत विश्व का छठा परमाणु परीक्षण करने वाला देश है। यहां 1949 के पश्चात् कल्याणकारी कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास किया गया। भारत में 1969. में पहला अणुशक्ति केन्द्र मुम्बई के निकट तारापुर में स्थापित किया गया। इसके बाद राजस्थान में रावतभाटा, तमिलनाडू में कलपक्कम, उत्तरप्रदेश में नरोरा, कर्नाटक में कैगा तथा गुजरात में काकरापार में अणुशक्ति ग्रह लगाये गये हैं।
8. **अन्य देश :** उपरोक्त देशों के अलावा जर्मनी, चेकेस्लोवाकिया, स्वीडन, स्पेन, बेल्जियम, फिनलैण्ड, इटली, स्विट्जरलैण्ड चीन, द. अफ्रीका, ब्राजील, मिश्र, अर्जेन्टाइना, उत्तरी व दक्षिणी कोरिया में अणु विद्युत का उत्पादन किया जाता हैं।

7.7 सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सूर्य ऊर्जा का महानतम स्त्रोत है, जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। वर्तमान समय मे विश्व में जितनी ऊर्जा उत्पादन क्षमता है उसकी एक लाख गुणा यह पृथ्वी पर भेजता है। इस महान ऊर्जा को विद्युत शक्ति में बदलकर ऊर्जा सकट से निजात पायी जा सकती है।

सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदलने की विधियाँ –

(i) सौर धूप को बड़े –बड़े आतशी शीशों, रिफ्लेक्टरों या लेंसों की सहायता से संग्रहित कर शक्ति में बदलना।

(ii) सौर धूप को विशेष प्रकार के सिलिकेन सेलों द्वारा सीधे ही विद्युत शक्ति में बदल दिया जाता है।

सौर ऊर्जा को तापीय अथवा फोटो वोल्टिक रूपान्तरण द्वारा अन्य रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। सौर ताप विकिरण को यांत्रिक, विद्युतीय तथा रासायनिक ऊर्जा के रूप में बदला जा सकता है। फोटो वोल्टिक विधि से सौर ऊर्जा को बिजली में बदलकर सामुदायिक प्रकाश, रेडियो, टेलीविजन आदि में प्रयोग किया जा रहा है।

विश्व में सौर ऊर्जा का विकास : विश्व में सौर ऊर्जा के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रथम स्थान है जहाँ लॉस एंजिल्स के मोजाव मरुस्थल में लुज नामक स्थान पर विश्व की विशालतम सौर भट्टी लगायी गयी है। यहाँ 9 विशाल सौर संयंत्र कार्यरत है। इस केन्द्र का वार्षिक उत्पादन 354 मेगावाट है। दूसरी सौर भट्टी विसकोन्सिन राज्य में स्थापित है जिसकी क्षमता 210 मेगावाट है। फ्रांस में पिरेनीज में ओर्डइल्लों के निकट एक विशाल सौर भट्टी स्थापित की है। भारत में सौर ऊर्जा की अपार संभावनायें है। यहाँ 66.5 MW क्षमता की 10, 38000 से अधिक फोटो वोल्टेज प्रणाली विकसित की जा चुकी है। जोधपुर के निकट फलौदी में सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित किया गया है।

7.8 पवन ऊर्जा (Wind Energy)

ऊर्जा के रूप में पवन चक्कियाँ प्राचीन समय से ही प्रयोग की जा रही हैं। ब्रिटेन में सर्वप्रथम 1185 में हल के निकट पवन चक्कियाँ लगायी गयी है। हालैण्ड में 1450 पवन चक्कियाँ कार्यरत है। डेनमार्क 1915 में सबसे बड़ा पवन शक्ति पैदा करने वाला देश था, जहाँ 3000 पवन चक्कियों थी। वर्तमान समय में पवन एक उपयोगी शक्ति का स्त्रोत बन सकता है। जर्मनी के फिनियन तट पर विश्व का विशालतम पवन शक्ति जेनरेटर स्थापित है जिसकी क्षमता 3000 किलोवाट है। हवाई द्वीप के उत्तरी तट पर 7300 किलोवाट क्षमता का विशाल पवन शक्ति जेनरेटर स्थापित किया गया है। पवन ऊर्जा उत्पादन में डेनमार्क–का तीसरा स्थान है, जहाँ समुद्र तटीय भाग में पवन शक्ति केन्द्र स्थापित है। भारत विश्व का पाँचवा पवन ऊर्जा उत्पादक देश है। यहाँ 2483 मेगावाट पवन विद्युत उत्पन्न होती है। एशिया का विशालतम पवन ऊर्जा केन्द्र तमिलनाडू के मुप्पंडाल में लगाया है जिसकी क्षमता 150 मेगावाट है । इसके अलावा राजस्थान के जैसलमेर, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र व लक्षद्वीप में 208 स्थानों पर पवन ऊर्जा केन्द्रों का विकास किया जा रहा है।

7.9 भूतापीय ऊर्जा (Geothermal Energy)

भू वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी के आन्तरिक भाग में प्राप्त उष्मा को ऊर्जा स्त्रोत के रूप में प्राप्त किया जा सकता हैं। इस ऊष्मा को कूप खोदकर जेनरेटर चलाकर विद्युत ऊर्जा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, जो सस्ती, स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित होगी। न्यूज़ीलैण्ड, आइसलैण्ड व इटली में पृथ्वी से प्राप्त ऊष्मा का प्रयोग बहुत पहले से ही किया जाता रहा है। इटली के ट्यूस्केनी प्रान्त में लारडेरेलों में 1913 से भू–तापीय ऊर्जा का उत्पादन किया जा रहा है। भारत के हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले में मणिकर्म स्थान पर भू–तापीय ऊर्जा से कोल्ड स्टोरेज व

एक विद्‌युत गृह स्थापित है। छत्तीसगढ़ के तातापानी व जम्मू कश्मीर के पूगा मे विद्‌युत उत्पादन की अच्छी संभावना है।

7.10 ज्वारीय शक्ति (Tidal Energy)

नये ऊर्जा स्त्रोतों में ज्वारीय शक्ति एक अक्षय संसाधन है, जिसकी काफी अधिक संभावनाऐं हैं। विश्व में प्रथम प्रयास फ्रांस ने किया, जहाँरैन्स नदी की एस्चुअरी पर ज्वारीय विद्‌युत संयंत्र गाया। इसकी उत्पादन क्षमता 544 मिलियन किलोवाट है। कनाडा के न्यूब्रून्सविक तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के मेन राज्य में फंडी की खाड़ी में भी ज्वारीय विद्‌युत संयंत्र स्थापित किये गये हैं। भारत में भी तिरूवन्तपुरम के निकट विजिगम स्थान पर 150 मेगावाट क्षमता का संयंत्र लगाया गया है। भारत में 40000 मेगावाट ज्वारीय विद्‌युत की क्षमता आंकी गयी है।

बोध प्रश्न –4

1. निम्न में से किससे परमाणु ऊर्जा प्राप्त की जाती हैं?
   (अ) अभ्रक (ब) कोयला
   (स) यूरेनियम (द) जल ( )
2. यूरेनियम उत्पादक देशों के नाम बताइये।
   ....
   ....
3. विश्व में सर्वाधिक परमाणु विद्‌युत का उत्पादन कहा होता है?
   ....
   ....
4. विश्व का विशालतम सौर ऊर्जा संयंत्र कहाँ स्थापित है?
   ....
   ....
5. भारत में ज्वारीय शक्ति उत्पादन संयंत्र कहाँ लगाया गया है?
   ....
   ....
6. भू–तापीय ऊर्जा क्या है ?
   ....
   ....

7.11 सारांश (Summary)

वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधन आधुनिक सभ्यता की रीढ़ माने जाते हैं। आज विश्व में जितनी ऊर्जा उपयोग में लायी जा रही है उसमें 39% खनिज तेल तथा 29% कोयले से प्राप्त होती है। जिस गति से ऊर्जा के इन दोनों संसाधनों कोयला व पेट्रोलियम का उपयोग बढ़ा हैं, उससे इनके समाप्त होने का खतरा भी बढ़ गया है अत: विश्व के सभी देश नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधनों के विकास की ओर तत्पर हुये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, यूरोपीय देश आदि ने जल

विद्युत, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा एवं सौर ऊर्जा आदि शक्ति संसाधनों के विकास पर ध्यान दिया है। परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों में विश्व की 35% जल विद्युत व 42% पवन विद्युत का उत्पादन किया जाता है। द. अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत आदि देशों में सौर ऊर्जा उत्पादन की पर्याप्त संभावनाऐं हैं।

7.12 शब्दावली (Glossary)

- नव्यकरणीय : ऐसे सतत् संसाधन जिनका बार–बार उपयोग किया जा सके अर्थात् जो कभी समाप्त नहीं होते जैसे–जल, सौर ऊर्जा, पवन आदि
- अनव्यकरणीय : ऐसे संसाधन जो एक बार उपयोग में लेने के बाद समाप्त हो जाते हैं – जैसे – कोयला, पेट्रोलियम आदि।
- जीवाश्म : जैविक अंशो से युक्त।
- स्नेहक : मशीनों, कलपुर्जो आदि में प्रयुक्त चिकनाई के पदार्थ।
- अक्षय : कभी भी समाप्त नहीं होने वाले।
- विभव : किसी भी संसाधन को प्राप्त करने की क्षमता का आकलन।
- भू–तापीय : पृथ्वी के आन्तरिक भाग में प्राप्त ऊष्मा।
- एस्चुअरी : नदी का वह मुहाना जहाँ प्रतिदिन ज्वार आता है।

7.13 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. कौशिक, एस. डी. : **संसाधन भूगोल**, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ
2. नेगी, पी. एस : **संसाधन भूगोल,** केदारनाथ रामनाथ, मेरठ
3. सिंह रख सिंह : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
4. गुर्जर एवं जाट : **संसाधन एवं पर्यावरण**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
5. गौतम, अलका : **संसाधन एव पर्यावरण,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. (अ)
2. (स) अवसादी चट्टानों से
3. अप्लेशियन क्षेत्र
4. 40 प्रतिशत
5. ऊर्जा संसाधनों को मुख्य रूप से दो भागों–नव्यकरणीय तथा अनव्यकरणीय में बांटा गया है।
6. कोयला चार प्रकार का एंथ्रेसाइट, बिटुमिनस, लिग्नाइट एव पीट पाया जाता हैं।
7. चीन में हुपे–बीजिंग क्षेत्र, शान्सी–शेन्सी क्षेत्र, मंचूरिया क्षेत्र, शाल क्षेत्र आदि प्रमुख कोयला क्षेत्र है।

8. गहरी खदानें, पतली परतें, अधिक उत्पादन लागत, विद्युत से प्रतिस्पर्धा आदि के कारणो से ब्रिटेन में कोयला उत्पादन में ह्रास हो रहा है।
9. भारत में गौण्डवाना क्षेत्र एवं टर्शियरी क्षेत्र में कोयला पेटियाँ मिलती है।
10. संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन, पौलेण्ड, आस्ट्रेलिया व द.अफ्रीका प्रमुख कोयला निर्यातक देश हैं।

बोध प्रश्न – 2.

1. परिवहन साधनों, मशीनों व क कलपुर्जों में स्नेहक के रूप में, कृत्रिम रबर, यातायात प्लास्टिक, नायलोन, दवाईयों, पेन वार्निश आदि में पेट्रोलियम का उपयोग होता है।
2. (द) पश्चिमी एशिया
3. (ब) वेनेजुएला
4. सागरीय जीवों व वनस्पति के भूमि में दबने से अत्यधिक ताप व दाब तथा अपघटन से रासायनिक परिवर्तन से पेट्रोलियम की उत्पत्ति हुई हैं।
5. विश्व में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में अलोगनी नदी बेसिन में सन् 1854 में पेट्रोलियम प्राप्त हुआ था।
6. रूस में वोल्गा–यूराल, एम्बा, साइबेरिया एव काकेशस क्षेत्र में पेट्रोलियम प्राप्त होता है।
7. भारत में 'बोम्बे हाई' प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है।
8. सऊदी अरब विश्व में सर्वाधिक तेल निर्यातक देश है।

बोध प्रश्न – 3

1. (ब) अक्षय
2. (द) अफ्रीका
3. पर्याप्त जल प्रवाह, ऊँचाई, निरन्तर जल प्रवाह, तापमान, पूंजी, बाजार की समीपता, प्राविधिक ज्ञान आदि दशाऐं आवश्यक है।
4. स्विटजरलैंड में तीव्रगामी नदियाँ तथा रेलों व उद्योगों में जलविद्युत की अत्यधिक मांग है।
5. जापान में पर्वतीय स्थलाकृति, अत्यधिक वर्षा, औद्योगिक ऊर्जा की मांग, पूंजी व तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता जैसी अनुकूल दशाओं के कारण जल विद्युत का अधिक उत्पादन होता हैं
6. टेनेसी घाटी योजना (यू.एस.ए.) विश्व की सबसे बड़ी जल विद्युत परियोजना हैं।

बोध प्रश्न – 4

1. (स) यूरेनियम
2. कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, द. अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी, जापान, भारत आदि प्रमुख यूरेनियम उत्पादक देश है।
3. संसार में सर्वाधिक परमाणु विद्युत का उत्पादन संयुक्त राज्य अमेरिका में होता हैं।
4. विश्व की विशालतम सौर ऊर्जा भट्टी संयुक्त राज्य अमेरिका में लॉस एंजिल्स के मोजाव मरुस्थल में लुज नामक स्थान पर है।
5. भारत में तिरूवन्तपुरम के निकट विजिगम स्थान पर ज्वारीय ऊर्जा संयंत्र लगाया गया है।

6. पृथ्वी के आन्तरिक भाग में प्राप्त उष्मा को ऊर्जा स्त्रोत के रूप में प्राप्त कर विद्युत ऊर्जा के रूप में प्रयोग करने की शक्ति।

7.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व में कोयले के उत्पादन, वितरण रम्य विश्व व्यापार का वर्णन कीजिये।
2. पेट्रोलियम की उत्पत्ति कैसे होती है? मध्य पूर्व के पेट्रोलियम क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन कीजिये।
3. पेट्रोलियम का महत्व बताते हुये उसके भण्डार, उत्पादन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का वर्णन कीजिये।
4. जल विद्युत उत्पादन के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाओं का विवेचन कीजिये।
5. विश्व में जल विद्युत के विकास पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
6. विश्व में परमाणु ऊर्जा के उत्पादन व वितरण का विवरण दीजिये।
7. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये

   (i)सौर ऊर्जा (ii) ज्वारीय ऊर्जा (iii) पवन ऊर्जा (iv) भू—तापीय ऊर्जा।

इकाई 8 : उद्योगों के अवस्थिति सिद्धान्त : वेबर, लॉश, हूवर एवं स्मिथ (Theories of Industrial Location - Weber, Losch, Hoover and Smith)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 वेबर का सिद्धान्त

8.2.1 वेबर के पूर्वानुमान

8.2.2 परिवहन लागत

8.2.2.1 एक बाजार व एक कच्चा पदार्थ

8.2.2.2 एक बाजार व दो कच्चे पदार्थ

8.2.3 श्रम लागत

8.2.4 आइसोडेपेन

8.2.5 समूहन

8.2.6 आलोचना

8.3 लॉश का सिद्धान्त

8.3.1 मांग शंकु

8.3.2 बाजार क्षेत्र का आकार

8.3.2.1 षट्कोणीय बाजार क्षेत्र का जाल

8.3.3 आलोचना

8.4 हूवर का सिद्धान्त

8.4.1 परिवहन लागत क संरचना

8.4.2 यातायात के साधन व दूरी में सम्बन्ध

8.4.3 परिवहन के प्रकार में पीरवर्तन

8.4.4 परिवहन लागत एवं औद्योगिक इकाई की अवस्थिति

8.4.4.1 कच्चे माल पर अवस्थिति

8.4.4.2 बाजार अवस्थिति

8.4.4.3 भार परिवर्तन या मध्य बिन्दु अवस्थिति

8.5 स्मिथ का स्थानिक लागत वक्र सिद्धान्त

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे –

- उद्योगों के स्थानीयकरण के सिद्धान्त,
- वेबर का सिद्धान्त,
- लॉश का सिद्धान्त,
- हूवर का सिद्धान्त,
- स्मिथ का सिद्धान्त।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

उद्योगों के स्थानीयकरण से तात्पर्य किसी स्थान विशेष पर उद्योगों के केन्द्रीकरण से है। प्रोफेसर राबर्टसन के अनुसार विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट उद्योगों के आकर्षित होने, विकसित होने तथा केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को उद्योगों के स्थानीयकरण के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

उद्योग के स्थानीयकरण हेतु कुछ निश्चित परम्परागत क्षेत्र या स्थान ही सदैव उपयुक्त नहीं रहते हैं। जनसंख्या की गतिशीलता, बाजार की व्यापकता, शक्ति के स्वरूप, कच्चे पदार्थों की प्रकृति में परिवर्तन तथा परिवहन साधनों के विकास के साथ–साथ राजनीतिक व व्यावहारिक निर्णयों से नवीन क्षेत्र व स्थान उद्योगों के स्थानीयकरण के योग्य बन जाते हैं।

उद्योगों के स्थानीयकरण के बारे में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। प्राचीन समय में इस दिशा में सोनेनफील्ड (Sonenfield), बुश एवं लॉनहार्ट (Busch & Launhardt) द्वारा किये गये प्रयास सराहनीय थे, परन्तु वे आगे नहीं बढ़ पाये। किसी उद्योग के स्थानीयकरण के निर्णय की समस्या को दो रूपों में समझा जा सकता है :

(1) स्थानिक सम्बन्ध (Spatial relations)

(2) व्यय अवस्थिति निर्धारण (Investment location decision)

इन दोनों के आधार पर ही उद्योगों के स्थानीयकरण पर विभिन्न विद्वानों के विचार एवं सिद्धान्त आधारित हैं।

उद्योगों के स्थानीयकरण के निर्णय पर अर्थशास्त्रियों के साथ ही भूगोलवेत्ताओं ने भी अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये है। इनमें से अर्थशास्त्रियों में अल्फ्रेड वेबर, ई एम हूवर, ऑगस्ट लॉश, आईजार्ड, स्मिथ, ग्रीनहट आदि तथा भूगोलवेत्ताओं में जॉर्ज टी. रेनर, रॉष्ट्रान, अलेक्जेण्डर, एलन प्रेड आदि के नाम प्रमुखता से लिये जाते हैं।

उद्योगों के स्थानीयकरण के संदर्भ में प्रस्तुत विभिन्न विचारधारायें एवं सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

1. अल्फ्रेड वेबर – न्यूनतम लागत अवस्थिति विचारधारा
   (A. weber) (The Least cost location

			approach)
2.	लॉश व फेटर (Losch and Fetter)	–	बाजार क्षेत्र विचारधारा (The Market Area approach)
3.	ई.एम. हूवर (E.M Hoover)	–	परिवहन लागत विचारधारा (The Transport cost approach)
4.	ई.एम.राष्ट्रॉन.व.डी.एम. स्मिथ (E.M Rawstron and D.M Smith)	–	सीमान्त अवस्थिति विचारधारा (The Marginal approach)
5.	एलन प्रेड (Allen Pred)	-	व्यवहारवादी विचार धारा (The Behavioural approach)

8.2 वेबर का सिद्धान्त (Theory of Weber)

जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड वेबर द्वारा उद्योगों के स्थानीयकरण का प्रथम क्रमबद्ध एवं विवेकपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। वेबर ने 1909 में अपनी पुस्तक 'बर डन स्टेन्डोर्ट डर इन्डस्ट्रियन' (Urben den standort der Industrien) में अपने विचारों को स्पष्ट किया। इसका अंग्रेजी संस्करण शिकागो विश्वविद्यालय द्वारा 1929 में 'थ्योरी ऑफ लोकेशन ऑफ दी इण्डस्ट्रीज' (Theory of the location of The Industries) के नाम से प्रकाशित किया गया। वेबर द्वारा लौन्हार्ट के अल्प व्यय अवस्थिति सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया था। लौन्हार्ट ने 1882–85 में स्थानीयकरण के बारे में विचार प्रस्तुत किये थे।

8.2.1 वेबर के पूर्वानुमान (Assumptions of Weber)

वेबर द्वारा कुछ प्राथमिक पूर्वानुमान किये गये जो कि इस प्रकार हैं –

1. उद्योग की स्थापना किये जाने वाले क्षेत्र या प्रदेश एक अलग एकाकी स्वतंत्र इकाई है जो कि एक ही प्रशासक के अधीन है। इसमें सभी जगह एक समान जलवायु, प्राकृतिक बनावट, एक ही जातीयता वाली जनसंख्या तथा समान तकनीकी चातुर्य है।
2. कच्चे माल की स्थिति के स्त्रोत का स्थान निश्चित है। इनकी स्थिति के बारे में पूर्ण जानकारी है।
3. एक केन्द्रीय बिन्दु बाजार है जहाँ पर कि फर्म द्वारा उत्पादित माल उपभोक्ता को बेचना है।
4. एक समय में एक ही वस्तु के उत्पादन पर ध्यान दिया जा रहा है।
5. श्रम निश्चित प्रदेशों में उपलब्ध है।
6. परिवहन जाल सभी संदर्भो में समान और वेबर ने यह रेलवे माना है। परिवहन लागत में केवल भार व दूरी के अनुपात में वृद्धि होती है।

वेबर ने इन पूर्वानुमानों के आधार पर विभिन्न उद्योगों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अवस्थिति के बारे में बताया जिसकी तीन प्रक्रियायें –

1. न्यूनतम परिवहन लागत अवस्थिति (Minimum Transport Cost Location)
2. श्रम लागत के कारण विचलन (Distortions caused by Labour Cost)
3. समूहन के कारण विचलन (Distortions caused by agglomeration)

वेबर द्वारा स्थानीयकरण पर प्रभाव डालने वाले कारकों को दो भागों में बांटा गया। प्रथम में प्रमुख कारकों के रूप में परिवहन व्यय तथा श्रम पर होने वाले व्यय एवम् द्वितीय में गौण कारकों के अन्तर्गत केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को शामिल करते हुए उद्योगों की स्थिति को स्पष्ट किया। वेबर के अनुसार उद्योग का स्थानीयकरण उसी स्थान पर होता है जहाँ उत्पादन की लागत सबसे कम आता है। उत्पादन लागत दो प्रमुख तत्वों पर आधारित होती है :

1. परिवहन लागत (Transport Cost)
2. श्रम पर होने वाली लागत (Cost on labour)

8.2.2 परिवहन लागत (Transport cost)

वेबर ने परिवहन व्यय को दो प्रकार से – आवक लागत तथा विपणन लागत के रूप में स्पष्ट किया। आवक लागत (Assembly Costs) वह व्यय है जो कि कच्चे माल व ईंधन को उत्पादन स्थान पर पहुँचाने में आती है। विपणन लागत (Distribution or Marketing Costs) वह लागत है जो कि तैयार माल को बाजार तक पहुँचाने में लगती है।

कुल परिवहन व्यय के अन्तर्गत कच्चे माल व ईंधन की आवक लागत और उत्पादन की विपणन लागत दोनों को शामिल किया जाता है। वेबर के अनुसार किसी भी उद्योग की इकाई की स्थापना वहाँ होनी चाहिये जहाँ पर कच्चे माल को एकत्रित करने एवं निर्मित माल को बाजार तक पहुँचाने में परिवहन पर किये जाने वाला व्यय न्यूनतम हो। इसको जानने के लिये कच्चे माल की प्रकृति एवं इसे तैयार करने की विधि से सम्बन्धित शब्दावली से परिचित होना आवश्यक है।

(I) स्थानीय पदार्थ (Localized Marketing) : ऐसे पदार्थ जो किसी निश्चित स्थान अर्थात् स्थान विशेष पर मिलते हैं जैसे – धातुयें, खनिज, ईंधन आदि। ऐसे पदार्थ उद्योग के स्थानीयकरण में विशेष भूमिका निभाते हैं।

(II) सर्वप्राप्य या सर्वत्र सुलभ पदार्थ (Ubiquitous Material) : ऐसे पदार्थ जो कि सामान्यत: सभी स्थानों पर उपलब्ध हैं एवं जिनका मूल्य सर्वत्र समान है। इन पदार्थों का उद्योग के स्थानीयकरण पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, जैसे – जल, वायु व मिट्टी आदि।

(III) शुद्ध पदार्थ (Pure Material) : ये वे पदार्थ हैं जिनको कच्चे माल से तैयार माल में परिणत करने पर उनके वजन में कोई विशेष कमी नहीं आती है। जैसे – कपास, ऊन, जूट आदि। इनका स्थानीयकरण पर विशेष प्रभाव नहीं रहता है। ऐसे पदार्थो पर आधारित उद्योगों को कच्चे माल के स्त्रोत या बाजार कहीं पर भी स्थापित किया जा सकता है।

(IV) अशुद्ध पदार्थ (Gross Material) : ऐसे स्थानीय पदार्थ जिनका वजन वस्तु निर्मित होने पर कच्चे माल के वजन की तुलना में काफी कम हो जाता है। उदाहरणत: कच्चा लोहा एवं गन्ना आदि। इस प्रकार के पदार्थ स्थानीयकरण पर विशेष प्रभाव डालते हैं।

(V) पदार्थ सूचकांक/निर्देशक आइसोडेपेन (Material Index / ISODAPAN) समान परिवहन लागत : वेबर के अनुसार पदार्थ सूचकांक स्थानीयकृत पदार्थों के वजन तथा निर्मित माल के वजन का अनुपात हैं। रेखाऐं जिनका अर्थ आगे के अध्ययन में स्पष्ट हो जायेगा।

स्थानीय पदार्थों की कच्ची अवस्था तथा निर्मित अवस्था के भार के अनुपात को पदार्थ निर्देशांक कहा जाता है। ऐसी वस्तुयें जो शुद्ध पदार्थ से बनती हैं और जिनका वजन बराबर रहता है, उनका पदार्थ सूचकांक सदैव एक होता है। मिश्रित पदार्थों से उत्पन्न वस्तुओं का पदार्थ सूचकांक सदैव एक से अधिक होता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा, उद्योग का स्थानीयकरण केन्द्र कच्चे माल के समीप होगा। यदि अनुपात एक या एक से कम है तो उद्योग का स्थानीयकरण सुविधानुसार किसी भी स्थान पर हो सकता है किन्तु इस स्थिति में मुख्य आकर्षण बाजार ही होगा।

(VI) स्थानीयकरण भार (Localization Weight) : प्रति इकाई उत्पादित वस्तु के लिये कच्ची सामग्री का परिवहन भार एवं उत्पादित वस्तु को ले जाने का परिवहन भार सब मिलाकर स्थानीयकरण भार कहलाता है।

वेबर द्वारा अपनी मान्यताओं तथा उपरोक्त शब्दों के आधार पर परिवहन लागत का उद्योग की अवस्थिति पर प्रभाव स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित दशाओं की संभावना व्यक्त की गई –

8.2.2.1 एक बाजार व एक कच्चा पदार्थ (One Market and one Raw Material)

यह मान लिया जाय कि एक उद्योग यदि एक वस्तु का उत्पादन करना चाहता है, जिसके लिए एक ही कच्चा माल चाहिये और उत्पादित वस्तु को एक ही बाजार में बेचता है। इस दशा में उद्योग की अवस्थिति कहाँ होगी। इसकी वेबर ने तीन संभावनायें व्यक्त की –

1. यदि कच्चा माल सर्वत्र सुलभ है तो उद्योग की स्थापना प्राय : बाजार के समीप होगी क्योंकि यहाँ पर कच्चा माल उपलब्ध है तथा तैयार माल पर परिवहन लागत भी नहीं लगेगी।
2. यदि कच्चा माल भार क्षति वाला है तो स्वाभाविक रूप में उद्योग की स्थापना कच्चे माल वाले स्थान पर ही होगी।
3. यदि कच्चा माल एक निश्चित स्थान पर ही है किन्तु पदार्थ शुद्ध है तो उद्योग की स्थिति बाजार अथवा कच्चे माल के स्त्रोत दोनों स्थानों पर हो सकती है क्योंकि पदार्थ निर्देशांक में बहुत अन्तर नहीं होता है।
4. यदि कच्चा माल शुद्ध है और सर्वत्र सुलभ है तो शुद्ध पदार्थ का प्रभाव नहीं होगा और सर्वत्र उपलब्धता के कारण उपभोग के केन्द्र (बाजार) पर उद्योग स्थापित होगा।

8.2.2.2 एक बाजार व दो कच्चे पदार्थ (One Market and Two Raw Materials)

यदि किसी उद्योग के लिये दो कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होती है किन्तु मांग केवल एक निश्चित स्थान पर होती है तो उद्योग की स्थिति की संभावित दशायें निम्न हो सकती हैं –

1. यदि दोनों पदार्थ सर्वत्र सुलभ हैं तब उद्योग बाजार के निकट स्थापित होगा क्योंकि यहाँ परिवहन लागत न्यूनतम होगी।
2. यदि स्व कच्चा पदार्थ सर्व प्राप्य है तथा दूसरा बाजार के निकट स्थित है अथवा अन्यत्र कहीं पर, साथ ही दोनों पदार्थ शुद्ध हैं तो कारखाना बाजार के स्थान पर स्थापित होगा।
3. यदि दोनों कच्चे पदार्थ निश्चित स्थान पर है व शुद्ध हैं तो उद्योग की स्थिति बाजार के समीप होगी।
4. यदि कच्चे पदार्थ भार क्षति वाले हैं तथा दो निश्चित स्थानों पर हैं तो उद्योग की स्थिति समस्या युक्त होगी। सामान्यत: भार क्षति वाले कच्चे पदार्थों वाले उद्योग स्त्रोत के समीप ही स्थापित किये जायेंगे जिससे परिवहन लागत कम आये। इस समस्या का समाधान वेबर द्वारा स्थानीयकरण त्रिभुज बनाकर किया गया है। यदि दोनों कच्चे पदार्थों की भार क्षति में विशेष अन्तर है तो अधिक भार क्षति वाले पदार्थ के समीप उद्योग की स्थिति होगी।

उपरोक्त स्थितियों के अलावा दो बाजार व दो कच्चे माल के स्त्रोत या तीन बाजार और दो कच्चे माल के स्त्रोत आदि अवस्थायें भी हो सकती हैं । जिसके कारण भिन्न–भिन्न उद्योगों की स्थिति निर्धारण में (परिवहन लागत के कारण) भिन्नताऐं उत्पन्न हो सकती हैं।

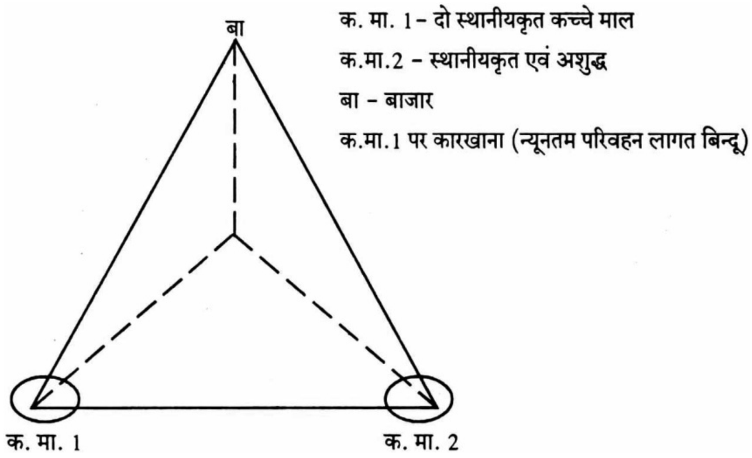

चित्र– 8. 1 : स्थानीयकरण त्रिभुज

8.2.3 श्रम लागत (Labour Cost)

वेबर के अनुसार जब किसी स्थान पर उद्योगों के स्थानीयकरण में यातायात व्यय की तुलना में श्रम व्यय अधिक सस्ता होता है तो इस दशा में उद्योगों के स्थानीयकरण में परिवहन व्यय का महत्व समाप्त हो जाता है और श्रम व्यय ही स्थानीयकरण का निर्धारक होता है। श्रम का स्थानीयकरण निम्नलिखित दो तत्वों से प्रभावित होता है –

1. **श्रम लागत निर्देशांक (Labour Cost index) :** श्रम लागत तथा निर्मित माल के कुल भार के अनुपात को श्रम लागत निर्देशांक कहते हैं।

$$\text{श्रम लागत सूचकांक} = \frac{\text{उत्पादित वस्तु का कुल भार}}{\text{श्रम लागत}}$$

2. **स्थानीयकरण भार (Locational weight) :** उत्पादन की सम्पूर्ण विधि में परिवहन पर किये जाने वाला कुल भार स्थानीयकरण भार कहलाता है।

श्रम लागत का स्थानीयकरण भार से अनुपात श्रम गुणांक कहा जाता है। श्रम गुणांक के अनुपात के कारण उद्योग परिवहन स्थानीयकरण से श्रम स्थानीयकरण की ओर विचलित होते है। इसमें संदेह नहीं कि श्रम के खर्च में कटौती करके परिवहन के अधिक खर्च की समस्या दूर की जा सकती है व इस कटौती के कारण उद्योग उक्त दशाओं से हटाकर अन्यत्र स्थापित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में वेबर द्वारा स्व विचार प्रस्तुत किया गया जिसे 'आइसोडेपेन्स' (Isodapanes) कहते हैं।

8.4.4 आइसोडेपेन्स (Isodapanes)

आइसोडेपेन्स (Equal in Expense) वह रेखा है जो समान कुल व्यय के बिन्दु पथ को मिलाती है। जबकि आइसोटीप्स (Isotimes - Equal in Expense) वह समरेखा है जो कि प्रत्येक पदार्थ (कच्चा माल या तैयार माल) के समान परिवहन व्यय को मिलाती है। चित्र– 8.7 को स्पष्ट करने के लिए कुछ धारणाओं की व्याख्या आवश्यक है –

1. कच्चे माल और तैयार माल का प्रतिटन X मील X परिवहन व्यय = 1 है।
2. 'बा' अर्थात् बाजार के चारों ओर खीचें गये सभी संकेन्द्रीय वृत्त परिवहन व्यय को व्यक्त करते हैं।
3. स्त्रोत के चारों ओर खींचें गये वृत्त भी समान परिवहन व्यय को व्यक्त करते हैं।
4. कच्चे माल अशुद्ध है जो अपने भार को निर्माण क्रिया में पचास प्रतिशत कम कर देते हैं।

उपरोक्त स्थिति में यदि उद्योग की स्थिति स्त्रोत के समीप है तो स्त्रोत से बाजार तक प्रति टन पदार्थ भेजने मे दस इकाई परिवहन व्यय होगा जबकि बाजार केन्द्र पर उद्योग के स्थानीयकरण पर परिवहन व्यय बीस इकाई होगा क्योंकि प्रत्येक एक टन उत्पादन के लिए दो टन कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है।

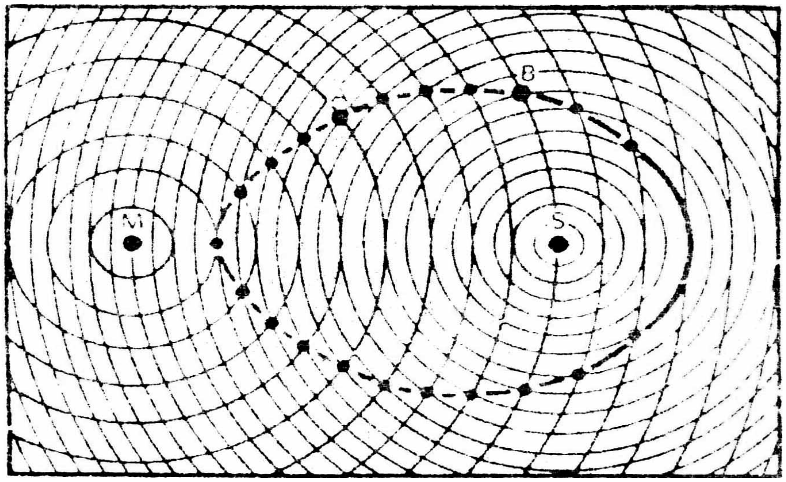

चित्र– 8.2 : आइसोडेपेन्स

उपरोक्त चित्र में जो मोटी रेखा प्रदर्शित की गयी है, उसे 'आइसोडापान्स' कहते हैं। उस रेखा पर सभी स्थानों पर श्रम व्यय की आठ इकाई की सुविधा होनी चाहिये, तभी वहाँ पर उद्योग का लाभप्रद स्थानीयकरण सम्भव है।

इस प्रकार श्रम व्यय एवं परिवहन व्यय दो महत्वपूर्ण कारकों के आधार पर वेबर ने उद्योग की प्रादेशिक स्थिति को निश्चित करने का प्रयास किया।

8.2.5 समूहन (Agglomeration)

वेबर द्वारा उद्योगों के स्थानीयकरण में समूहन का महत्वपूर्ण प्रभाव माना है । उसके अनुसार समूहन तीन प्रकार के होते हैं :

1. कारखाने का विस्तार करने से।
2. एक ही उद्योग के अनेक कारखाने एक ही स्थान पर स्थापित होने से।
3. विभिन्न प्रकार के उद्योगों के एक स्थान पर स्थापित होने से।

वेबर ने बताया कि अतिरिक्त परिवहन व्यय होने पर भी समूहन की सुविधा से लाभ मिलने पर उद्योग की स्थापना सर्वोत्तम स्थान से हटाकर की जा सकती है जहाँ कि समूहन से प्राप्त लाभ परिवहन खर्च की वृद्धि से अधिक या बराबर हो। समूहन में वृद्धि होते जाने पर उससे प्राप्त लाभ उसी अनुपात में बढ़ते जाते हैं तथा एक साथ कई उद्योगपतियों द्वारा एक ही स्थान पर उद्योग स्थापित करने का निर्णय करने पर ही समूहन का लाभ सम्भव है।

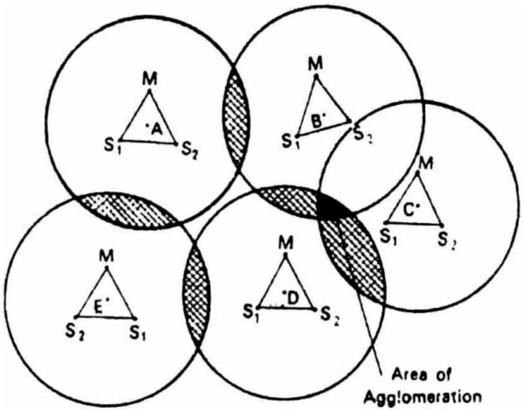

8.2.6 आलोचना (Criticism)

वेबर के सिद्धान्त के प्रमुख आलोचक एस.आर.डेनीसन, सार्जेन्ट फ्लोरेन्स, एंड्रीज प्रीडाल एवं ऑस्टिन रॉबिन्सन आदि हैं। उसके पूर्वानुमान एवं प्रस्तुत विचार किसी भी आदर्श स्थिति के समान अवास्तविक है। इसकी प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं :

1. पीरवहन व्यय –

(अ) परिवहन व्यय की दर में सदैव दूरी के अनुपात में वृद्धि नहीं होती है।

(ब) कच्चे माल एव तैयार माल पर परिवहन व्यय समान नहीं होता है।

(स) परिवहन लागत के साथ ही उत्पादन प्रक्रिया की लागत भी महत्वपूर्ण है।

2. शुद्ध पदार्थ की भूमिका को कम तथा अशुद्ध पदार्थ की भूमिका को ज्यादा महत्व दिया।

3. श्रम की गतिशीलता व उत्पादकता की उपेक्षा की गई।
4. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के तीव्र विकास से औद्योगिक स्थिति लचीली होने से साहस एवं प्रबंधन भी महत्वपूर्ण कारक बन गये हैं।
5. वेबर द्वारा संभावित मांग एवं पूर्ति के स्थानिक परिवर्तनों के प्रभावों को कोई महत्व नहीं दिया गया।
6. वेबर ने विभिन्न राजनैतिक स्वरूपों में उद्योग की स्थिति को स्पष्ट नहीं किया।
7. परिवहन प्रणाली एवं तकनीकी में व्यापक सुधार हुए है। इससे परिवहन का मुख्य कारक के रूप में महत्व भी कम हुआ है। गत दशकों से अनेक उद्योगों में बाजारोन्मुखी प्रवृत्ति है।
8. वेबर ने आर्थिक तत्वों के प्रभाव को ही अधिक महत्वपूर्ण माना है। प्रकाशाराव (1942) ने उद्योगों के स्थानीयकरण पर भौगोलिक तत्वों के प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हुए वेबर के मत को अस्वीकार किया है। डॉ. दयाल (1964) ने भी भारत के सीमेन्ट, लोहा–इस्पात उद्योगों के स्थानीयकरण पर भौगोलिक तत्वों के प्रभाव के महत्व पर जोर दिया।
9. वर्तमान में उद्योगों की स्थापना में राजनैतिक प्रतिष्ठा, सामाजिक सम्मान, राष्ट्रीय नीतियां व मानवीय कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद भी वेबर के सिद्धान्त का अपना विशिष्ट महत्व है। वह पहला व्यक्ति था जिसने औद्योगिक अवस्थिति के निश्चित सिद्धान्त व आधार बताये। उसने स्वयं माना कि सिद्धान्त में कमियां हो सकती है। इस संदर्भ में उसने बताया कि इस क्षेत्र में यह प्रयास आरम्भ है, अन्त नहीं। उसकी मुख्य उपलब्धि यही कि वह यह तो स्पष्ट करने में पूर्णत: सफल रहा कि वे उद्योग जिनमें भार हानि होगी, वे कच्चे पदार्थ के स्त्रोत के समीप तथा जिनमें कोई विशेष भार हानि नहीं होगी, वे बाजारोन्मुखी होंगे। अत: समग्रत: सिद्धान्त पूर्णत: अवास्तविक न हो कर यथार्थ के निकट है।

बोध प्रश्न – 1

1. उद्योगों के स्थानीयकरण के सिद्धान्तों के प्रतिपादकों के नाम बताइये।

   ....

   ....

2. पदार्थ निर्देशांक को परिभाषित करिये।

   ....

   ....

3. श्रम स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्व कौन–कौन से है?

   ....

   ....

8.3 लॉश का सिद्धान्त (Theory of Losch)

लॉश का सिद्धान्त वेबर के सिद्धान्त 'न्यूनतम परिवहन लागत' से विपरीत है। इसे बाजार क्षेत्र विचारधारा (Market area School) के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

लॉश द्वारा 1940 में जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक 'Die raumliche ordnung derwirtschaft' का 1954 में अंग्रेजी संस्करण 'The Economics of Location' के नाम से प्रकाशित हुआ। लॉश ने उद्योग के स्थानीयकरण के न्यूनतम लागत सिद्धान्त का खण्डन करते हुए बताया कि कोई उद्योग उस स्थान पर स्थापित होगा, जहाँ कुल लागत तथा कुल आय का अन्तर अधिकतम हो न कि न्यूनतम लागत वाले स्थान पर होगा।

8.3.1 मांग शंकु (The Demand Cone)

जर्मन अर्थशास्त्री ऑगस्ट लॉश ने मांग को उद्योगों के स्थानीयकरण का प्रमुख कारक मानते हुए पहला सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित
किया। लॉश ने वस्तु की मांग से सम्बन्धित बाजार क्षेत्र के विचार को मांग शंकु से समझाया। लॉश द्वारा निम्न पूर्वानुमान या मान्यतायें अपनायी गयी –

1. जनसंख्या का समान वितरण और समान परिवहन सुविधा।
2. इस प्रदेश में उत्पादन उपभोक्ताओं के लाभ के दृष्टिकोण से प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम लाभ प्राप्त करने को तत्पर है।
3. इस प्रदेश में उत्पादन स्थल अभीष्टतम संख्या में होंगे।
4. उक्त स्थिति में उत्पादन, आपूर्ति क्षेत्र व विक्रय क्षेत्र लघुतम होंगे।
5. किसी भी एक उत्पादक को असामान्य लाभ प्राप्त करने की संभावना न रहे, ऐसे तभी होगा जब असामान्य लाभ का अवसर मिलते ही पूर्ण प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाये।
6. बाजार क्षेत्र की सीमा पर स्थित उपभोक्ता निकटतम उत्पादकों में से ही क्रय करने के लिए तत्पर रहे।

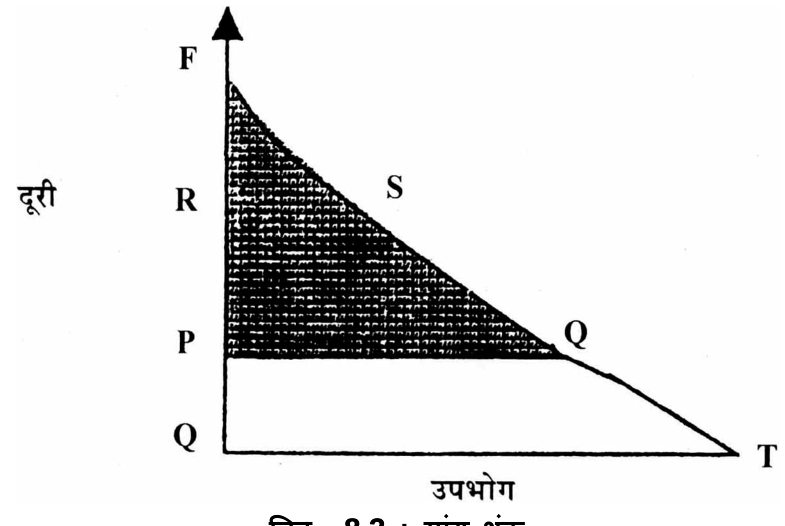

चित्र– 8.3 : मांग शंकु

उक्त मान्यताओं के अन्तर्गत लॉश एक आरम्भिक स्थिति की कल्पना करते हैं, जिसमें सम्पूर्ण प्रदेश में आत्मनिर्भर कृषि में संलग्न समान रूप से वितरित ग्रामीण अधिवास हैं। अब यदि इनमें से एक केन्द्र किसी पदार्थ विशेष का अधिक उत्पादन करता है, जिसका विक्रय करना चाहता है तो उस पदार्थ के लिए एक वृत्ताकार बाजार क्षेत्र विकसित होगा, जहाँ कि परिवहन में

क्रमशः वृद्धि के कारण कीमत इतनी अधिक हो जायेगी कि उस वस्तु की मांग बंद हो जाये। बीयर का मांग वक्र चित्र के अनुसार होगा बीयर की मांग OP शराब कारखाने में होती है। जब कीमत OP होती है तो PQ मात्रा का उपभोग किया जाता है। P से आगे RS पर उपभोग कम होता है क्योंकि R पर P की अपेक्षा परिवहन लागत में वृद्धि हो जाती है। F पर परिवहन लागत अत्यधिक हो जाने से बीयर नहीं बिक सकती। FT बीयर का मांग वक्र है। बीयर का बाजार क्षेत्र PFQ को चारों ओर घुमाने पर जो क्षेत्र बनेगा वह उसकी बिक्री का क्षेत्र होगा।

8.3.2 बाजार क्षेत्र का आकार (The Shape of Market area)

माँग शंकु से प्राप्त बाजार क्षेत्र अंततः सिकुड़कर षट्कोणीय आकृति बनाते हैं। ऐसा क्यों होता है? स्पष्ट लिखें। लॉश मानते हैं कि षट्कोणीय बाजार प्रारूप एक आदर्श बाजार क्षेत्र है, क्योंकि इसका लाभ सभी उपभोक्ता उठाते हैं, जहाँ पर परिवहन लागत कम आती है। बाजार का यह आदर्श षट्कोणीय प्रतिरूप मधुमक्खी के छत्ते की भांति होगा।

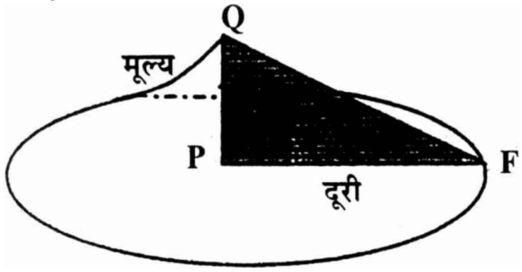

चित्र– 8.4 : मांग शंकु

8.3.2.1 षट्कोणीय बाजार क्षेत्र का जाल (A Network of Hexagonal Market Area)

जनसंख्या के समान वितरण के साथ प्रत्येक उद्योग अपना एक विशेष आकार विस्तार का षट्कोण बनाता है और उसमें दूरी का विभाजन भी उस षट्कोण के समान आकार वाले मधुकोष छाते के अनुरूप होता है। यदि तीन विभिन्न अनुपात के षट्कोणीय बाजार क्षेत्रों, जो कि माना मदिरा उत्पादक, बेकरी उत्पादन एवं रसायनिक गैस निर्माण को प्रदर्शित करते हैं। इनको किसी मेज पर छितरी अवस्था में फैला दिये जाने पर विभिन्न उत्पादक केन्द्रों के अंर्तसम्बन्धों को देखा जा सकता है। ऐसा बहुत कम पाया जायेगा जबकि तीनों ही उद्योग एक अवस्थिति को दर्शाये। व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक रूप में यह स्पष्ट है कि जितने उत्पादक कार्य होंगे, उतने ही उनके जाल होंगे, जिन्हें अध्यारोपित करने पर एक विषम षट्कोणीय बाजार का जाल बनता है।

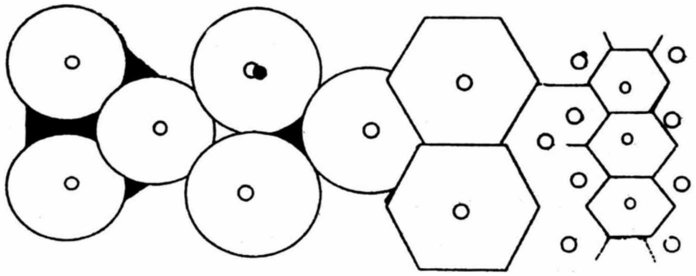

चित्र– 8.5 : बाजार क्षेत्र का गोलाकार से षट्कोणीय बनना

लॉश का अगला कदम जालों को व्यवस्थित करके कम से कम एक सार्वजनिक केन्द्र प्राप्त करना है जो स्थानीय मांग के आकार के आधार पर मुख्य नगर बन सके। चित्र में तीन जाल नगर के बहुत निकट हैं। ये जाल मुख्य नगर के चारों ओर खण्ड (Sector) प्रतिरूप में छः अधिक उत्पादक केन्द्रों वाले क्षेत्र तथा छः कम उत्पादक वाले क्षेत्रों को प्रदर्शित करते हैं। इन छः खण्डों में समूहन होने के मुख्य कारण जनसंख्या में वृद्धि, परिवहन लागत में कमी व मांग में वृद्धि है जिनके कारण स्थानीय कारखानों में विभिन्न चीजों की खरीददारी बढ़ जाती है।

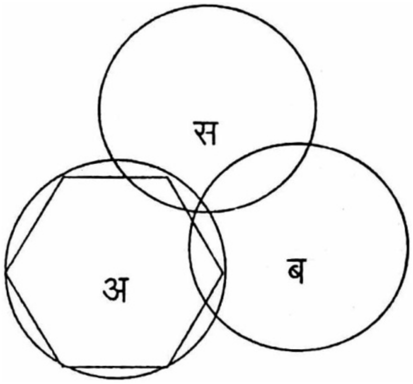

चित्र– 8.6 : षट्कोणीय बाजार क्षेत्र

लॉश अपने बाजार क्षेत्र विश्लेषण को ऊपर बताये तथ्य द्वारा इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं कि उद्योगों में एक स्थान पर समूहन की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस तंत्र में कुछ खण्ड उद्योगों की दृष्टि से धनी एवं अन्य निर्धन कहे जा सकते हैं किन्तु ये दोनों ही प्रकार के खण्ड महानगर के चारों ओर फैले पाये जाते हैं यह चित्र 8.7 में छायांकित क्षेत्र घनी आबादी क्षेत्र को दर्शाता है। इसे ही लॉश के भूदृश्य (Loschian Landscape) के नाम से जाना जाता है।

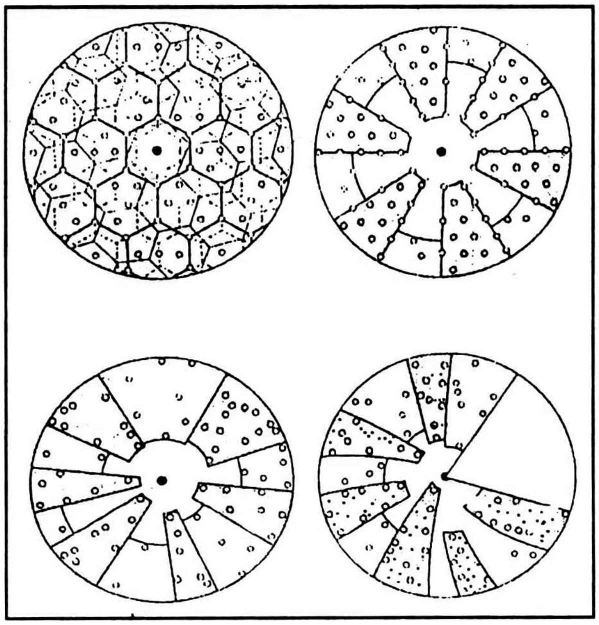

चित्र– 8.7 : लॉश का भूदृश्य

8.3.3 आलोचना (Criticism)

लॉश की उसके द्वारा बताये गये आदर्श तंत्र (भूदृश्य) के लिए आलोचना की जाती हैं। ग्रीनहट इसे प्रतियोगितात्मक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए अनुपयुक्त मानते हैं। लॉश की स्थानिक अर्थव्यवस्था के कुछ पहलुओं की सत्यता के बारे में बेकमेन (Beckman, 1955), वाल्वानिस (Walvains, 1955), रॉबर्टसन (Robertson, 1956), इजार्ड (Isard, 1956), रिचर्डसन (Richardson, 1969) आदि संदेह व्यक्त करते हैं। इलियट हर्स्ट लिखते हैं कि यह ऐसे पूर्वानुमानों पर आधारित है जो कि यथार्थवादी हैं। इस सिद्धान्त के विरोध के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं –

1. यह सिद्धान्त उत्पादन केन्द्रों के मध्य बाजार क्षेत्र के आदर्श आवंटन पर आधारित हैं इसमें उत्पादन लागत की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है।
2. इस सिद्धान्त में स्व विशेष प्रकार के आर्थिक भूदृश्य की कल्पना की गई है जिसमें कृषि का समान क्षेत्रीय विस्तार माना गया है जबकि उसके उत्पादन के लिए बाजार बिन्दु विशेष पर केन्द्रित है। ऐसा आर्थिक भूदृश्य वास्तविक रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्यवर्ती मैदान की तरह कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में ही मिल सकता है, अन्यत्र नही।
3. किसी भी वस्तु विशेष के उत्पादन हेतु खपत का उपयुक्त बाजार नगरों के भीतर आकार में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा छोटा होता है।
4. इस सिद्धान्त से वास्तविक औद्योगिक उत्पादन के स्थानीयकरण की व्यवस्था में विशेष सहायता नहीं मिलती है।

निष्कर्षत: लॉश के सिद्धान्त की सार्थकता एक आदर्श संतुलित आर्थिक भूदृश्य के प्रतीक के रूप में है। यह सिद्धान्त उद्योग की विशिष्ट लाभदायक स्थितियों की उपयुक्तता से जानकारी देता है।

बोध प्रश्न – 2

1. लॉश के सिद्धान्त को किस विचारधारा में शामिल किया जाता है?

....

....

2 .लॉश ने बाजार क्षेत्र के विचार को किस आधार पर समझाया?

....

....

3. लॉश का भूदृश्य से आप क्या समझते हैं?

....

....

8.6 हूवर का सिद्धान्त (Theory of Hoover)

किसी भी औद्योगिक तंत्र की जीवन रेखा विकसित एवं सक्षम परिवहन जाल है। किसी भी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने–ले–जाने में उस पर आने वाली लागत काफी महत्वपूर्ण

है। परिवहन लागत एक ऐसा कारक है जो कि उद्योगों में निवेश व उत्पादन–विपणन को प्रभावित करता है। उद्योगों की अवस्थिति के निर्णय में परिवहन लागत की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। हूवर का सिद्धान्त परिवहन लागत अवस्थिति विचारधारा में शामिल है।

ई.एम.हूवर अमेरिकी विद्वान थे। हूवर ने परिवहन लागत पर प्रस्तुत अपने सैद्धान्तिक विश्लेषण में स्पष्ट किया कि परिवहन लागत ही अवस्थिति का निर्णायक तत्व है। हूवर के विचार दो पुस्तकों 'लोकेशन थ्योरी एंड शू एंड लेदर इंडस्ट्रीज (Location theory and shoe and leather industries, 1937) तथा' 'दी लोकेश्न ऑफ इकॉनोमिक एक्टिविटीज' (The location of Economic Activities, 1948) में वर्णित है।

8.6.1 परिवहन लागत की संरचना (The structure of Transport Cost)

परिवहन लागत से अर्थ सामान के परिवहन में आने वाले कुल व्यय से है। ई.एम.हूवर द्वारा परिवहन लागत की संरचना में दो तत्वों को महत्वपूर्ण बताया गया है। ये दो तत्व हैं:

1. अन्तत: या रखरखाव लागत (Terminal cost) – इसमें गोदाम, बन्दरगाह, कार्यालयों तथा मरम्मत की कीमत शामिल है तथा दूरी के आधार पर निर्धारित नहीं होती है।

2. परिचालन लागत (Line Haul cost) – यह वह लागत है जो वाहकों द्वारा ईंधन, वेतन आदि के रूप में बढ़ा दी जाती है। यह दूरी से निर्धारित होती है।

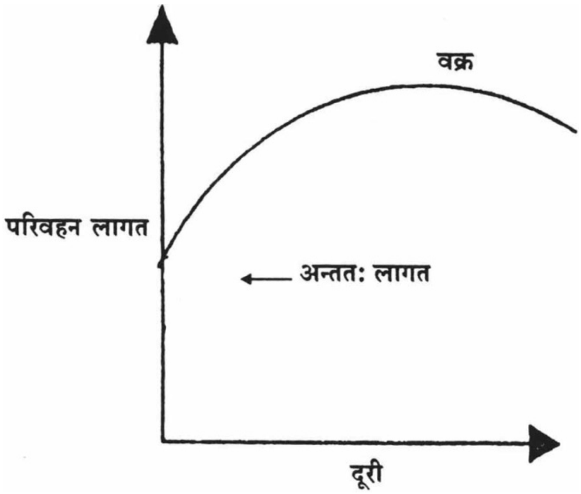

चित्र–8.8 : अन्तत: लागत

8.6.2 यातायात के साधन व दूरी में सम्बन्ध (Relationship Between mode of Transport and Distance)

सभी यातायात माध्यम एक सीमा पर रूक जाते है। प्रत्येक यातायात माध्यम का वक्र या सीमा अन्तत: लागत व परिचालन कीमत के सम्बन्ध पर निर्भर करता है। इसको चित्र–9 में प्रदर्शित किया गया है। इसमें रेल, सड़क व जल परिवहन के माध्यम हैं। सड़क परिवहन में रेलमार्ग व जल मार्ग की अपेक्षा रखरखाव लागत कम आती है। लेकिन सड़क मार्ग पर परिचालन लागत

अधिक आती है। सड़क यातायात कम दूरी हेतु उपयुक्त जबकि जल यातायात लम्बी दूरी के लिए उपयुक्त रहता है। हूवर ने 1940 में मिसीसिपी निचली घाटी के अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि उत्पत्ति स्त्रोत से 'अ' तक 56 किलोमीटर तक सड़क यातायात सस्ता तथा 'ब' बिन्दु 608 किलोमीटर की दूरी तक रेल यातायात तथा 608 किलोमीटर की दूरी पार करे उपरांत जल यातायात सस्ता रहेगा। यह प्रामाणिक तथ्य है कि कम दूरी के लिए सड़क, इससे अधिक के लिये रेल तथा इससे अधिक दूरी के लिए जलमार्ग क्रमश: सस्ते रहते हैं।

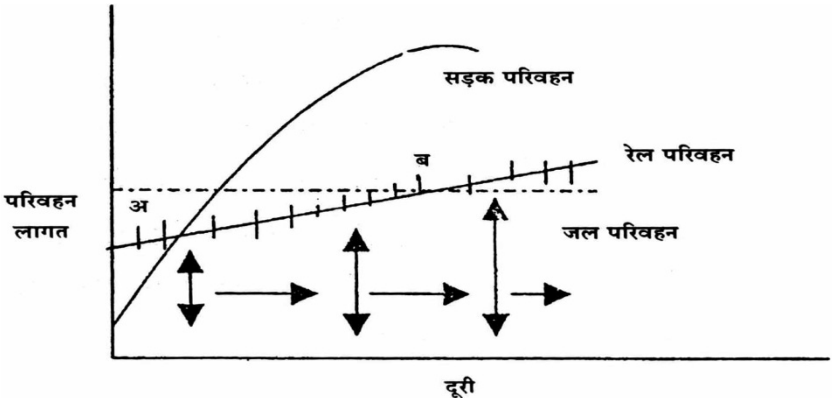

चित्र – 8.9 : तुलनात्मक परिवहन लागत

8.6.3 परिवहन के प्रकार में परिवर्तन

कच्चे माल को सड़क मार्ग से औद्योगिक इकाई तक ले जाने पर यदि सड़क परिवहन की सुविधा समाप्त हो जाती है तथा रेल या जल परिवहन आरम्भ हो जाता है। इससे पदार्थ के गंतव्य स्थान पर पहुँचने से पूर्व होने वाले परिवहन प्रकार अन्तर परिवहन खर्च पर प्रभाव डालता है। ऐसा प्रभाव 'फ़ेब्रीकेशन इन ट्रांजिट रेट' (Fabrication in Transit Rate) के नाम से जाना जाता है। यह परिवर्तन दो कारणों से संभावित है।

1. लम्बी दूरी तक परिवहन से होने वाले बढ़ते हुए लाभ में कमी।
2. परिवहन परिवर्तन स्थान पर अन्ततः लागत से होने वाली किराया वृद्धि।

इसके अनुसार यदि औद्योगिक इकाई के लिये प्राप्त होने वाले कच्चे माल के परिवहन में परिवर्तन होता है तो औद्योगिक इकाई की स्थापना परिवहन परिवर्तन की जगह पर होनी चाहिये। यह चित्र 10 से स्पष्ट है।

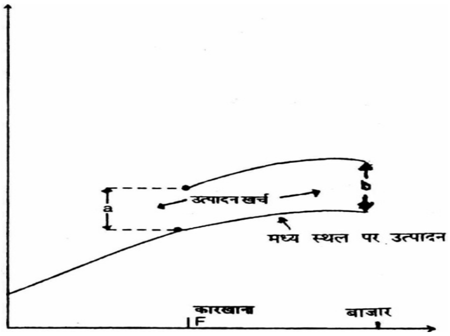

चित्र–8.10 : परिवहन के प्रकार में परिवर्तन

8.6.4 परिवहन कीमत एवं इकाई की अवस्थिति (Transport Cost and Location of Industrial Unit)

हूवर ने अपने सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए न्यूनतम परिवहन खर्च प्रतिरूप बताया। उन्होंने माना कि अकेला निर्माणकर्त्ता एक जगह से ही कच्चा माल प्राप्त करता है तथा एक ही बाजार को भेजता है। ऐसी स्थिति में उसने तीन प्रकार की लागतों को बताया :

1. कच्चा माल एकत्रीकरण लागत (Procurement Cost)
2. उत्पादन लागत (Production Cost)
3. वितरण लागत (Distribution Cost)

8.6.4.1 कच्चे माल पर अवस्थिति (Location on Raw Material)

चित्र 8.11 से स्पष्ट है कि इसमें वितरण लागत के वक्र की बजाय कच्चा माल एकत्रीकरण लागत वक्र (Procurement curve)
अधिक तीव्र है क्योंकि कच्चे माल में भार की कमी होती है। इसी कारण कुल परिवहन लागत को कच्चे माल पर नीचा दिखाया गया है। इस प्रकार इकाई यानि कारखाने की स्थापना बाजार की अपेक्षा कच्चे माल स्त्रोत पर ही होगी।

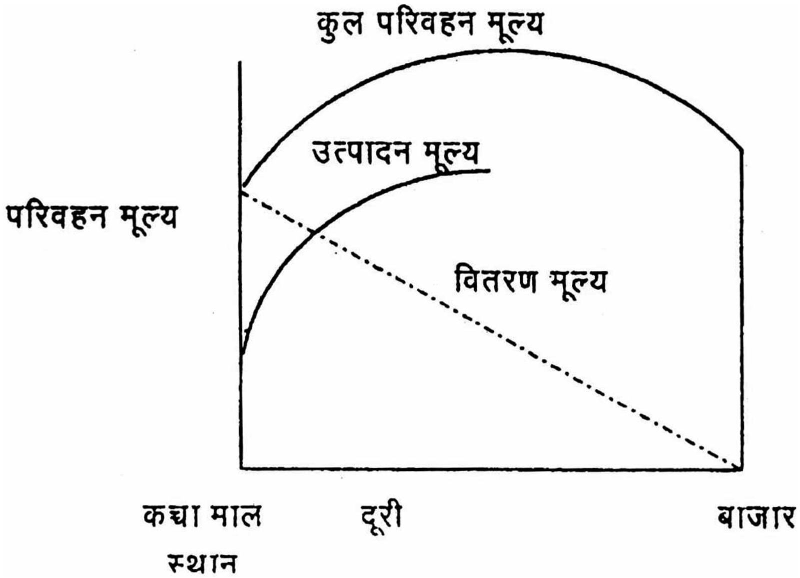

चित्र – 8.11 : कच्चे माल प्राप्ति स्थान पर इकाई की स्थापना

8.6.4.2 बाजार अवस्थिति (Location in Market)

चित्र के अन्तर्गत इकाई की स्थापना बाजार केन्द्र में दर्शायी गयी है। कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें उत्पादन प्रक्रिया में भार में वृद्धि होती है। चित्र में कुल परिवहन कीमत बाजार पर है जो कि उद्योग के लिए उपयुक्ततम अवस्थिति है। कुल परिवहन कीमत से बताया गया है कि इसका उन्नतोदर वक्र मध्यस्थ स्थिति की सुविधा नहीं देता है।

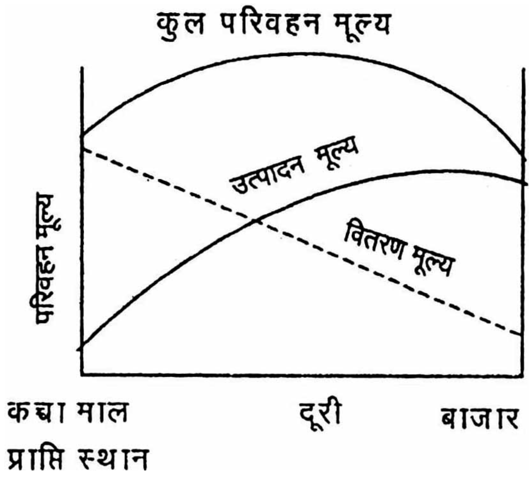

चित्र – 8.12 : इकाई की बाजार अवस्थिति

8.6.4.3 परिवहन परिवर्तन या मध्य बिन्दु अवस्थिति (Location on break of bulk point)

हूवर द्वारा परिवहन प्रकार में भिन्नता आने वाले स्थान को लाभकारी बताया गया। यह चित्र से स्पष्ट है। सामान के परिवहन प्रकार में

भिन्नता आने पर परिवहन बिन्दु पर उत्पादन व वितरण मूल्य एकदम ऊंचे हो जाते हैं। यहाँ पर सामान के उतार–चढ़ाव पर लागत खर्च, पदार्थ के वजन कम होने से परिवहन खर्च में कमी तथा कच्चे माल की प्रति इकाई में हुई मूल्य वृद्धि से लाभ प्राप्त होते हैं।

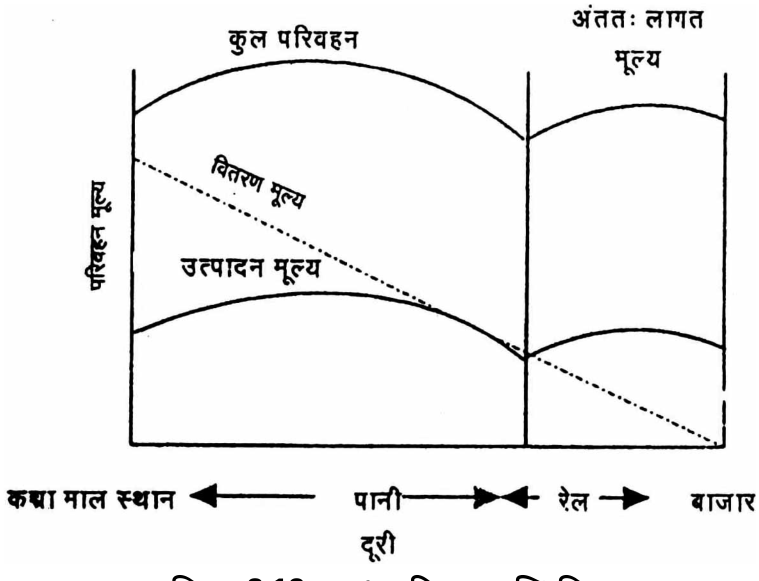

चित्र– 8.13 : मध्य बिन्दु अवस्थिति

परिवहन विचारधारा के अन्तर्गत वस्तु की कीमत निर्धारण से सम्बंधित नीति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कीमत नीति को तीन भागों–फ्री ऑन बोर्ड केन्द्र नीति, उत्पादन यातायात मूल्य नीति तथा समान वितरण मूल्य नीति में बाँटते हुए हूवर ने इकाईयों की अवस्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

बोध प्रश्न – 3

1. परिवहन लागत संरचना के दो महत्वपूर्ण तत्वों को बताईये।

....

....

2. कीमत नीति को हूवर ने किन –किन भागों में बाँटा है।

....

....

8.7 स्मिथ का सिद्धान्त (Theory of Smith)

स्मिथ का सिद्धान्त सीमांत अवस्थिति विचारधारा के अन्तर्गत आता है। स्मिथ के साथ ही ई.एम. राष्ट्रोन (E.M.Rawstron) इसके प्रमुख विचारकों में है। इसके अनुसार उद्योग स्थानीयकरण हेतु एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसमें लाभ सम्भव है तथा दूसरे में हानि।

स्मिथ द्वारा राष्ट्रोन के विचारों को लाभदायक स्थिति के स्थल (Margins of profitability) के रूप में स्थानिक लागत वक्र रेखा की रचना करके व्यक्त किया। इन्होंने स्थनिक लागत वक्र रेखा के साथ क्षेत्रीय आय वक्र रेखा को भी ध्यान में रखा। क्षेत्रीय लागत वक्र रेखा वह रेखा है जो किसी दिये हुए बिन्दु से बढ़ती दूरी के अनुसार उत्पादन के साधनों को एकत्र करने तथा उत्पादन प्रक्रिया के व्यय को स्पष्ट करती है। क्षेत्रीय आय–वक्र रेखा वह है जो कि किसी बिन्दु से बढ़ती दूरी के साथ उत्पादित वस्तु की मांग तथा तदनुसार आय की भिन्नता को स्पष्ट करती है। स्मिथ के अनुसार ये दोनों तत्व ही उत्पादन स्थल निर्धारण करते हैं। जहाँ पर कुल आय कुल लागत की तुलना में अधिकतम होगी, वहीं औद्योगिक उत्पादन का सबसे उपयुक्ततम स्थान या क्षेत्र होगा।

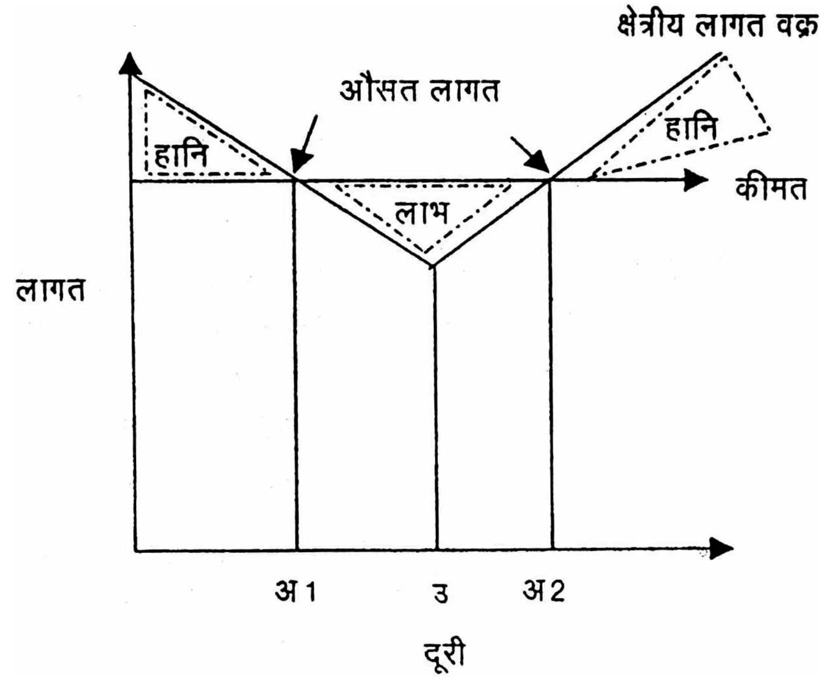

चित्र– 8.14 : कीमत स्थिर रहने पर उपयुक्ततम अवस्थिति एवं लाभदायक स्थल

चित्र–14 में मांग व कीमत स्थिर, जबकि औसत लागत स्थान–स्थान पर भिन्न है। औसत लागत वक्र की क्षेत्रीय लागत वक्र रेखा है। इस वक्र रेखा के कीमत के नीचे होने पर ही लाभ प्राप्त हो सकता है। लेकिन अ1 और अ2 के बाहर लाभ की सीमा समाप्त हो जाती है तथा हानि शुरू हो जाती है। उपयुक्ततम लाभ उ पर है जहाँ पर कि उद्योग की उपस्थिति लाभप्रद होगी।

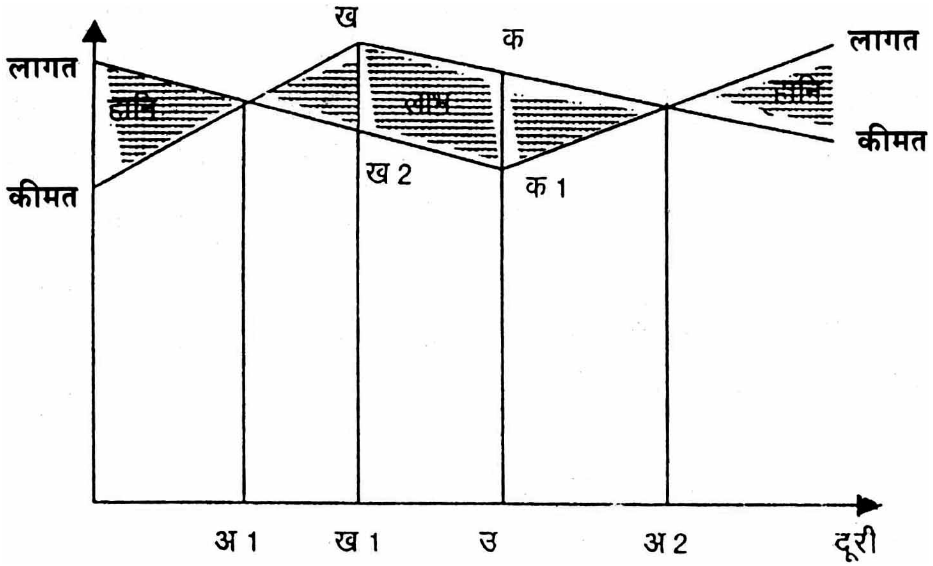

चित्र– 8.15 : कीमत एवं औसत लागत की भिन्नता पर उपयुक्ततम अवस्थिति एवं लाभदायक स्थल

चित्र– 8.15 में ख से दोनों कीमत वक्र नीचे की ओर झुक रहा है। यह झुकाव स्पष्ट करता है कि हम कारखाने से ज्यों–ज्यों दूर जायेंगे, त्यों–त्यों मांग 'के क्षेत्र में कमी आती जायेगी। इस वक्र से स्मिथ ने यह समझाने की कोशिश की है कि जहाँ ये दोनों वक्र एक दूसरे को काटते हैं वह बिन्दु अ1 तथा अ2 लाभ की अंतिम सीमायें हैं। क, क1–ख, ख2 क्षेत्र में तुलनात्मक लाभ अधिक है। अत: उ बिन्दु ही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ लागत सबसे कम है तथा साथ ही साथ लाभ का क्षेत्र भी सर्वाधिक है। अगर लागत–कीमत वक्र को ओर अधिक तेज कर देते हैं तो अ1 व अ2 जो कि लाभ की सीमायें बनाते हैं और अधिक पास आ जायेंगे। इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ लागत व कीमत की अधिक स्थानीय विभिन्नतायें होती है, वहाँ लाभ का क्षेत्र और अधिक संकुचित होता जाता है।

आर्थिक सीमाओं के बाहर कारखाना तभी स्थापित हो सकता है जब कि किन्हीं कारणों से क्षेत्रीय लागत वक्र की तीव्रता में गिरावट आये। ये कारण प्रबंधक का कौशल, कच्चे माल के प्रयत्नों में कमी व करों में कमी आदि हो सकते हैं।

इस प्रकार डी.एम. स्मिथ का सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि लाभ की सीमायें लागत व कीमत वक्र द्वारा ही निर्धारित होती है, जहाँ पर कि उद्योग की अवस्थिति होती हैं। इनके द्वारा

प्रस्तुत उपयुक्ततम लाभप्रद स्थिति एवं सीमान्त निर्धारण उद्योग की स्थापना के निर्धारण हेतु अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं।

बोध प्रश्न – 4

1. स्थानिक लागत वक्र रेखा से क्या अभिप्राय है?

....

....

2. लागत व कीमत की अधिक स्थानिक विभिन्नताओं पर लाभ क्षेत्र की क्या स्थिति होगी?

....

....

8.8 सारांश (Summary)

उद्योग वास्तव में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित कार्य है जिसके अंतर्गत कच्चे पदार्थ का स्वरूप परिवर्तित कर नये पदार्थ में तैयार किया जाता है। किसी स्थान विशेष पर उद्योग का केन्द्रीयकरण ही उद्योग का स्थानीयकरण कहा जाता है।

सामान्यत: किसी भी उद्योग के स्थानीयकरण के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी होते हैं – (1) कच्चा माल, (2) ऊर्जा साधन, (3) बाजार, (4) परिवहन लागत, (5) श्रम, 6. वृहद उत्पादन की अर्थव्यवस्था, (7) उत्पादन की अतिरिक्त अर्थव्यवस्थायें, (8) अन्य कारक, जैसे – भूमि, कर पूंजी, सरकारी नीति, प्रबंधन योग्यता, निर्णय क्षमता एवं व्यक्तिगत रूचि आदि।

ये कारक उद्योग के अनुसार एकल रूप में या किसी अन्य के साथ मिलकर अपनी निर्णयात्मक भूमिका निभाते हैं। उद्योगों के स्थानीयकरण के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। वेबर, हूवर, लॉश एवं स्मिथ के सिद्धांत प्रमुख हैं।

वेबर द्वारा उद्योगों के स्थानीयकरण का प्रथम क्रमबद्ध सिद्धांत प्रस्तुत किया गया। न्यूनतम परिवहन लागत पर आधारित इस सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए वेबर ने कुछ पूर्वानुमान किये। इन्होंने पूर्वानुमानों के आधार पर विभिन्न उद्योगों की अवस्थिति को न्यूनतम परिवहन व्यय, श्रम लागत एवं समूहन के आधार पर स्पष्ट किया। परिवहन व्यय में आवक लागत व विपणन लागत को शामिल करते हुए कच्चे पदार्थ के वितरण व प्रकृति को उद्योग के स्थानीयकरण में निर्णयकारी बताया। वेबर का सिद्धान्त यह स्पष्ट करने में सफल रहा कि वे उद्योग जिनमें भार हानि होगी, वे कच्चे पदार्थ के स्त्रोत के समीप तथा जिनमें कोई विशेष भार हानि नहीं होती, वे बाजारोन्मुखी होंगे।

लॉश का सिद्धान्त बाजार क्षेत्र में उद्योग के स्थानीयकरण को स्पष्ट करता है। उसने वस्तु की मांग से सम्बन्धित बाजार क्षेत्र के विचार को मांग शंकु से समझाया। लॉश ने बताया कि मांग शंकु से प्राप्त बाजार क्षेत्र अंतत: सिकुड़कर षट्कोणीय आकृति बनाते।

अमेरिकी विद्वान हूवर के सिद्धांत अनुसार परिवहन लागत उद्योग के स्थानीयकरण का निर्णय करती है। परिवहन लागत की संरचना, यातायात के साधन व दूरी में सम्बन्ध, परिवहन के प्रकार में परिवर्तन के आधार पर परिवहन कीमत का निर्धारण बताते हुए औद्योगिक इकाई की

अवस्थिति का निर्धारण हूवर द्वारा किया गया। इस आधार पर उद्योग के स्थानीयकरण की कच्चे पदार्थ, बाजार व मध्यवर्ती स्थान पर होने की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया।

स्मिथ महोदय द्वारा सीमान्त अवस्थिति के आधार पर लाभदायक स्थिति के स्थलों पर उद्योगों के स्थानीकरण को समझाया गया। इनका सिद्धांत सिद्ध करता है कि लाभ की सीमायें लागत व कीमत वक्र द्वारा निर्धारित होती है, जहाँ पर कि उद्योग का स्थानीयकरण होता है।

8.9 शब्दावली (Glossary)

- **स्थानीयकरण** (Localization) : स्थान विशेष पर उद्योग का केन्द्रीयकरण कहा जाता है।
- **सर्वप्राप्य पदार्थ (Ubiquitous Material) :** वे पदार्थ जो प्रकृति में स भी जगह सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं, जैसे – जल व मिट्टी
- **स्थानीयकृत पदार्थ (Localized Material) :** जो पदार्थ किसी स्थान विशेष पर उपलब्ध होते हैं, जैसे लोह अयस्क, तांबा, जूट व गन्ना आदि।
- **शुद्ध पदार्थ (Non Weight loosing Material/Purematerial) :** ऐसे पदार्थ जो निर्माण प्रक्रिया में भार नहीं खोते हैं, जैसे – कपास।
- **अशुद्ध पदार्थ (Weight loosing Material/Gross Material) :** ऐसे पदार्थ जो निर्माण प्रक्रिया में भार खो देते हैं – तांबा, लौह अयस्क, गन्ना आदि।
- **आवक लागत (Assembly Cost) :** वह व्यय जो कि कच्चे पदार्थ व ईंधन को उत्पादन स्थान पर पहुँचाने में आता है।
- **स्थानीयकरण भार (Localization Weight) :** प्रति इकाई उत्पादित वस्तु के लिए कच्ची सामग्री का परिवहन भार एव उत्पादित वस्तु को ले जाने का परिवहन भार सब मिलाकर स्थानीयकरण भार कहा जाता है।
- **श्रम व्यय निर्देशांक (Labour Cost Index) :** श्रम व्यय त था निर्मित पदार्थ के कुल भार के अनुपात को श्रम व्यय निर्देशांक कहते हैं।
- **आइसोडापान्स (Isodapanes) :** वह रेखा है जो समान कुल व्यय के बिन्दुपथ को मिलाती है।
- **अंततः लागत (Terminate Cost) :** इसमें गोदाम, बन्दरगाह, कार्यालय तथा मरम्मत का व्यय शामिल है तथा यह दूरी के आधार पर निर्धारित नहीं होती है।
- **परिचालन लागत (Live and Haul Cost) :** यह वह लागत है जो वाहनों द्वारा ईंधन, वेतन आदि के रूप में बढ़ा दी जाती है। यह दूरी पर निर्भर करती हैं।

8.10 संदर्भ ग्रंथ (References)

1. **शर्मा, बी.एल. :** सैद्धांतिक औद्योगिक भूगोल, रोहिणी प्रकाशन, जयपुर, 2004
2. **कुमार प्रमिला एवं शर्मा एस.के. :** औद्योगिक भूगोल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2002

3. **Alexanderson, G. :** Geography of Manufacturing, Prentice hall, Englewood Clift, 1967
4. **Estall and Buchanan :** Industrial Activity and Economic Geography, Hatchinson Univ. Library, 1972
5. **Guha and Chattoraj :** A New Approach to Economic Geography, The World press Private ltd. Kolkata, 2002
6. **Hartshorne and Alexander :** Economic Geography, Prentice hall, 2005
7. **Hurst, M.E. :** A Geography of Economic Behaviour, Duxbury Press, California, 1972
8. **Hussain, Majid Ed.:** Industrial Geography, Anmol Pub. New Delhi, 1974
9. **Miller, E.W. :** A Geography of Manufacturing, Prentice Hall, 1971
10. **Riley, R.C. :** Industrial Geography, Chatto and Windos, London, 1973

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. वेबर, लॉश, हूवर, डी.एम. स्मिथ।
2. .स्थानीय पदार्थों की कच्ची अवस्था तथा निर्मित अवस्था के भार के अनुपात को पदार्थ निर्देशांक कहते हैं।
3. श्रम स्थानीयकरण दो तत्वों – श्रम लागत निर्देशक तथा श्रम की उत्पादकता भार से प्रभावित होता है।

बोध प्रश्न–2

1. लॉश का सिद्धांत बाजार क्षेत्र विचारधारा में शामिल किया जाता है।
2. लॉश ने बाजार क्षेत्र के विचार को मांग शंकु के आधार पर समझाया।
3. लॉश द्वारा बाजार क्षेत्र विश्लेषण को षट्कोणीय बाजार क्षेत्र द्वारा स्पष्ट किया गया। उन्होंने बताया कि उद्योगों में समूहन की प्रवृत्ति से कुछ खण्ड उद्योगों की दृष्टि से धनी व कुछ निर्धन कहे जा सकते हैं। ऐसे क्षेत्र महानगर के चारों ओर पाये जाते हैं। इसे ही लॉश का भूदृश्य नाम से जानते हैं।

बोध प्रश्न– 3

1. परिवहन लागत संरचना के दो महत्वपूर्ण तत्व अन्तत: लागत एवं परिचालन लागत है।
2. कीमत नीति को फ्री ऑन बोर्ड केन्द्र नीति, उत्पादन यातायात मूल्य नीति तथा समान वितरण मूल्य नीति में बांटकर हूवर ने इकाईयों की अवस्थिति को स्पष्ट किया।

बोध प्रश्न– 4

1. क्षेत्रीय लागत वक्र रेखा है जो किसी दिये हुए बिन्दु से बढ़ती दूरी के अनुसार उत्पादन के साधनों को एकत्र करने तथा उत्पादन प्रक्रिया के व्यय को स्पष्ट करती है।

2. जहाँ पर लागत व कीमत की अधिक स्थानिक विभिन्नतायें होती हैं, वहाँ लाभ का क्षेत्र और अधिक संकुचित होता जाता है।

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्योगों के स्थानीयकरण के कारकों को स्पष्ट करिये।
2. वेबर के सिद्धान्त का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।
3. परिवहन लागत आधारित हूवर के सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिये।
4. मांग शंकु क्या है? लॉश के सिद्धांत के सन्दर्भ में बाजार क्षेत्र पर उद्योगों के स्थानीयकरण को समझाइये।
5. डी.एम. स्मिथ के उद्योगों के स्थानीयकरण सिद्धान्त का विवेचन कीजिये।
6. वेबर व लॉश के सिद्धान्त के पूर्वानुमानों में विभेद कीजिये।

इकाई 9 : लोहा–इस्पात, एल्यूमिनियम तथा इंजीनियरिंग उद्योग का विशद अध्ययन (Detailed Study of Iron and Steel, Alluminium and Engineering Industry)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 लौह–इस्पात उद्योग
 9.2.1 स्थानीयकरण कारक
 9.2.2 लौह–इस्पात उद्योग का विश्व वितरण
 9.2.3 लौह–इस्पात का विश्व व्यापार
9.3 एल्यूमिनियम उद्योग
 9.3.1 स्थानीयकरण कारक
 9.3.2 एल्यूमिनियम उद्योग का विश्व वितरण
9.4 इंजीनियरिंग उद्योग
 9.4.1 मशीनों एवं औजारों का निर्माण
 9.4.2 मोटरगाड़ी उद्योग
 9.4.3 जलयान निर्माण उद्योग
 9.4.4 वायुयान निर्माण उद्योग
 9.4.5 कृषि यंत्रों का निर्माण
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 संदर्भ ग्रंथ
9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.9 अभ्यासार्थ

9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप समझ सकेंगे कि :

- लौह इस्पात, एल्यूमिनियम एवं इंजीनियरिंग उद्योग के स्थानीयकरण के कारण,
- लौह –इस्पात, एल्यूमिनियम एवं इंजीनियरिंग उद्योग का विश्व वितरण,
- लौह–इस्पात, एल्यूमिनियम एवं इंजीनियरिंग उद्योग का विश्व व्यापार ।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

निर्माण उद्योग एक महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया है। मानव को जीवन निर्वाह के लिए भोजन, वस्त्र एवं मकान की पूर्ति के लिए अनेक साधनों एव उपकरणों की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक वस्तुओं को सीधे उपयोग नहीं किया जा सकता है, अपितु अनेक वस्तुओं का रूप परिवर्तित कर नयी मानव–उपयोग योग्य वस्तु बनायी जाती है। नयी वस्तु बनाने की प्रक्रिया को वस्तु निर्माण (Manufacturing) कहते हैं।

वर्तमान अर्थव्यवस्था में निर्माण उद्योगों की भूमिका सर्वाधिक हो गयी है। प्रत्येक देश औद्योगिक विकास के लिए प्रयत्नशील है। कुछ देश, जहाँ कच्चे माल की बहुतायत है, उद्योग सम्पन्न हो गये हैं, तो कुछ देश जहाँ कच्चे माल, पूंजी, तकनीक आदि की कमी है, औद्योगिक विकास के लिए तत्पर हैं। निर्माण उद्योगों का स्वरूप श्रृंखलाबद्ध हो गया है। आधारभूत उद्योगों की स्थापना से सहायक उद्योग स्वत: विकसित होने लगते हैं। आधुनिक समय में कच्चा माल, पूंजी, श्रम आदि की तुलना में बाजार, यातायात, संचार, तकनीक, शोध, राजनीतिक भूमिका आदि अधिक प्रभावशाली हो गये हैं। अत: विश्व में निर्माण उद्योगों के विकास में अत्यधिक प्रादेशिक भिन्नताऐं मिलती हैं। इस इकाई में इन्हीं विषमताओं को समझने में सहायता मिलेगी।

9.2 लोहा – इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry)

वर्तमान समय में लोहा –इस्पात उद्योग एक आधारभूत उद्योग है। मनुष्य की घरेलु आवश्यकताओं, निर्माण उद्योगों में मशीनें व यंत्र, यातायात के साधन आदि के निर्माण में लोहा इस्पात कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होता है। कठोरता, प्रबलता, लचीलापन, चिर स्थायित्व एवं सस्तेपन जैसे गुणों के कारण अन्य कोई धातु इसका स्थान नहीं ले सकती। इसीलिए लोहा–इस्पात आधुनिक सभ्यता की रीढ़ कहा जाता है।

9.2.1 स्थानीयकरण कारक (Localizational factor)

लोहा–इस्पात उद्योग के स्थानीयकरण के लिए कारकों की आवश्यकता होती है –

(i) **कच्चा माल :** लोह –इस्पात निर्माण के लिए कच्चा लोहा, कोयला, चूना पत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज, निकल, क्रोमियम आदि पदार्थों की आवश्यकता होती है जो भारी एवं मूल्य में सस्ते होते है।

(ii) **यातायात के साधनों की सुविधा :** उद्योग में प्रयुक्त कच्चा माल व तैयार माल अत्यधिक भारी होने के कारण इनके परिवहन में सस्ते साधनों की आवश्यकता होती है। जल परिवहन इस उद्योग के लिए सबसे उत्तम रहता है।

(iii) **बाजार :** लोह –इस्पात निर्मित वस्तुऐं वजन में भारी होने के कारण परिवहन खर्च अधिक आता है। अत: निर्मित माल के लिए बाजारी क्षेत्र निकट ही होना चाहिए।

(iv) **सस्ती भूमि व स्वच्छ जल:** विशाल व भारी मशीनों, कच्चे माल व तैयार माल को रखने आदि में अत्यधिक भूमि की आवश्यकता होती है, अत: सस्ती भूमि होनी चाहिए। लोहे को ठण्डा करने, भाप बनाने, धुलाई करने आदि कार्यों में अत्यधिक

स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। अत: नदियों, झीलों या बांधों के किनारे उद्योग की स्थापना की जाती है।

(v) **अन्य कारक :** उक्त कारकों के अलावा पूंजी, श्रम, सरकारी नीतियाँ आदि भी उद्योग के स्थानीयकरण को प्रभावित करते हैं।

9 2.2. लौह–इस्पात उद्योग का विश्व वितरण (World Distribution of Iron & Steel Industry)

विश्व में लौह–इस्पात उत्पादन की दृष्टि से चीन, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन, ब्राजील एवं भारत प्रमुख हैं। चीन व जापान विश्व का एक चौथाई इस्पात का उत्पादन करते हैं।

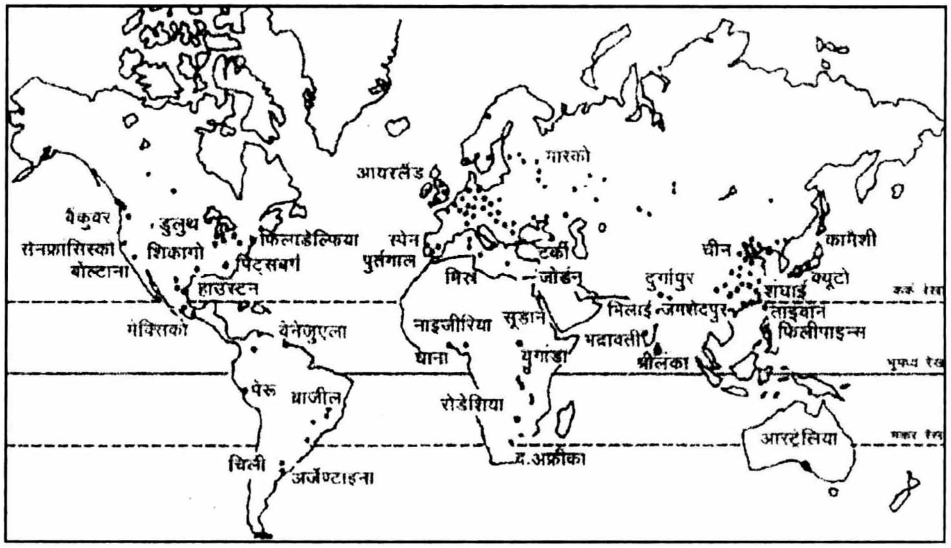

मानचित्र – 9.1 : विश्व में इस्पात उद्योग के प्रमुख केन्द्र

(i) **चीन :** चीन विश्व का प्रमुख इस्पात उत्पादक देश है। यहाँ 1980 तक इस्पात का उत्पादन ब्रिटेन व जर्मनी के समान था, परन्तु गत दशक से विश्व का सर्वाधिक (17%) इस्पात का उत्पादन करने लगा है। यहाँ उच्च कोटि का कोयला मंचूरिया, होनान, शांसी व शान्टुग में तथा लौह अयस्क मंचूरिया, शांसी, शान्टुग व यांगटिसी घाटी में मिलता है। चीन में लौह –इस्पात के चार प्रमुख क्षेत्र है -

(अ) मंचूरिया क्षेत्र: यहाँ अन्शान प्रमुख इस्पात केन्द्र है। इसके अलावा फुशुन, पेन्शिहु,मुकडेन आदि अन्य केन्द्र हैं।

(ब) यांगटिसी घाटी: यह मध्य चीन का प्रमुख लौह इस्पात क्षेत्र है, जहाँ बुहान, मसशान, शंघाई, हैंकाऊ, तायेह प्रमुख हैं।

(स) शान्सी क्षेत्र: उत्तरी चीन में विस्तृत इस क्षेत्र में पाओटाओ सबसे बड़ा इस्पात केन्द्र है। इसके अलावा टिंटसिन, टॉनशान, बीजिंग, यांगचुआन तथा ताइयुआन प्रमुख इस्पात केन्द्र हैं।

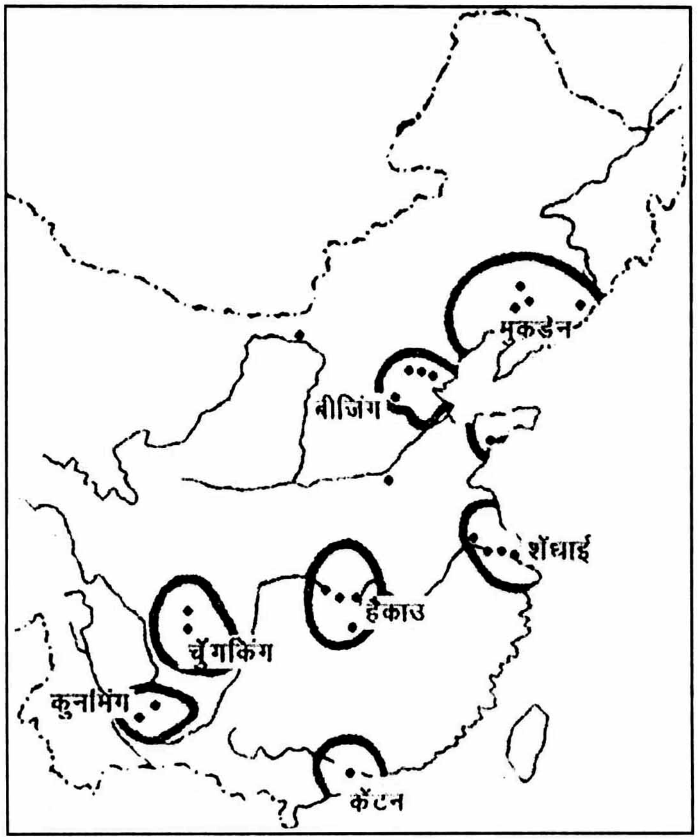

मानचित्र - 9.2 : चीन में लोहा इस्पात के केन्द्र

(ii) जापान: जापान विश्व का दूसरा बड़ा लौह–इस्पात उत्पादक देश है जहाँ विश्व का 14% इस्पात का उत्पादन होता है। जापान में लोह अयस्क एवं कोयले की बेहद कमी के बावजूद कच्चा माल आयात करके जल विद्युत के उपयोग से इस्पात का उत्पादन करता है। जल यातायात की सुविधा ने जापान में इस्पात उद्योग को उन्नत बना दिया है। प्रमुख केन्द्र निम्न है–

(अ) यावाता–तोबाता क्षेत्र: उत्तरी क्यूशू द्वीप में स्थित इस क्षेत्र में मौजी, शिमोनास्की एवं नागासाकी प्रमुख इस्पात केन्द्र हैं।

(ब) कोबे–ओसाका क्षेत्र: इस क्षेत्र में हिरोहिता, सकाई, आमागासाकी वाकायामा आदि प्रमुख इस्पात उद्योग के केन्द्र हैं।

मानचित्र – 9.3 : जापान के लौह–इस्पात केन्द्र

(स) टोकियो–याकोहामा क्षेत्र: यह होन्शू द्वीप के पूर्वी भाग में विस्तृत हैं जहाँ कावासाकी, टोकियो, याकोहामा एवं मित्युए मुख्य केन्द्र हैं।

(द) होकेडो द्वीप में मुरोरां में भी इस्पात का कारखाना स्थापित है।

(iii) संयुक्त राज्य अमेरिका : विश्व में लौह –इस्पात उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका का तीसरा स्थान है, जो विश्व का 10% इस्पात का उत्पादन करता है। यहाँ अप्लेशियन क्षेत्र में कोयला, सुपिरियर झील क्षेत्र से लोहा, महान झीलों से उत्तम व सस्ता परिवहन, बढ़ता हुआ विस्तृत औद्योगिक बाजार आदि सुविधाओं के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में इस्पात उद्योग का तीव्र गति से विकास हुआ है। इस्पात उद्योग के प्रमुख क्षेत्र निम्न है –

(अ) शिकागो – गैरी क्षेत्र: स. राज्य अमेरिका का 35% इस्पात इसी क्षेत्र से तैयार होता है। यहाँ शिकागों, गैरी, इण्डियाना, मिलवाकी, हार्बर, सैंटलुईस आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(ब) पिट्सबर्ग–यंग्सटाउन क्षेत्र : यह दूसरा बड़ा इस्पात उत्पादक क्षेत्र है जहाँ स.राज्य अमेरिका का 25% इस्पात का निर्माण होता है। पिट्सबर्ग, यंग्सटाउन, ह्विलिंग, हंटिगटन, पोर्ट्समाउथ, आयरनटन, जॉन्सटाउन आदि प्रमुख केंद्र हैं।

(स) झील तटीय क्षेत्र: इरी झील के किनारे 12 इस्पात केन्द्र स्थापित हैं जिनमें बफैलो, डेट्रायट, क्लीवलैण्ड, इरी, टालेडो एवं लारेन प्रमुख केन्द्र हैं।

(द) मध्य अटलांटिक तटीय क्षेत्र : ज्वारीय शक्ति, जल परिवहन सुविधा, आयातित लौह–अयस्क व स्क्रेप नगरों व बैयलेहय, स्पैरो पोइन्ट, योरिसविले, केम्डेन तथा ईस्टन मुख्य इस्पात केन्द्र हैं।

(य) दक्षिणी क्षेत्र: संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भाग में बरमिंघम, हाउसटन एवं डेंगरफील्ड इस्पात उत्पादन के सबसे बड़े केन्द्र हैं।

(र) पश्चिमी तटीय क्षेत्र: प्रशान्त तट के सहारे प्यूबलो, डेनवर, टेकोमा,सेनफ्रांसिसको, लौस एंजिल्स एवं फोण्टाना इस्पात उद्योग के केन्द्र हैं।

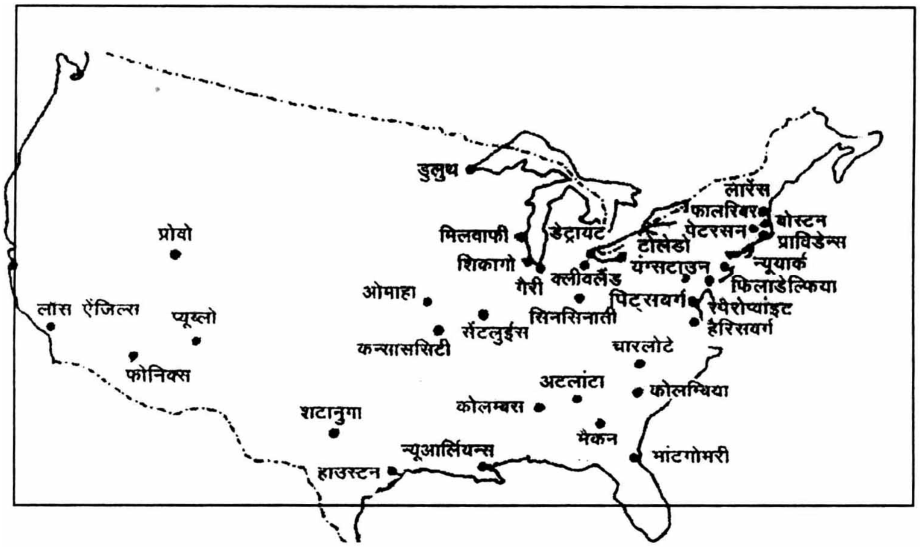

मानचित्र – 9.4 : संयुक्त राज्य अमरीका के लौह–इस्पात उद्योग के केन्द्र

(iv) रूस एवं अन्य गणराज्य : पूर्व सोवियत संघ लौह –इस्पात उत्पादन में महत्वपूर्ण देश था, परन्तु विघटन के पश्चात उत्पादन अत्यधिक कम हो गया। वर्तमान में विश्व का 7% इस्पात रूस व अन्य गणराज्यों से प्राप्त होता है। प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं –

(अ) युक्रेन क्षेत्र : यह सबसे पुराना लौह–इस्पात क्षेत्र है जहाँ उत्तम लोह अयस्क, कोकिंग कोयला, चूना पत्थर, जल परिवहन एवं विस्तृत बाजार जैसी सुविधाऐं प्राप्त हैं। क्रिवोईरोग, कवि, खारकोव, रोस्टोव, कर्च, निकोपोल, झडानोव जापोरोझपे, नीपरोपेट्रोवस्क आदि यहाँ के प्रमुख केन्द्र है।

(ब) मास्को क्षेत्र: स्थानीय अयस्क एवं डोनबास के कोयले से इस प्रदेश में इस्पात उद्योग का स्थानीयकरण हुआ है। यहाँ मास्को, गोर्की, वोल्गोग्राद, टुला, कुलेबाकी आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(स) यूराल क्षेत्र: इस क्षेत्र में उच्च कोटि का लोह अयस्क, मैंगनीज, निकिल, क्रोमियम आदि खनिज प्राप्त होने से उच्च किस्म का इस्पात तैयार होता है। मैगनिटहेग्रेर्स्क, चेल्याबिंस्क, निझनीतलिल, स्वर्दलोवस्क, सेरोव, पर्म ओरस्क जैसे विशाल इस्पात केन्द्र हैं।

(द) कुजबास क्षेत्र: यह कोयला आधारित क्षेत्र है जहाँ लौटते परिवहन के साधन लोह अयस्क भर लाते हैं जिससे इस्पात के कारखानों का विकास हुआ है। इस प्रदेश में नोवोसिबिर्स्क, तुरोचाक, माजुल्स्कीय, कामेन आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(य) अन्य क्षेत्र : काकेशस में जेस्ताफोनी, जोर्जिया में तबिलिसि, रूस में लेनिनग्राद, कोमसोमोल्स्क, कजाक में तेनीरतान तथा उजबेकिस्तान में ताशकन्द व बोगोवात इस्पात उत्पादक केन्द्र हैं।

(v) ग्रेट ब्रिटेन : प्रारम्भ में ब्रिटेन इस्पात उत्पादन में प्रमुख स्थान रखता था परन्तु अब उत्पादन काफी कम हो गया है। यहाँ चार क्षेत्रों में इस्पात उद्योग का स्थानीयकरण मिलता है –

(अ) **दक्षिणी वेल्स क्षेत्र**: ब्रिटेन का एक चौथाई इस्पात इसी प्रदेश से उत्पन्न होता है। यहाँ कार्डिफ, स्वानसी, पोर्ट टालबट, ऐब्ब वेल, मारगम तथा न्यूपोर्ट प्रमुख इस्पात उत्पादक केन्द्र है।

(ब) उत्तरी पूर्वी तटीय क्षेत्र: नदियों का स्वच्छ जल, सस्ता जल परिवहन एवं विशाल बाजार जैसी सुविधायुक्त इस प्रदेश में मिडिल्सबरो, सीटॉन, स्किनिग्रोव, कॉनसेट, हर्टपूल, स्टाकटन एवं डार्लिंगटन केन्द्रों पर इस्पात के कारखाने स्थापित हैं।

(स) यार्कशायर–शैफील्ड क्षेत्र: इस प्रदेश में शैफील्ड, चेस्टरफील्ड, रोटरडेम तथा इल्केस्टन प्रमुख इस्पात केन्द्र हैं।

(द) अन्य क्षेत्र: लिंकनशायर से स्कून्योर्प व फ्रोडिन्घम, मध्य स्काटलैण्ड में ग्लासगो, कैरन व मदरवैल, मिडलैण्ड क्षेत्र में बर्मिंघम आदि प्रमुख इस्पात केन्द्र हैं।

(vi) जर्मनी : विश्व का 5% इस्पात उत्पन्न करने वाला जर्मनी पांचवाँ बड़ा देश है। यहाँ रूर प्रदेश में उत्तम कोयला, सीन घाटी में लोह अयस्क, दक्षिणी पहाडियों से चूना पत्थर की प्राप्ति आदि सुविधाओं के कारण जर्मनी एक बड़ा इस्पात उत्पादक देश बन गया है। यहाँ रूर घाटी में ऐसेन, डार्टमण्ड, ओवर–हासेन, ड्रसेलडोर्फ, बोखम, गेलसन करचेन एवं हुइसबर्ग मुख्य इस्पात उत्पादक केन्द्र हैं।

मानचित्र –95 : ग्रेट ब्रिटेन के लौह–इस्पात प्रदेश

(vii) ब्राजील : गत दशक से ब्राजील विश्व का महत्वपूर्ण इस्पात उत्पादक देश बन गया है। विश्व का 5% इस्पात ब्राजील में उत्पत्र होता है। यहाँ वोल्गा, रेटोण्डा, मौलिवाडे, मिनास–गिरास एवं साओपोले मुख्य इस्पात केन्द्र हैं।

(viii) भारत : इस्पात उत्पादन में भारत का 8 वाँ स्थान है जहाँ विश्व का 3% इस्पात तैयार होता है। भारत में इस्पात उद्योग का स्थानीयकरण लौह अयस्क व कोयला क्षेत्रों में हुआ है। जमशेदपुर, आसनसोल, कुल्टी, बर्नपुर, राउरकेला, दुर्गापुर, भिलाई, भद्रावती, बोकारो, विशाखापटनम एवं सलेम प्रमुख केन्द्र हैं।

लोह इस्पात का विश्व व्यापार (International Trade of Steel): विश्व के सभी इस्पात उत्पादक देश उत्पादन वृद्धि का प्रयास कर रहे हैं ताकि इस्पात की बढ़ती माँग की पूर्ति की जा सके। इस्पात निर्यात करने वाले देशों में रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस एवं बेल्जियम प्रमुख हैं।

इस्पात का आयात दक्षिणी एशियाई देश, अफ्रीकी देश एवं लैटिन अमेरिकी देश करते हैं।

बोध प्रश्न – 1

1. वह कौन सा देश है जिसने आयातित कच्चे माल से इस्पात उद्योग का विकास किया है–

   (अ) संयुक्त राज्य अमेरिका (ब) चीन

   (स) जर्मनी (द) जापान ( )

2. लौह इस्पात उद्योग में कच्चे माल के रूप में किन पदार्थों की आवश्यकता होती है।

……

……

3. बर्मिंघम इस्पात केन्द्र किस देश में स्थित हे?

……

……

4. जापान में इस्पात उद्योग की उन्नति के क्या कारण है?

……

……

9.3 एल्यूमिनियम उद्योग (Alluminium Industry)

पृथ्वी के धरातल का 8% भाग एल्यूमिनियम द्वारा निर्मित है। वर्तमान में विश्व में 2 करोड़ टन एल्यूमिनियम का उत्पादन होता है। अमेरिकन वैज्ञानिक मार्टिन हाल्ट एवं फ्रेंच वैज्ञानिक हैराल्ट द्वारा बाक्साइट से एल्यूमिनियम प्राप्त करने की रासायनिक विधि खोजने के बाद इसका उत्पादन व उपयोग बढ़ गया हैं हवाई जहाज, जलयान, मोटरगाड़ी, भवन निर्माण, मशीनों के कल पुर्जे, बर्तन, विद्युत के सामान आदि में एल्यूमिनियम का उपयोग तीव्रता से बढ़ा हैं।

एल्यूमिनियम प्राप्त करने के लिए बाक्साइट खनिज का महीन चूर्ण बनाकर 982^0c तापमान पर गर्म किया जाता है और रासायनिक विधि से सिलिका अलग किया जाता है। बचा हुआ सफेद भुरभुरा पदार्थ एन्यूमिना होता है। एल्यूमिना से हाल –हैरॉल्ट विधि द्वारा एल्यूमिनियम प्राप्त किया जाता है।

9.3.1 स्थानीयकरण कारक (Factors of Localization)

एल्यूमिनियम हल्की, सस्ती एव जंगरोधी धातु होने के कारण बहुपयोगी अलौह धातु है। इसका स्थानीयकरण निम्न कारकों पर निर्भर है –

(अ) बाक्साइट की प्राप्ति: विश्व में बाक्साइट का सर्वाधिक उत्पादन आस्ट्रेलिया में होता है, परन्तु एल्यूमिना बनाकर निर्यात किया जाता है। इसके अलावा गिनी, जमैका, रूस, कनाडा, सूरीनाम, हंगरी, भारत आदि देशों में भी बाक्साइट प्राप्त होता है जो एल्यूमिना तैयार करते हैं। अत: एल्यूमिनियम उद्योग के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसके कारखाने बाक्साइट खानों के समीप ही स्थापित हों। एल्यूमिना से एल्यूमिनियम बनाने के अधिकांश कारखाने बन्दरगाहों पर स्थापित हैं जहाँ आयातित एल्यूमिना से एल्यूमिनियम बना लिया जाता है। तैयार माल को रेल व सड़क परिवहन द्वारा भीतरी भागों में उपभोग केन्द्रों तक भेजा जाता है।

(ब) विद्युत शक्ति: बाक्साइट से एल्यूमिना और एल्यूमिनियम प्राप्त करने में विद्युत शक्ति काअत्यधिक उपयोग होता है। इस लिए अधिकांश कारखाने जल विद्युत पर आधारित है जो

सस्ती होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पोर्टलैण्ड, मोबाइल, बैटन रूज, हरिकेन क्रीक, स्पोकेन, जर्मनी में म्यूनिख, कनाडा में अरविदा, मॉन्ट्रीयल, क्यूबेक, स्विट्जरलैण्ड में ज्यूरिख आदि नगरों के कारखाने विद्युत आधारित हैं।

(स) परिवहन के साधन : एल्यूमिनियम उद्योग मुख्यत: आयातित कच्चे माल पर आधारित होने के कारण परिवहन साधनों की सुलभता महत्व कारक है। कच्चा माल आयात करने में सस्ता जल परिवहन एवं तैयार माल को बाजार तक पहुँचाने में विकसित रेल व सड़क मार्ग होने चाहिए। इसी कारण यह उद्योग समुद्र तटवर्ती भागों में केन्द्रित हुआ है।

(द) पूँजी: एल्यूमिनियम उद्योग एक बहुस्तरीय उद्योग होने के कारण पर्याप्त पूँजी की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि यह उद्योग अधिकांश देशों में निजी क्षेत्रों में स्थापित हुआ है।

9.3.2 एल्यूमिनियम उद्योग का विश्व वितरण (World Distribution)

विश्व में एल्यूमिनियम उद्योग का स्थानीयकरण समुद्र तटवर्ती भागों एवं विद्युत केन्द्रों के समीप हुआ है। प्रमुख उत्पादक देश निम्न है :

(i) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकांश एल्यूमिनियम के कारखाने मेक्सिको खाड़ी तटीय भागों एवं प्रशान्त तटीय क्षेत्र में स्थापित हैं। यहाँ जमैका, सूरीनाम, आस्ट्रेलिया एवं कनाडा से एल्यूमिना आयात किया जाता है तथा जल विद्युत की सुविधा प्राप्त है। मोबाइल, बैटन रूज, हरीकेन क्रीक, सियटल, पौर्टलैण्ड तथा स्पोकेन मुख्य केन्द्र हैं।

(ii) **चीन :** एल्यूमिनियम उत्पादन में चीन का विश्व में दूसरा स्थान है। जहाँ विश्व का 15% एल्यूमिनियम का उत्पादन होता है। फूशुन, मंचूरिया, सिक्यांग, क्वीचाऊ, चैंगटू, चैंगचाऊ एवं नानकिंग उद्योग के प्रमुख केन्द्र हैं। यहाँ जल विद्युत एव ताप विद्युत की सुविधा से एल्यूमिनियम उद्योग की उन्नति हुई है।

(iii) **कनाडा :** यह तीसरा बड़ा एल्यूमिनियम उत्पादक राष्ट्र है जहाँ बॉक्साइट के पर्याप्त भण्डार, जल विद्युत की सुविधा, आन्तरिक जल परिवहन आदि अनुकूल दशाऐं प्राप्त हैं। यहाँ मॉन्ट्रियल, क्यूबेक, अरविदा आदि मुख्य एल्यूमिनियम उत्पादक केन्द्र हैं।

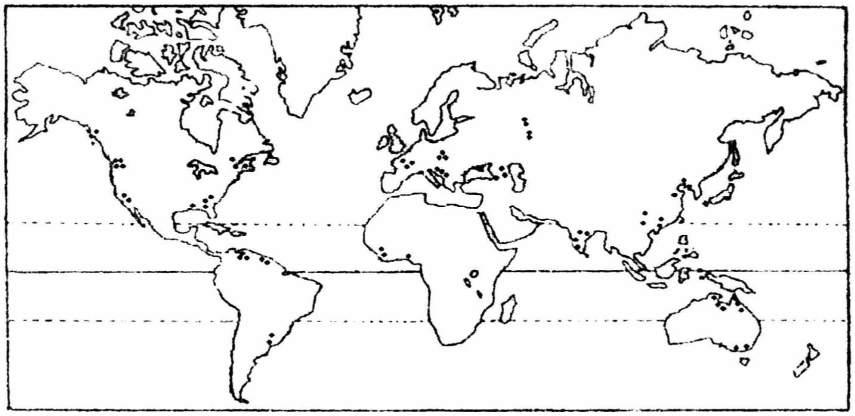

मानचित्र– 9.6 : विश्व में एल्यूमिनियम उत्पादक केन्द्र

(iv) **रूस :** रूस में विश्व का 2% बाक्साइट भण्डार हैं। इसके अलावा नेफेलीन व एल्यूनाइट खनिजों से भी एल्यूमिनियम प्राप्त किया जाता है। रूस में एल्यूमिनियम के कारखाने खनिज क्षेत्रों एवं विद्युत उत्पादन केन्द्रों के समीप स्थापित हैं। स्वर्डलोवस्क, क्रास्नोयार्स्क, ब्राटस्क, इकुर्टस्क, पावलोदार, डोनेत्स एवं कर्च प्रायद्वीप में एल्यूमिनियम का उत्पादन होता है।

(v) **यूरोपीय देश.** यूरोपीय देशों में फ्रांस में 70 करोड़ टन बाक्साइट के भण्डार हैं। ट्रलोन मुख्य उत्पादक केन्द्र हैं। जर्मनी में विश्व का 2% एल्यूमिनियम का उत्पादन होता है। यहाँ म्यूनिख मुख्य केन्द्र है। हंगरी में अराद, स्विटजरलैण्ड में ज्यूरिख, चेकेस्लोवाकिया में ऑस्ट्राऊ, बेल्जियम में ब्रूसेल्स आदि एल्यूमिनियम उत्पादक केन्द्र हैं।

(vi) **भारत :** विकासशील देशों में भारत की एक अपवाद है जहाँ स्वयं के उत्पादित बाक्साइट का एल्यूमिनियम बनाने में उपयोग किया जाता है। यहाँ 60 करोड़ टन उच्च कोटि के बाक्साइट भण्डार हैं। यहाँ रेनकूट (उत्तर प्रदेश), अल्वाये (केरल), कोरबा (मध्य प्रदेश), रत्नागिरी (महाराष्ट्र), रांची (झारखंड), मांडवी (गुजरात) आदि मुख्य केन्द्र हैं।

(vii) **जापान :** जापान विश्व का 9% एल्यूमिनियम का उत्पादन करता है जो अधिकांश आयातित एल्यूमिना से किया जाता है। सस्ता जल यातायात एवं सस्ती जल विद्युत के कारण जापान में एल्यूमिनियम उद्योग में अत्यधिक उन्नति हुई है। अधिकांश कारखाने तटवर्ती बन्दरगाहों पर स्थापित हैं।

(viii) **अन्य देश :** उपरोक्त देशों के अलावा दक्षिणी अफ्रीका, ब्राजील, जमैका, ब्रिटेन, इटली, युगोस्लाविया आदि देशों में भी एल्यूमिनियम उद्योग का विकास हुआ है।

बोध प्रश्न– 2

1. एल्यूमिनियम उद्योग की स्थापना मे सबसे महत्वपूर्ण कारक है:–

   (अ) बाक्साइट भण्डार   (ब) विद्युत शक्ति

   (स) यातायात   (द) पूँजी

2.बाक्साइट से एल्यूमिनियम प्राप्त करने की विधि किसने विकसित की थी?

....

....

3 .एल्यूमिनियम का उपयोग कहाँ–कहाँ होता है?

....

....

4 .वर्तमान में विश्व में एल्यूमिनियम प्रमुख उत्पादक देश कौन–कौन हैं?

....

....

9.4 इन्जीनियरिंग उद्योग (Engineering Industries)

औद्योगिकरण में इंजीनियरिंग उद्योग का विशेष महत्व है जो कि लोहा–इस्पात उद्योग पर आधारित है। मानवोपयोगी यंत्र, मशीनें, वाहन, कृषि यंत्र आदि इंजीनियरिंग उद्योग के अन्तर्गत आता है। इसके अन्तर्गत दो प्रकार के उद्योग आते हैं। एक वे जो वस्तुओं के निर्माण में औजार व कल पुर्जे तैयार करते हैं। दूसरे वे जो कि उपभोक्ता की सुविधा के लिए, जैसे–वाहन आदि बनाते है।

9.4.1 मशीनों एवं औजारों का निर्माण (Manufacturing of Machine and Tools)

यह उद्योग वैसे आकार में छोटे होते हैं, परन्तु ये आधारभूत उद्योग है जो मशीनों, कल कारखानों, मोटर वाहनों आदि के लिए कल पुर्जे तैयार करते हैं। इन उद्योगों के लिए उत्तम किस्म का कठोर इस्पात, कुशल व दक्ष मजदूर एवं आधुनिक तकनीकी ज्ञान आवश्यक होता है। मशीनों एवं औजारों का निर्माण करने वाले उद्योगों का स्थानीयकरण निम्न देशों में मिलता है –

(i) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** यहाँ महान झील क्षेत्र में देश का 6००4 मशीनी औजार बनाये जाते हैं। शिकागो, मिलवाकी, डेट्रायट, पिट्सबर्ग, क्वींसलैण्ड, सिनसिनाटी, बफैलो, न्यूयार्क आदि इंजीनियरिंग उद्योग के प्रमुख केन्द्र हैं।

(ii) **रूस :** रूस. एवं अन्य गणराज्यों में औद्योगिक मशीनों, विद्युत यंत्रों, वैज्ञानिक यंत्रों परिवहन मशीनरी, रेल मशीनें, कृषि यंत्र, युद्ध सामग्री आदि में नवीन तकनीक का प्रयोग होता है। यहाँ मास्को, गोर्की, तुला, यारोस्लाव, कुर्स्क, नीपरोपेट्रोवस्क, रोस्तोव, लेनिनग्राद, ग्रोजनी, बाकू, ताशकन्द, ब्लाडीवोस्टक आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

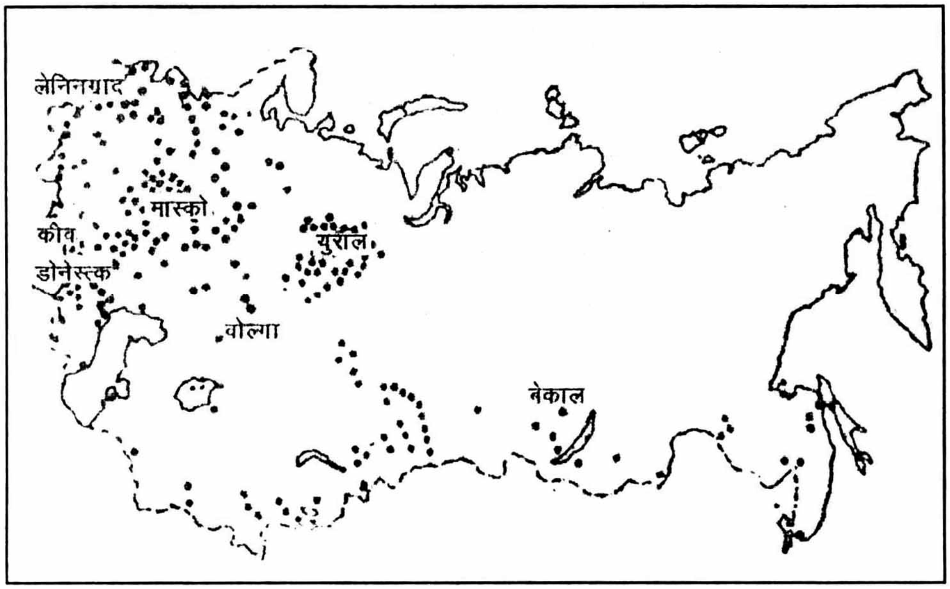

मानचित्र – 9.7 रूस एवं गणराज्यों में मशीन निर्माण उद्योग के केन्द्र

(iii) **जर्मनी.** जर्मनी में रूर प्रदेश औजार निर्माण के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ कोलोन, ऐसेन, डुसेलडोर्फ, फ्रैंकफर्ट, स्टटगार्ड एवं बर्लिन मशीन निर्माण उद्योग के प्रमुख केन्द्र हैं।

(iv) **ब्रिटेन :** यहाँ शैफील्ड क्षेत्र में देश की 75% मशीनें व औजार बनते हैं। बर्मिंघम, मानचेस्टर, ग्लासगो, लन्दन आदि औजार निर्माण के अन्य प्रसिद्ध केन्द्र हैं।

(v) **अन्य देश :** इनके अलावा जापान में टोकियो, कोबे, ओसाका, नगोया, निगाता, याकोहामा; भारत में बंगलौर, कोयम्बटुर, अमृतसर, चण्डीगढ़, मुम्बई, रांची, अहमदाबाद, लुधियाना व कानपुर मशीनें व औजार निर्माण के प्रमुख केन्द्र हैं।

9.4.2, मोटर गाड़ी उद्योग (Automobile Industries)

इस उद्योग मे विभिन्न निर्माण उद्योगों से उत्पादित वस्तुओं का एकत्रीकरण करके सज्जीकरण (Assembling) किया जाता है। इसमें मोटर गाड़ियों, कारों, बसों, ट्रकों आदि का निर्माण किया जाता है। विश्व में प्रतिवर्ष 5 करोड़ मोटर गाड़ियों का उत्पादन होता है। प्रमुख उत्पादक देश निम्न हैं –

(i) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** घनी जनसंख्या, सडकों का सघन जाल, उच्च क्रम क्षमता एवं मोटर निर्माण की उपयुक्त सुविधाओं के फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका मोटर गाड़ी उद्योग में विश्व में प्रथम स्थान पर है। यहाँ डेट्रायट विश्व का सबसे बड़ा केन्द्र हैं यहां शेवर लेट, फोर्ड गाड़िया बनती है। इसके अलावा फ्लिन्ट, टोलेडो, शिकागो, गैरी, मिलवाकी, इण्डियानोपोलिस, क्लीवलैण्ड, बफैलो, न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया, बाल्टीमोर, न्यू जर्सी आदि केन्द्रों पर मोटर गाड़ी उद्योग केन्द्रित हैं।

(ii) **जापान :** यह विश्व का दूसरा बड़ा मोटर गाड़ी निर्माणक देश है जहाँ विश्व की 21% मोटर गाडियों का निर्माण होता है। टोकियो, याकोहामा, नगोया, नागासाकी, ओसाका, हिरोशिमा, कवायुकी, कैमेशी तथा कारोमो मोटरगाड़ी निर्माण के प्रमुख केन्द्र हैं।

(iii) **जर्मनी :** मोटरगाड़ी उद्योग में जर्मनी का तीसरा स्थान है जहाँ विश्व की 9% मोटर गाड़ियाँ बनती हैं। फ्रैंकफर्ट, स्टटगार्ड, गैगेनाऊ, रसेलहाइम, आक्सबर्ग, ब्रोमेन, हनोवर, कोलोन, बर्लिन, लिपजिंग, ब्रेसविक आदि मोटर गाड़ी निर्माणक केन्द्र

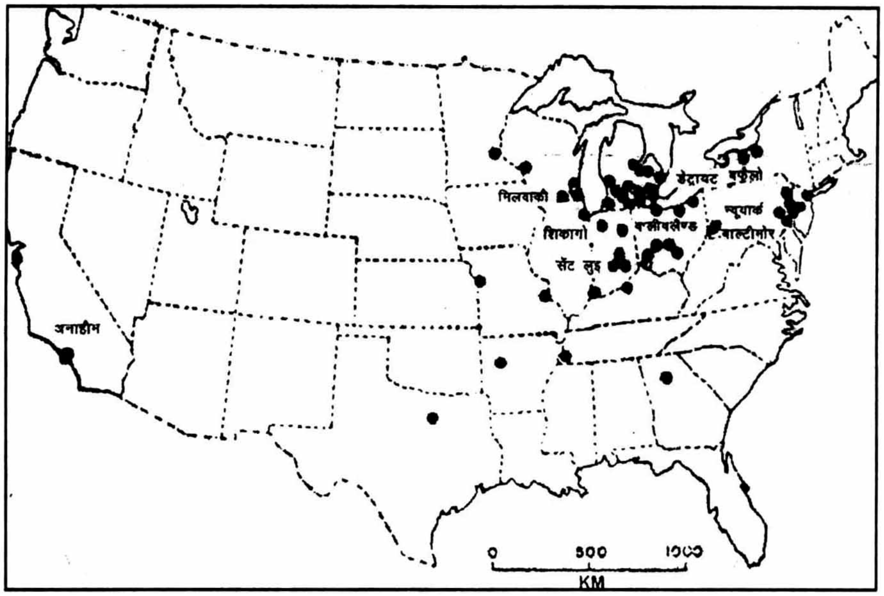

मानचित्र – 9.8 संयुक्त राज्य अमेरिका में मोटरगाड़ी उद्योग के केन्द्र

(iv) **फ्रांस:** यह विश्व का चौथा बड़ा मोटर गाड़ी उत्पादक देश है। पेरिस देश का सबसे बड़ा केन्द्र है जहाँ फ्रांस की एक चौथाई मोटर गाड़ियाँ बनती हैं। इसके अलावा रूएं, लमांस, रेन्स, स्ट्रासबर्ग, सोशाक्स, बर्लिएट आदि अन्य मोटर गाड़ी निर्माण के केन्द्र हैं।

(v) **ब्रिटेन :** यह देश सबसे बड़ा केन्द्र हैं जहाँ मोटर गाड़ी निर्माण के 11 कारखाने हैं। इसके अलावा बर्मिंघम, लन्दन, ल्युट्न, आक्सफोर्ड, लिवरपूल, लीलेन्ड, ग्लासगो तथा डेगेनहेम अन्य केन्द्र हैं।

(vi) **रूस :** यहाँ यूरोपीय रूस में मोटर गाड़ी उद्योग का केन्द्रीय करण हुआ, जहाँ गोर्की व मास्को दो प्रसिद्ध केन्द्र हैं। इसके अलावा रोस्टोव, इरकुटस्क, पोरोस्लाव अन्य प्रमुख केन्द्र हैं

(vii) **अन्य देश :** उपरोक्त देशों के अलावा इटली में त्यूरिन, पीसा, मोडिना, केमेरी; कनाडा में विंडसर, माण्ट्रियल, टोरण्टो; भारत में मुम्बई, कोलकाता, चैन्नई, जमशेदपुर आदि में भी मोटर गाड़ियों बनती है।

मोटर गाड़ी उद्योग आस्ट्रेलिया, ब्राजील, द. कोरिया, पोलैण्ड, हंगरी, अर्जेन्टाइना आदि देशों में भी प्रचलित है।

9.4.3 जलयान निर्माण उद्योग (Ship Building Industries)

जलयान निर्माण एक इस्पात आधारित भारी इंजीनियरिंग उद्योग है जो उन देशों में प्रचलित है जहाँ इस्पात का निर्माण होता है तथा समुद्र तटीय स्थिति है। जलयान निर्माण के लिए अनेक उद्योगों के उत्पाद को दक्ष व कुशल श्रमिकों द्वारा विशेष तकनीक से एकत्रित किया जाता है। जलयान छोटे 1000 टन की क्षमता से लेकर वृहत 50,000 टन की क्षमता के बनाये जाते हैं। प्रमुख उत्पादक देश निम्न है : –

(i) जापान : विश्व के 40% जलपोत निर्माण करने वाला जापान विश्व का अग्रणी जलयान निर्माण कर्ता देश है। कुशल व दक्ष श्रमिक, उत्तम पोताश्रय व मुलायम लकड़ी, खाडिया, आधुनिक नवीन तकनीक, इस्पात का प्रचुर उत्पादन आदि सुविधाओं के कारण जापान पोत निर्माण में अग्रणी राष्ट्र बन गया है। यहाँ याकोहामा, कोबे–ओसाका, हिरोशिमा, नागासाकी–शिमोनास्की आदि प्रमुख जलयान निर्माण क्षेत्र है। नागासाकी विश्व का प्रमुख पोत निर्माण केन्द्र है।

(ii) दक्षिणी कोरिया : जलयान निर्माण में दक्षिणी कोरिया ने गत दशक से आश्चर्यजनक प्रगति की है। यहाँ विश्व के 28% जलपोतों का निर्माण होता है। इस्पात का उत्पादन, तटवर्ती स्थिति, पर्याप्त मांग एवं दक्ष व कुशल श्रमिकों की सुविधाओं ने जलयान उद्योग को उन्नति पर पहुँचा दिया है।

(iii) जर्मनी : यह विश्व का तीसरा जलयान निर्माणक देश है जहाँ विश्व के 5% जलयान बनते हैं। लूबेक, हेमबर्ग, हेवेन, ब्रीमेन, कील, रासटॉक, हुईसबर्ग, कोलोन आदि प्रमुख जलपोत निर्माण केन्द्र हैं।

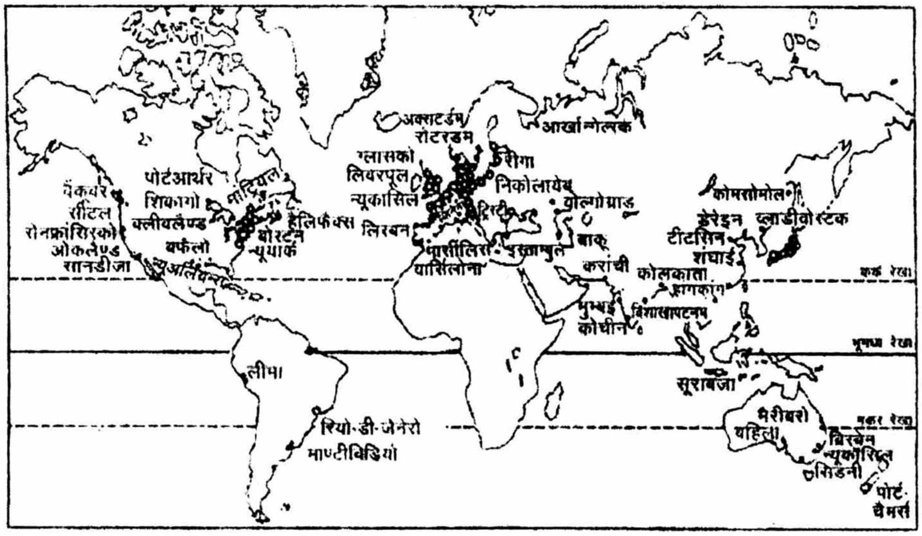

मानचित्र – 9.9 : विश्व में जलयान निर्माण के प्रमुख केन्द्र

(iv) स्पेन : जलपोत निर्माण में स्पेन का विश्व में चौथा स्थान है। यहाँ बर्सीलोना, किबाओ तथा वेलेन्सिया वृहद् केन्द्र हैं।

(v) ग्रेट ब्रिटेन : ग्रेट ब्रिटेन लम्बे समय तक एक अग्रणी जलयान निर्माता देश रहा था परन्तु अब यहाँ उत्पादन तेजी से घट रहा हैं यहाँ टाइन, वीयर व टीज नदियों की एस्चुरी में न्यूकेसिल, सुन्दर लैण्ड हर्टिलेपुल, क्लाइड क्षेत्र, मरसी नदी के किनारे बर्किनहेड़, उत्तरी आयरलैण्ड में बेलफास्ट प्रमुख जलपोत निर्माण केन्द्र हैं।

(vi) संयुक्त राज्य अमेरिका : संयुक्त राज्य अमेरिका में मेक्सिको खाड़ी तट पर न्यूआर्लियस, हाउस्टन, मोबाइल; अटलांटिक तट पर बोस्टन, विलिंगटन, बाल्टीमोर,

जार्जिया, फिलाडेल्फिया, चेस्टर; झील तट पर शिकागो, डेट्रायट, क्लीवलैण्ड तथा प्रशान्त तट पर पोर्टलैण्ड, सेनफ्रांसिसको, सियटल आदि प्रमुख जलयान निर्माणक केन्द्र हैं।

(vii) **रूस :** अधिकांश समुद्री तट पर जमे रहने के कारण रूस में जलयान निर्माण उद्योग की यथेष्ट प्रगति नहीं हुई है। अन्य सुविधाओं से अब प्रगति की जा रही है। लेनिग्राड, तल्लिन, रीगा, आर्केन्जलस्क, रोस्टोव, ब्लाडीवोस्टक, वोल्गोग्राड आदि जलयान निर्माण के मुख्य केन्द्र हैं।

(viii) **अन्य देश**: उपरोक्त देशों के अलावा इटली में जिनेआ, रोम, वेनिस, मेसीना व नेवपल्स; स्वीडन में गोटेबर्ग, मालमो एवं उद्देवल्ला; फ्रांस में ली हेवर, पिलन्स, फ्लेरमाण्ट, पेरिस एवं बोर्डियो, इटली में त्यूरिन व लेन्सिया तथा भारत में मुम्बई, कोचीन, गोआ तथा विशाखापटनम प्रमुख जलयान उद्योग के केन्द्र हैं।

9.4.4 वायुयान निर्माण उद्योग (Aircraft Industry)

1903 में राइट बन्धुओं ने प्रथम शक्ति चालित वायुयान का निर्माण करने के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका व यूरोपीय देशों में इस उद्योग का विकास किया गया। उपयुक्त धरातल, कुशल श्रमिक, उन्नत तकनीक, वृहद पूंजी, उपयुक्त जलवायु आदि दशाओं की आवश्यकता के कारण यह एक जटिल उद्योग है। विभिन्न स्थानों पर उत्पादित सामग्री को पुनः एक स्थान पर सज्जीकरण किया जाता है। वायुयान निर्माण करने वाले प्रमुख देश निम्न हैं –

(i) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** यह विश्व का प्रमुख वायुयान निर्माणक देश है जहाँ प्रशान्त व अटलांटिक तट पर उद्योग का केन्द्रीयकरण मिलता है। लौंगबीच, सेन्टामोनिका, सेनडीगो, लॉसएंजिल्स, डल्लास, फोर्टबर्थ, बाल्टीमोर सीएटल, विचिता, कन्सास सिटी एवं न्यूयार्क प्रमुख वायुयान निर्माण के केन्द्र हैं।

(ii) **रूस :** वायुयान निर्माण में रूस का दूसरा स्थान है। विस्तृत भू–भाग, धरातलीय परिवहन की कमी, कई महीनों तक नदियाँ यातायात के लिए अनुपयुक्त रहना आदि दशाओं के कारण रूस में वायुयान निर्माण पर अधिक ध्यान दिया गया। यहाँ मास्को, वोल्गा बेसिन में कजान व वोल्किन्स, पूर्वी साइबेरिया में क्रास्नोयार्स्क व नोवोसिविर्स्क, यूराल प्रदेश में चेलियाबिन्स्क रख पर्म तथा लेनिनग्राड में वायुयान निर्माण किये जाते हैं।

(iii) **ग्रेट ब्रिटेन** : वायुयान निर्माण में लम्बे समय तक अग्रणी रहा ग्रेट ब्रिटेन अब विश्व में तीसरे स्थान पर है। लन्दन, बर्मिंघम, रीडिंग, हेम्पटन, डम्बारटन, साउथहेम्पटन, रोचेस्टर ब्रिस्टल, बरो, बेलफास्ट आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(iv) **फ्रांस :** फ्रांस में तालबेस, बोर्डियो, पेरिस एवं टूल हाउस केन्द्रों पर सुपर सानिक लडाकू विमान तथा व्यापारिक जेट वायुयान बनाये जाते हैं।

(v) **जापान :** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान ने पुराने केन्द्रों को संगठित कर वायुयान निर्माण में प्रगति की है। यहाँ तीन क्षेत्रों – (अ) टोकियो–याकोहामा (ब) कोबे–ओसाका एवं (स) नगोया क्षेत्र में वायुयान निर्मित किये जाते हैं।

(vi) आस्ट्रेलिया: यहाँ मेलबर्न, ब्रिस्बेन, पैराफील्ड तथा बैप्सटाउन प्रमुख वायुयान निर्माण के केन्द्र हैं।

(vii) **भारत :** 1942 के बाद भारत में भी वायुयान निर्माण उद्योग में प्रगति हुई है। यहाँ बैंगलोर, कानपुर, कोरापुट, नासिक एवं हैदराबाद में वायुयान निर्माण होते हैं। भारत में अब विदेशी कम्पनियों द्वारा मोटर निर्माण उद्योग लगाने के कारण विश्व का प्रमुख केन्द्र बनता जा रहा है जहाँ सस्ते श्रम के कारण यह उद्योग निर्यात की दृष्टि से सस्ता पड़ता है। अत: भारी संभावनाओं का क्षेत्र बन रहा है।

9.4.5 कृषि यंत्रों का निर्माण (Manufacturing Industry of Agriculture Machinery)

आधुनिक समय में कृषि कार्य में बोआई से लेकर गुडाई, निराई, सिंचाई, कटाई आदि कार्यों में मशीनों का प्रयोग होने लगा है। कृषि यंत्रों में ट्रेक्टर, थ्रेसर, ट्राली, हैरो, कम्बाइन हार्वेस्टर स्प्रिन्क्रलर आदि प्रमुख है। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, कनाडा, यूरोपीय देश, जापान, चीन, भारत, आस्ट्रेलिया आदि देशों में कृषि यंत्रों का निर्माण होता है।

(i) **रूस :** कृषि यंत्रों के निर्माण में रूस विश्व में प्रथम स्थान पर हैं यहाँ विस्तृत कृषि फार्मों पर कृषि विकास मशीनों की देन है। चेल्याबिन्स्क, स्टालिनग्राड़, रोस्टोव, सारातोव, रियाजाना, तारजौंक आदि केन्द्रों पर कृषि यंत्र तैयार होते है।

(ii) **संयुक्त राज्य अमेरिका :** संयुक्त राज्य अमेरिका में घरेलू आवश्यकता एवं निर्यात हेतु कृषि यंत्रों का निर्माण किया जाता है। शिकागों यहाँ का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ कृषि क्षेत्र का समीपवर्ती बाजार, सड़क–रेल व जल परिवहन का केन्द्र, समीप ही इस्पात उद्योग के केन्द्र आदि सुविधाऐं प्राप्त हैं। इसके अलावा कोलम्बस, रिचमंड, मिलवाकी, स्प्रिंगफील्ड, सेनडीयागो, सेनफ्रांसिसको, लॉस एंजिल्स, सेक्रामेन्टो आदि मुख्य केन्द्र हैं।

(iii) **जापान :** जापान ने छोटे व हल्के कृषि यंत्रों के उत्पादन में क्रान्ति ला दी है। यहाँ टोकियो, याकोहामा, कोबे, ओसाका, नगोया, नागासाकी, हिरोशिमा, यवाता आदि कृषि यंत्र निर्माणक केन्द्र हैं।

(iv) **ब्रिटेन :** ब्रिटेन से कृषि यंत्रों का अत्यधिक मात्रा में निर्यात किया जाता है। लीड्स, डानकास्टर, केवेडी, डोकेनहाम ग्रेन्सबरो, नारविचक, साउथेम्पटन आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(v) **जर्मनी :** यहाँ राईन व रूर क्षेत्र में डुसलडर्फ, आक्सबर्ग, ब्रीमेन, हनोवर,' कोलोन, स्टटगार्ड, लीपजिंग, मेगडेबर्ग आदि कृषि यंत्र निर्माण करने वाले केन्द्र हैं।

(vi) **भारत :** भारत में कृषि में यंत्रीकरण को प्रोत्साहन के फलस्वरूप उद्योग की उन्नति हुई है। यहाँ पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में कृषि यंत्रों का निर्माण होता है।

(vii) **अन्य देश :** कनाडा, चीन, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, ब्राजील, पाकिस्तान, मलेशिया एवं पश्चिमी यूरोपीय देश भी कृषि का निर्माण करते हैं।

बोध प्रश्न –3

1. इंजीनियरिंग उद्योग मुख्यत: आधारित है –

   (अ) कोयला (ब) लौह–इस्पात

   (स) पूँजी (द) तकनीक ( )

2 .विश्व का सबसे बड़ा मोटर गाड़ी निर्माण का केन्द्र है –

   (अ) डेट्रायट (ब) लन्दन

   (स) मास्को (द) टोकियो ( )

3. जलयान निर्माण में अग्रणी देश है –

   (अ) ग्रेटब्रिटेन (ब) फ्रांस

   (स) जापान (द) जर्मनी ( )

4 .जलयान निर्माण उद्योग के लिए अनुकूल दशाऐं कौन सी है ?

   ....

   ....

5. जापान में वायुयान निर्माण के केन्द्रों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

6. कृषि यंत्रों के निर्माण में कौनसा देश अग्रणी है ?

   ....

   ....

9.5 सारांश (Summary)

लोहा इस्पात उद्योग वर्तमान औद्योगिक सभ्यता की रीढ़ है। इसके स्थानीयकरण में कच्चा माल, यातायात के साधन, बाजार, सस्ती भूमि, पर्याप्त स्वच्छ जल, पूंजी, सरकारी नीतियाँ आदि तत्वों की प्रमुख भूमिका है। चीन, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन एवं भारत प्रमुख इस्पात उत्पादक देश हैं। विकासशील देश इस्पात का आयात करते हैं।

बाक्साइट से एल्यूमिनियम प्राप्त करने की हाल्ट–हैराल्ट विधि के उपरान्त विश्व में एल्यूमिनियम उद्योग का तीव्र गति से विकास हुआ है। एल्यूमिनियम का उपयोग हवाई जहाज, जलयान, मोटरगाड़ी, भवन निर्माण, मशीनों के कल–पुर्जे, बर्तन, विद्युत सामग्री आदि में एल्यूमिनियम का उपयोग बढ़ गया है। यह उद्योग विद्युत आधारित होने के कारण जल विद्युत क्षेत्रों के निकट इसका स्थानीयकरण हुआ है। आधुनिक समय में इंजीनियरिंग उद्योगों का अत्यधिक महत्व है। इसमें दो प्रकार के उद्योग आते है – प्रथम वे जो वस्तुओं के निर्माण के लिए औजार व कलपुर्जे तैयार करते हैं। द्वितीय, वे जो उपभोक्ता की सुविधा के लिए निर्मित होते हैं जैसे–वाहन ।

इंजीनियरिंग उद्योगों का विकास उन देशों में हुआ है जो लोह–इस्पात उद्योग में अग्रणी हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन, भारत आदि देशों में विभिन्न प्रकार के इंजीनियरिंग उद्योग स्थापित हैं।

9.6 शब्दावली (Glossary)

- **स्थानीयकरण** : किसी स्थान विशेष पर स्थापित होना।
- **स्क्रेप** : बेकार लोहा या टूट–फूट का लोहा।
- **बहुस्तरीय** : विभिन्न अवस्थाऐं।
- **आधारभूत** : जिन पर दूसरी वस्तुओं का उत्पादन निर्भर हो।
- **एकत्रीकरण** : विभिन्न वस्तुओं को जोड़कर एक वस्तु का निर्माण करना।

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. सिंह एवं सिंह : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व**, वसुन्धरा प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कौशिक : **आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त**, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ
3. जाट एवं गुर्जर : **मानव एवं आर्थिक भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
4. हारून, मो. : **आर्थिक भूगोल के मूलतत्व**, वसुन्धरा प्रकाशन, इलाहाबाद

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. जापान (द)
2. लौह इस्पात के निर्माण में कच्चा लोहा, कोयला, चूना पत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज, निकल, क्रोमियम आदि पदार्थो की आवश्यकता होती है।
3. ग्रेट ब्रिटेन में।
4. सस्ता जल यातायात एवं जल विद्युत ने जापान से इस्पात उद्योग की उन्नति हुई है।

बोध प्रश्न – 2

1. विद्युत शक्ति (ब)
2. अमेरिकन वैज्ञानिक मार्टिन हाल्ट एवं फ्रेंच वैज्ञानिक हैराल्ट ने।
3. हवाई जहाज, जलयान, मोटर गाड़ी, भवन निर्माण, मशीनों के कलपुर्जे, बर्तन, विद्युत सामान आदि में एल्यूमिनियम का उपयोग होता है।
4. संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, कनाडा, रूस, फ्रांस, जापान व भारत विश्व के प्रमुख एल्यूमिनियम उत्पादक देश हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. लौह–इस्पात (ब)

2 .डेट्रायट (अ)

3. जापान (स)

4. इस्पात का पर्याप्त उत्पादन, उत्तम पोताश्रय, दक्ष व कुशल श्रमिक एवं आधुनिक तकनीक आदि।

5. टोकियो, याकोहामा, कोबे, ओसाका, नागोया आदि।

6. रूस।

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व में लोहा–इस्पात उद्योग के स्थानीयकरण का विवेचन कीजिए?
2. विश्व में एल्यूमिनिमय उद्योग के स्थानीयकरण कारकों का विवेचन करते हुए विश्व वितरण को समझाइये।
3. मशीन एवं औजारों के निर्माण उद्योग के वितरण की व्याख्या कीजिए?
4. जलयान निर्माण उद्योग के लिए किन–किन दशाओं की आवश्यकता होती हैं? विश्व में जलयान उद्योग के स्थानीयकरण को समझाइये।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए
   (i) विश्व में वायुयान निर्माण उद्योग।
   (ii) लोहा–इस्पात उद्योग के स्थानीयकरण कारक।
   (iii) विश्व में कृषि यंत्र निर्माण उद्योग का वितरण।

इकाई 10 : सूती वस्त्र तथा कागज एवं लुग्दी उद्योग (Cotton Textile and Paper and Pulp Industry)

इकाई की रूप रेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 सूती वस्त्र उद्योग
10.3 सूती वस्त्र उद्योग की विशेषताएँ
10.4 सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण के कारक
10.5 सूती वस्त्र उद्योग का विश्व में उत्पादन प्रतिरूप
10.6 विश्व में सूती वस्त्र उद्योग का वितरण
10.7 लुग्दी एवं कागज उद्योग की प्रस्तावना
10.8 लुग्दी एवं कागज उद्योग का क्रमिक विकास
10.9 लुग्दी और कागज उद्योग के स्थानीय करण के कारक
10.10 कागज एव लुग्दी उत्पादन का प्रतिरूप
10.11 कागज एव लुग्दी उद्योग का विश्व वितरण
10.12 सारांश
10.13 शब्दावली
10.14 संदर्भ ग्रन्थ
10.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सूती वस्त्र उद्योग और कागज एवं लुग्दी उद्योगों के बारे में समझ सकेंगे

- दोनों उद्योगों का आधुनिक सभ्य मानव के जीवन में महत्व,
- दोनों उद्योगों का हस्तकला से किस प्रकार आधुनिक रूप में विकास हुआ,
- ऐसे कौन से भौगोलिक, आर्थिक व राजनीतिक कारक हैं जो दोनों के स्थानीयकरण को प्रभावित करते हैं,
- दोनों उद्योगों के उत्पादन प्रारूप तथा तुलनात्मक अध्ययन द्वारा कम या अधिक उत्पादन के कारण,
- दोनों उद्योगों का विश्व वितरण,
- प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र पर उपलब्ध अनुकूल दशाएँ,

- औद्योगिक क्षेत्रों पर उद्योग के ह्रास के कारण।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता वस्त्र सम्बन्धी है। आदिकाल से मानव सूर्यताप, वर्षा तथा कीटाणुओं से शरीर की रक्षा करने के लिए सचेत रहा है। आदि काल में जब मानव सभ्यता से कोसों दूर था तथा वन्य जीवन व्यतीत करता था तो उस समय वह अपने तन को मिट्टी का लेप लगा कर ढकता था। आज भी अफ्रीका के कांगो वनों में निवास करने वाले आदिवासी लोग कीटाणुओं के विषैले प्रहारों से बचने के लिए शरीर पर मिट्टी का लेप करते हैं। इसके साथ ही उसने शरीर ढकने के लिए प्राकृतिक एवं जैविक पदार्थो का प्रयोग प्रारम्भ किया। इन पदार्थो में वृक्षों के पत्ते, छाल तथा पशुओं के चमड़े का प्रमुख स्थान था। टुण्ड्रा प्रदेश के एस्किमो आज भी शरीर को पशुओं के चमड़े से ढकते हैं। लेकिन सभ्य मानव में वनस्पतियों का सीधे उपयोग न करके उनको परिमार्जित करके उनका उपयोग करना सीख लिया है। इसका उदाहरण कपास से रेशा तैयार करके कपड़ा बनाना या रेशम के कीड़े से रेशम प्राप्त करके कपड़ा तैयार करना है। धीरे–धीरे जनसंख्या वृद्धि के साथ कपड़े की माँग में वृद्धि और कच्चे माल की कमी से मानव ने कृत्रिम रेशे का अविष्कार कर उससे कपड़ा तैयार करने की कला में दक्षता प्राप्त की है। आज वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत सूती, ऊनी, रेशमी तथा कृत्रिम रेशे से निर्मित वस्त्रों को सम्मिलित किया जाता है। लेकिन इन सभी में सूती वस्त्र उद्योग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

10.2 सूती वस्त्र उद्योग का क्रमिक विकास (Development of Cotton Textile Industry)

सूती वस्त्र उद्योग एक प्राचीन उद्योग है। विश्व के अन्य देश सूती वस्त्र निर्माण कला से अनभिज्ञ थे उस समय भारतवर्ष में यह उद्योग केवल उत्पादन की दृष्टि से ही नही अपितु गुणात्मक दृष्टि से भी चरमोत्कर्ष पर था। यहाँ निर्मित होने वाली ढाका की मलमल इसका उदाहरण थी। 5,500 वर्ष पूर्व मिश्र में राजसी मृत शरीरों को भारतीय मलमल में लपेट कर रखा जाता था। इसके प्रमाण वहाँ पिरामिडों में रखे मृत शरीर हैं। इसी प्रकार उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के प्राचीन अवशेष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वहाँ भारत में निर्मित सूती वस्त्रों का उपयोग होता था। भारत में सम्भवत: उस समय तकली या चरखे से सूत काता जाता था और हथ करघों द्वारा धागों से कपड़ा तैयार किया जाता था। 17 वी शताब्दी में इग्लैण्ड में सूती वस्त्र उद्योग का कार्य प्रारम्भिक स्तर पर प्रारम्भ हुआ। इस काल में इंग्लैण्ड में कपास तथा धागे का आयात भारत से किया जाता था। इस उद्योग का वास्तविक विकास 18 वीं शताब्दी में हुआ जब हारग्रीब्ज, आर्कराइट, क्रोम्पटन नामक प्राविधिक विशेषज्ञों ने यांत्रिक चरखों व करघों का आविष्कार किया। सन् 1793 में ह्विटले ने कपास औटने की मशीन का आविष्कार किया। इसके साथ ही ग्रेट ब्रिटेन में सूती मिल उद्योग की स्थापना हुई।

सूती वस्त्र के क्रमिक विकास को तीन चरणों के अन्तर्गत बाँटा जा सकता है –

1. **प्रथम चरण :** प्रथम चरण के रूप में यह उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में भारत और चीन में विकसित हुआ। हाथ से बने इस कपड़े की मांग यूरोपीय देशों में अधिक थी।
2. **द्वितीय चरण :** द्वितीय चरण में यूरोपीय देशों में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति ने मशीनों द्वारा कताई व बुनाई के कार्य को मिल उद्योग का रूप प्रदान किया। धीरे–धीरे तकनीकी विकास के कारण उच्च कोटि की मशीनों का आविष्कार प्रारम्भ हुआ। इस प्रक्रिया के कारण वस्त्र उत्पादन में वृद्धि हुई। वस्त्र उद्योग अब आधुनिक रूप धारण करने लगा। इस चरण में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में सूती वस्त्र उद्योग का अधिक विकास हुआ। ये देश आयातित कपास पर निर्भर थे। मेनचेस्टर इस काल में प्रमुख सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र के रूप में उभर कर प्रसिद्ध हुआ।
3. **तृतीय चरण.** तृतीय चरण में इस उद्योग का विकास विश्व के उन देशों में अधिक हुआ जहाँ कच्चा माल, कुशल श्रमिक, मांग, मशीनें, पूँजी आदि तत्व सरलता से उपलब्ध थे। इस काल में एशिया के देश जैसे जापान, चीन, भारत आदि में भी यह उद्योग विकसित हुआ।

आधुनिक युग में इस उद्योग में विशिष्टीकरण पर अधिक बल दिया गया है। अब सूती वस्त्र से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाएँ जहाँ एक मिल में सम्पन्न होती थी; वे अलग–अलग स्थानों या मिलों में की जाने लगी। उदाहरण के लिए कपास को धोकर साफ करना, सूत की कताई करके धागा बनाना, धागे की रंगाई करना, वस्त्र बुनना, तैयार वस्त्र पर छपाई करना आदि कार्य अलग–अलग स्थानों पर कुशल श्रमिकों के द्वारा किए जाने लगे है। इस प्रकार इस उद्योग का इतना बड़ा रूप हो गया है कि आज इसकी गणना वृहतम उद्योगों में की जाने लगी है।

10.3 सूती वस्त्र उद्योग की विशेषताएँ (Characteristics of Cotton Textile Industry)

यह एक निर्विवाद सत्य है कि सभ्यता के विकास ने सूती वस्त्र उद्योग का अत्यधिक विस्तार किया है। सूती वस्त्रों के गुणात्मक एवं कलात्मक रूपों में विकास के लिए आधुनिक सभ्यता उत्तरदायी है। इस उद्योग की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार हैं -

1. अन्य भारी उद्योग जैसे लोहा इस्पात, धातु शोधन की अपेक्षा इसमें कम पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है।
2. तेल परिष्करण तथा रासायनिक उद्योगों की अपेक्षा इस उद्योग में पर्यावरण प्रदूषण की सम्भावना कम होती है।
3. कपास हल्की भार वाली होने से यह सूती वस्त्र उद्योग को अपने उत्पादक क्षेत्रों की ओर कम आकर्षित करती है।
4. आज के औद्योगिक युग में सूती वस्त्र उद्योग की गणना आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उद्योगों में की जाती है।
5. इस उद्योग के संयंत्र अपेक्षाकृत कम स्थान घेरते हैं।
6. यह उद्योग विश्व के सभी विकसित तथा विकासशील देशों में विकसित हुआ है।
7. सूती वस्त्र बनाने की प्रक्रिया जटिल नहीं है।

8. आज कल कृत्रिम रूप से आर्द्र दशाऐं पैदा करने की कला में निपुणता के कारण यह उद्योग समुद्रतटीय प्रदेशों की स्थिति से भी मुक्त हो गया है।
9. आजकल स्वचालित यंत्रों के आविष्कार तथा कम्प्यूटर के उपयोग के बढ़ने से श्रमिकों की उपलब्धता सम्बन्धी कारक भी इसकी स्थापना को प्रभावित नही करता है। सूती वस्त्र

10.4 सूती वस्त्र के उद्योग के स्थानीयकरण के कारक (Factors of Localization of Cotton Textile Industry)

सूती वस्त्र उद्योग की अवस्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं –

1. **कच्चा माल :** सूती वस्त्र उद्योग के लिए कच्चे माल के रूप में कपास का उपयोग होता है। कपास भार में हल्की होने के कारण इसको कम परिवहन मूल्य में कहीं भी ले जाया जा सकता है। इसी प्रकार परिष्करण प्रक्रिया में इसमें अनावश्यक पदार्थों की मात्रा कम निकलने के कारण छीजत कम निकलता है। इसी कारण यह उद्योग कपास उत्पादक देशों से दूर भी विकसित हुआ है। कपास उपोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। भारत, मिश्र, यूगाण्डा, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, पाकिस्तान आदि देशों में कपास पैदा की जाती है। इसके विपरीत ब्रिटेन और जापान में यह उद्योग आयातित कपास पर विकसित हुआ है।
2. **अनुकूल जलवायु :** चूकि शुष्क जलवायु में शुष्कता के कारण बुनाई के समय धागा प्राय: टूटता रहता है, इसी लिए सूती वस्त्र उद्योग के लिए आर्द्र जलवायु अधिक उपयोगी होती है। इसी कारण यह उद्योग सागर तटीय भागों में अधिक विकसित हुआ है। जापान तथा ब्रिटेन के लंकाशायर क्षेत्र में सूती वस्त्र के कारखाने आर्द्र जलवायु के कारण ही अधिक संख्या में स्थापित किए गये। भारत में भी पश्चिमी तटीय भागों में मुख्यत: महाराष्ट्र एवं गुजरात में समुद्रतटीय जलवायु के कारण इस उद्योग का स्थानीयकरण हुआ है। साथ ही जलवायु का स्वास्थ्यप्रद होना भी आवश्यक है जिससे श्रमिकों का स्वास्थ्य ठीक रहे तथा कार्य करने की क्षमता का हास न हो। वर्तमान समय में मानव ने वातानुकूलित विधि का विकास कर लिया है जिसके कारण अब यह उद्योग सागर तट से दूर देश के आन्तरिक भागों में भी स्थापित किया जा सकता है।
3. **शुद्ध जल :** सूती वस्त्र निर्माण की प्रक्रिया में सूती धागों की धुलाई, रंगाई तथा वस्त्रों की छपाई आदि कार्यो के लिए अधिक मात्रा में शुद्ध जल की आवश्यकता पड़ती है। इसी कारण सूती वस्त्र उद्योग नदियों, झीलों के निकट स्थापित किए जाते हैं। आजकल नलकूपों के द्वारा भी जल की आपूर्ति सम्भव हो गई है।
4. **शक्ति के साधन :** सामान्यत : शक्ति के साधन इस उद्योग को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। प्रारम्भ में कोयला तथा जल विद्युत की उपलब्धि ने इस उद्योग की स्थिति को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी अति देशों में यह उद्योग कोयला क्षेत्र के निकट स्थापित किया गया। लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूइंग्लैण्ड राज्य तथा भारत के महाराष्ट्र राज्य में जल विद्युत की उपलब्धता इस उद्योग की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

5. **कुशल श्रमिक :** सूती वस्त्र उद्योग के विविध कार्य जैसे धुलाई, बुनाई, रंगाई, छपाई आदि के लिए कुशल श्रमिकों का होना आवश्यक हैं। इसी कारण यह उद्योग उन देशों में अधिक विकसित हुआ जहाँ परम्परागत रूप से कार्य करने वाले बुनकर उपलब्ध थे। भारत और चीन इसके उदाहरण हैं। जापान विश्व में प्रतिस्पर्धा के रूप में अपने कुशल कारीगरों के बल पर ही सफलता प्राप्त कर रहा है।
6. **सस्ता परिवहन :** कच्चा माल तथा मशीनें मंगाने तथा निर्मित माल उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए सस्ते परिवहन के साधन उपलब्ध होना इस उद्योग के लिए आवश्यक है। जापान में जहाँ कच्चा माल स्थानीय रूप में उपलब्ध नहीं है वहां सस्ते जल परिवहन के कारण ही यह उद्योग विकसित हुआ है।
7. **बाजार की निकटता :** उद्योग के विकास के लिए खपत के क्षेत्र निकट ही स्थित होना आवश्यक हैं। वस्त्र का आयात करने पर उसके मूल्य में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए भारत में जनसंख्या की अधिकता से वस्त्रों की माँग भी अधिक रहती है। इस से यहाँ इस उद्योग को काफी बढ़ावा मिला। इसी प्रकार जापान को दक्षिण पूर्वी एशिया में निकट ही बड़ा बाजार उपलब्ध है।
8. **पूँजी की उपलब्धता :** उद्योग की स्थापना हेतु भूमि, मशीन, कच्चा माल तथा शक्ति के साधन हेतु पूँजी की आवश्यकता होती है। जिन क्षेत्रों में पूंजीपति पूँजी लगाने के लिए तैयार होते हैं, वहाँ पर इस उद्योग का विकास होता है। इसके उदाहरण मुम्बई, सूरत, अहमदाबाद आदि हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण कारक प्रबन्धन है। राजकीय नीति भी उद्योग की स्थापना तथा विकास को प्रभावित करती है। सामान्यत: उपरोक्त सभी कारकों के संयोग अथवा किसी एक कारक के अत्यधिक प्रभावी होने से इस उद्योग की स्थापना होती है।

10.5 सूती वस्त्र उद्योग का विश्व में उत्पादन प्रतिरूप (Production Pattern of Cotton Textile Industry in the World)

सूती वस्त्रों की मांग प्राय: सभी स्थानों के निवासियों द्वारा प्रदर्शित होती है, इसी कारण इस उद्योग का विकास विश्व के अधिकांश देशों मे हुआ है। सूती वस्त्रों के निर्माण में दो चरण महत्वपूर्ण हैं - प्रथम सूती धागे का उत्पादन और द्वितीय धागे को बुनकर वस्त्र का निर्माण करना।

यदि हम सूती धागे के उत्पादन का विश्लेषण करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि गत दो दशकों में इसका उत्पादन 24 प्रतिशत बढ़ा है।

इसका उत्पादन सन् 1960 में 925 लाख मीट्रिक टन था जो बढ़कर सन् 2004 में 190 लाख मीट्रिक टन तक पहुँच गया। अर्थात् 975 लाख मीट्रिक टन अधिक उत्पादन हुआ। यह तथ्य निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है –

तालिका–10.1 : विश्व के प्रमुख देशों में सूती धागे का उत्पादन

देश	विश्व के कुल उत्पादन का प्रतिशत 1960

	1960	2004
चीन	17.4	28.9
पूर्व सोवियत संघ	13.0	10.6
भारत	8.7	8.9
स.रा.अमेरिका	18.5	8.4
पाकिस्तान	2.1	5.7
जापान	5.6	2.6
मिश्र	1.1	1.6
इटली	2.1	1.4
जर्मनी	4.3	1.2
फ्रांस	5.3	1.0
पोलैंण्ड	2.1	0.8
हांगकांग	0.9	1.2
इन्डोनेशिया	1.1	1.9

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सूती धागे का उत्पादन यूरोपीय देशों तथा सं.रा.अमेरिका में कम हो रहा है जबकि एशिया के
देशों में उत्पादन में वृद्धि की गति बढ़ रही है।

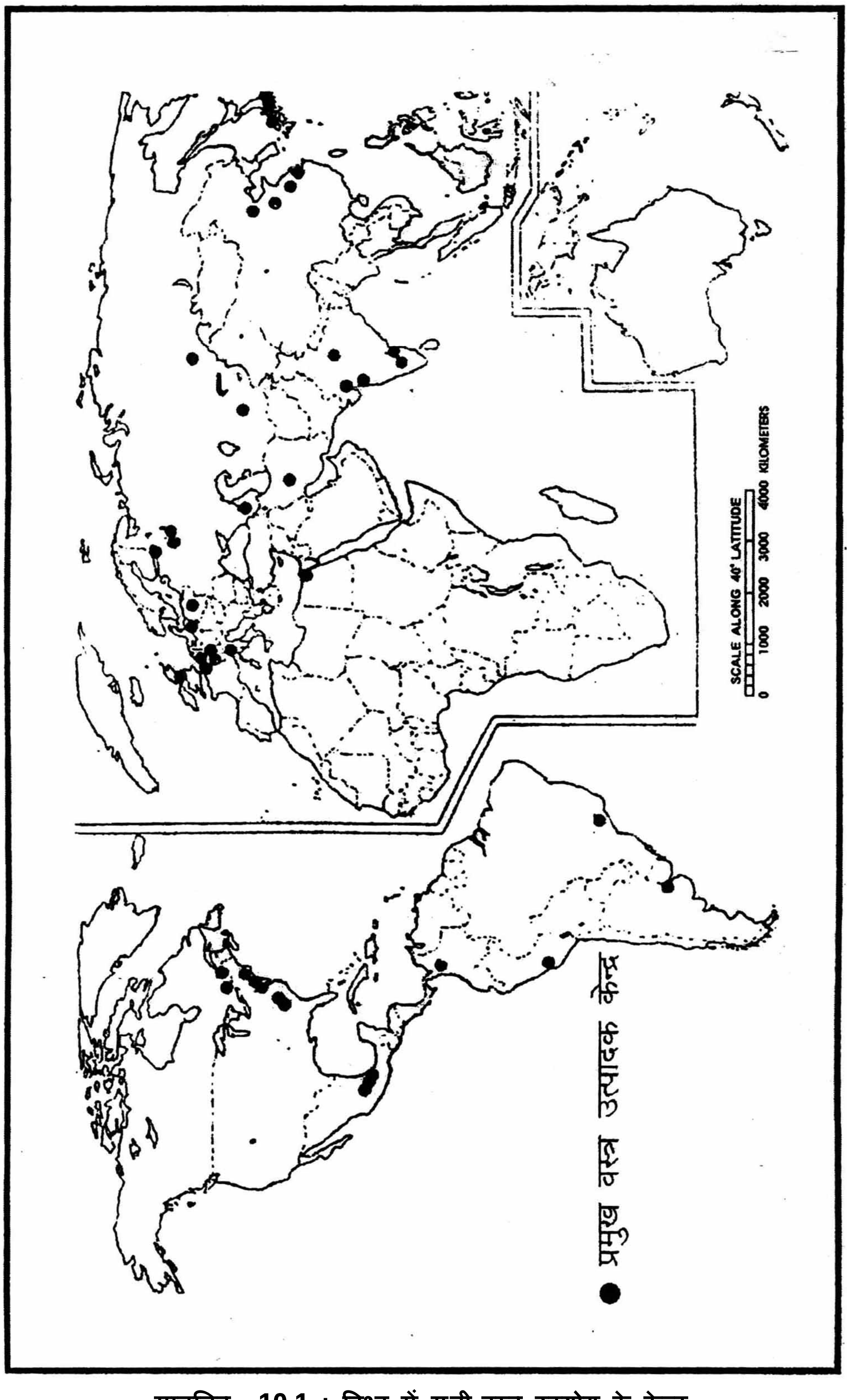

मानचित्र– 10.1 : विश्व में सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र

सूती वस्त्र का उत्पादन विश्व के अनेक देशों में होता है। सूती वस्त्र उत्पादन का लगभग 59 प्रतिशत उत्पादन चीन, भारत, रूस, सं.रा.अमेरिका, जापान, इटली और जर्मनी में होता है। सूती धागे तथा वस्त्र उत्पादन में चीन अग्रणी राष्ट्र है। निम्न लिखित तालिका से सूती वस्त्र उत्पादन का परिदृश्य स्पष्ट होता है –

तालिका– 10.2 : सूती वस्त्र का उत्पादन – 2004

(करोड़ वर्ग मीटर)

देश	उत्पादन	प्रतिशत
चीन	2256	25.7
भारत	1250	14.2
रूस	865	9.8
सं.रा.अमेरिका	373	4.2
जापान	177	2.0
इटली	163	1.8
जर्मनी	90	1.0
हांगकांग	82	0.9
मिश्र	61	0.7
फ्रांस	81	0.9
रोमानिया	54	0.6

Source - States man year Book -2006

बोध प्रश्न – 1

1. आदि मानव शरीर को ढकने के लिये किन साधनों का करता था?

   ....

   ....

2. कपास औटने की मशीन का आविष्कार किस वैज्ञानिक ने किया था?

   ....

   ....

3. किस आविष्कार ने इस उद्योग को देश के भीतरी भागों में स्थापित करने का प्रोत्साहन दिया है?

   ....

   ....

4. सूती धागे के उत्पादन में निम्न में से कौन सा देश प्रथम स्थान रखता है?

   (अ) भारत वर्ष (ब) सं. रा. अमेरिका

(स) चीन (द) पूर्व सोवियत संघ ( )

5. सन 2004 में चीन ने विश्व के कुल उत्पादन का कितने प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन किया?

(अ) 25.7% (ब) 14.2%

(स) 10.8% (द) 20.8% ( )

6. जलवायु सम्बन्धी कौन सा कारक इस उद्योग की स्थिति को प्रभावित करता है?

....

....

10.6 विश्व में सूती वस्त्र उद्योग का वितरण (Distribution of Cotton Textile Industry in the World)

चीन : चीन सूती वस्त्र उत्पादन रख एवं सूत उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। यहाँ प्रतिवर्ष विश्व का 28.9 प्रतिशत सूती धागे का उत्पादन तथा 25.7 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

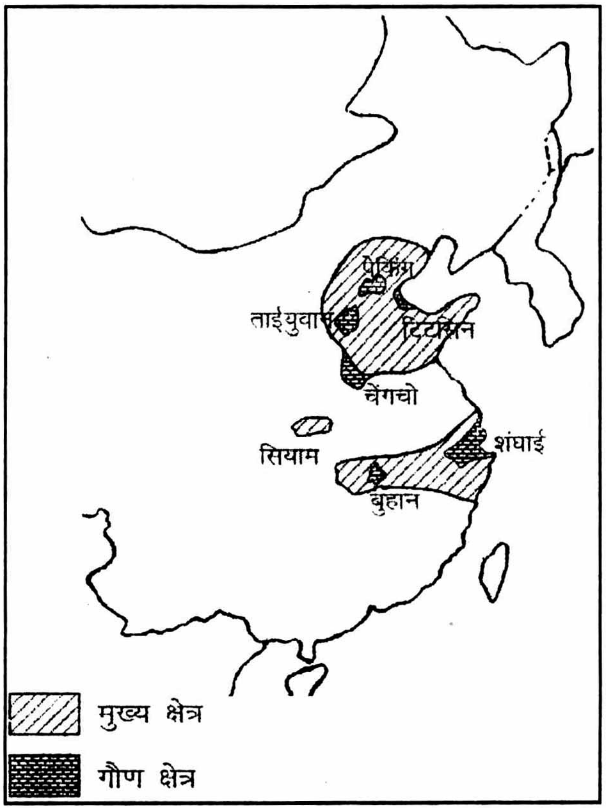

मानचित्र– 10.2 : चीन में सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र

चीन में कच्चा माल कपास का पर्याप्त उत्पादन, कोयला रख जलविद्युत शक्ति की उपलब्धता, कुशल श्रमिकों की आपूर्ति एवं विस्तृत घरेलू बाजार आदि सुविधाओं के परिणामस्वरूप इस उद्योग का निरन्तर विकास हो रहा है। प्रमुख उत्पादन क्षेत्र बीजिंग, चींगचाओं तथा नानकिंग व शंघाई है।

देश की लगभग 50 प्रतिशत मिलें शंघाई व निकटवर्ती भागों में स्थित हैं जो देश का लगभग 70 प्रतिशत उत्पादन करती हैं। इनके अलावा हवांगहो घाटी में टियेण्टसिन, होनान, काइतेंग प्रमुख केन्द्र हैं।

भारत : सूती वस्त्र उद्योग भारत में एक परम्परागत उद्योग रहा है। भारत में विश्व का 8.9 प्रतिशत सूती धागे का उत्पादन तथा 14.2 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है। भारत में सूती वस्त्र उत्पादन में गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, तमिलनाडू उत्तर प्रदेश, प. बंगाल, कर्नाटक, राजस्थान, पंजाब और आंध्र प्रदेश अग्रणी राज्य हैं जो देश का 90 प्रतिशत सूती वस्त्र उत्पादित करते हैं। यद्यपि भारत में सूती वस्त्र के कारखाने यत्र–तत्र फैले हैं परंतु फिर भी 5 क्षेत्रों में कारखानों की सघनता अधिक है, ये क्षेत्र

1. **पश्चिमी क्षेत्र :** इस क्षेत्र में मुम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, पूणे, कोल्हापुर, जलगाँव, हुबली, सूरत, बडोदरा, भावनगर, राजकोट, पोरबन्दर आदि प्रमुख केन्द्र हैं।
2. **मध्यवर्ती क्षेत्र :** नागपुर, अंकोला, वर्धा, इन्दौर, उज्जैन, हैदराबाद, रतलाम, रायपुर, ग्वालियर, सतना, अमरावती आदि प्रमुख केन्द्र मध्यवर्ती क्षेत्र ई स्थिति है।
3. **पूर्वी क्षेत्र :** कोलकाता, हावड़ा, मोरी ग्राम, पटना, गया, बिलमोरिया, मुर्शिदाबाद, शामनगर, सिसरा आदि पूर्वी क्षेत्र के केन्द्र हैं।
4. **उत्तरी क्षेत्र :** दिल्ली, कानपुर, वाराणसी, आगरा, बरेली, मोदीनगर, अलीगढ़, हाथरस, इटावा, मुरादाबाद, सहारनपुर, अमृतसर, अम्बाला, फगवाड़ा, कोटा, जयपुर, पाली, भीलवाड़ा, उदयपुर, ब्यावर, अजमेर, श्रीगंगानगर आदि इस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र हैं।
5. **दक्षिण क्षेत्र :** कोयम्बटुर, मदुराई, सलेम, चेन्नई, बेलारी, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, पाण्डिचैरी, काषीनाथ, बंगलौर, अलवाय आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

जापान: जापान में उत्तम जलवायु, पर्याप्त मांग, सस्ते परिवहन साधनों की उपलब्धता, शक्ति संसाधन, कुशल कारीगरों की

उपलब्धता के कारण सूती वस्त्र उद्योग अधिक विकसित हुआ हैं। यहाँ कपास का आयात चीन, भारत, मिश्र, आदि देशों से किया जाता है। मुख्य उत्पादक केन्द्र है : – ओसाका–कोबे एवं टोकियो–याकोहामा, क्यूटो, हिरोशिमा, नागोया आदि हैं। जापान में यह उद्योग कुटीर उद्योग के स्तर पर भी चलाया जा रहा है।

पूर्व सोवियत संघ : यहाँ पर विश्व का लगभग 9.8 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है। इस देश में सूती वस्त्र उत्पादन के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं जैसे – (1) कपास का पर्याप्त उत्पादन, (2) कोयला एवं जलविद्युत की उपलब्धता, (3) मध्य एशिया पं काकेशिया में बाजार का होना, (4) रेल मार्गों द्वारा सभी क्षेत्रों का परस्पर जुड़ना, (5) मशीनों का स्थानीय

स्तर पर निर्माण, (6) दक्ष और पर्याप्त श्रमिकों की उपलब्धता आदि। यहाँ सूती वस्त्र उत्पादन क्षेत्रों में लेनिनग्राड, मास्को, इबानोवो तथा ताशकन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। मास्को –इबानावो क्षेत्र मध्य औद्योगिक प्रदेश के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ गैस व कोयला से शक्ति प्राप्त होती है। सूती वस्त्र निर्माण की मशीनों का निर्माण भी यहीं होता है। सूती वस्त्र उद्योग के अधिक विकास के कारण इसे रूस का मैनचेस्टर भी कहते हैं। यहाँ के प्रमुख केन्द्र मास्को, पोसाद, इवानोवो, पैस्तोवस्की, लेनिनग्राड, सर्पुखोव, केलितिनवोलेस्क आदि है। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य प्रमुख सूती वस्त्र उत्पादन क्षेत्र लेनिनग्राद, प्लेन प्रदेश, बोल्गाबेसिन, यूराल क्षेत्र, ताश कन्द क्षेत्र, अजरबैजान क्षेत्र, ओमस्क क्षेत्र आदि हैं।

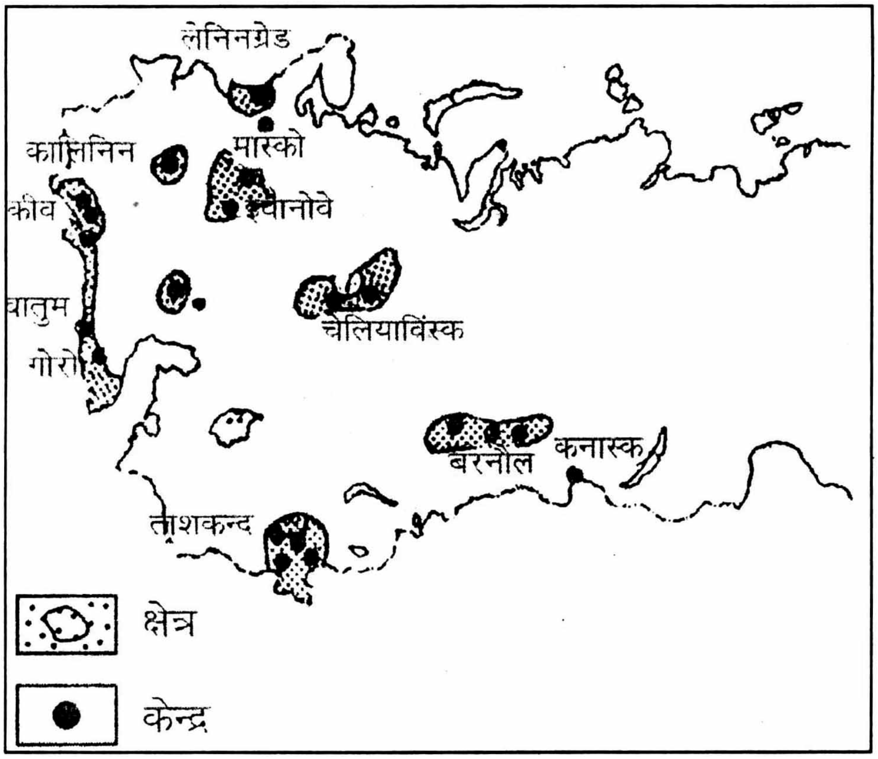

मानचित्र – 10.3 : सोवियत संघ में सूती वस्त्र के केन्द्र

संयुक्त राज्य अमेरिका : सूती वस्त्र उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान रखने वाला यह देश अब उत्पादन की दृष्टि से कई देशों से पीछे हो गया है। यहाँ अधिकांश मिलों में निर्माण प्रक्रिया के समस्त कार्य एक स्थान पर ही होते है। यहाँ इस उद्योग का सबसे पहले विकास न्यू इंग्लैण्ड राज्य में हुआ। लेकिन अब इसका स्थानान्तरण दक्षिण के राज्यों में हुआ है। यहाँ इस उद्योग के निम्न तीन प्रमुख क्षेत्र हैं-

न्यू इंग्लैंड प्रदेश : सूती वस्त्र उद्योग का प्रारम्भ इस देश में इसी प्रदेश से माना जाता है। इस क्षेत्र में वारमोण्ट राज्य को छोड़ कर सभी राज्यों में सूती वस्त्र के कारखाने हैं। प्रथम सूती मिल की स्थापना 1870 में रोडे आइलैण्ड के पाटुकेट स्थान पर की गई। इस प्रदेश में वस्त्र उद्योग के लिए निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध थी –

1. इस प्रदेश की भूमि पहाड़ी होने से कृषि के योग्य नहीं है। अत: श्रमिक सरलता से उपलब्ध होते हैं।
2. पहाड़ी भूमि में अनेक तेज बहने वाली नदियों पर उत्पन्न जल विद्युत का उपलब्ध होना तथा सागरीय मार्ग से कोयला प्राप्त होना ।
3. गल्फस्ट्रीम गरम जल धारा के निकट बहने से यहाँ आर्द्र जलवायु का होना।
4. यूरोप से आकर यहाँ बसे लोगों में से कुछ को तकनीकी ज्ञान होना।
5. यूरोप से निकटता के कारण रंग, रसायन तथा मशीनों का आयात करना।
6. देश में उत्पन्न कपास का उपलब्ध होना।
7. देश में ही बाजार उपलब्ध होना।
8. प्रदेश में ही कताई, बुनाई की मशीनों का आविष्कार होना।
9. नदियों से जल उपलब्ध होना।

यहां के प्रमुख उत्पादन केन्द्र न्यूवेडफोर्ड, लानेता, फालरिवर, प्रोविडेन्स, मेनचेस्टर, लारेन्स, बोस्टन, पिचवर्ग, टाउनटन आदि हैं। सन् 1920 के बाद यहाँ इस उद्योग में निम्न कारणों से गिरावट प्रारम्भ हुई – (i) पुरानी मशीनें होना (ii) श्रमिकों के ऊँचे वेतन (iii) नगरीयकरण के कारण ऊँचे कर (iv) प्रबन्ध में शिथिलता (v) दक्षिणी राज्यों से स्पर्धा आदि।

न्यूयार्क – फिलाडेल्फिया क्षेत्र : कुशल श्रमिकों की उपलब्धि, जल परिवहन की सुविधा, मांग एव सहउद्योगों के विकास के कारण इस उद्योग का विकास फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवेनिया, न्यूयार्क, मेरीलैण्ड आदि राज्यों में हुआ। यहाँ इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र विलमिंगटन, बाल्टीमोर, पेटरसन, क्रेनविले, लिंचवर्ग एवं चार्ल्सटन आदि हैं।

दक्षिणी अप्लेशियन क्षेत्र : यह इस देश का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक प्रदेश है। सन 1880 के बाद से इस उद्योग का विकास यहाँ प्रारम्भ हुआ। इस क्षेत्र का विस्तार अलाबामा राज्य से वर्जीनिया राज्य तक है। इसमें उत्तरी केरोलीना, दक्षिणी केरोलीना, जोर्जिया, टेनेसी और अलाबामा राज्य सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में देश के 93% तकुए स्थित हैं और प्रदेश का 80% सूती वस्त्र निर्माण इसी क्षेत्र में होता है। इस प्रदेश में निम्न सुविधाओं के कारण यह उद्योग विकसित हुआ है –

1. इस देश की कपास उत्पादन पेटी का विस्तार इन राज्यों में होने से पर्याप्त कच्चा माल सस्ती दर पर उपलब्ध होता है।
2. कोयला बर्मिंघम क्षेत्र से तथा जलविद्युत प्रपात रेखा पर स्थित विद्युत गृहों से प्राप्त होती है।
3. सस्ते मूल्य पर भूमि मिलना।
4. पीडमाण्ट क्षेत्र से सस्ते श्रमिक मिलना।
5. नवीन प्रकार की मशीनों का स्थानीय निर्माण।
6. यातायात के साधनों का प्रचुर विकास।
7. क्षेत्रीय तथा उत्तरी राज्यों से पूँजी प्राप्त होना।

8. स्थानीय बाजार मिलना।

यहाँ सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र चारलोट्टे, कोलम्बिया, आगस्टा, एटलाएन्टा, ग्रीन्सबरो, ग्रीनविले, मेकन, कोलम्बस आदि हैं।

यूरोप के देश : सूती वस्त्र उद्योग का विकास प्रायः यूरोप के सभी देशों में हुआ है, लेकिन इनमें इटली, फ्रांस, जर्मनी एव ब्रिटेन को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहाँ के देश विश्व के कुल उत्पादन का 20 प्रतिशत से अधिक कपास का उपयोग करते हैं।

इसी प्रकार विश्व में निर्यात होने वाली कुल कपास का लगभग 70 प्रतिशत भाग इस महाद्वीप के देश आयात करते हैं।

इटली : इटली यूरोप का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक देश है जो विश्व का 1.8 प्रतिशत सूती वस्त्र उत्पादन कर विश्व में छठवां स्थान ग्रहण किये है। यहाँ के सूती वस्त्र के केन्द्र पो नदी के बेसिन व आल्पस की घाटियों में स्थित हैं। यहाँ के सूती वस्त्र निर्माण के प्रमुख केन्द्र मिलान, युरिन, जेनोआ, वेरोना, मन्तुआ, कोर्नो आदि हैं।

फ्रांस : यह विश्व में नवां स्थान रखता है। यहाँ अनेक कारकों जैसे सस्ती जल विद्युत, कोयले की उपलब्धता, कुशल श्रमिकों की उपस्थिति आदि ने इस उद्योग को बढ़ावा दिया है। यहाँ तीन सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र हैं –

1. **वासजेज क्षेत्र :** नेन्सी, वेलफोर्ड तथा एनीनाल इस क्षेत्र के मुख्य केन्द्र हैं। यहाँ सघन जनसंख्या के कारण लारेन क्षेत्र में कपड़े की माँग रहती है। उत्तम औद्योगिक प्रबन्ध, लारेन से कोयला प्राप्ति, सस्ते श्रमिक, नदियों से स्वच्छ जल की प्राप्ति के कारण यह उद्योग यहाँ विकसित हुआ है।
2. **नार्मण्डी क्षेत्र :** सूती वस्त्र उद्योग का श्री गणेश इसी क्षेत्र के टोवा नामक जिले में हुआ था। यहाँ लॉहावरे पत्तन द्वाराअमेरिकी कपास का आयात होता है। सीन नदी से जल तथा जल परिवहन की सुविधा प्राप्त होती है। रूएँ यहाँ का प्रमुख सूती केन्द्र है।
3. **उत्तर–पूर्वी क्षेत्र :** यहाँ के प्रमुख केन्द्र आमीस, लिले, फोरमीज तथा सेंट स्वेंटिन हैं।

ग्रेट ब्रिटेन : अट्ठारहवीं शताब्दी में कातने तथा बुनने की मशीनों के आविष्कार के साथ यहाँ आधुनिक सूती उद्योग का प्रारम्भ हुआ। बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक यह सूती वस्त्र के उत्पादन में विश्व में अग्रणी था। यहाँ उपयुक्त जलवायु, सस्ते जल परिवहन, उपनिवेश के अर्न्तगत देशों से कच्चे माल मंगाने तथा निर्मित माल के लिए बाजार की सुविधा, कोयले की उपस्कधता, रसायनों की स्थानीय प्राप्ति आदि कारणों से यह उद्योग विकसित हुआ है। यहाँ के सूती वस्त्र उत्पादन क्षेत्र निम्न हैं।

1. **लंकाशायर क्षेत्र :** यहाँ विश्वविख्यात केन्द्र लंकाशायर स्थित है। अन्य केन्द्र प्रेस्टन, वर्नले, नेल्सन, ओल्डहम, स्टाकर्पोटे, रोशडेल आदि हैं।
2. **वेस्टराइडिंग एवं क्लाइव घाटी क्षेत्र :** यहाँ ब्रेडफोर्ड, ग्लासगो एवं पेशले सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र हैं।

उपनिवेश समाप्त होने तथा विकासशील देशों में इस उद्योग के विकास से ब्रिटेन के इस उद्योग को काफी हानि पहुँची है।

जर्मनी : यह यूरोप का दूसरा बड़ा और विश्व का सातवां सूती वस्त्र उत्पादक देश है। यहाँ विश्व का 1.0 प्रतिशत सूती वस्त्र का निर्माण होता है। इस देश के उत्पादन क्षेत्र निम्न हैं –

1. **रूर क्षेत्र :** यह संसार का वृहत औद्योगिक क्षेत्र है। राइन नदी का स्वच्छ जल, यातायात की सुविधा, सस्ते श्रमिक, संयुक्त राज्य अमेरिका से कपास का आयात आदि सुविधाओं के कारण यहाँ सूती वस्त्र उद्योग विकसित हुआ है। प्रमुख केन्द्र – फ्रेंकफर्ट, ब्रेमेन, कोफील्ड एवं रेन है।
2. **सेंक्सनी क्षेत्र :** कोयले की प्राप्ति एवं कुशल श्रमिकों की उपलब्धता के कारण यहाँ यह उद्योग विकसित हुआ है। म्यूनिख, लीपजिंग आदि प्रमुख उत्पादक केन्द्र हैं।
3. **दक्षिणी–पश्चिम क्षेत्र :** सस्ते श्रमिकों की उपलब्धता एवं माँग प्रमुख अवस्थिति के कारक हैं। इस क्षेत्र में कपास एवं कोयला आयात किया जाता हैं। यहाँ प्रमुख केन्द्र स्टूटगार्ट, आग्सवर्ग एवं पुलहाउस हैं।
4. **अन्य देश :** उपरोक्त वर्णित देशों के अतिरिक्त पाकिस्तान, बेल्जियम, स्पेन, हंगरी, टर्की, इरान, हांगकांग, मेक्सिको, नाइजीरिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में भी सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ है।

बोध प्रश्न - 2

1. भावनगर भारत के किस सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में स्थित है?

   ....

   ....
2. चीन के शंघाई क्षेत्र में स्थित सूती वस्त्र के कारखाने देश के कुल उत्पादन का कितने प्रतिशत भाग उत्पादित करते है?

   ....

   ....
3. कपास पैदा न होने पर भी जापान में सूती वस्त्र उद्योग के विकास के तीन कारण लिखिये?

   ....

   ....
4. सं.रा.अमेरिका में दक्षिणी अप्लेशियन क्षेत्र में सूती वस्त्र उद्योग के विकास के दो प्रमुख कारण कौन से हैं?

   ....

   ....
5. सूती वस्त्र उद्योग का प्रसिद्ध केन्द्र मेनचेस्टर निम्न में से किस देश में स्थित हैं?

   (अ) जर्मनी (ब) ग्रेटब्रिटेन

   (स) इटली (द) फ्रांस ( )

6. न्यू इंग्लैण्ड प्रदेश में सूती वस्त्र उद्योग के ह्रास के तीन कारण लिखिये?

....

....

7. वासजेज सूती वस्त्र उद्योग का क्षेत्र निम्न में से किस देश में है?

(अ) फ्रांस (ब) जर्मनी

(स) ब्रिटेन (द) इटली ( )

10.7 लुग्दी एवं कागज उद्योग का प्रस्तावना (Introduction of Pulp and Paper Industry)

वर्तमान युग में सभ्यता के विकास के साथ प्राय: विश्व के सभी देशों में कागज की मांग में वृद्धि हुई है। शिक्षा के प्रसार ने कागज के महत्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इसके महत्व को देखते हुए इसे 'सभ्यता की रीढ़' भी कहते हैं। आज के युग में स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाचार जानने की इतनी अधिक उत्कण्ठा होती है कि प्रातःकाल प्रत्येक व्यक्ति समाचार पत्र की प्रतीक्षा करते हुए देखा जा सकता है। समाचार पत्र विज्ञापन के भी उत्तम साधन होते हैं। इससे अखबारी कागज का महत्व बढ़ गया है। इसी प्रकार अनेक वस्तुओं के पैकिंग के लिए भी कागज की आवश्यकता होती है। इससे स्पष्ट है कि कागज भी अब अनेक प्रकार का होता है। कम्प्यूटर आदि के आविष्कार के बाद भी कागज का महत्व कम नहीं हुआ है।

10.8 लुग्दी और कागज उद्योग का क्रमिक विकास (Development of Pulp and Paper Industry)

ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कागज बनाने की कला में चीन के लोग निपुण थे। अत: सर्वप्रथम कागज का निर्माण चीन में हुआ। प्रारम्भ में लकड़ी से लुग्दी बनाने के ज्ञान तथा साधनों के अभाव के कारण सन् 1840 से पूर्व कागज बनाने के लिए कपास, कपड़े, लिनेन व उनके चिथड़ों का कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता था। सन् 1840 के बाद कागज का निर्माण लुग्दी से होना प्रारम्भ हुआ। इस कार्य में जर्मनी अग्रणी राष्ट्र रहा जहाँ वैज्ञानिकों ने लुग्दी बनाने

की प्राविधि का सर्वप्रथम आविष्कार किया। सन् 1840 में जर्मनी ने प्रथम बार लुग्दी से कागज बनाना प्रारम्भ किया। इसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1880 में लुग्दी से कागज बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। यह लुग्दी लकड़ी से तैयार की जाती थी। इंग्लैण्ड भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहा। यहाँ 1857 में एस्पार्टो नामक घास से लुग्दी बनाकर कागज निर्माण उद्योग प्रारम्भ हुआ। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक सुधार करने के लिए प्रयत्नशील रहे और उनके प्रयोगों के फलस्वरूप आज विभिन्न वृक्षों की लकड़ी से। लुग्दी बनाई जाने लगी है और उत्तम किस्म का कागज निर्मित होने लगा है। लुग्दी बनाने में चीड़, स्प्रूस, फरबर्च, हेमलाक, पोपलर आदि वृक्षों की लकड़ी का उपयोग होता है। वर्तमान समय में 95 प्रतिशत अच्छा कागज लुग्दी से ही बनता

है। लुग्दी बनाने के लिए सर्वप्रथम लकड़ी को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। इसके बाद इन लकड़ी के टुकड़ों को मशीनों के द्वारा पीसा जाता है। इसमें रासायनिक पदार्थ मिलाकर लुग्दी को साफ किया जाता है। आजकल बास और जूट से भी कागज बनाया जाता है।

10.9 लुग्दी और कागज उद्योग के स्थानीयकरण के कारक (Factors of Localization of Pulp and Paper Industry)

लुग्दी उत्पादन के लिए आवश्यक दशाएँ निम्न लिखित है –

1. लुग्दी के लिए आवश्यक आपूर्ति के लिए विस्तृत भू–भाग पर वन होने चाहिए।
2. वन क्षेत्र से लकड़ी को लुग्दी बनाने वाले कारखाने तक पहुँचाने के लिए सस्ते परिवहन के साधन होने चाहिये।
3. लुग्दी के लिए कोमल लकड़ी वाले वृक्षों के वन विस्तृत क्षेत्र पर होने चाहिये।
4. कुशल तथा सस्ते श्रमिक पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होने चाहिये।
5. लुग्दी उद्योग के लिए अधिक मात्रा में स्वच्छ जल उपलब्ध होना चाहिये। इसी लिए लुग्दी बनाने के करखाने प्राय: नदियों के किनारे स्थित होते हैं। नदियाँ लकड़ियों के परिवहन में अधिक सुविधाजनक सिद्ध हुई है।
6. लकड़ी पीसने तथा लुग्दी बनाने के लिए मशीनें उपलब्ध होनी चाहिये।
7. लुग्दी बनाने के लिए आवश्यक रासायनिक पदार्थ जैसे कास्टिक सोडा, क्लोरीन, फिटकरी, बिरोजा आदि सस्ती दर पर उपलब्ध होने चाहिये।
8. कागज बनाने के कारखाने निकट ही स्थित होने चाहिये, जिससे लुग्दी पहुँचाने में परिवहन व्यय अधिक न हो।

कागज उद्योग के स्थायीकरण में सहायक कारक निम्नलिखित हैं –

1. **लकड़ी की उपलब्धता :** कागज और लुग्दी उद्योग का चोली दामन जैसा संबंध है। कागज बनाने के लिए लुग्दी आवश्यक है और लुग्दी उद्योग लकड़ी पर निर्भर है। अप्रत्यक्ष रूप में कागज उद्योग को पर्याप्त मात्रा में कोमल लकड़ी चाहिये। लकड़ी भारी होने से उसका परिवहन कठिन है और यदि ट्रक या रेल मार्ग से कारखानों तक पहुँचाई जाए तो परिवहन लागत अधिक आती है। इसी कारण कागज–लुग्दी उद्योग के कारखाने वनों के निकट लगाए जाते हैं।
2. **मुलायम लकड़ी की आवश्यकता :** इस उद्योग के लिए मुलायम लकड़ी की आवश्यकता होती है। मुलायम लकड़ी वाले वृक्ष जैसे देवदार, कैल, चीड़, सिलवर फर, ब्लू पाइन, स्प्रूस, लार्च, डगलस फर आदि शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश के वनों में पाये जाते है। इन वनों में

निम्न सुविधाएँ हैं –

(i) एक प्रकार के वृक्षों का एक स्थान पर अधिक संख्या में पाया जाना।

(ii) शीतकाल में लकड़ी काटकर और उनको गट्ठर में बाँधकर बर्फ पर डाल दिया जाता है। ग्रीष्म काल में बर्फ के पिघलने से लट्ठे कारखानों में पहुँच जाते हैं।

(iii) शीतकाल में कृषि कार्य न होने से कृषक लकड़ी काटने के लिए सस्ती मजदूरी पर मिल जाते हैं।

(iv) यहाँ बहने वाली नदियों पर उत्पन्न होने वाली विद्युत से कागज के कारखाने चलते हैं।

(v) लकड़ी मुलायम होने से इन वृक्षों का काटना सरल है।

3. **पर्याप्त जल की उपलब्धता :** यह उद्योग जल पर निर्भर है। अनुमान के अनुसार एक टन अखबारी कागज बनाने के लिए लगभग 100 टन जल की आवश्यकता होती है। इसी कारण प्राय: कागज एव लुग्दी के कारखाने नदी तट पर स्थापित किये जाते हैं। इसके उदाहरण भारत में ताप्ती नदी पर नेपा नगर और स्कॉटलैण्ड में क्लाइड नदी की घाटी में स्थित कारखाने है।

4. **ऊर्जा की पूर्ति :** इस उद्योग के लिए अधिक मात्रा में विद्युत की आवश्यकता होती है। एक टन अखबारी कागज के निर्माण में प्राय: 2900 किलोवाट घण्टा विद्युत का उपयोग होता है। अत: विद्युत सस्ती दर पर उपलब्ध होना आवश्यक है। यही कारण है कि कागज के कारखाने अधिकतर जलविद्युत गृहों के निकट स्थापित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए भारत में वृजराज नगर के कागज बनाने के कारखाने को महानदी पर स्थित जलविद्युत प्रदान की जाती है।

5. **यातायात के साधन :** कागज उद्योग की स्थिति को परिवहन के साधनों की सुविधा भी आशिक प्रभावित करती है। शीतोष्ण प्रदेशों में जल यातायात महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि वनों से काटी गई लकड़ी को कारखानों तक पहुँचाने के लिए नदियों में बहाया जाता है और गन्तव्य स्थान तक पंहुचने पर जल या विद्युत चालित रोपवे द्वारा भी कारखानों तक पहुँचाया जाता है।

इसके विपरीत जिन देशों में यह उद्योग आयातित लकड़ी पर निर्भर है, वहाँ कारखाने सागर तट के निकट ही स्थापित किये जाते हैं ताकि जलमार्ग से आने वाली लकड़ी बिना किसी व्यय के कारखाने तक पहुँचा दी जाए। उदाहरण के लिए स्वीडन से लकड़ी का आयात इंग्लैण्ड में होता है। यहाँ ऐम्स नदी के मुहाने पर ही कागज के कारखानों की स्थापना हुई है। इसी प्रकार तैयार माल को बाजार तक पँहुचाने के लिए सड़क तथा रेलमार्गो का विस्तार आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त उत्तम मशीनें, पूंजी, सस्ता श्रम, सरकार की नीति, प्रबन्ध आदि अन्य कारक हैं जो इस उद्योग के स्थानीय करण को प्रभावित करते हैं।

10.10 कागज एवं लुग्दी उत्पादन का प्रतिरूप (Production Pattern of Paper and Pulp Industry)

विश्व के अनेक देशों में लुग्दी उद्योग का विकास हुआ है। लुग्दी उद्योग भी दो प्रकार के हैं – एक यांत्रिक लुग्दी निर्माण और दूसरा रासायनिक लुग्दी उत्पादन। लुग्दी उद्योग का विकास अधिकतर विश्व के शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में हुआ है जहाँ मुलायम लकड़ी वाले वनों की अधिकता है। मुख्य लुगदी उत्पादक प्रदेश तीन हैं – (i) यूरोपीय प्रदेश (ii) कनाडा और संयुक्त

राज्य अमेरिका (iii) पूर्व सोवियत संघ। लुग्दी उत्पादन में कनाडा का प्रथम स्थान है। इसके बाद द्वितीय स्थान संयुक्त राज्य अमेरिका को प्राप्त है। इनके अतिरिक्त फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, जापान, रुस आदि अन्य प्रमुख लुग्दी उत्पादक देश हैं। विश्व में लुग्दी के उत्पादन का प्रारूप निम्न सारिणी से स्पष्ट है –

तालिका–10.2 : विश्व में काष्ठ लुग्दी का उत्पादन

देश	उत्पादन (हजार मीटरी टन में)	प्रतिशत
कनाडा	11335	32.2
सं.रा. अमेरिका	5998	15.3
फिनलैंड	3940	11.2
स्वीडन	2959	8.4
जापान	1674	4.7
नार्वे	1534	4.3
जर्मनी	1220	3.5
रूस	1025	2.9
फ्रांस	757	2.1
न्यूजीलैंड	721	2.0

Source - Industrial Statistics Year Book- 2004

कागज का उत्पादन विश्व के अनेक देशों में होता है। प्रमुख देश कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, ब्रिटेन, जापान, भारत, चीन आदि देश हैं जहाँ कागज निर्माण उद्योग विकसित हैं। विश्व का 95 प्रतिशत से अधिक कागज का उत्पादन इन देशों में होता है। कुछ देशों में अखबारी कागज भी बनाया जाता है जिसका विवरण निम्न तालिका में दिया है।

तालिका–10.3 : विश्व में अखबारी कागज का वार्षिक उत्पादन

देश	उत्पादन (लाख मीटरी टन में)
कनाडा	8.6
सं.रा. अमेरिका	65.4
जापान	32.8
स्वीडन	24.9
कोरिया	17.2
जर्मनी	16.0
फिनलैंड	14.8
रूस	11.8
ग्रेट ब्रिटेन	10.2

चीन	8.4

Source - Monthly Bulletin of Statistics, July- 2004

10.11 कागज एवं लुग्दी उद्योग का विश्व वितरण (World Distribution of Paper and Pulp Industry)

अनुमानत: 9000 करोड़ धन मीटर लकड़ी का उपयोग प्रतिवर्ष कागज और लुग्दी उद्योग में होता है। वैसे तो शीतोष्ण कटिबन्धीय वनों की मुलायम लकड़ी की इस उद्योग में माँग अधिक रहती है। लेकिन मशीनों के आविष्कार के कारण चौड़ी पत्ती वाले वनों की लकड़ी का उपयोग भी अब बढ़ रहा है। लकड़ी की मांग की अधिकता के कारण यह उद्योग उन देशों में अधिक विकसित हुआ है जहाँ वनों का विस्तार देश के अधिक भू–भाग पर है। कागज उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, पूर्व सोवियत संघ, जापान, फिनलैण्ड, ब्रिटेन, चीन, भारत तथा अन्य यूरोपीय देशों का प्रमुख स्थान है।

संयुक्त राज्य अमेरिका : कागज उत्पादन में इस देश का विश्व में महत्वपूर्ण स्थान है। इस देश का लुग्दी उत्पादन में भी द्वितीय स्थान है। इस देश में कागज एवं लुग्दी की प्रति व्यक्ति खपत सबसे अधिक होने के कारण यह लुग्दी और लकड़ी का आयात करता है । देश का एक तिहाई भाग वनों से ढका है। ये वन क्षेत्र देश के तीन भागों में हैं –

1. **उत्तर – पश्चिमी प्रशान्त तटीय भाग :** यहाँ वाशिंगटन और औरेगन राज्यों में वनों की अधिकता के कारण लकड़ी का अधिक उत्पादन होता है। इस क्षेत्र में स्प्रूस, फर, हेमलाक, सिडार, चीड़ आदि वृक्षों की अधिकता है। यहाँ समशीतोष्ण मौसम रहता है। इस क्षेत्र में नदियों के किनारे कागज और लुग्दी के कारखाने स्थापित किये गये हैं। मुख्य कारखाने सियेटल, टैकोमा, पोर्टलैण्ड, स्पोकेन और ओलम्पिया में स्थित हैं।
2. **दक्षिणी प्रदेश :** यह क्षेत्र मैक्सिको की खाड़ी से अटलांटिक महासागर तक तटीय क्षेत्र में विस्तृत है। इस प्रदेश में फ्लोरिडा, अलाबामा, मिसौरी, लुजियाना, जोर्जिया आदि राज्य सम्मिलित हैं। यहाँ गरम जलवायु के कारण वृक्षों की वृद्धि तीव्र गति से होती है। यहाँ सिडार और लम्बी पत्ती वाले चीड़ के वृक्ष अधिक उगते हैं। यहाँ अखबारी कागज और गत्ता अधिक बनाया जाता है। जल विद्युत की सुविधा वाले भागों में कागज उद्योग के केन्द्र स्थापित किये गये हैं। लुग्दी उद्योग के केन्द्र आस्टिन, ओक्लाहामा सिटी और कन्सास सिटी में स्थित है। कागज बनाने के केन्द्र जैक्सन, विले, सवन्नाह और मोबाइल नगर हैं। टैनेसी घाटी में इस उद्योग का केन्द्रीयकरण नासविले, चित्तानूगा और नाक्स विले में हुआ है। कालूहान में कागज बनाने का बड़ा कारखाना है।
3. **उत्तरी–पूर्वी तटीय प्रदेश :** यह अटलांटिक महासागरीय तटीय क्षेत्र है। यह क्षेत्र न्यू इंग्लैण्ड राज्य के अन्तर्गत आता है। यह पहाड़ी प्रदेश होने के कारण वनों से ढका है। लेकिन वनों की कटाई के कारण वन क्षेत्र घटता जा रहा है। यहाँ के कागज बनाने के कारखाने न्यूयार्क, विस्कोसिन, मिशिगन और मेन राज्यों में हैं।

कनाडा : इस देश को अखबारी कागज बनाने में विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त है। इस देश में शीतोष्ण वनों का व्यापक क्षेत्र होने से मुलायम लकड़ी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। यह देश विश्व की 15 प्रतिशत लुग्दी का निर्माण करता है। प्रिंस जार्ज, अलबर्नी, मुशालैट और बैंकूबर द्वीप में लुग्दी बनाने के कारखाने हैं। यहाँ की लुग्दी का बड़ा ग्राहक देश संयुक्त राज्य अमेरिका है। ओटावा नदी की घाटी में मोडियल, क्यूबैक, टोरन्टो, ओटावा, हल तथा सेन्टलारेंस नदी की घाटी में कोर्नवाल, सैंट जॉन, न्दब्रुन्सवर्क आदि नगरों में इस उद्योग के कारखाने स्थित हैं।

पूर्व सोवियत संघ : विश्व में सबसे बड़े क्षेत्र पर यहाँ कोणधारी वृक्षों के वन विद्यमान हैं जो स्कैण्डीनेविया से लेकर कामचटका प्रायद्वीप तक और 500 उत्तरी अक्षांश से 700 उत्तरी अक्षांश तक एक लम्बी चौड़ी पेटी में है। नदियों द्वारा सस्ता परिवहन, जल विद्युत उत्पादन, रासायनिक पदार्थो का देश में ही उत्पादन, रेल मार्गों के विस्तार तथा सस्ते श्रमिकों के कारण इस देश में कागज व लुग्दी उद्योग का विकास हुआ है। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र मास्को, गोर्की, लैनिनग्राड, गोमेल, मिंस्क आदि नगर हैं।

जापान : विश्व में कागज उत्पादन में जापान को चौथा स्थान प्राप्त है। जापान में दो प्रकार का कागज बनाया जाता है – एक कठोर कागज जो मकान की दीवारों, बोरों एव छतरी बनाने में प्रयुक्त होता है और दूसरा नरम कागज या लिखने के उपयोग में आने वाला कागज। यह देश नार्वे और स्वीडन से लुग्दी का आयात भी करता है। जापान में सोवियत संघ तथा दक्षिणी–पूर्वी एशिया के देशों से लकड़ी का आयात किया जाता है। विश्व का 10 प्रतिशत अखबारी कागज यहाँ निर्मित होता है। होकेडो द्वीप में सपोरो, ओटारू और कुशानगर में इस उद्योग के कारखाने हैं।

ग्रेट ब्रिटेन : यहाँ लकड़ी और लुग्दी का आयात किए जाने के कारण यह उद्योग तटीय भागों में विकसित हुआ है। यहाँ इस उद्योग के मुख्य केन्द्र एवरडीन, डण्डी और मेनचेस्टर हैं।

फिनलैण्ड : यह देश कागज के उत्पादन में विश्व में सातवां स्थान रखता है। इस देश में शीतोष्ण वनों की अधिकता के कारण यह उद्योग विकसित हुआ है। इस देश में बाल्टिक सागर के तटीय प्रदेश में वाजा, ओउलू और पौडी नगर तथा मध्य फिनलैण्ड में टैम्पीर नगर इस उद्योग के मुख्य केन्द्र है।

यूरोप के अन्य कागज उत्पादक देश नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि हैं। नार्वे के मुख्य उत्पादक क्षेत्र ओसलो, फियोर्ड और स्कागेराक तटीय प्रदेश हैं।

चीन : इस देश को विश्व में सर्वप्रथम कागज बनाने का गौरव प्राप्त है। यहाँ उत्तरी चीन में कोणधारी वन और दक्षिणी चीन की पहाड़ियों पर मानसूनी वन पाये जाते हैं। ये वन लकड़ी प्रदान करते हैं। मंचूरिया में किरिन, हार्बिन ताक आदि स्थानों पर कागज व लुगदी के कारखाने हैं। दक्षिणी चीन में कांगचाऊ, बुहान, हैंगचाऊ और चैगशा नगरों में इस उद्योग के कारखाने हैं।

भारत : सन् 1816 में तिरूवांकर स्थान पर प्रथम बार कागज का कारखाना स्थापित किया गया। भारत में वनों की कमी के कारण यहाँ बांस, सवाई घास व भाबर घास से कागज बनाया

जाता है। चावल का भूसा भी इस काम में आता है। यहाँ केरल में रेयन पुरम, कोजी कोड, उड़ीसा में बृजराज नगर, रायगढ़, महाराष्ट्र में बल्लभपुर, सांगली, कामठी, आन्ध्रप्रदेश में सिरपुर, बिहार में डालमिया नगर में इस उद्योग के कारखाने हैं। मध्यप्रदेश के नेपानगर में अखबारी कागज बनाने का कारखाना है।

दक्षिणी अमेरिका के देश : यहाँ सदाबहार कठोर लकड़ी वाले वनों का विस्तार अधिक है। ब्राजील, अर्जेन्टाइना तथा चिली में कागज का निर्माण कम मात्रा में होता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कागज व लुग्दी उद्योग का विकास उत्तरी गोलार्द्ध के देशों में अधिक हुआ है। दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में यह उद्योग अभी विकसित नहीं हुआ है। ये देश आवश्यकतानुसार कागज का आयात करते हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. सन् 1840 के बाद कागज बनाने के लिए कपास, कपड़े तथा चीथड़ों के स्थान पर किस पदार्थ का प्रयोग प्रारम्भ हुआ?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

2. लुग्दी बनाने के लिए कौन से वनों की लकड़ी उपयुक्त रहती है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

3. कागज व लुग्दी बनाने के कारखाने नदियों के किनारे क्यों स्थापित है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

4. विश्व में लकड़ी से लुग्दी बनाने में निम्न में से किस देश को प्रथम स्थान प्राप्त है?

(अ) सं.रा. अमेरिका (ब) कनाडा

(स) नार्वे (द) पूर्व सोवियत संघ ( )

5. संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्तर–पूर्वी तटीय प्रदेश में कागज उद्योग के पिछड़ने का मुख्य कारण क्या है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

6. ओटावा कागज–लुग्दी उद्योग का केन्द्र निम्न में से किस देश में स्थित है?

(अ) जापान (ब) सं. राज. अमेरिका

(स) ब्रिटेन (द) कनाडा ( )

10.12 सारांश (Summary)

सूती वस्त्र उद्योग और कागज–लुग्दी उद्योगों का विकास मानव सभ्यता के विकास का द्योतक है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद दोनों उद्योगों का आधुनिकीकरण हुआ है।

दोनों उद्योगों के स्थानीयकरण में कच्चा माल, अनुकूल जलवायु, शुद्ध जल, शक्ति की आपूर्ति, सस्ते परिवहन के साधन, प्रबन्धन, कुशल श्रमिक, बाजार की उपस्थिति तथा निकटता, पूँजी आदि कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

सूती धागों के उत्पादन में चीन, पूर्व सोवियत संघ, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका व पाकिस्तान का महत्वपूर्ण स्थान है। जबकि सूती वस्त्र के उत्पादन में चीन, भारत, रुस, अमेरिका व जापान का विश्व उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है।

यदि विश्व वितरण पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि सूती वस्त्र उत्पादक केन्द्र प्रत्येक देश में कपास उत्पादक क्षेत्र के निकट हैं अथवा बाहर से कपास आयात करने वाले देशों में इस उद्योग के केन्द्र समुद्रतटीय भागों में हैं। इसके उत्तम उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन और जापान हैं।

सूती वस्त्र उद्योग का विकास चीन, भारत, जापान, सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों में हुआ है। एशिया के देशों में इस उद्योग के विकास ने विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि कर दी है। इसके कारण यूरोप के देशों में यह उद्योग या तो पिछड़ रहा है या ये देश विशिष्टीकरण की ओर अग्रसर हैं।

कागज की मांग में वृद्धि के कारण लुग्दी और कागज उद्योग का गत शताब्दी में काफी विकास हुआ है। कागज के लिए लुग्दी कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होती है। लुग्दी बनाने के लिए कोणधारी वनों के वृक्ष कोमल लकड़ी होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं। लुग्दी उत्पादन में कनाडा, सं.रा.अमेरिका, फिनलैण्ड, स्वीडन, जापान, नार्वे आदि देशों का महत्वपूर्ण स्थान है।

कागज उद्योग के विश्व वितरण को देखने पर ज्ञात होता है कि यह उद्योग संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ, कनाडा, जापान, चीन, ब्रिटेन, फिनलैण्ड, भारत आदि देशों में अधिक विकसित हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि दोनों उद्योगों का केन्द्रीयकरण उत्तरी गोलार्द्ध के देशों में अधिक है।

10.13 शब्दावली (Glossary)

- **लुग्दी :** लकड़ी का जल मिश्रित चूर्ण।
- **यांत्रिक लुग्दी :** मशीनों द्वारा लकड़ी को पीस कर बनाई गई लुग्दी।
- **तकुए :** कपास से धागा बनाने का यंत्र।

10.14 संदर्भ ग्रंथ

1. Alexander, J.W. and Gibson, L.J.: **Economic Geography**, N.J., U.S.A. 1971.
2. Miller, E.W.: **A Geography of Manufacturing**, Prentice Hall, 1971.

3. Robinson, H. : **Economic Geography**, London, 1968
4. राव रख श्रीवास्तव : **आर्थिक भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2007
5. सिंह, जगदीश और सिंह, काशीनाथ : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व**, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 1999
6. कौशिक एस.डी. और गौतम, अलका : **संसाधन भूगोल**, रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1995 – 96

10.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. वृक्ष के पत्ते, छाल व जानवरों के चमड़े से
2. ह्निटले
3. वातानुकूलित विधि
4. (स)
5. (अ)
6. जलवायु की आर्द्रता

बोध प्रश्न – 2

1. भारत के पश्चिमी क्षेत्र में
2. लगभग 70 प्रतिशत भाग का उत्पादन
3. (i) आर्द्र जलवायु
   (ii) जल परिवहन की सुविधा
   (iii) तकनीकी विकास
4. (i)कपास उत्पादक क्षेत्र
   (ii) विद्युत और कोयले की उपस्कधता
5. (ब)
6. (i)पुरानी मशीनें
   (ii)कपास उत्पादक क्षेत्र में वस्त्र उद्योग का विकास
   (iii)मंहगे मजदूर
7. (अ)

बोध प्रश्न – 3

1. लुग्दी का प्रयोग प्रारम्भ हु आ
2. लुग्दी बनाने के लिए शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (कोणधारी वनों) की लकड़ी उपयुक्त रहती है।
3. शुद्ध जल प्राप्ति के लिए एवं अधिक जल की पूर्ति के लिये
4. (ब)

5. वनों का ह्रास
6. (द)

10.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्रीयकरण में सहायक कारकों की विवेचना कीजिये।
2. विश्व में कागज एवं लुग्दी के स्थानीयकरण में कच्चे माल, ऊर्जा तथा बाजार की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
3. विश्व में कागज व लुग्दी उद्योग के वितरण का कारण सहित विवरण दीजिये।
4. विश्व में सूती वस्त्र उद्योग के वितरण का वर्णन कीजिये।

इकाई–11: परिवहन लागत में स्थानिक विविधताएँ (Spatial Variations in Transport Cost)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 वहन लागत से तात्पर्य

11.3 परिवहन लागत का आधार

11.3.1 स्थाई लागत

11.3.2 परिवर्तनशील

11.4 परिवहन लागत के प्रकार

11.4.1 वस्तु के आधार पर

11.4.2 दूरी के आधार पर

11.4.3 सामयिक आधार पर

11.4.4 आर्थिक आधार पर

11.4.5 परिवहन माध्यम के आधार पर

11.5 परिवहन लागत की विशेषताएं

11.6 परिवहन लागत को प्रभावित करने वाले कारक

11.6.1 मार्ग की लम्बाई

11.6.2 आर्थिक कारक

11.6.3 प्राकृतिक कारक

11.6.4 राजनैतिक कारक

11.6.5 तकनीकी कारक'

11.7 परिवहन लागत का स्थानिक प्रभाव

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे : –

- परिवहन लागत से तात्पर्य एवं प्रकार,
- परिवहन लागत की विशेषताएं,

- परिवहन लागत को प्रभावित करने वाले कारक,
- परिवहन लागत का स्थानिक व्यवस्था पर प्रभाव।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थतंत्र के परिचालन एवं विकास के लिये परिवहन सुविधाएं होना आवश्यक है। यह व्यवस्था परिवहन सुविधाओं एवं संचार साधनों पर निर्भर करती है, जिस प्रकार मानव शरीर के लिये खून आवश्यक है और खून के संचरण के लिये धमनियों, शिराओं की आवश्यकता होती हैं वैसे ही परिवहन मार्ग अर्थतंत्र के लिये आवश्यक है, इसके बिना अर्थ व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है। आज पहले ही अपेक्षा संसार के सभी देशों में मनुष्यों का गमनागमन एवं माल का परिवहन बढ़ता जा रहा है। आज पहले की अपेक्षा अन्तर्निभरता स्थानीय न रहकर विश्व स्तरीय हो गई है। पिछले दो सौ वर्षो में परिवहन का बहुत अधिक विकास हुआ है। आज अर्थतंत्र की महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं कि वह अपनी क्षमता का पूरा उपयोग करे व विकास करें, इसके लिये जहां परिवहन जाल की विकसित दशायें आवश्यक है वहीं परिवहन लागत को भी कम से कम रखा जाना आवश्यक है।

अर्थ व्यवस्था की जीव्यता मांग और पूर्ति पर निर्भर करती है। मांग, मानव की इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण उत्पन्न होती है और मानव की इच्छाएं – आवश्यकताएं, जीव वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारणों से उत्पन्न होती है, इनकी मांग और पूर्ति के लिये परिवहन की आवश्यकता होती है। कोई समय था जब मांग–पूर्ति का क्षेत्र सीमित था, मानव स्वयं माल ढोता था, बाद में वह पशुओं को पालतू बना कर उनका सहयोग लेने लगा। पहिये के आविष्कार के बाद में उसका माल ढोने का कार्य अधिक सरल हो गया। वह बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी का भी उपयोग करने लगा, अठारहवीं सदी में पक्की सड़कें बनने से एवं नदियों – नहरों के सहारे जल यातायात विकसित होने से परिवहन सस्ता हुआ। 18 वीं सदी में भाप के इंजन का आविष्कार हुआ और रेल परिवहन विकसित होने लगा बीसवीं सदी में मोटर परिवहन वायु यातायात का एवं पाईप लाईनों द्वारा परिवहन का कार्य होने लगा आज जहां परिवहन क्षेत्र का निरन्तर विकास हो रहा है, वहीं परिवहन लागत को भी कम करने के प्रयास निरन्तर जारी है।

11.2 परिवहन लागत (Transportation Cost)

परिवहन लागत से तात्पर्य किसी वस्तु या व्यक्ति आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने वाले व्यय से है अर्थात् माल

या व्यक्ति को उद्गम स्थान से गन्तव्य (लक्ष्य) स्थान तक पहुंचाने में जो लागत लगती है वह परिवहन लागत कहलाती है। इसके लिये गन्तव्य और लक्ष्य स्थान का किसी न किसी माध्यम से जुड़ा होना आवश्यक है। जैसे रेल लाइन, वायुयान मार्ग, जलमार्ग व सड़कें आदि। इन्हीं के सहारे माल या व्यक्ति की गतिशीलता संभव होती है और आपसी क्रिया होती है। इसमें किसी न किसी प्रकार का खर्चा होता है। यह समय या प्रयास के रूप में या वित्तीय व्यय (मौद्रिक व्यय) के रूप में होता है यह प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी हो सकता है। अत: समय लागत एव मौद्रिक लागत दोनों ही महत्वपूर्ण है, जो दूरी पर निर्भर करते हैं।

11.3 परिवहन लागत का आधार (Basis of Transportation Cost)

परिवहन लागत दो तथ्यों से निश्चित होती है (1) स्थायी लागत (2) परिवर्तनीय लागत।

11.3.1 स्थाई लागत (Fixed Cost)

इसे स्थापन लागत (Terminal cost) या आधारभूत लागत (Basic cost) भी कहते है, इससे तात्पर्य सडकों का निर्माण, रेल्वे लाईन बिछाना, बन्दरगाह बनाना, रेल या बस के स्टेशन बनाना, पुल बनाना, सुरंग बनाना, हवाई अड्डा निर्माण आदि पर होने वाले व्यय से है। सामान्यत: इस प्रकार की सुविधाओं का जितना अधिक उपयोग होता है (ट्रक, कार, बस आदि का भी) तो औसत स्थायी लागत भी कम होती जाती है।

11.3.2 परिवर्तनशील लागत (Line Hall Cost)

इसे परिवर्तनशील लागत के अतिरिक्त संचालन लागत (Variable Cost) भी कहते है, यह गतिशीलता (movement) एवं दूरी पर निर्भर करती है। इसमें वेतन, ईंधन, घर्षण, टॉल टेक्स, मार्ग के रख–रखाव का खर्च, बैंक कलेक्शन चार्जेज, ब्रोकर की फीस, परामर्शदाता के खर्चे, ऑफिस में कार्य करने वालों का खर्चा, दूरी के अनुसार माल गाड़ी का भाड़ा आदि की लागत शामिल की जाती है। इसमें हेण्डलिंग चार्जेज (Handling Charges) भी सम्मलित होते है।

इसलिये कुल परिवहन लागत स्थायी लागत व परिवर्तनशील लागत का योग होती है। स्थायी लागत एव परिवर्तनशील लागत की आनुपातिक भिन्नता के कारण परिवहन लागत भी भिन्नता लिये होती है। जो मार्गों एव मार्गों के जाल को विकसित करती है।

सैद्धान्तिक रूप से देखें तो अवगत होता है कि परिवहन लागत दूरी बढ़ने के साथ–साथ आनुपातिक रूप से बढ़ती है अर्थात् 50 कि.मी. पर अगर 50 रु. परिवहन लागत लगती है तो 100 कि.मी. पर 100 रु., 150 कि.मी. पर 150 रुपये, 200 कि.मी. पर 200 रुपये, जैसा कि चित्र संख्या 11.1 में दर्शाया गया है, लेकिन वास्तविक दशाओं में ऐसा नहीं होता है। इसका कारण स्थायी लागत के रूप में पूंजी विनियोग, वाहन का खर्च व अन्य संस्थापन के खर्चे है जो परिवहन की सुविधाएं विकसित करने में लगते है वे वसूले जाते हैं। साथ ही माल को चढ़ाने–उतारने, बीमा जोखिम, वेतन आदि की लागत जो कि ऊपरी खर्च भी कहलाते है थोड़ी दूरी पर माल ले जाने पर भी उतने ही लगते है जितना अधिक दूरी पर ले जाने पर लगते है। अत: कम दूरी पर परिवहन लागत अधिक लगती है। स्थायी लागत यात्रा की लम्बाई पर निर्भर नहीं करती है, लेकिन यह परिवहन लागत को प्रभावित अवश्य करती है, क्योंकि माल की ढुलाई जितनी अधिक दूरी पर होगी यह स्थायी लागत लम्बी दूरी पर फैल जाती है व प्रति कि.मी. लागत कम हो जाती है। अत: कुल परिवहन लागत दूरी बढ़ने पर धीमी गति से बढ़ती है यह परिवहन के विभिन्न माध्यमों में भिन्नता लिये हो सकती है।

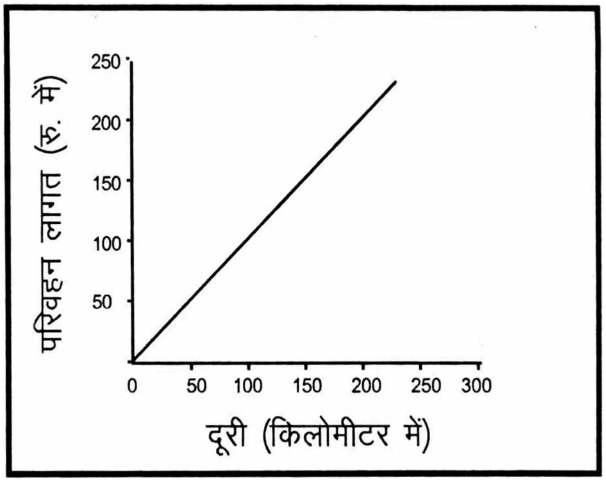

चित्र – 11.1 : सैद्धान्तिक परिवहन लागत

चित्र संख्या 11.2 में अ ब स्थापन या स्थायी लागत है जबकि ब, स रेखा दूरी के अनुसार परिवर्तनशील लागत को बताती है और ब, द रेखा कुल परिवहन लागत के वक्र को बताती है जो बढ़ती दूरी के साथ आनुपातिक रूप में न बढ़कर धीमी गति की वृद्धि को दर्शाती है।

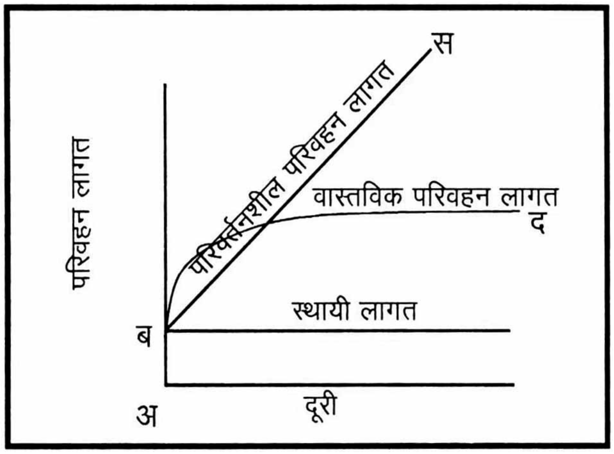

चित्र – 11.2 : वास्तविक परिवहन लागत

11.4 परिवहन लागत की संरचना (Structure of Transportation Cost)

यातायात अपने आप में एक पूर्ण एवं स्वतंत्र व्यवसाय है, यातायात से संबंधित व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है यह तभी संभव है कि परिवहन तंत्र विश्वसनीय, सुरक्षित व तीव्रगति से कार्य करने वाला हो लेकिन यह सब यातायात की लागत से भी संबंधित होता है। अर्थतंत्र में सामान्यत: हर दृष्टि से विविधता मिलती है। इसलिये सभी तरह के परिवहन पर समान लागत का विचार लागू नहीं होता है इसी कारण परिवहन लागत भी कई प्रकार की होती है –

11.4.1 वस्तु के आधार पर

सामान्यत: अर्थ व्यवस्था में कई प्रकार की वस्तुओं का आदान–प्रदान होता है। इस दृष्टि से दो प्रकार की परिवहन लागत होती है।

(अ) कच्चे माल पर परिवहन लागत: सामान्यत: कच्चा माल अशुद्ध किस्म का अधिक होता है, जैसे लौह अयस्क, बॉक्साइट, क्रूड ऑयल, गन्ना आदि इनको जब उत्पादन प्रक्रिया में लिया जाता है तो उत्पाद में अशुद्धियां अलग कर दी जाती है और उनका वजन कम हो जाता है। अत: अशुद्ध (मिश्रित) कच्चे माल पर परिवहन लागत कम होती है, क्योंकि यह सस्ता होने से अधिक परिवहन लागत का भार वहन नहीं कर सकता है।

(ब) उत्पादित वस्तु पर परिवहन लागत: जब कच्चे माल को प्रक्रम (Process) करके वस्तु तैयार होती है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है, ऐसी वस्तु पर परिवहन लागत अधिक लगती है, क्योंकि अधिक मूल्य की वस्तु अधिक परिवहन लागत को वहन कर सकती हैं। जैसे – मशीनें, यंत्र, इलेक्ट्रोनिक सामग्री, घड़ियां आदि।

11.4.2 दूरी के आधार पर

दूरी की दृष्टि से भी परिवहन लागत के प्रकार में भिन्नता पाई जाती है। यह दो प्रकार की होती है –

(अ) कम दूरी पर परिवहन लागत: अगर माल कम दूरी पर भेजना है तो परिवहन लागत अधिक लगती है क्योंकि दूरी के साथ उपर खर्चे (उतारने–चढ़ाने, बीमा, प्रबंधन आदि) भी शामिल किए जाते हैं। अत: परिवहन लागत अधिक होती है, क्योंकि वाहन भी अधिक समय तक निष्क्रिय रहते हैं। जैसे शहरी क्षेत्र में भी रेल्वे स्टेशन से घर पर जाना है तो दूरी के अनुपात में अधिक किराया देना पड़ता है।

(ब) लम्बी दूरी पर परिवहन लागत: अगर लम्बी दूरी पर माल भेजा जाता है तो दूरी पर लगने वाले खर्च के साथ उपरी खर्चे जो लगते है वे अधिक दूरी की लागत पर फैल जाते है साथ ही वाहन भी अधिक समय तक गतिशील रहता है अत: परिवहन लागत प्रति इकाई, प्रति किलोमीटर कम होती है। यहां दूरी बढ़ने के साथ–साथ परिवहन लागत सस्ती होती जाती है।

11.4.3 सामयिक आधार पर

समय के आधार पर भी दो तरह की परिवहन लागत होती है, क्योंकि कई अवस्थाओं में समय का महत्व अधिक होता है।

(अ) समय के महत्त्व पर परिवहन लागत : यद्यपि आज परिवहन के विकास के कारण विश्व सिकुड़ता जा रहा है और विश्व एक गांव के रूप में बदल गया है, लेकिन परिवहन में समय तो लगता ही है, कुछ उत्पाद जैसे शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएं – दूध, सब्जियां, फल, फूल व दैनिक समाचार पत्रों को शीघ्र बाजार में पहुंचाना आवश्यक होता है, इसके लिये समय बहुत मूल्यवान होता है। अगर ये जल्दी नही पहुंच पाते है तो इनकी

उपयोगिता समाप्त हो जाती है या कम हो जाती है। अतः ऐसी वस्तुओं पर परिवहन लागत अधिक लगती है।

(ब) अधिक समय लगने पर परिवहन लागत: कई वस्तुएं तत्काल सेवा नहीं चाहती है उन्हें धीमी गति से पहुंचाने से विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। भारी खनिज अयस्क, क्रूड ऑयल, लकड़ी के लट्ठे, कोयला, भारी रसायनिक पदार्थ आदि के परिवहन में लम्बी दूरी के कारण या जल यातायात से माल ढोने के कारण अगर समय अधिक लगता है तो परिवहन लागत कम होने से सस्ता परिवहन होता है।

11.4.4आर्थिक आधार पर

सभी प्रकार की परिवहन लागत में दो तरह की लागत सम्मिलित होती है (1) स्थाई लागत (2) गतिशील लागत

(अ) स्थाई लागत (Fixed Cost): यह मार्गों के निर्माण, पुल, सुरंगों, स्टेशनों, रेल की पटरियां बिछाना, हवाई अड्डों, कार्यालयों आदि के निर्माण में लगती है। ये सब परिवहन लागत में वसूले जाते है, जो कम दूरी पर अधिक व अधिक दूरी पर कम प्रभाव डालते है।

(ब) परिवर्तनशील लागत (Line Haul Cost): यह दूरी के अनुसार ईंधन, वाहन की लागत, वेतन, ब्याज, रख–रखाव के खर्चे, टॉल–टैक्स आदि के खर्चो पर परिवहन लागत निर्भर करती है। इन्हें उपरी खर्चे भी कहा जाता है। इनका प्रभाव कम दूरी पर ज्यादा व अधिक दूरी पार करने पर कम होता जाता है।

11.4.5 परिवहन माध्यम के आधार पर

परिवहन के माध्यम के अनुसार परिवहन लागत 4 प्रकार की होती है –

(1) जल परिवहन लागत : जलयानों, नौकाओं, कार्गो, बार्ग (Barge) आदि द्वारा 'सागरों महासागरों ', 'नदियों व नहरों ' में माल ढोने पर परिवहन लागत सस्ती लगती है, लेकिन यह कम दूरी की अपेक्षा अधिक दूरी तक माल ढोने पर ही अधिक सस्ती होती है क्योंकि जल यातायात में सड़क निर्माण व मरम्मत आदि पर खर्चा नहीं होता है।

(2) थल परिवहन लागत : थल परिवहन में मुख्यतः ट्रक व रेल आदि से माल ढोया जाता है। कम दूरी पर ट्रक आदि से परिवहन लागत कम होती है लेकिन मध्यम दूरी पर रेल के द्वारा परिवहन सस्ता होता हैं।

(3) वायु परिवहन : वायु परिवहन अधिक तीव्र गति का परिवहन साधन है, जिस दूरी को जलयानों द्वारा 20 दिन में पार किया जाता है। उसे वायुयानों द्वारा 13 घंटे में पार कर लिया जाता है। लेकिन वायु यातायात में हल्के भार के अधिक मूल्य वाले व शीघ्र खराब होने वाली खाद्य सामग्री का परिवहन होता है अधिक दुर्गम क्षेत्रों में भी वायु यातायात

द्वारा माल परिवहन किया जा सकता है, लेकिन यह साधन महंगा है। यह परिवहन वायुयानों, हेलिकॉप्टर आदि से होता है।

(4) अन्य साधन : अन्य साधनों में बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी, पाईप लाईन, केबल ट्रॉली, रज्जु मार्ग, ऊंट, गधे, खच्चर, घोड़े, मनुष्य भी माल ढोने का कार्य करते है, इनमें परिवहन लागत समय, स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार भिन्नता लिये होती है।

11.5 परिवहन लागत की विशेषताएं (Characteristics of Transportation Cost)

परिवहन लागत की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है : –

1. परिवहन अर्थतंत्र की जीवन रेखा है, सभी प्रकार के माल, व्यक्ति या सूचनाओं के लिये कुछ न कुछ मूल्य देना पड़ता है। यह मौद्रिक भी हो सकता है या यह समय के रूप में भी हो सकता है, जो परिवहन लागत कहलाता है।
2. परिवहन लागत में समय, स्थान व परिस्थितियों के अनुसार भिन्नता पाई जाती है।
3. परिवहन लागत सभी प्रकार की दूरियों पर देनी पड़ती है।
4. व्यापार में दूरी को बाधा माना जाता है और दूरी को तय करने में परिवहन लागत लगती है अत: परिवहन लागत बाधा होते हुये भी व्यापार के विकास में आवश्यक होने से परिवहन लागत को स्वीकार्य माना जाता है।
5. परिवहन लागत के कारण निर्यातक को माल अधिक महत्वपूर्ण या मूल्यवान नहीं लगता है जबकि आयातक को अधिक महंगा या खर्चीला लगता है।
6. परिवहन लागत भू–आकार, जलवायु, नदियां, समुद्र आदि भौतिक दशाओं से प्रभावित होती है।
7. परिवहन लागत राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय तत्वों से भी प्रभावित होती है।
8. परिवहन लागत दूरी के अनुपात में नहीं बढ़ती है बल्कि जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है, वैसे ही अनुपातिक दर से न बढ़कर धीमी गति से बढती है।
9. परिवहन लागत में ऊर्जा, विशेषकर डीजल व पेट्रोलियम के भावों में अधिक उतार–चढाव से अधिक प्रभाव पड़ता है।
10. परिवहन लागत दूरी से प्रभावित होती है वहीं लगने वाले समय से भी प्रभावित होती है।
11. प्रत्येक अर्थ तंत्र मे इस बात के प्रयास जारी है कि परिवहन लागत को न्यूनतम न हो तो भी कम से कम रखा जाये।
12. अर्थ व्यवस्था में प्रत्येक निर्णयकर्ता परिवहन लागत को ध्यान में रखता है उसे कम से कम रखने की कोशिश करता है, जिसके कारण अर्थतंत्र का विकास प्रभावित होता है।
13. परिवहन लागत के कम होने से अर्थतंत्र में एकाधिकार की दशाएँ धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है, क्योंकि माल या व्यक्ति या समाचारों का प्रवाह एकाधिकार वाले क्षेत्रों में बढ़ जाता है।

14. परिवहन लागत वस्तु की प्रकृति, किस्म, मात्रा, मूल्य, जोखिम, उसके शीघ्र नष्ट होने की अवधि आदि कई बातों पर निर्भर करती है।

15. परिवहन लागत विभिन्न माध्यमों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्द्धा पर भी निर्भर करती है।

16. परिवहन–लागत मार्गों की सघनता, उन पर उपलब्ध वाहनों की आवाजाही व माल की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है। अगर माल ले जाने वाले वाहन लौटते वक्त खाली आते है तो परिवहन लागत ज्यादा लगती है।

17. जो क्षेत्र दुर्गम है और पहुँच कठिन है वहाँ परिवहन लागत अधिक लगती है।

18. विश्व में कम परिवहन दर (लागत) से बचने के लिये विभिन्न देशों, प्रदेशों में संरक्षण की नीति अपनाई जाती है, जिससे स्थानीय उत्पादन संभव हो पाता है।

19. परिवहन की सस्ती लागत के लिये सीधे, चौड़े व समतल मार्ग (बाधा रहित) होने चाहिये व वाहनों का आकार विशाल होना चाहिये, आवाजाही में समय का महत्त्व न हो, भरपूर माल का लदान होता भी परिवहन लागत सस्ती होती है।

20. परिवहन लागत जैसे–जैसे कम होती जाती है, उसका अर्थतंत्र में महत्व कम होता जाता है और अन्य लागत तत्वों का सापेक्षिक महत्त्व बढ़ता जाता है।

बोध प्रश्न–1

1. परिवहन लागत की दृष्टि से सस्ता साधन है।
   (अ) जल यातायात (ब) थल यातायात
   (स) वायु यातायात (द) इनमें से कोई नहीं ( )

2. भाप के इंजन का आविष्कार हुआ था।
   (अ) 17 वीं शदी (ब) 18 वीं शदी
   (स) 19 वीं शदी (द) 20 वीं शदी ( )

3. परिवहन लागत किस रूप में वसूली जाती है ?
   ....
   ....

4. परिवहन लागत लम्बी दूरी के अनुसार
   (अ) घटती है (ब) बढ़ती है
   (स) स्थिर रहती है (द) वृद्धि की दर धीमी होती है ( )

5. मौद्रिक परिवहन लागत का आधार क्या है ?
   ....
   ....

6. स्थापन लागत से क्या तात्पर्य है ?
   ....
   ....

11.6 परिवहन–लागत को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affective the Transportation Cost)

सामान्यत: परिवहन लागत को व्यापार में बाधा माना जाता है लेकिन यह भी सत्य है कि परिवहन के बिना व्यापार संभव नहीं है। व्यापार का आधार अर्थतंत्र के व्याप्त विषमताएं एवं मांग–पूर्ति में भिन्नता के कारण, माल, मनुष्य या समाचारों के आदान–प्रदान पर निर्भर करता है इसके लिये दूरी पार करनी होती है और जब दूरी पार की जाती है तो परिवहन लागत उसके साथ आवश्यक रूप से जुड़ जाती है।

परिवहन लागत को प्रभावित करने वाले कई कारक है जो विभिन्न दशाओं में भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभाव डालते हैं इसके साथ विभिन्न परिस्थितियों में परिवहन के विभिन्न साधनों का उपयोग भी भिन्नता लिये होता है जो परिवहन लागत को प्रभावित करता है। प्रमुख कारक इस प्रकार है

11.6.1 मार्ग की लम्बाई (Length of Route)

मार्ग छोटे भी होते है, लम्बे भी होते है, सीधे भी होते है और टेढ़े–मेढ़े भी होते है, इसके कारण परिवहन लागत में भिन्नता आ जाती है। कम दूरी की दृष्टि से किसी शहर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल की आवाजाही होती है, ऐसे में परिवहन लागत अधिक देनी पड़ती है। इसका कारण यह है कि माल वाहक साधन अधिक समय तक खाली रहते है, या माल ले जाते है लेकिन वापसी में खाली हाथ लौटना पड़ता है तो वे उसका मूल्य ह्रास भी जोड़ लेते हैं।

11.6.2 आर्थिक कारक (Economic Factors)

11.6.2.1 यातायात की मांग (Demand of Transportation)

जहां जनसंख्या ज्यादा सघन होती है वहां विभिन्न वस्तुओं की मांग भी अधिक होती है अत: वहां मार्गों का विकास भी अधिक होता है तथा वहां नगर एक दूसरे से सीधे मार्गों से जुड़े होते हैं जिससे परिवहन लागत कम आती है। डब्ल्यू बंगे (1966) ने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तरी अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग व मध्यवर्ती भाग में बड़े नगरों की मांग के कारण नगर सीधे जुड़े है वहाँ परिवहन लागत कम आती है, क्योंकि मार्ग की दूरी कम है और वाहनों को लाने ले जाने के लिये अधिक मांग के कारण दोनों तरफ से माल उपलब्ध हो जाता है। चित्र–11.3 में इसे सरलीकृत रुप में दर्शाया गया है। इसे 'उपयोगकर्त्ता की कम लागत' (Least Cost to User) नाम दिया। उसने यह भी पाया कि उत्तरी अमेरिका के अन्य भागों में जहां जनसंख्या छितरी है, यातायात की मांग कम है वहां मार्गों की अधिक दूरियाँ पार करनी पड़ती है व माल का परिवहन भी कम होता है। अत: वहां नगर सीधे नहीं जुड़े है इसे सरलीकृत रूप में चित्र संख्या 11.4 में दर्शाया गया है अर्थात मार्गों के बनाने में कम खर्च लगता है। इसे उसने "बनाने की कम लागत" (Least Cost to Builder) नाम दिया। ऐसे में अधिक लम्बाई व कम मांग के कारण परिवहन लागत ज्यादा लगती है। यद्यपि दोनों चित्र (3, 4) सैद्धान्तिक

स्वरूप (Ideal Form) प्रकट करते है, लेकिन इससे मिलता–जुलता स्वरूप वास्तविक दशाओं में भारत के पूर्वी भाग व राजस्थान के पश्चिमी भाग में भी देखने को मिलता है, जो परिवहन लागत को प्रभावित करता है।

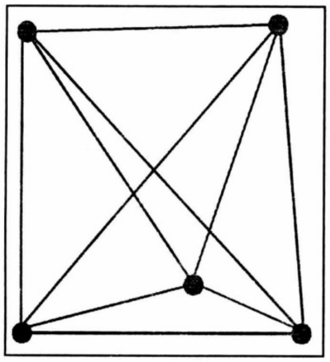

चित्र–11.3 : उपयोगकर्ता की कम लागत

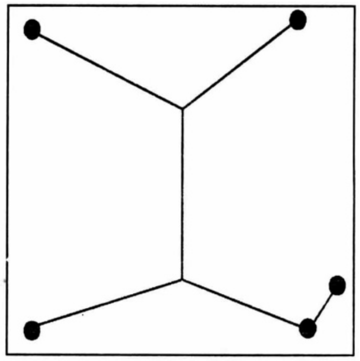

चित्र–11.4 : निर्माणकर्ता की कम लागत

11.6.2.2 यातायात के साधनों का खालीपन

यातायात के साधन माल ले जाने पर जो किराया वसूल करते है लौटते समय अगर खाली आते है तो आने और जाने दोनों ही का किराया वसूलने से परिवहन लागत अधिक पड़ती है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति वाहन किराये पर लेता है व अधिक समय तक खाली रहता है या उसका उपयोग नहीं करता है तो भी उसे अधिक परिवहन लागत देनी होती है। भारत से नेपाल जाने वाले ट्रक का किराया 1500 मोरु (नेपाली मुद्रा) होता है जबकि आते वक्त खाली आना पड़ता है। यहां ट्रक वाले जाने व आने का पूरा किराया वसूल करते है लेकिन कभी–कभी लौटते वक्त संयोगवश माल लाना होता है तो वह कम खर्च 600/– मोरु में ही ले आता है अर्थात् जो मिल जाये वही ठीक है, अत: वापसी में परिवहन सस्ता हो सकता है।

11.6.2.3 माल की प्रकृति व स्वरूप

तरल पदार्थ ढोने के लिये विशेष प्रकार के साधनों की आवश्यकता होती है, जैसे पेट्रोलियम, केरोसीन, तेल ,पानी आदि। ऐसे में टैंकरों की विशेष आवश्यकता होती है, इसमें अन्य साधनों का उपयोग न होने से उनके द्वारा निर्धारित दर पर ही किराया भुगतान करना होता है, ऐसे ही टूटने वाले कांच के सामान, यंत्र, इलेक्ट्रोनिक उत्पाद, मशीनें अधिक जोखिम के सामान पर परिवहन लागत अधिक लगती है, क्योंकि इनके परिवहन में अधिक ध्यान रखना पड़ता है।

11.6.2.4 यातायात के साधनों में प्रतिस्पर्द्धा

अगर दो स्थानों के मध्य जल, थल व रेल तथा वायु यातायात की सुविधायें उपलब्ध है तो वहां इन माध्यमों में प्रतियोगिता के कारण परिवहन लागत कम होती हैं लेकिन जहां एक ही प्रकार का साधन है वहां लागत अधिक होती है जैसे शिकागो से न्यूयार्क की रेल भाड़े की दर पहले अधिक थी लेकिन जब सेंट लारेन्स जहाजी नहर बन गई तो प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गई और रेलों को भी कुछ वस्तुओं के माल भाड़े में कमी करनी पड़ी।

11.6.2.5 माल का मूल्य एवं भारीपन

अशुद्ध या मिश्रित – कच्चे माल का मूल्य कम होने से व अधिक भारी होने से उन पर किराया कम लगता है जैसे रेत, लौह अयस्क, बॉक्साइट, चूना पत्थर आदि जो कि भारी होते है, इसके विपरीत पूर्ण तैयार वस्तुएं जिनका मूल्य अधिक होता है उन पर किराया प्रति टन किलोमीटर अधिक लगता है, क्योंकि वे अधिक खर्च वहन करने की क्षमता रखती है, जैसे सीमेन्ट, इंजीनियरिंग का सामान, यंत्र, एल्यूमिनियम की वस्तुएं, कल पुर्जे, घड़ियां आदि।

11.6.2.6 माल पहुंचाने की शीघ्रता

कई वस्तुएं जल्दी खराब होने वाली होती है जैसे दूध, मांस, फल, सब्जियां आदि अत : इन्हें बाजार तक शीघ्र पहुंचाने के लिये परिवहन लागत अधिक देनी पड़ती है। इसी प्रकार दैनिक समाचार पत्रों की उपयोगिता भी उनके शीघ्र पहुंचाने पर ही निर्भर करती है अन्यथा उनका बाजार घट जाता है अत: इनके लिये द्रुत गति के वाहन आवश्यक है, कहीं – कहीं इनके लिये वायु यातायात का भी उपयोग किया जाता है। ऐसी सामग्री को पहुंचाने में परिवहन लागत अधिक लगती है।

11.6.2.7 यातायात की सघनता

जहां मार्गों पर यातायात अधिक सघन होता है वहां परिवहन लागत अपेक्षाकृत कम होती है जबकि जिन मार्गों पर यातायात के साधनों की सुविधा कम होती है वहां परिवहन लागत अधिक होती है।

11.6.2.8 यातायात के साधन का आकार

एक सीमा तक वाहन के आकार व परिवहन लागत में भी निश्चित सम्बन्ध होता है। अलग–अलग प्रकार के साधनों में इससे खड़े पैमाने पर बचतें की जा सकती है। एक लाख टन ड्रॉट के एक टेंकर में प्रतिटन किलोमीटर लागत 16000 टन ड्रॉट के टेंकर की 38 प्रतिशत ही होती है। अत: बड़े आकार के टेंकरों में परिवहन लागत कम हो जाती है।

12.6.2.9 यातायात का माध्यम

यातायात के माध्यम का भी परिवहन लागत पर प्रभाव पड़ता है। सड़क परिवहन कम दूरी के लिये, रेल परिवहन मध्यम दूरी के लिये व जल यातायात लम्बी दूरी के लिये सस्ता होता है (चित्र 11.5)।

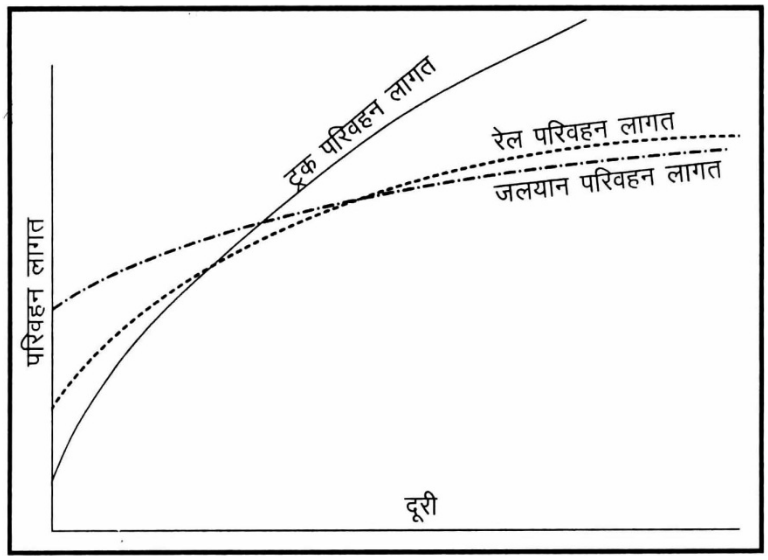

चित्र – 11.5 : परिवहन माध्यक मे अनुसार परिवहन लागत

12.6.2.10 दूरी कटिबन्धीय परिवहन लागत

लगभग सभी परिवहन लागत की व्यवस्थाएं दूरी कटिबन्धीय (समूह) लागत वाली होती है, जिसमें दूरी बढ़ने के अनुसार समूह में लागत कम होती जाती है अत: परिवहन लागत रेखा वक्राकार न होकर सीढ़ीनुमा होती है। प्रत्येक मार्ग के सहारे अलग–अलग परिवहन लागत समूह (कटिबन्ध) बन जाते है और प्रत्येक समूह में एक समान माल भाड़े की दर वसूली जाती है जितनी अधिक दूर माल ले जाते है उतनी ही परिवहन लागत सस्ती पड़ती है। चित्र– 11.6 के अनुसार अ से य तक की दूरी तक अगर माल पहुंचाना है। अ यातायात का नियंत्रण बिन्दु है उससे ब बिन्दु की दूरी 40 कि.मी. है इसमें सबसे कम परिवहन लागत 50 रुपये है अब यदि 100 कि.मी. की दूरी तक प्रति 10 कि.मी. की दर से समूह के रूप में माल भाड़ा बढ़ता है। फिर 80 से 200 कि.मी. की दूरी तक प्रति 20 कि.मी. की दर से भाड़ा बढ़ता है और 200 कि.मी. से आगे प्रति 30 कि.मी. की दर से किराया बढ़ता है तो परिवहन लागत वक्राकार न होकर सीढ़ीनुमा हो जाती है। और जैसे–जैसे नियंत्रण बिन्दु से दूरी बढ़ती जाती है, परिवहन लागत में वृद्धि भी धीमी होती जाती है।

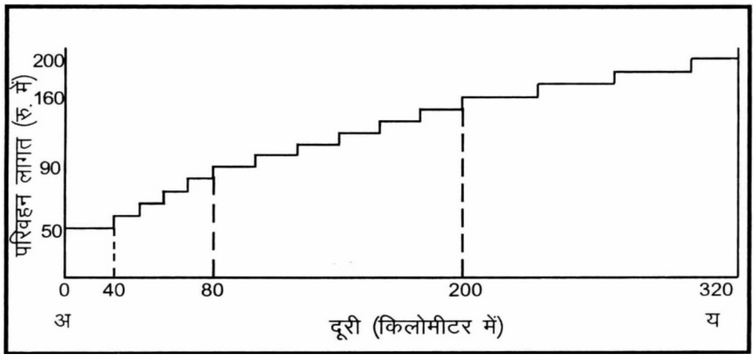

चित्र– 11.6 : दूरी कटिबन्ध लागत

11.6.2.11 माल का आयतन

पोले (Hollow) आकार की वस्तुएं जैसे बेरल, सिलेन्डर, ड्रम या बड़े आकार के बक्से, वॉयलर आदि वस्तुओं का किराया, भारी एवं अपेक्षाकृत छोटी वस्तुओं की तुलना में अधिक लगता है। अधिक आयतन की वस्तुएं अधिक स्थान घेरती है अत: वजन कम होने पर भी किराया अधिक लगता है इसी तरह अगर एक तेल का टैंकर पूरा ले जाया जाता है तो किराया कम लगता है, जबकि उसी तेल को डिब्बों या ड्रम में भरकर भेजने पर किराया अधिक लगता है।

11.6.2.12 परिवहन माध्यम मिलन स्थल (Break of Bulk Point)

यह स्थिति सामान्यत: दो भिन्न प्रकार के यातायात माध्यमों के मिलन बिन्दु पर (Junction Point) होती है दूसरे शब्दों में दो भिन्न परिवहन माध्यमों में परिवर्तन है तो दोनों परिवहन माध्यमों की परिवहन लागत भी भिन्न होती है। इसके कारण परिवहन लागत कम या ज्यादा हो सकती है। उदाहरण के लिये अगर कोई वस्तु लन्दन से दिल्ली लाई जाती है तो पहले उसे जल यातायात द्वारा मुम्बई बन्दरगाह पर लाया जायेगा जो सस्ती दर पर होगा, लेकिन इसके बाद दिल्ली तक थल यातायात (रेल या सड़क द्वारा) से ले जाना होगा तब परिवहन लागत अधिक लगती है (चित्र –11.7) ।

ऐसे ही जहां रेल का मार्ग नहीं है तो रेल से लाये गये माल को आगे ले जाने पर सड़क यातायात की सहायता ली जाती है तो रेल्वे व ट्रकों की परिवहन लागत में अन्तर आ जाता है। इससे कुल परिवहन लागत प्रभावित होती है।

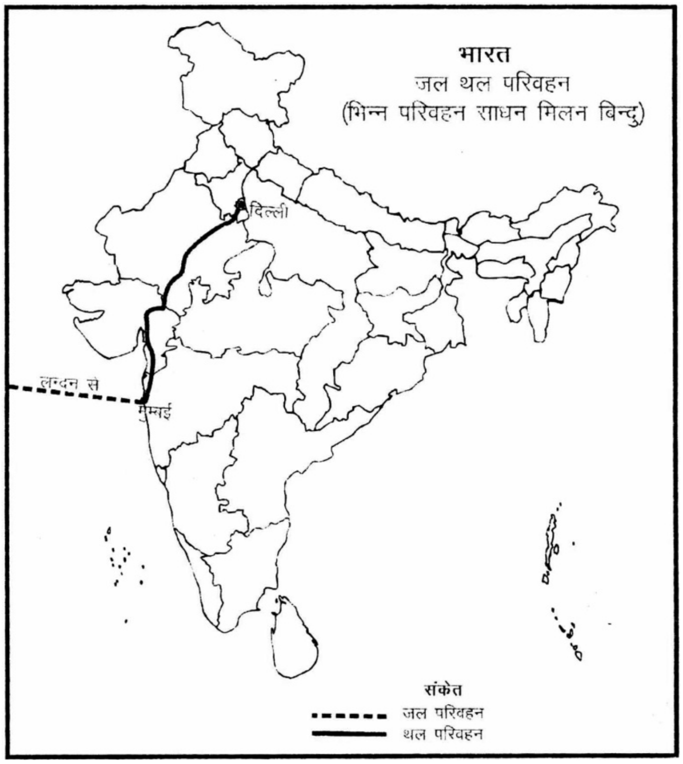

चित्र–11.7 : विभिन्न परिवहन साधन मिलन बिन्दु

11.6.3 प्राकृतिक कारक (Natural Factors)

11.6.3.1 प्राकृतिक भू–आकार

अगर दो स्थानों के मध्य मार्ग में असमान धरातल है, नदियां, पहाड़ी मार्ग, दल–दल, घाटियां आदि है तो नदियों पर पुल बनाने, पहाड़ी भागों को समतलता प्रदान करने, सुरंगें बनाने में अधिक खर्च करना पड़ता है। पहाड़ी भागों में ईंधन अधिक खर्च होता है, क्योंकि ढाल तेज होता है। मार्ग भी सीधे न होकर टेढ़े मेढ़े होते है अत: लम्बाई बढ़ जाती है इसका प्रभाव परिवहन लागत पर पड़ता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी व पश्चिमी तटों पर स्थित नगरों में होने वाले माल की आवाजाही पर देखा जाता है। यहां सीधे माल पहुंचाना (रॉकी पर्वत श्रृंखला के कारण मार्ग बनाना) महंगा होता है, इसलिये पनामा नहर का विकास होने से माल जल यातायात से पहुंचता है। इस पर परिवहन लागत अपेक्षाकृत कम लगती है।

यद्यपि सामान्यत: जल यातायात सस्ता होता है, लेकिन जहां असमान तटीय भागों में (कटी फटी तट रेखा) जहाज सीधा रास्ता नहीं अपना सकते है अत: यहाँ मार्ग वक्राकार हो जाते है जिससे दूरी बढ़ जाती है और माल परिवहन पर लागत बढ़ जाती है (चित्र 11.8) ।

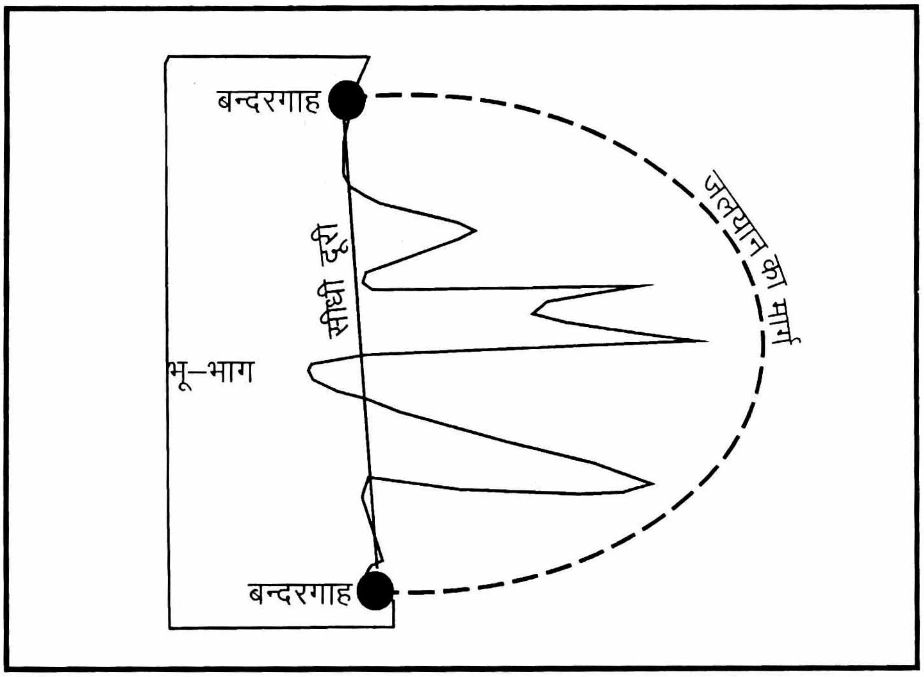

चित्र – 11.8 : कटी–फटी तट रेखा पर जल मार्ग का वक्राकार होना

11.6.3.2 जलवायु

जलवायु के कारण शीत कटिबन्ध एव शीतोष्ण कटिबन्ध में जहां बर्फ गिरती है सड़क, रेल व जलयान मार्ग अवरुद्ध हो जाते है, वहाँ बर्फ हटाने के लिये अतिरिक्त खर्चा करना पड़ता है जैसे कश्मीर घाटी में बर्फ पड़ने पर कई बार मार्ग बन्द हो जाते है और वायुयान या हेलिकॉप्टरों की

सहायता से माल पहुंचाना पड़ता है, तो परिवहन लागत बढ़ जाती है। ठंडे प्रदेशों में जहां ठंड अधिक पड़ती है वहां पानी जम जाता है अत: उद्योगों में पानी पहुंचाने के लिये पाईप लाईनों को गर्म रखना पड़ता है तो परिवहन लागत बढ़ जाती है।

11.6.3.3 जल यातायात

सामान्यत: जल यातायात सबसे सस्ता साधन है, यहाँ न रेल की पटरियां बिछानी पड़ती है और न ही सडकों का निर्माण करना पड़ता है, जहां कम परिवहन लागत पर अधिक से अधिक भार वहन करना होता है, वहां जल यातायात ही सस्ता पड़ता है। नहरों नदियों व महासागरों का उपयोग जल यातायात के लिये होता है, यद्यपि इसके लिये पोताश्रयों व डॉक्स की आवश्यकता होती है जो एक बार में ही स्थायी लागत के रूप में लगती है, शेष में महासागरीय मार्ग पर रख–रखाव या मरम्मत आदि के खर्चे नहीं लगते हैं व निर्माण खर्च न होने से सस्ता होता है। रुर प्रदेश, संयुक्त राज्य अमेरिका की झील प्रदेश इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इन प्रदेशों का विकास जल यातायात पर ही हुआ है। यहां आवाजाही में माल उपलब्ध होता रहता है। विश्व के विभिन्न भागों में भारी माल जल यातायात के माध्यम से ही ढोया जाता है।

11.6.3.4 वायुदाब और हवाएं

वायु का दबाव और हवाओं की दिशा वायु यातायात को प्रभावित करती है इसी के कारण वायु मार्ग भी सीधे नहीं होकर विचलित हो जाते है अत: ईंधन खर्च बढ़ता है। कई दफा कोहरा हिमपात आदि की स्थिति में वायुयान उत्तर नहीं पाते है, उन्हें कुछ समय इन्तजार करना पड़ता है। उनका ईंधन खर्च बढ़ जाता है। वैसे भी वायु यातायात सामान्यत: अन्य साधनों की अपेक्षा महंगा होता हैं। हवाई यातायात के लिये सम जलवायु एवं समतल धरातल की आवश्यकता होती है लेकिन ईंधन अधिक खर्च होने के कारण वायु परिवहन अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक महंगा होता है।

11.6.4 राजनैतिक कारक (Political Factors)

देशों के राजनैतिक सम्बंध भी परिवहन लागत को प्रभावित करते है, दो देशों के मध्य सीमाएं उनकी प्रभुसत्ता की सीमा होती है लेकिन सीमा पार करने के लिये राजनैतिक नियमों के पालन की बाध्यता होती है। इस कारण सीमा पर स्थित दो नगर नजदीक होते हुये भी सीधे परिवहन से नहीं जुड़ सकते है, बल्कि दोनों देशों के मध्य समझौते के अनुसार ही निश्चित स्थानों पर ही सीमा पार की जा सकती है, इससे दूरी बढ़ जाती है और परिवहन लागत भी बढ़ जाती है जैसे भारत–पाक या संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा की सीमा पर। भारत पाक सीमा पर अगर कोई व्यक्ति जम्मू (भारत) से रावलपिंडी (पाकिस्तान) जाना चाहे तो ऐसा अटारी सीमा चौकी द्वारा ही संभव है अत: मार्ग की लम्बाई बढ़ जाती है। यहां सीमा कर आदि भी देने होते है अत: परिवहन लागत अधिक लगती हैं (चित्र - 11.9) ।

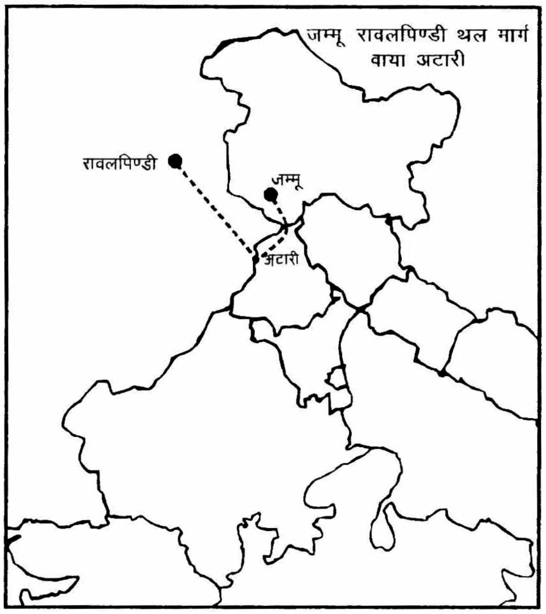

चित्र– 11.9 : जम्मू–रावलपिण्डी थल मार्ग

कई बार सरकार या स्थानीय नियमों के कारण भी कर आदि देना होता है, जिससे परिवहन लागत बढ़ जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पिट्सबर्ग + परिवहन लागत व्यवस्था लागू थी जिसे चित्र- 11.10 में समझ सकते है कि प पिट्सबर्ग का केन्द्र है यहां प[1] लागत पर इस्पात तैयार होता था अब इस स्थान पर बने हुये, इस्पात को देश के अन्य भागों में दूरी के अनुसार परिवहन लागत जोड़कर बेचा जाता था। चित्र में अ पर यह अअ[1] मूल्य पर तथा ब पर यह बब[1] मूल्य पर बेचा जाता था। अब अगर स पर स्थित कोई केन्द्र इस्पात का उत्पादन करता और वह भी सप[1] (पप[1] के बराबर) लागत पर इस्पात तैयार कर बेचता है तो पिट्सबर्ग + परिवहन लागत नीति के अनुसार वह दद[1] मूल्य पर बेचेगा यद्यपि वह देय मूल्य पर भी, इस्पात बेच सकता था लेकिन उक्त नीति के कारण यहाँ के ग्राहकों को (पिट्सबर्ग से अधिक दूरी के कारण परिवहन लागत अधिक लगने से) महंगा इस्पात खरीदना पड़ता था। 1948 में इसे अवैधानिक करार दे दिया गया तब कहीं परिवहन लागत का भार कम हुआ और लोगों को सस्ती दर पर माल मिलने लगा। ऐसी ही व्यवस्था पेट्रोलियम पर गल्प + परिवहन लागत के रूप में पेट्रोलियम कम्पनियों द्वारा कई वर्षो तक अपनाई जाती रही। यह मेक्सिकों की खाड़ी + के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका ने शुरु की थी बाद में पेट्रोलियम उत्पादक देशों द्वारा फारस की खाड़ी + के रूप में अपनाया (1912 के बाद यह नीति विश्व के कई देशों में अपनाई गई। रूस में इस्पात के मूल्य चेलियाविनस्क + के रूप में लागू थी।)

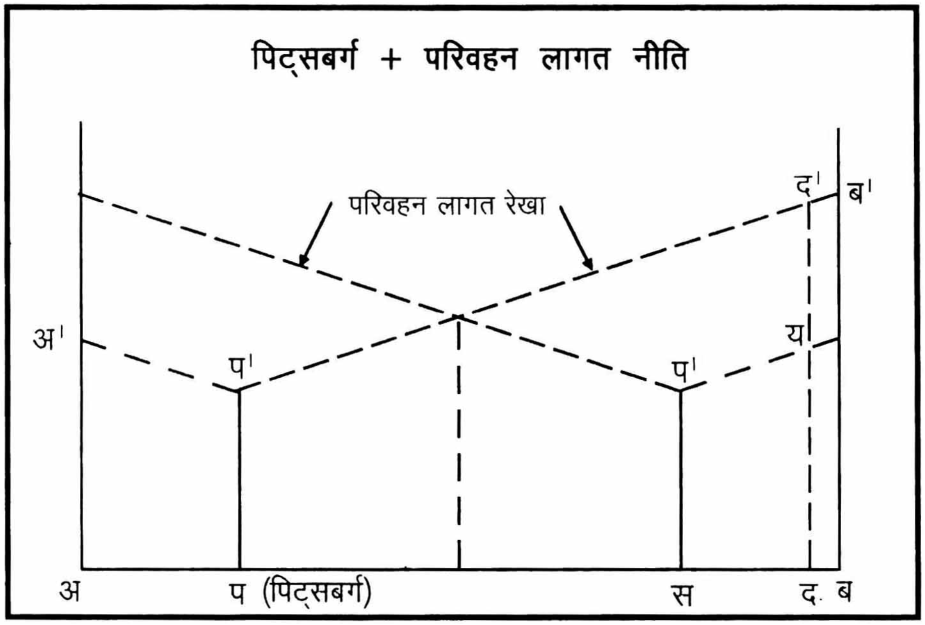

चित्र– 11.10 : परिवहन लागत रेखा

11.6.5 तकनीकी विकास (Technological Development)

परिवहन के क्षेत्र में पिछले 200 वर्षो में अत्यधिक परिवर्तन आये हैं। बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी से चलते चलते परिवहन में वायुयान का उपयोग होने लगा। इसके परिणाम स्वरूप यातायात की क्षमता, स्वरूप, गति व लागत में भी काफी पीरवर्तन आये हैं। परिवहन लागत पहले की अपेक्षा कम हुई है जो तकनीकी विकास के कारण ही संभव हो सकी है और गति में वृद्धि के कारण समय भी अपेक्षाकृत कम लगने लगा है। इसी प्रकार कन्टेनरों के विकास के कारण उनमें भारी मात्रा में विभिन्न प्रकार का सामान भेजा जा सकता है। कन्टेनर तकनीक के कारण माल को बिना पुनर्पैकिंग के विभिन्न परिवहन माध्यमों से भेजा जा सकता हैं । इससे समय एवं लागत दोनों में अत्यधिक बचत हुई है। 1968–69 में जहां यूरोप–आस्ट्रेलिया के मध्य 80 प्रतिशत माल का परिवहन पुरातन कार्गो लाइनर से था वहाँ अब (1972 के बाद) केवल 14 कन्टेनरों में जाने लगा है।

11.7 परिवहन लागत का स्थानिक प्रभाव (Spatial Impact of Transportation Cost)

परिवहन लागत के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिक दूरी पर माल लाने ले जाने में अधिक सस्ता पड़ता है। वेबर ने अपने "न्यूनतम परिवहन बिन्दु" सिद्धान्त के आधार पर उद्योगों के स्थानीय करण को स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कच्चे माल के स्त्रोत व बाजार मे जो स्थान न्यूनतम परिवहन लागत की दृष्टि से उपयुक्त है वहीं उद्योग स्थापित होगा। वेबर ने मानाकि कच्चे माल के स्त्रोत व बाजार के बीच में उद्योग स्थापित करना अनुपयुक्त है,

क्योंकि बीच में माल उतारने व वापस चढ़ाने से परिवहन लागत बढ़ जाती है (चित्र– 11.11) । इसी से मिलते–जुलते विचार ई.एम.हूवर, पेलेन्डर ने भी व्यक्त किये।

दूरी के अनुसार परिवहन लागत

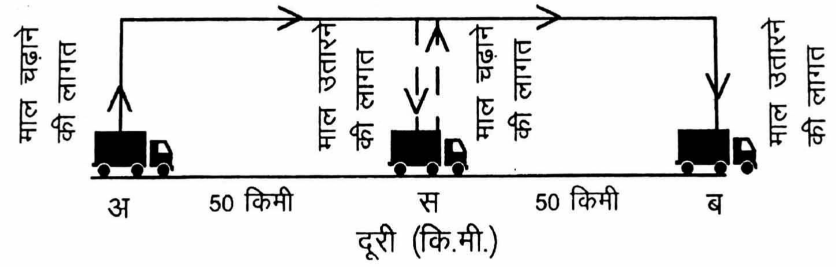

दूरी कि.मी.	परिवहन लागत 5 रु. प्र.ट.कि.मी.	+ उतारने चढ़ाने की लागत 5 + 5 = 10/–	= कुल लागत	औसत लागत प्र.ट.कि.मी.
अ ब 100	500/–	10/–	= 510	1.02
अ स 50	250/–	10/–	= 260	1.04
स ब 50	250/–	10/–	= 260	1.04

कुल लागत स पर माल उतारने पर 520/– लगने ने औसत लागत 1.04 आयेगी।

चित्र–11.11 : दूरी के अनुसार परिवहन लागत

यद्यपि आर्थिक गतिविधियों की स्थिति अन्य कई तत्वों से प्रभावित होती है, उनमें परिवहन लागत का भी प्रमुख स्थान है, जो दूरी से संबंधित है इसके परिणाम स्वरूप दूरी तक माल ले जाकर डालने की प्रवृत्ति विकसित हुई है वहीं बाजार और पूर्ति के क्षेत्र भी विस्तृत हुये है। इस प्रवृत्ति से धीरे–धीरे उत्पादक अपने प्रतिद्वन्दी के बाजारी क्षेत्र को आक्रान्त करने लगता है।

चित्र–11.12 के अनुसार अगर परिवहन लागत दूरी के अनुपात में है तो 'अ' और 'ब' के मध्य का बाजारी क्षेत्र 'स' तक होगा लेकिन अगर वास्तविक परिवहन लागत के अनुसार देखा जाय तो लागत में वृद्धि दूरी के अनुपात में न होकर दूरी की धीमी गति से वृद्धि होती है तो 'अ' अपने बाजारी क्षेत्र को 'द' तक पहुँचा सकता है और अपने मूल्यों को गिराकर 'य' तक पहुंचा सकता है, जबकि 'ब' का बाजारी क्षेत्र एकाकी रह जायेगा। यद्यपि 'ब' 'अ' की अपेक्षा उस क्षेत्र में अधिक निकट है फिर भी 'ब' का बाजारी क्षेत्र 'द' व 'य' के मध्य सीमित रह जायेगा और कभी–कभी प्रतिस्पर्द्धी को बाजार से हटने के लिये विवश कर देता है।

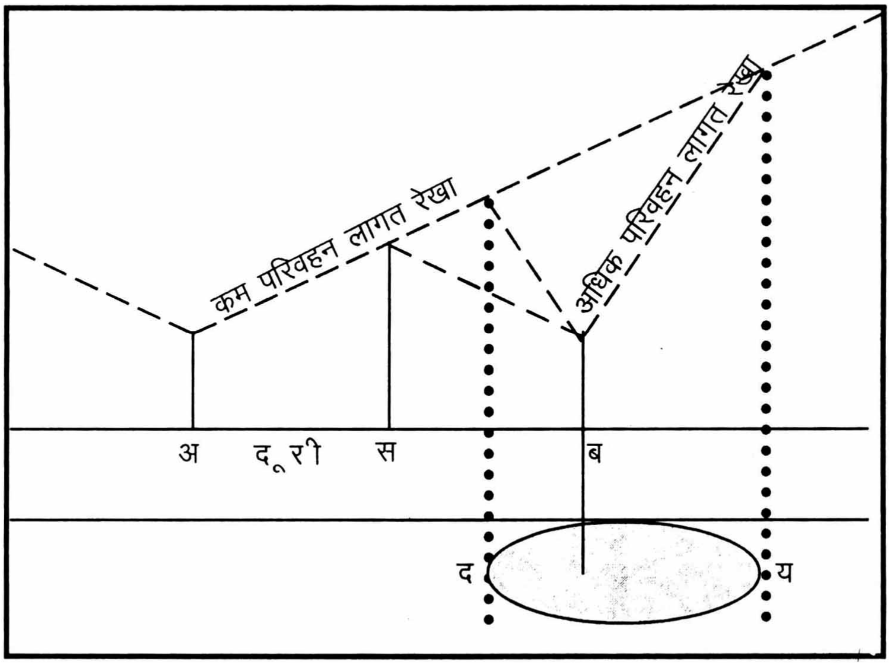

चित्र – 11. 12: परिवहन लागत रेखाएँ

11.7.1 दूरी कटिबन्धीय परिवहन लागत का प्रभाव

लगभग सभी प्रकार की परिवहन लागत की व्यवस्थाएं दूरी कटिबन्धीय लागत वाली होती है, जिनमें दूरी बढ़ने के अनुसार समूह (कटिबन्ध) में लागत कम होती जाती है यह वक्र रेखा की तरह न होकर सीढ़ीनुमा होती है। प्रत्येक मार्ग के सहारे अलग–अलग परिवहन लागत के समूह बन जाते है और प्रत्येक समूह में समान माल भाड़े की दर वसूली जाती है।

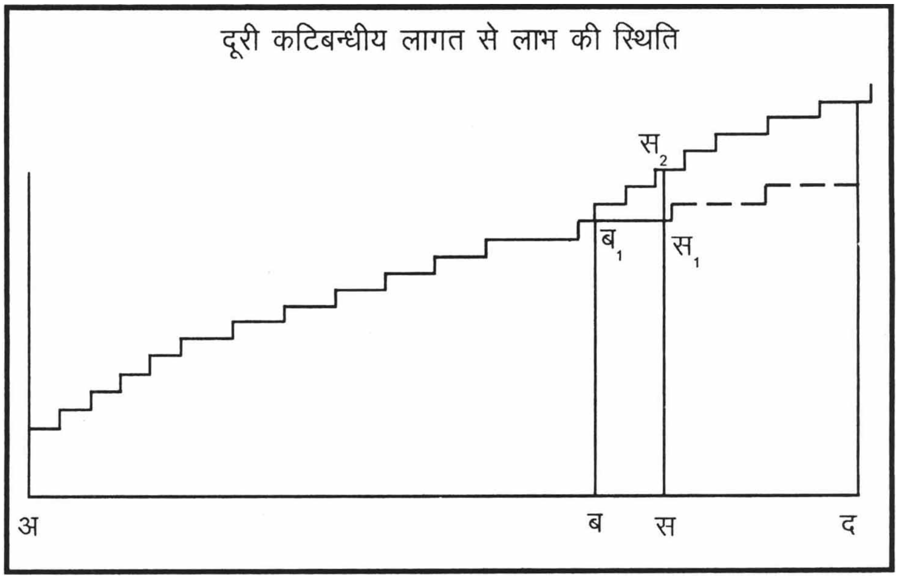

चित्र– 11.13 : दूरी कटिबन्ध लागत से लाभ की स्थिति

इसका प्रभाव आर्थिक गतिविधियों पर पड़ता है। चित्र– 11.13 के अनुसार 'अ' केन्द्र से माल ब स आदि केन्द्रों पर पहुंचाने में परिवहन लागत में समानता है अगर यह माने कि 'अ' पर कच्चा माल बहुत मात्रा में उपलब्ध है तथा इसकी पूर्ति 'ब' 'स' 'द' आदि केन्द्रों पर दूरी कटिबन्धीय (दूरी समूह) परिवहन लागत के अनुसार की जाती है तो बब$_1$ तथा सस$_1$ पर लागत समान होगी अब अगर ब पर उद्योग स्थापित किया जाता है तो बना हुआ माल स पर पुन: परिवहन लागत जोड़कर अधिक मूल्य पर बेचा जायेगा अर्थात स$_1$ स$_2$ मूल्य अधिक देना होगा लेकिन अगर उद्योग स पर ही स्थापित किया जाय तो उत्पादित माल स$_1$ पर अधिक दूर होने पर भी उसी कीमत पर उपलब्ध हो जायेगा जिस कीमत पर ब पर उपलब्ध होता है, इसके कारण स के उद्योग को ब से लेकर द की तरफ आगे तक का बाजार प्राप्त करने में सुविधा होती है। इस प्रवृत्ति से अधिक दूरी पर भी उद्योग स्थापित होते रहे हैं।

11.7.2 भिन्न परिवहन माध्यम मिलन का प्रभाव

जहां पर अलग –अलग प्रकार के परिवहन के माध्यम मिलते है वहां कच्चे माल को एक प्रकार के परिवहन माध्यम से दूसरे प्रकार के परिवहन माध्यम पर ढोकर ले जाना होता है जैसे बन्दरगाहों पर जल यातायात से लाया गया माल थल यातायात से ढोया जाता है। दोनों की परिवहन लागत की दर भिन्नता लिये होती हैं साथ ही माल को जहाज से उतार कर दूसरे माध्यम रेल या ट्रकों द्वारा ले जाया जाता है अत: पुन: चढ़ाना पड़ता है इससे परिवहन लागत बढ़ जाती है। ऐसे स्थान पर ही (दोनों के मिलन स्थल पर) सम्बन्धित उद्योग स्थापित किया जाना लाभप्रद होता है ताकि कच्चे माल को उतारने व चढ़ाने का खर्च व्यर्थ ही नहीं देना पड़ता है और परिवहन लागत में वृद्धि से बचा जा सकता है। यहीं कारण है कि विश्व के अधिकांश बन्दरगाह उद्योगों के केन्द्र भी बने है (चित्र- 11.14) ।

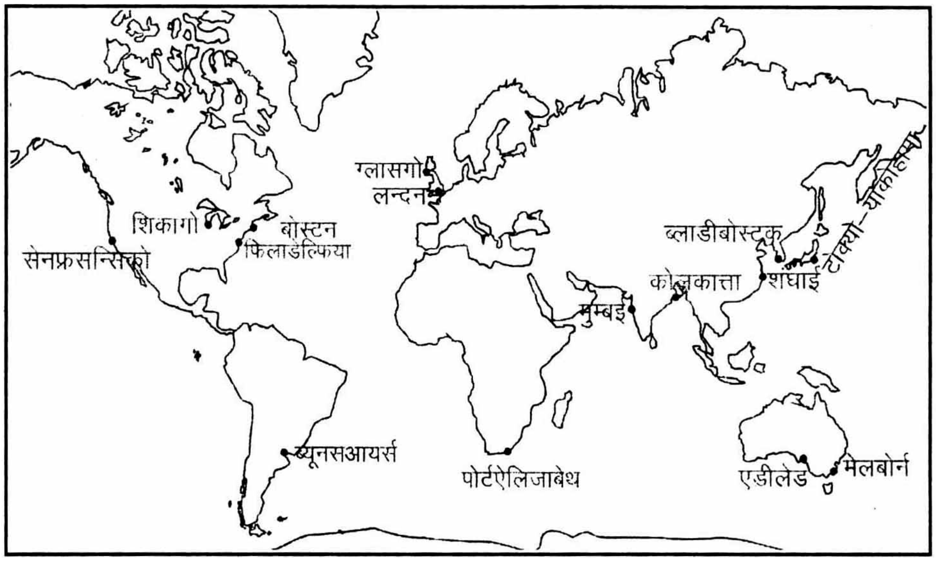

चित्र– 11.14 : विश्व के प्रमुख औद्योगिक बन्दरगाह

11.7.3 समय–स्थानिक अभिसरण का प्रभाव (Time Space Convergence)

19 वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति को कई विद्वान (विशेषकर प्रारम्भिक दशा को) यातायात की क्रान्ति मानते है। भाप के इंजन के आविष्कार के पहले परिवहन लागत अधिक थी यातायात की भार ढोने की व गति की क्षमता भी कम थी। उस समय जल यातायात मुख्य होने से अधिकांश नगरों का विकास तटीय भागों में हुआ। 19 वीं सदी में रेल्वे का विकास अधिक हुआ, 20 वीं सदी में पहले ऑटोमोबाइल का विकास व बाद में वायुयान का विकास होने से फिर क्रांति आई। विशेषकर ऑटोमोबाइल सर्वत्र सुलभ यातायात का साधन बनता गया। इसकी वजह से जहां यातायात की क्षमता एवं गति में भी सुधार होता गया वहीं समय भी कम लगने लगा और परिवहन की औसत लागत भी कम हुई। जेनेल ने इसे समय–स्थानिक अभिसरण (Time Space Convergence) नाम दिया। यह समय–स्थानिक सम्बन्ध प्रमुख यातायात की खोजों के साथ–साथ तेजी से बदला है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप आर्थिक गतिविधियों में भी परिवर्तन आये है। ये परिवर्तन तीन प्रकार से आये है –

1. उत्पादन का ढांचा जो पहले छितरा हुआ था वह संगठित हो गया।
2. अर्थव्यवस्था की स्थितियों में उनकी आधारभूत स्वाभाविक किस्म के कारण अन्तर बढ़ा।
3. भौगोलिक विशिष्टीकरण एवं उत्पादन का स्थानिक विस्तार हुआ।

प्रारम्भ में परिवहन लागत अधिक होने से उत्पादन व वितरक इकाईयां छितरी थी वे परिवहन लागत में कमी से धीरे–धीरे अधिक लाभ के क्षेत्रों में केन्द्रित होने लगी। यातायात के विकास व कम लागत से जहां मांग के क्षेत्र विस्तृत हुये वहीं पूर्ति के क्षेत्र भी विस्तृत होते गये व कृषि क्षेत्रों में भी अधिक दूरी पर उत्पादन लाभप्रद होने लगा व तुलनात्मक लाभ के कारण उत्पादन विशिष्टीकरण भी होने लगा। डेनमार्क, न्यूजीलैंड में दुग्ध एवं पशुपालन व्यवसाय का विकास इसका उदाहरण है अर्थात् प्राकृतिक तत्वों का महत्त्व बढ़ा। पहले फल सब्जियां नगर के आस–पास उत्पादित किए जाते थे अब दूर–दूर तक जहां प्राकृतिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त दशायें है वहां भी उत्पादित किए जाने लगे और सस्ते व दुतगति के परिवहन के कारण मांग और पूर्ति का चक्र विस्तृत क्षेत्र में संभव होने लगा। इससे यातायात की मांग भी बढ़ी और पुरानी व्यवस्थाओं की जगह अधिक चौड़े मार्ग (चार लाईन – छः लाईन), दोहरी रेल लाईनें बिछाई गई। डीजल इंजन से यातायात होने लगा है। और उसी के अनुसार आर्थिक गतिविधियों की स्थिति भी प्रभावित होती गई (चित्र –11.15)।

बड़े शहरों में आर्थिक गतिविधियां जो आन्तरिक भाग में थी वे शहरों के बाहरी भागों में स्थानान्तरित हुई और शहरों का विकास उप नगरीय बस्तियों के रूप में व मार्गों के सहारे होने लगा। होटल एवं पर्यटन व्यवसाय भी तेज गति से बढ़ा और जनसंख्या का स्थानान्तरण भी अधिक दूर–दूर तक होने लगा है लेकिन यहां यह भी स्मरणीय है कि परिवहन लागत का प्रभाव सभी क्षेत्रों में, प्रदेशों में समान रूप से नहीं पड़ा है यह कहीं कम व कहीं ज्यादा प्रभावी हुआ है, इसके परिणाम स्वरूप यह भी हुआ कि कुछ दूरस्थ क्षेत्र पिछड़ गये और वहां यातायात में अब भी अधिक समय व पैसा लगता है। विकसित क्षेत्र अधिक विकसित हुये है वहीं कई नये क्षेत्र भी आर्थिक वृद्धि के क्षेत्र बन गये। पहले जो क्षेत्र विश्व की आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र थे जैसे

पश्चिमी यूरोप व उ.पू. अमेरिका, अब उनका स्थान धीरे–धीरे पूर्वी एशिया के क्षेत्र लेते जा रहे है।

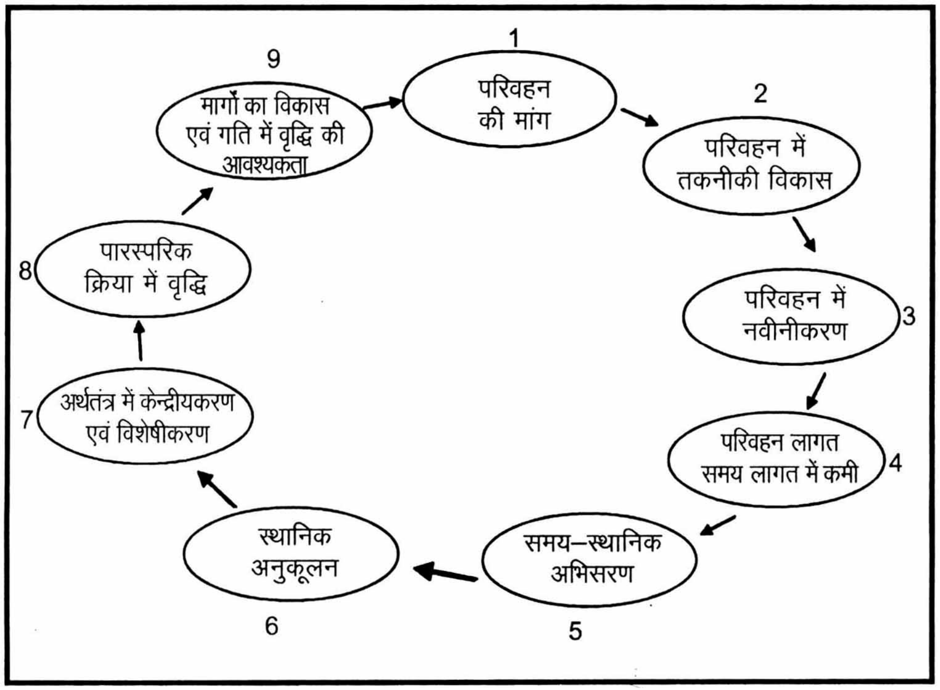

चित्र– 11.15 : परिवहन विकास, लागत एवं स्थानिक प्रभाव

परिवहन लागत में कमी के कारण अर्द्ध विकसित एवं अविकसित प्रदेशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के लिये अपनी उत्पादक इकाइयों को स्थापित किया। कच्चे माल को लाने और बना हुआ माल भेजने में समय एवं परिवहन खर्च में काफी कमी आई इससे उन प्रदेशों में विकास प्रारम्भ हुआ। परिवहन लागत के कम होने से संचार व परिवहन के क्षेत्र में यात्राओं का स्तर भी बढ़ा है अत: जहां मानवीय दृष्टि से कई लाभ हुये वहीं कच्चे माल को सस्ती दर पर खरीदना, बना हुआ माल महंगी दर पर बेचना, संसाधनों के शोषण को बढ़ावा, परिवहन एवं औद्योगिक विकास से पर्यावरण का प्रदूषित होना, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा वहां की राजनीति को प्रभावित करना स्थानीय उद्योगों का बन्द होना व दुर्घटनाओं में वृद्धि, बेरोजगारी बढ़ना आदि दुष्प्रभावों में भी वृद्धि हुई है।

11.8 सारांश (Summary)

परिवहन अर्थ तंत्र के परिचालन एवं विकास का महत्वपूर्ण आधार है यह अर्थतंत्र की जीवन रेखा है। पिछले दो सौ वर्षो में परिवहन के क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन आये है विशेषकर परिवहन के साधनों, उनकी क्षमता, गति और लागत में पहले की अपेक्षा परिवहन लागत कम हुई है इसके प्रभाव सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्थाओं पर पड़े है, जिसके कारण जहां एक दूसरे पर निर्भरता बढ़ी है वहीं प्रतिस्पर्द्धा भी प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ी है। विभिन्न क्षेत्रों में परिवहन लागत के प्रभाव से कई क्षेत्र संगठित हुये वहीं सस्ती परिवहन लागत के कारण विकेन्द्रीकरण हुआ तो कहीं विशिष्टीकरण हुआ। यह सही है कि परिवहन लागत को कम से कम करना ही मुख्य उद्देश्य

नहीं है बल्कि सामाजिक दृष्टि से माल की गतिशीलता, सूचनाओं का प्रवाह, नवाचारों का प्रसारण, जनसंख्या की लम्बी और छोटी अवधि का स्थानान्तरण आदि सभी एक ही प्रवृत्ति से कार्यरत है अत: इन सबका प्रभाव स्थानिक व्यवस्था के प्रारुप में देखने को मिलता है।

बोध प्रश्न – 2

1. परिवहन लागत को प्रभावित करने वाले 4 प्रमुख कारण बताइये।

....

....

2. सस्ता परिवहन निर्भर करता है?

....

....

3. परिवहन में तेज गति कौनसी बातों पर निर्भर करती है?

....

....

4. समय–स्थानिक अभिसरण के प्रभाव बताइये।

....

....

5. दूरी कटिबन्धीय परिवहन लागत का प्रभाव किस रूप में होता है?

....

....

6 .दो भिन्न - माध्यमों के मिलने स्थल का प्रभाव परिवहन लागत पर पड़ता है। (अ) हां (ब) नहीं

....

....

11.9 शब्दावली (Glossary)

- **स्थापन लागत :** विनिवेश का वह भाग जो भूमि, भवन, यंत्रों, उपकरणों में आधारभूत रूप से निवेश किया जाता है उसे स्थापन लागत कहते है।
- **गतिशील लागत :** किसी भी प्रकार की आर्थिक गतिविधि को गतिशील बनाये रखने के लिये जो खर्चे किये जाते हैं।
- **ऊपरी खर्चे :** परिवहन लागत में वेतन, मजदूरी, टैक्स, आदि के खर्चे ऊपरी खर्चे कहलाते है।
- **परिवहन लागत :** वह लागत जो माल को, व्यक्तियों को या समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने ले जाने में देनी होती है। यह समय या मुद्रा में हो सकती है।
- **उपयोगकर्त्ता की कम लागत :** ऐसे मार्ग जिनका उपयोग करने पर उपयोग कर्त्ता को कम परिवहन खर्च देना पड़ता हो।
- **बनाने की कम लागत :** ऐसे मार्ग जिनके निर्माण में कम से कम खर्च होता हो।

- **परिवहन माध्यम परिवर्तन स्थल :** दो भिन्न प्रकार के परिवहन माध्यमों के मिलने के क्षेत्र जैसे बन्दरगाह
- **सर्वत्र सुलभ परिवहन माध्यम :** ऐसा परिवहन का माध्यम जो सभी जगह सरलता से उपलब्ध हो जाये।
- **समय स्थानिक अभिसरण :** परिवहन की तेज गति और विकास के कारण दूरी तय करने में कम समय लगना और दूर के क्षेत्र नजदीक महसूस करना।

11.10 संदर्भ गन्ध (Reference Books)

1. **Robinson, H. and Bam ford, C.G.–**Geography of Transportation, McDonald and Evans, London, 1973.
2. **Hagget, P.et al–** Locational Analysis in Human Geography, Eduward, Amold, London.1977.
3. **White H.P.and Senior, M.L.–** Transport Geography. Longman, London, 1983.
4. **Saxena, H.M.–**Transport Geography, Rawat Publication, Jaipur, 2006.
5. **Berry, B.J.L. et al.–**Economic Geography. Printice Hall, inc., Englewood Cliffs, New Jersey, 1987.
6. **हरकचन्द जैन –** सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल, कमलेश प्रकाशन, भीलवाड़ा, 1984.
7. **राजमल लोढ़ा –** औद्योगिक भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2005.

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. .अ
2. .ब
3. .समय – लागत एवं मौद्रिक–लागत के रूप में
4. .द
5. .स्थायी एवं परिवर्तनशील लागत
6. रेल लाइन का बिछाना, सडकों, पुलों, सुरंगों, परिवहन कार्यालय, डॉक्स, हवाई अड्डा आदि का निर्माण।

बोध प्रश्न – 2

1. (अ) दूरी (ब) गति (स) मार्ग की दशा (द) साधन या माध्यम
2. (अ) मार्ग की अधिक लम्बाई (ब) जल यातायात (स) लाने व ले जाने में पूरा माल उपलब्ध हो (द) समय का महत्व न हो।

3. (अ) नवीनतम तकनीक वाले व शक्तिशाली वाहन (ब) दोहरे या अधिक चौड़े मार्ग हो (स) इलेक्ट्रोनिक उपकरणों की सहायता (द) भरपूर माल व उसके पहुंचाने की सुविधाएं हो।
4. (अ) अर्थव्यवस्था का संगठित होना (ब) विभिन्न प्रदेशों में आपसी क्रिया का अधिक विकसित होना विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्टीकरण की क्रियाएं विकसित होना।
5. इस आधार पर अधिक दूरी पर उद्योगों का विकास संभव हुआ।
6. (अ) हां

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवहन लागत से क्या तात्पर्य है? परिवहन लागत की विशेषताएं बताइये।
2. परिवहन लागत को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
3. परिवहन लागत के प्रकार बताइये और परिवहन लागत का आर्थिक गतिविधियों की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
4. निम्नांकित की व्याख्या कीजिए।

   (अ) दूरी कटिबन्धीय परिवहन लागत (ब) भिन्न परिवहन लागत मिलन बिन्दु स्थिति

   (स) समय–स्थानिक अभिसरण

इकाई 12 : परिवहन जाल विश्लेषण (Transport Network Analysis)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 परिवहन जाल के तत्व

12.2.1 केन्द्र

12.2.2 संयोजन

12.2.3 ग्राफ

12.2.3.1 ग्राफ के प्रकार

12.2.4 परिपथ

12.2.5 स्वतंत्र/आधारभूत परिपथ

12.2.6 प्रदेश

12.2.7 पथ/मार्ग

12.2.7.1 पथ की लम्बाई

12.2.7.2 पथ की दूरी

12.2.8 सह संख्या

12.2.10 संयोजकता

12.2.10.1 पथ संयोजकता

12.2.10.2 शारिवत संयोजकता

12.2.10.3 परिपथ संयोजकता

12.2.10.4 प्रकोष्ठ/अवरोध संयोजकता

12.3 जाल विश्लेषण के प्रकार

12.3.1 समग्र जाल की संयोजकता का माप

12.3.1.1 अनुपातिक सूचकांक

12.3.1.2 गैर आनुपातिक सूचकांक

12.4 संगम स्थल अभिगम्यता के माप

12.4.1 अभिगम्यता को प्रभावित करने वाले कारक

12.4.2 संगम स्थल अभिगम्यता के माप

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :

परिवहन जाल विश्लेषण,

परिवहन जाल विश्लेषण के विभिन्न माप,

समग्र परिवहन जाल विश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले माप सूचकांकों का महत्व एवं उपयोगिता,

व्यक्तिगत केन्द्रों की अभिगम्यता का महत्व एवं उपयोगिता ।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

वह साधन जो माल, मनुष्य व सन्देशों का भू सतह पर निश्चित उद्देश्यों के लिए वहन किया जाता है वही परिवहन कहलाता है।

जाल शब्द का व्यापक अर्थ होता है दोस्तों का जाल, सम्बन्धों का जाल, किन्तु परिवहन भूगोल की दृष्टि से जाल विभिन्न परिवहन केन्द्रों (Nodes) के मध्य भौगोलिक अन्त: संयोजित व्यवस्था है।

शब्दकोश के अनुसार जाल प्रतिच्छेदित रेखाओं और उनके बीच अन्तराल की जालीनुमा बनावट होती है।

कान्सकी (Kansky) के अनुसार जाल भौगोलिक स्थितियों का समूह (Set) होता है जो अनके मार्गो की व्यवस्था द्वारा अन्त: संयोजित होता है।

परिवहन भूगोल में परिवहन परिवहन संरचना का पीरवेक्षण और विश्लेषण, केन्द्रों के मध्य संयोजन, केन्द्रों के आकार, परिमाप में उसकी अभिगम्यता का परीक्षण करता है और अंत में संयोजनों के प्रत्येक जाल के परस्पर प्रतिस्पर्धा एवं प्रभुत्व का अध्ययन किया जाता है।

इन परिवहन जालों के अनेक प्रारूप होते हैं जैसे जालों की वैकल्पिक आकृतियाँ –

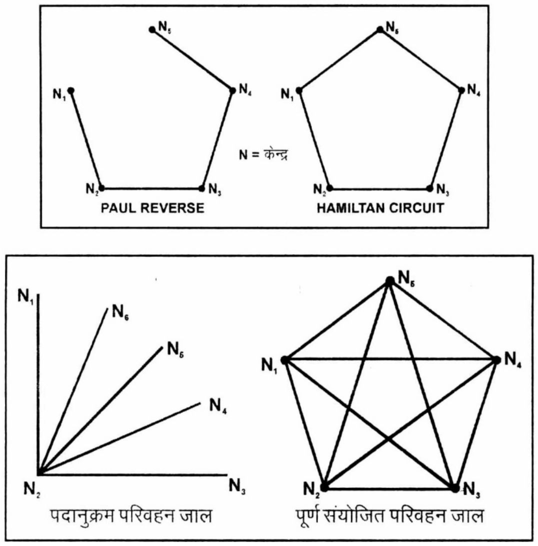

चित्र– 12.1 : परिवहन जालों के रूप

12.2 परिवहन जाल के तत्व

1. केन्द्र (Nodes)
2. संयोजन (Linkages)
3. ग्राफ (Graph)
4. उपग्राफ (Subgraphs)
5. परिपथ (Circuits)
6. स्वतंत्र या आधारभूत परिपथ Fundamental Circuits
7. प्रदेश (Region)
8. मार्ग (Path)
9. पथ की लम्बाई (Length of the Path)
10. पथ दूरी (Distance of the Path)
11. सह संख्या (Associate No.)
12. जाल का व्यास (Diameter of Network)
13. संयोजकता (Connectivity)

संयोजकता की माप के तीन आधारभूत तत्व होते हैं :

(अ) E = संयोजन संख्या (Number of edges)

(ब) V = केन्द्र संख्या (Number of varieties)

(स) G = उपग्राफ (sub graph)

12.2.1 केन्द्र (Nodes)

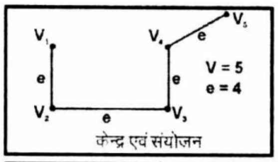

शीर्ष, संगम स्थल, प्रतिच्छेदन केन्द्र वे भौगोलिक स्थितियाँ हैं जहाँ से संचरण प्रारम्भ होता है या समाप्त होता है। संयोजनों के प्रतिच्छेदन बिन्दु हैं।

12.2.2 संयोजन (Linkages)

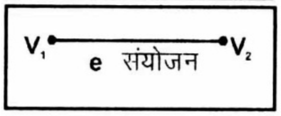

संयोजन प्रारम्भ व अन्तिम केन्द्र को जोड़ने वाली रेखा है। इसे मार्ग (Route) या (Path) पथ
द्वारा भी प्रदर्शित किया जाता है।

12.2.3 ग्राफ (Graph)

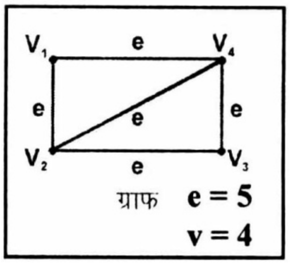

परिवहन जाल का वर्णन एवं संश्लेषण के लिए यद्यपि अनेक प्रक्रियाएँ उपलब्ध हैं किन्तु ग्राफ सिद्धान्त (Graph Theory) सुविधाजनक एवं परिशुद्धता माप प्रदान करता है। ग्राफ सिद्धान्त टापोलोजी (Tapology) की एक शाखा है।

ग्राफ सिद्धान्त किसी भी प्रदेश के परिवहन जाल को एक भाववाचक ग्राफ के रूप में प्रदर्शित करता है।

ग्राफ बिन्दुओं और रेखाओं का व्यवस्थित रूप होता है जिसमें रेखाएं बिन्दुओं को प्रतिच्छेदित करती हैं या बिन्दुओं को जोड़े रखती है।

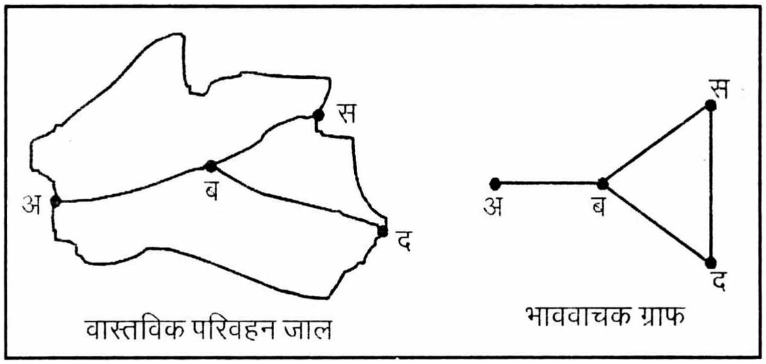

चित्र–12.2 : वास्तविक परिवहन जाल एवं भाववाचक ग्राफ

ग्राफ भाववाचक बनाने में ध्यान देने योग्य बातें :

(i) प्रशासनिक सीमा हटा दी जाती है। साथ ही अनेक सूचनाएँ प्रारम्भ में छोड़ दी जाती है जिन्हें बाद में पुन : सम्मिलित कर देते हैं।

(ii) ग्राफ मापक पर नहीं बनाया जाता है।

(iii) मार्गों के घुमाव को छोड़ दिया जाता है। मार्गों को सरल रेखाओं द्वारा जोड़ा जाता है किन्तु स्थान अनुक्रम वहीं बना रहता है। केन्द्रों की स्थिति वही रहती है। देवगढ़ भीलवाड़ा मावली चित्तौड़गढ़ उदयपुर बड़ी सादड़ी डूंगरपुर निम्बाहेड़ा

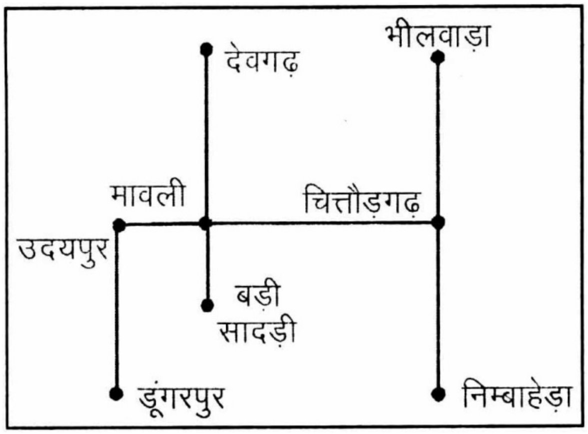

(iv) केन्द्रों में प्रत्यक्ष संयोजन ही दिखाया जाता है अर्थात् यदि मार्ग में कहीं ऐसे स्थान पर विभाजन होता है जो अधिवास नहीं है उन्हें भी छोड़ दिया जाता है।

ग्राफ की विशेषताएं –

(i) प्रत्येक जाल में केन्द्रों (Nodes) की संख्या निश्चित होती है।

(ii) प्रत्येक मार्ग दो विभिन्न केन्द्रों को जोड़ता है।

(iii) मार्गों में दोनों दिशाओं में संयोजन सम्भव होता है क्योंकि संचरण (Movement) हर स्थान पर सम्भव है।

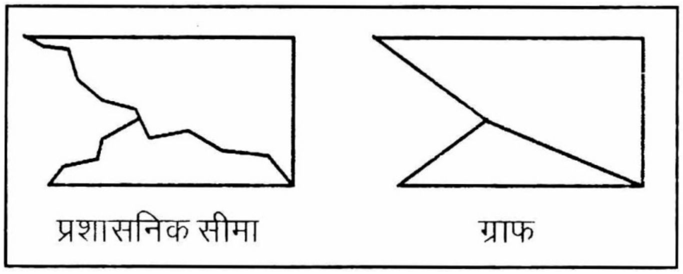

चित्र – 12.3 : प्रशासनिक सीमा एवं ग्राफ

12.2.3.1 ग्राफ के प्रकार (Types of Graph)

ग्राफ चार प्रकार के होते हैं : –

(i) समतल ग्राफ और असमतल ग्राफ

(ii) निश्चित दिशा ग्राफ और अनिश्चित दिशा ग्राफ

(iii) संयुक्त ग्राफ और असंयुक्त ग्राफ

(iv) भारित ग्राफ और अभारित ग्राफ

(i) समतल ग्राफ और असमतल ग्राफ (Planner Graph and Mon Planner Graph) : समतल ग्राफ (Planner Graph) में दो संयोजकों (Linkages) के प्रतिच्छेदन पर सदैव केन्द्र (Nodes) होता है लेकिन असमतल ग्राफ (Non Planner Graph) में मार्गों के प्रतिच्छेदन पर केन्द्र (Nodes) होना आवश्यक नहीं है जैसे – वायुमार्ग, जलमार्ग में ।

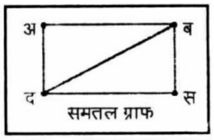

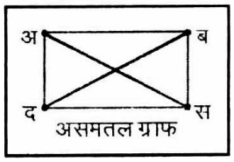

(ii) **दिशा बोध ग्राफ और दिशा विहीन ग्राफ/निश्चित दिशा और अनिश्चित दिशा ग्राफ (Directed and Non Directed Graph) :** दिशा बोध ग्राफ में दो केन्द्रों के मध्य परिवहन की दिशा प्रदर्शित की जाती है। महानगरीय एवं एक मार्गीय परिवहन मागों में इस प्रकार के ग्राफ का प्रयोग अधिक किया जाता है। अधिकांशत: परिवहन मानचित्र एवं ग्राफ में दिशा संकेत नहीं होते हैं।

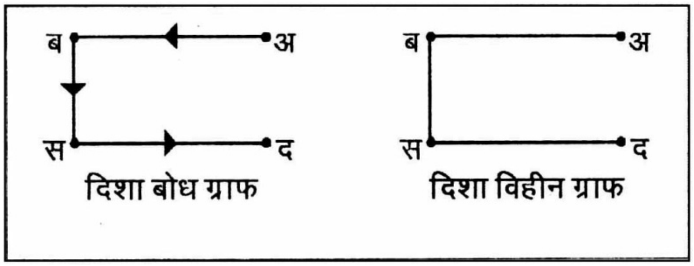

(iii) **संयुक्त व असंयुक्त ग्राफ (Connected and Non–Connected Graph) :** संयुक्त (Connected) ग्राफ में सभी केन्द्र आपस में जुड़े हुए होते हैं। एक केन्द्र से समस्त केन्द्रों

पर पहुँचा जा सकता है। असंयुक्त ग्राफ (Non Connected Graph) में एक केन्द्र से सभी स्थानों पर नहीं पहुंचा जा सकता है इसमें केन्द्र स्व दूसरे से जुड़े नहीं होते है।

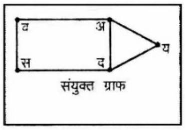

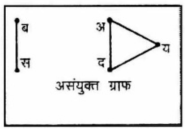

(iv) **भारित व अभारित ग्राफ (Weighted and Non Weighted Graph) :** जब ग्राफ में दो परिवहन केन्द्रों के मध्य दूरी, दूरी को तय करने में लगने वाला समय अथवा लगने वाले मूल्य को मान देते हैं तो वह भारित ग्राफ होता है। जैसे–दूरी, लागत, समय, वस्तुओं का वजन, यात्री संख्या के आधार पर भार देना।

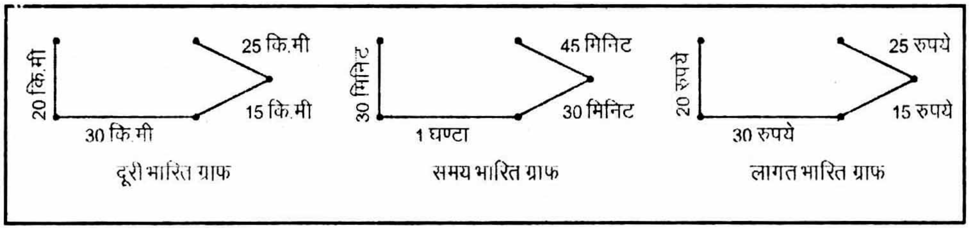

उपग्राफ (Sub Graph) : जब सारा ग्राफ संयुक्त न होकर असंयुक्त या अलग–अलग हो जाता है अर्थात् दो या दो से अधिक मार्गों में विभक्त हो जाता है। इसे g द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

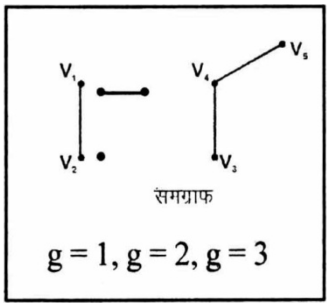

12.2.4 परिपथ (Circuits)

परिपथ यह एक बन्द बहुभुजाकार आकृति है जो केन्द्रों व संयोजनों को जोड़ने से बनती है अर्थात् परिपथ एक ऐसा मार्ग होता है जिसमें संयोजन का प्रारम्भिक केन्द्र और अन्तिम केन्द्र वही होता है।

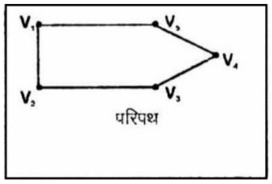

12.2.5 स्वतंत्र/आधारभूत परिपथ (Fundamental Circuits)

जिसमें और कोई परिपथ हो, तो स्वतंत्र परिपथ कहलाता है।

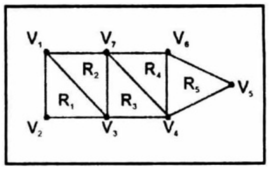

12.2.6 प्रदेश (Region)

स्वतंत्र परिपथ से घिरा क्षेत्र प्रदेश कहलाता है अर्थात् संयोजन से घिरा क्षेत्र प्रदेश कहलाता है।

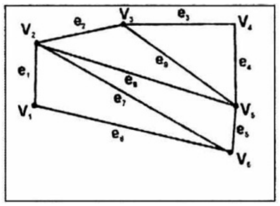

12.2.7 पथ (Path)

(अ) पथ (Path): एक जाल में दो स्थान युग्मों को जोड़ने वाला मार्ग का योग पथ कहलाता है।

(ब) मार्ग (Route) : जाल में स्थित दो केन्द्रों को जोड़ने वाली रेखा मार्ग कहलाती है।

12.2.7.1 पथ की लम्बाई (Length of Path)

दो स्थानों में मार्गों की संख्या या केन्द्र युग्मों के बीच संयोजनों की संख्या पथ की लम्बाई कहलाती है।

12.2.7.2 पथ दूरी (Distance of Path)

एक जाल में स्थित केन्द्र युग्मों के मध्य न्यूनतम पथ लम्बाई पथ दूरी कहलाती है। पथ दूरी केन्द्र युग्मों के मध्य लघुतम पथ होता है जैसे –

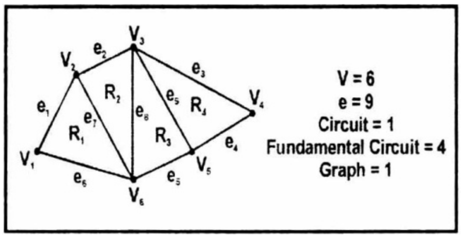

12.2.8 सह संख्या या कोनिंग संख्या (Associate Number. / Koning Number) :

इसका सबसे पहले प्रयोग कोनिंग ने 1936 में किया था। एक जाल में स्थित एक केन्द्र का उसी जाल में सबसे दूर स्थित केन्द्र की न्यूनतम पथ लम्बाई सह संख्या है। सह संख्या को Koning Index (Ki), भी कहते हैं। अधिक कोनिंग संख्या अधिक सम्बद्धता को दर्शाता है।

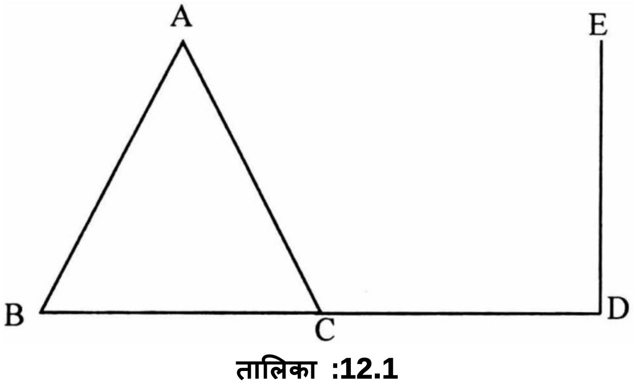

तालिका :12.1

Centres (केन्द्र)	A	B	C	D	E	Total (योग)

A	0	1	1	2	3	7
B	1	0	1	2	3	7
C	1	1	0	1	2	5
D	2	2	4	0	1	6
E	3	3	2	1	0	9

इसमें C को कोनिंग संख्या सबसे कम है जबकि E को सबसे अधिक है अत: E की सम्बद्धता अन्य केन्द्रों की अपेक्षा सर्वाधिक है।

12.2.9 जाल का व्यास (Diameter of Network):

जाल में स्थित केन्द्रों की सर्वाधिक सहसंख्या जाल में सबसे दूर स्थित केन्द्र युग्मों के मध्य की पथ दूरी जाल का व्यास कहलाती है।

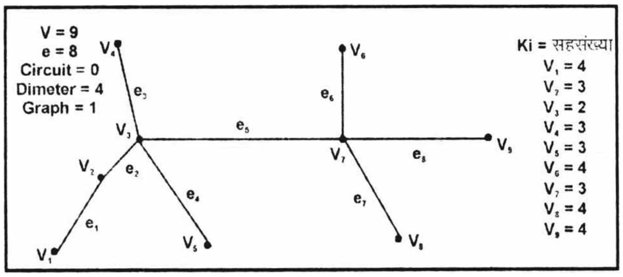

दक्षिण राजस्थान में रेल परिवहन जाल : जिस केन्द्र की सहसंख्या कम है वह दुर्गम क्षेत्र है जबकि अधिक सहसंख्या वाले केन्द्र की अभिगम्यता पहुंच अधिक होगी।

12.2.10 संयोजकता (Connectivity)

जब दो केन्द्रों के मध्य संयोजन होता है तो उसे संयोजकता कहते हैं।
टाफे के अनुसार जाल में स्थित समस्त केन्द्रों के मध्य संयोजन का स्तर जाल की संयोजकता कहलाती है।

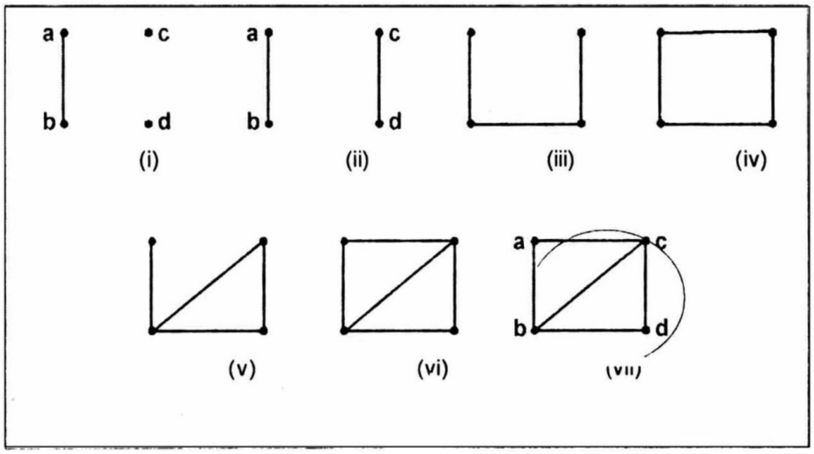

संयोजकता

स्थान युग्मों के मध्य संयोजन प्रत्यक्ष संचरण सम्भव होता है।

स्थिति विज्ञान (Topology) में हैगेट ने संयोजकता के चार प्रकार बतायें है :

(i) पथ संयोजकता

(ii) शाखित संयोजकता

(iii) परिपथ संयोजकता

(iv) प्रकोष्ठ/अवरोध संयोजकता

12.2.10.1 पथ संयोजकता (Path Connectivity)

यह भौगोलिक जाल का सबसे साधारण अवयव होता है। यह सरल रेखा का पथ होता है। यह सीधे भी होते हैं और घुमावदार भी हो सकते हैं।

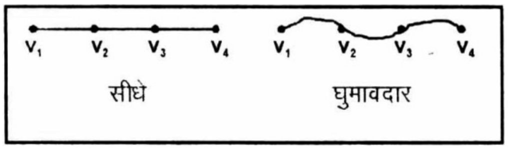

इसमें पथ संयोजन में एक मुख्य समस्या एक आदर्श मार्ग ज्ञात करने की होती है जो स्थानों की स्थिति महत्ता से सम्बन्धित तीन तथ्यों को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है -

(अ) न्यूनतम दूरी वाला मार्ग

(ब) धिकतम वहन वाला मार्ग

(स) न्यूनतम परिवहन लागत वाला मार्ग

12.2.10.2 शाखित संयोजकता (Tree Connectivity)

इस संयोजकता की निम्न विशेषताएँ हैं –

(अ) इसमें वृक्ष के समान संयोजन होता है। शाखाएँ फैली हुई होती हैं इसमें परिपथ (Circut) नहीं होता है।

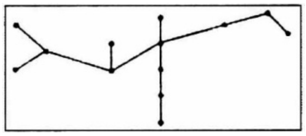

(ब) इसमें युग्मों के मध्य केवल एक ही संयोजन होता है।

(स) इसमें न्यूनतम संयोजकता होती हे।

$e=v-g$ (जब ग्राफ संयुक्त हो)

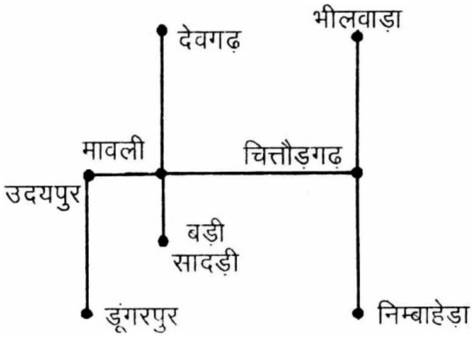

$V=8, g=1; e=V-g$ अथवा $e=8-1-7$

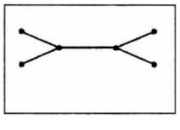

उदाहरण

सूत्रानुसार $e = V - g$ अथवा 6 – 1 = 5

यदि एक संयोजन हटा देते हैं तो यह ग्राफ दो भागों में विभाजित हो जाता है जैसा ऊपर बताया गया है इसमे एकाकी केन्द्र नहीं होते हैं।

यहां पर $V = 6, g = 2$ सूत्र का प्रयोग करने पर $e = V - g$ अथवा 6–2=4 यहाँ पर संयोजन की संख्या 4 है जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

12.2.10.3 प्रकोष्ठ/अवरोधक संयोजकता (Circuits Connectivity)

इसमें संयोजन में बाधा आने लगती है। संचरण में अवरोध उत्पन्न होते हैं जैसे–द्वीप, टापू से आगे नहीं जा सकते हैं अथवा प्रशासनिक सीमाएँ संचरण में बाधा उत्पन्न करती है। ये बन्द कमरे के समान सन्तुष्टि के क्षेत्र हो जाते हैं।

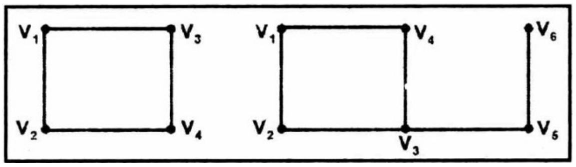

12.2.10.4 परिपथ संयोजकता (Circuits Connectivity)

यह एक ऐसा संयोजन होता है जिसमें आरम्भिक व अन्तिम केन्द्र संयोजन क्रम में एक ही रहता है अर्थात् इसमें केन्द्र युग्मों के मध्य वैकल्पिक संयोजन होते हैं।

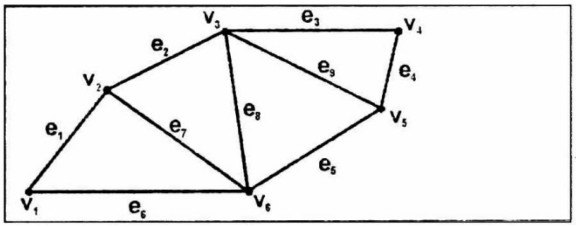

स्थान युग्मों के मध्य एक से अधिक संयोजन होते हैं।

अत: $e - v + g$ वैकल्पिक मार्गों की संख्या होती है।

वैकल्पिक मार्गों की संख्या

जो मार्ग न्यूनतम से अतिरिक्त है या न्यूनतम संयोजकता से अतिरिक्त होते हैं जाल में स्थित वास्तविक संयोजनों की संख्या में से न्यूनतम संयोजन की संख्या को घटा दिया जाता है।

(I) $v = 6 \quad e = 5$

$e - v + g$

या

$5 - 6 + 1 = 6 - 6 = 0$

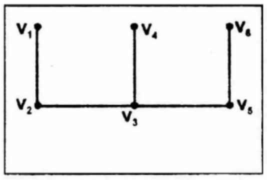

(II) $v = 6 \; e = 6$

$e - v + g$

या

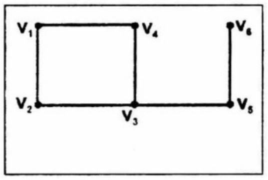

$$6-6+1=7-6=1$$

(III) $v=6\;\; e=7$

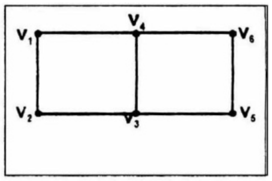

$e-v+g$

या

$$7-6+1=8-6=2$$

(IV) $v=6\;\; e=9$

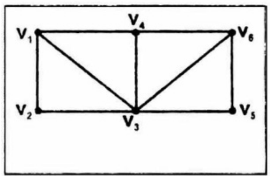

$e-v+g$

या

$$9-6+1=10-6=4$$

अधिकतम संयोजन (e maximum) : जिसमें दो से अधिक केन्द्र हो उसमें प्रत्येक एक अतिरिक्त केन्द्र के जुड़ने से उस जाल में संयोजन की संख्या 3 बढ़ जाती है।

चित्र	केन्द्र	संयोजन संख्या
	3	3
	4	6
	5	9
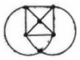	6	12
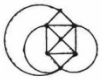	7	15

अधिकतम संयोजन =

$$e_{max} - e_{min} = 3(v-2) - (v-g)$$
$$= 3(v-2) - (v-1)$$
$$= 3v - 6 - v + 1$$
$$= 2v - 5$$

बोध प्रश्न – 1

1. प्रकृति के अनुसार जाल कितने प्रकार के होते है?

   ....

   ....

2. ग्राफ को भाववाचन बनाते समय ध्यान देने योग्य तीन बाते क्या हैं?

   ....

   ....

3. ग्राफ कितने प्रकार के होते है?

   (अ) 1 (ब) 2

   (स) 3 (द) 4 ( )

12.3 जाल विश्लेषण

जाल विश्लेषण के मुख्यत: दो पहलू होते हैं –

(i) समग्र जाल की संयोजकता का माप (Aggregate Measures)

(ii) जाल में स्थित केन्द्रों के व्यक्तिगत केन्द्रों की अभिगम्यता (Nodal Accessibility)

12.3.1 समग्र जाल की संयोजकता का माप (Aggregate Measures)

समग्र जाल की संयोजकता के लिए ज़ंदोल ने ग्राफ सिद्धान्त को आधार मानकर अनके सूचकांक प्रस्तुत किये हैं उन सूचकांकों में वास्तविक जाल को स्थिति विज्ञान (Topology) भाव वाचक ग्राफ में परिणित किया जाता है। इन सूचकांकों के लिए तीन आधारित तत्व, संयोजक संख्या, केन्द्र संख्या व उपग्राफ होते हैं। इन तीनों तत्वों के आधार पर दो परिमाप (सूचकांक) विकसित किये गए हैं : –

12.3.1.1 आनुपातिक सूचकांक (Ratio Measures)

इसके मुख्यत: तीन भाग होते हैं –

(I) (a) अल्फा सूचकांक Alpha Index a

(b) बीटा सूचकांक Beta Index (β)

(c) गामा सूचकांक Gama (γ)

ग्राफ के विभिन्न तत्वों के बीच सम्बन्ध दर्शाने वाले सूचकांक

(II) (d) इटा सूचकांक (η)

(e) पाई सूचकांक pi Index (π)

(III) (f) आयोटा सूचकांक Iota Index (ι)

(g) थिटा सूचकांक (θ)

12.3.1.2 गैर आनुपातिक सूचकांक (Non Ratio Measure)

(a) साइक्लोमेटिक नम्बर Cyclomatic No.

(b) सह संख्या Associate No.

(c) व्यास Diameter (d)

अल्फा सूचकांक (Alpha Index α)

$$\frac{\text{वास्तविक परिपथ (Acutual Circuit)}}{\text{अधिकतम सम्भावित पथ (Max possible circuit)}}$$

समतल ग्राफ के लिये

$$\frac{e}{2v-5} \text{ – अथवा – } \frac{e-v+g}{3(V-2)-(V-1)}$$

$$\text{अथवा – } \frac{e-v+g}{2v-5}$$

असमतल ग्राफ के लिये

$$\frac{e-v+g}{\frac{v(v-1)(v-1)}{2}}$$

यह वास्तविक परिपथ की संख्या एवं अधिकतम सम्भावित परिपथ का अनुपात है।
संयोजन केन्द्र से संयोजकता बनती है।

शाखित संयोजन : स्थानों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है और कोई परिपथ नहीं होता है अत: न्यूनतम संयोजकता होती जब संयुक्त ग्राफ होता है तो $v-g$ अथवा $v-1$(1 जब ग्राफ संयुक्त हो)

न्यूनतम संयोजकता में ज्यों ही अतिरिक्त संयोजन आता है परिपथ बन जाते हैं व संयोजकता बढ़ती है।

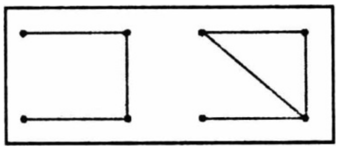

परिपथ : यह बहुभुजाकार आकृति है जो संयोजन अनुक्रम बनाती है जिससे प्रारम्भिक व अन्तिम बिन्दु वही होता है ।

परिपथ $e-e_{min}$

$$e-(v-1) \text{ or } e-v+g$$

जहाँ पर परिपथ बनता है वहाँ संयोजन की संख्या केन्द्र के बराबर या केन्द्र से ज्यादा होती है जैसे -

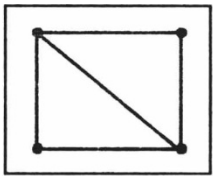

सूत्र = $^{e-e}$min or $e-v+g$,

v=4, e=5

$5-4+1=6-4=2$

अधिकतम सम्भव परिपथ = अधिकतम संयोजन – न्यूनतम संयोजन

Max possible circuit =^{e}max–^{e}min

=3(v–2) – (v–1)

= 3v–2–v+1

= 2v–5

उदाहरण –

(i)

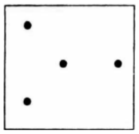

$v=4,\ e=0$

$$\frac{e-v+g}{2v-5}=\frac{0-4+1}{2x4-5}=-\frac{3}{3}=-1$$

(ii)

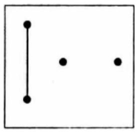

$v=4\ ,\ e=1$

$$\frac{e-v+g}{2v-5}\ \frac{0-4+1}{2x4-5}=\frac{-2}{3}=-0.66$$

(iii)

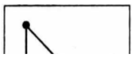

$v=4,\ e=2$

$$\frac{e-v+g}{2v-5}=\frac{2-4+1}{2x4-5}=\frac{-1}{3}=-0.33$$

(iv)

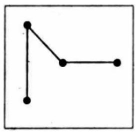

$v=4,\ e=3$

$$\frac{e-v+g}{2v-5}\ \frac{3-4+1}{2x4-5}=\frac{0}{3}=0$$

(v)

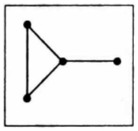

$v=4,\ e=4$

$$\frac{4-4+1}{2\times4-5}=\frac{1}{3}=3.3$$ अथवा 33%

(vi)

$v=4,\ e=6$

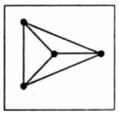

$$\frac{4-4+1}{2\times4-5}=\frac{3}{3}=1.0$$ अथवा 100%

दक्षिण राजस्थान में रेल परिवहन जाल में परिपथ न होने के कारण α सूचकांक का मान 0 आता है।

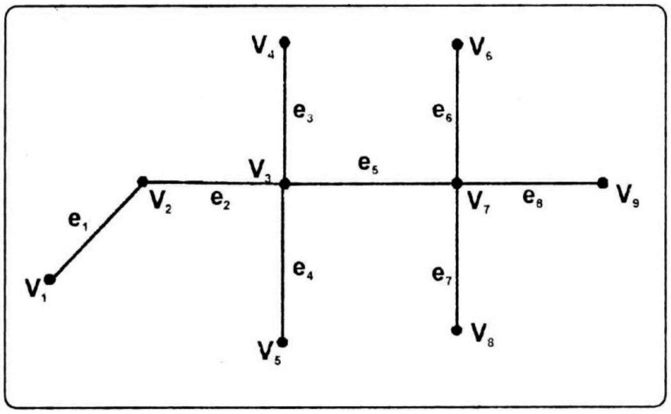

$v=9$

$e=8$

दक्षिणी राजस्थान के सड़क परिवहन जाल के लिये

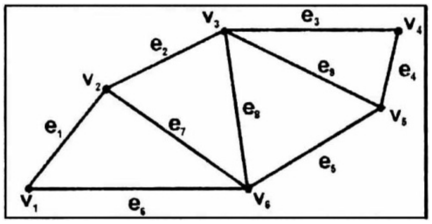

$v=6$ $$\frac{9-6+1}{2x6-5}=\frac{4}{7}=0.57$$ =57%

$e=9$

अल्फा सूचकांक की विशेषताएं

(i) अल्फ़ा सूचकांक भिन्न, दशमलव व प्रतिशत में प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) अधिकतम परिपथ

(iii) अल्फा सूचकांक व संयोजकता स्तर में सीधा सम्बन्ध बतलाया

(iv) अल्फा सूचकांक का जितना अधिक स्तर उतना ही संयोजकता का स्तर अधिक होगा तो आर्थिक विकास भी अधिक होगा।

बीटा सूचकांक

बीटा सूचकांक परिवहन जाल विश्लेषण में केन्द्र व संयोजन के मध्य सम्बन्धों के विश्लेषण का सबसे सरल माध्यम है। इसे निम्न प्रकार लिखा जाता है : –

$$\beta = \frac{e}{v}$$

जटिल परिवहन जाल में बीटा सूचकांक का मान अधिक होगा एवं सरल परिवहन जाल में बीटा का मान कम होगा। बीटा सूचकांक में शाखित व असंयोजित ग्राफ का मान 1 से कम होगा। 1 मान उस जाल को प्राप्त होगा जहां 1 परिपथ है। असमतल ग्राफ में बीटा का मान 0 से ∞ के मध्य होता है व समतल ग्राफ के लिये से 3 के मध्य होता है।

(i)
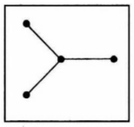

$v = 4$, $e = 3$

$$\frac{e}{v} = \frac{3}{4} = 0.75$$

(ii)
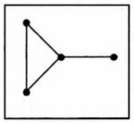

$v = 4$, $e = 4$

$$\frac{e}{v} = \frac{4}{4} = 1.0$$

(iii)
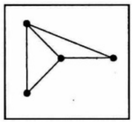

$v = 4$, $e = 5$

$$\frac{e}{v} = \frac{5}{4} = 1.25$$

(iv)
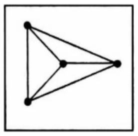

$v = 4$, $e = 6$

$$\frac{e}{v} = \frac{6}{4} = 1.50$$

बीटा सूचकांक की विभिन्न ग्राफ में प्रयुक्ति

(i)
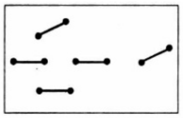

$e = 5$, $v = 2e = 10$

$$\beta = \frac{5}{10} = 0.50$$

(ii)
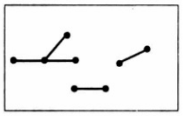

$e = 5$, $v = 8$

$$\beta = \frac{5}{8} = 0.62$$

(iii)
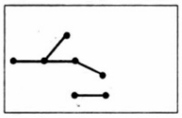

$e = 5$, $v = 7$

$$\beta = \frac{5}{7} = 0.71$$

(iv) $e = 5, \; v = 6$

$$\beta = \frac{5}{6} = 0.83$$

(v) $e = 5, \; v = 5$

$$\beta = \frac{5}{5} = 1.00$$

(vi) $e = 5, \; v = 4$

$$\beta = \frac{5}{4} = 1.25$$

बीटा सूचकांक का सैद्धान्तिक आधार

गामा सूचकांक : गामा सूचकांक जाल में स्थित वास्तविक संयोजन (edges) संख्या व उसी जाल में स्थित अधिकतम संयोजन (^{e}max) का अनुपात है।

e= actual No. of edges

^{e}max=$^{3(v-2)}$

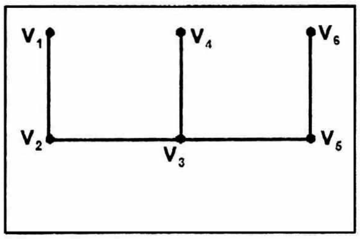

e– Branching connectivity=(v–g)

Circuit connectivity=e/v

$^{e/e}$max=$^{e/3(v-2)}$

v=6

e=5

^{e}max=3(v–2)

^{e}max=3(6–2)

^{e}max=3(4)

^{e}max=12

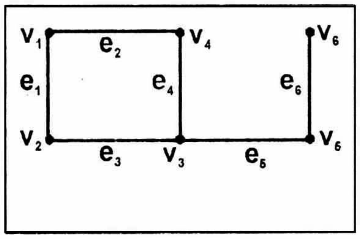

$^{e/e}$max=5/12 or 41%

$^{e/e}$max=6/3(6–2)

or 6/12

or 0.50 or 50%

दक्षिणी राजस्थान के रेल परिवहन जाल के लिये

$^{e/e}$max or e/3(v–2)

=8/3(9–2)

or 8/3(7)

or 8/21

or 0.38

or 38%

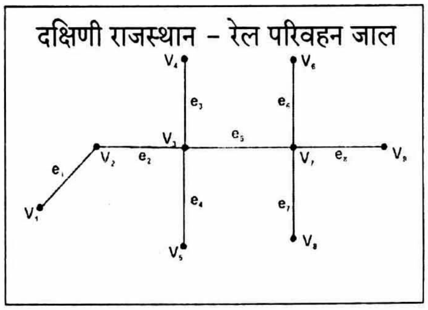

दक्षिणी राजस्थान के सड़क परिवहन जाल के लिये

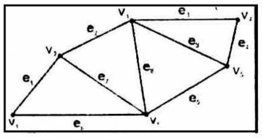

$^{e/e}$max or e/3(v–2)

9/3(6–2)

or 9/3(6–2)

or 9/3(6–2)

or 9/3(4)

or 9/12 or 0.75 or 75%

समतल ग्राफ के लिये

(i)

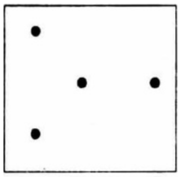

$v = 4, \quad e = 0$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= e/3(v-2)$

$= 0/3(4-2)$

$= 0/3(2) = 0/6 = 0$

(ii)

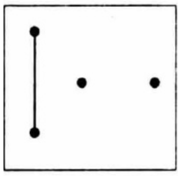

$v = 4, e = 1$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= 1/3(4-2)$

$= 1/3(2) = 1/6 = 0.16$ or 16%

(iii)

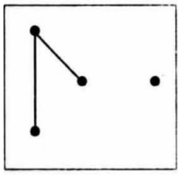

$v = 4, e = 2$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= 2/3(4-2)$

$= 2/3(2) = 2/6 = 0.34$ or 34%

(iv)

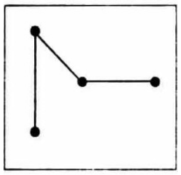

$v = 4, \quad e = 3$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= 3/3(4-2)$

$= 3/3(2) = 3/6 = 0.50$ or 50%

(v)

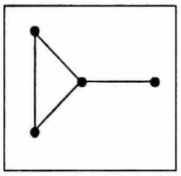

$v = 4, e = 4$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= 4/3(4-2)$

$= 4/3(2) = 4/6 = 0.66$ or 66%

(vi)

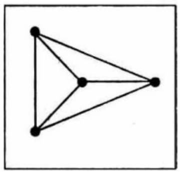

$v = 4, e = 6$

$e/e_{max} = e/3(v-2)$

$= 6/3(4-2)$

$= 6/3(2) = 6/6 = 1.0$ or 100%

दक्षिण राजस्थान मे रेल परिवहन जाल

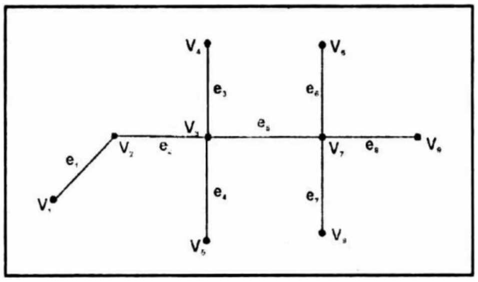

$v = 9 \ e / e_{max} = e / 3(v-2)$

$e = 8 = 8/3(9-2) = 8/21 = 0.38$ or 38%

यदि दक्षिणी राजस्थान में विभिन्न केन्द्रों के मध्य संयोजन स्थापित होता है तो यहां की संयोजकता 62 प्रतिशत और बढ़ सकती है ।

असमतल ग्राफ के लिये

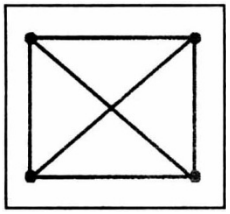

सूत्र $e / v(v-1)/2$

$v = 9 \ e = 6$

$6/4(4-1)/2$

$= 6/4(2) = 6/12/2 = 6/6$

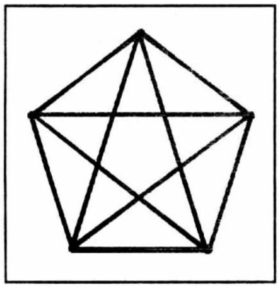

Or 1.00 or 100%

$v = 5 \ e = 10$

$10/5(5-1)/2$

$= 10/20/2 = 10/10$

1.00 Or 100%

गामा सूचकांक की विशेषताएं

(i) गामा सूचकांक को भिन्न, दशमलव (दाशमिक) प्रतिशत में दर्शाते हैं।

(ii) गामा सूचकांक का मान 0 से 100 के बीच होता है।

(iii) गामा सूचकांक का मान बढ़ता है व संयोजकता का स्तर भी बढ़ जाता है।

(iv) गामा सूचकांक व संयोजकता स्तर में सीधा सम्बन्ध बतलाता है।

(v) गामा सूचकांक से आर्थिक विकास का स्तर ज्ञात हो जाता है।

निम्न उदाहरण में साइक्लोमेटिक संख्या, अल्फा, बीटा व गामा की सूचांक गणना स्पष्ट है ।

1	2	3	4	5	6	7

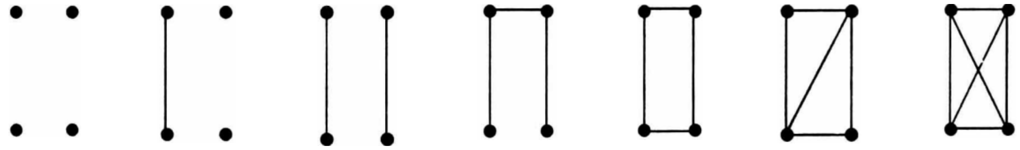

V=4	V=4	V=4	V=4	V=4	V=4	V=4
e=0	e=1	e=2	e=3	e=4	e=5	e=6

g=4	g=3	g=2	g=1	g=1	g=1	g=1
साइक्लोमोटिक संख्या (dv)						
$dv=1-v+g$ $=0-4+4=0$	$1-4+3=0$	$2-4+2$ $=0$	$3-4+1$ $=0$	$4-4+1$ $=1$	$5-4+1$ $=2$	$6-4+1$ $=3$
Alpha Index (α)						
=0	0	0	0	0.33	0.67	1
Beta Index						
=0	0.25	0.50	0.75	1.00	1.25	1.50
Gama Index (γ)						
=0	0.15	0.33	0.50	0.67	0.83	1.00

इटा सूचकांक (eta Index) (η) : इटा सूचकांक सम्पूर्ण जाल व इसके एकाकी तत्व संयोजन के मध्य सम्बंधों का परिचायक है। ग्राफ सिद्धान्त में इटा सूचकांक समस्त संयोजनों व केन्द्रों का योग व जाल में विद्यमान संयोजनों का अनुपात है।

$$\left(\frac{\sum e+\sum v}{e}\right)$$

अत : इटा सूचकांक परिवहन जाल की कुल लम्बाई व विद्यमान संयोजनों का अनुपात है अथवा

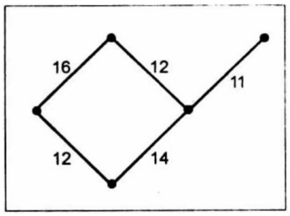

η= औसत संयोजन लम्बाई $=\frac{M}{e}$

$$\frac{12+16+12+14+11}{5}=\frac{65}{5}=13$$

औसत संयोजन लम्बाई = 13 किमी.

इटा सूचकांक को औसत संयोजन का मापक माना जाता है परन्तु जब अधिक केन्द्र सम्मिलित किये जाते हैं तो इटा का मान कम हो जाता है।

उदाहरण

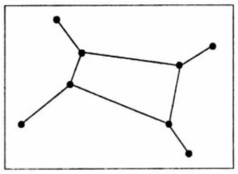

$e=8$, $v=8$,
$m=100 miles$,
$\eta=12.5 miles$

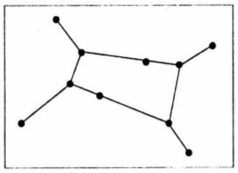

$e=10$, $v=10$,
$m=100 miles$
$\eta=10.0 miles$

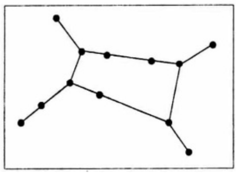

$e=12$, $v=12$,

$m = 100 miles$

$\eta = 8.33 miles$

पाई सूचकांक (Pi Index) (π) : पाई सूचकांक सम्पूर्ण परिवहन जाल व विशिष्ट संयोजनों का अनुपात है। इसे पाई सूचकांक π के मान 3.14159 के कारण भी कहते है। पाई गोले की परिधि व व्यास के मध्य का अनुपात है $c = \pi d$ अथवा $\pi = c/d$ । इस सिद्धान्त को परिवहन जाल में प्रयोग इसलिये किया जाता है कि जब सम्पूर्ण परिवहन जाल व इसके व्यास का सम्बन्ध ज्ञात करना होता है। यदि हम माने की परिवहन जाल की कुल लम्बाई वृत्त की परिधि के समान है व जाल के संयोजनों की लम्बाई (दूरी) वृत के व्यास के समान है, तो जाल की लम्बाई व जाल के व्यास की लम्बाई π के अनुपात में होगी।

$$\pi = \frac{c}{d}$$

जब इस सूत्र का प्रयोग परिवहन जाल विश्लेषण में करते हैं तो मान 1 या 1 से अधिक आता है तो परिवहन जाल सामान्य है। यह समतल या असमतल ग्राफ हो सकता है।

(अ)

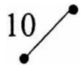

C = 10

d = 10

(ब)

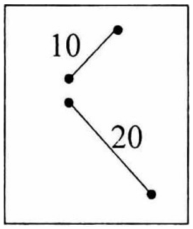

$$\pi_1 = \frac{10}{10} = 1.0$$

$$\pi_2 = \frac{20}{20} = 1.0$$

$$\pi = \frac{\pi_1 + \pi_2}{No.\ of\ Sub\ graph} = \frac{1.0 + 1.0}{2} = 1.0$$

आयोटा सूचकांक (Iota Index - (ι)

समग्र परिवहन जाल व भारित केन्द्रों का माप है। इस सूचकांक से परिवहन जाल के तीन तत्व – संरचना, लम्बाई व कार्य का मापन होता है।

$$\iota = \frac{M}{w}$$

M = कुल दूरी (Total Milegae)

w = भारित केन्द्र (भार कार्य पर आधारित) (Weighted node)

अन्य माप में $\iota = \frac{M}{T}$

यहाँ T = कुल परिवहन मात्रा है।

आयोटा सूचकांक किसी परिवहन जाल की सघनता का मापक है। सामान्यत: परिवहन अध्ययन में "औसत दूरी प्रति टन" का उपयोग किया जाता है व इसे T/M से भी व्यक्त करते हैं। जहाँ औसत भार प्रति इकाई स्त्री ले जाने संदर्भ में इसका उपयोग होता है।

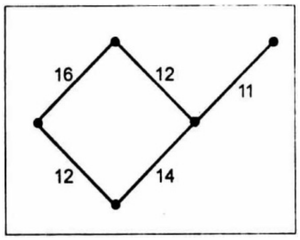

थिटा सूचकांक (Theta Index (θ) : थिटा सूचकांक सम्पूर्ण परिवहन जाल व केन्द्रों का अनुपात है :

$$\theta = \frac{T}{V}$$

जहाँ T = वस्तु की कुल परिवहन मात्रा'

V = केन्द्रों की संख्या'

$$\frac{60+32+12+46+50}{5} = \frac{200}{5} = 40.0$$

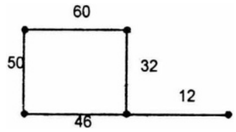

यहाँ वस्तु परिवहन की मात्रा टन में होने से प्रति संयोजन वस्तु की परिवहित मात्रा टन में होती है। थिटा सूचकांक को परिवहन जाल की स्त्री के सन्दर्भ में भी व्यक्त कर सकते हैं : –

अतः $\theta = \frac{M}{V}$

थिटा सूचकांक से परिवहन जाल की लम्बाई, संरचना, संयोजकता के सम्बंध में ज्ञान होता है । यदि हम θ व η सूचकांक की तुलना करें तो θ सूचकांक श्रेष्ठ है।

(अ)

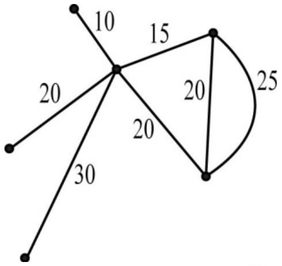

M = 140 किमी.

e = 7

η = 140/7 = 20 किमी.

θ = 140/6 = 23.33 किमी.

(ब)

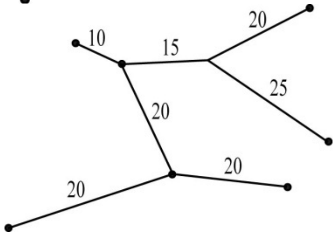

M = 140 किमी.

e = 7

η = 140/7 = 20 किमी.

θ = 140/8 = 17.50 किमी.

साइक्लोमेटिक संख्या (Cyclomatic number) : साइक्लोमेटिक नम्बर या बेटटी नम्बर ग्राफ सिद्वान्त का प्राथमिक सूचकांक है जिसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$\mu = e - v + p$

जहाँ e = संयोजन संख्या

v = केन्द्र संख्या

p = असमतल ग्राफ संख्या

साइक्लोमेटिक सूचकांक परिवहन जाल संरचना व क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का परिचायक है ।

$\mu = e - v + p$

=6–6+1=1

सह–संख्या (Associate number) एवं व्यास (Diameter) का वर्णन पिछले पृष्ठों में कर दिया गया है।

बोध प्रश्न - 2

1. आनुपातिक सूचकांकों के नाम बताइये।

   ....

   ....

2. ग्राफ के विभिन्न तत्वों के मध्य सम्बन्ध बताने वाले सूचकांक कौन से है ?

   ....

   ....

3. गैर आनुपातिक सूचकांकों के नाम बताइए।

   ....

   ....

12.4 संगम स्थल अभिगम्यता का माप (Measures of Nodal Accessibility)

भूतल पर विभिन्न स्थानों के बीच माल, मनुष्यों और विचारों का संचरण होता है। यह संचरण परिवहन मार्गों के सहारे विभिन्न केन्द्रों के मध्य होता है। इन संयोजनों और केन्द्रों की संरचना (सम्बन्धों) से जाल विकसित होता है। किसी भी प्रदेश के स्थानिक संगठन के प्रमाण हेतु परिवहन संरचना के अध्ययन में उसके समग्र जाल की विशेषताओं के साथ–साथ परिवहन जाल में केन्द्र संयोजन सम्बन्धों (अभिगम्यता) की भी स्थानिक संरचना महत्वपूर्ण होती है। केन्द्रीय अभिगम्यता (Nodal Accessibility) दो

शब्दों से बना है –

(i) केन्द्र (Nodal)

(ii) अभिगम्यता (Accessibility)

(i) **केन्द्र :** किसी परिवहन जाल में केन्द्र संचरण की उत्पति और निर्दिष्ट स्थल होते हैं जैसे जयपुर संचरण की उत्पत्ति का केन्द्र है और आगरा निर्दिष्ट (लक्ष्य) स्थल है।

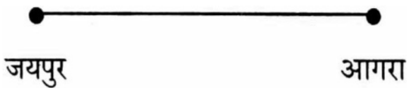

(ii) **अभिगम्यता :** किसी स्थान पर पहुंचने की सुगमता अभिगम्यता है अर्थात संयोजन व केन्द्र का सम्बन्ध अभिगम्यता है।

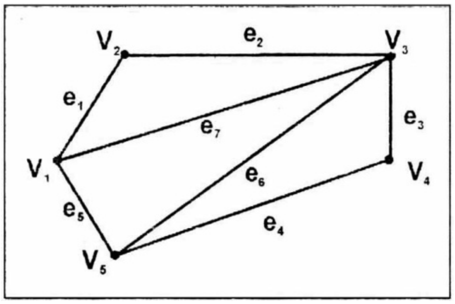

उपरोक्त चित्र में केन्द्र – V_1, V_2, V_3, V_4, V_5 की अभिगम्यता संयोजन (e) रेखाओं द्वारा दिखायी गई है जिनके अनुसार V_3 पर सर्वाधिक अभिगम्यता है।

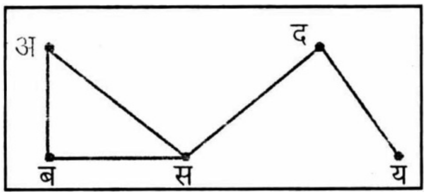

अभिगम्यतादो अर्थों में देखी जाती है –

(I) **सरंचनात्मकागुणात्मक :** यह संयोजन अवयव से सम्बन्धित होती है अर्थात् केन्द्र का संयोजन अन्य केन्द्रों से किस प्रकार है।

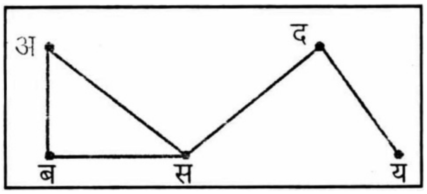

उपरोक्त चित्र में केन्द्र स की अभिगम्यता सर्वाधिक है।

(ii) **मात्रात्मक :** इसके अन्तर्गत कितने यात्री, कितना माल, कितने वाहन तथा इनका वहन देखा जाता है। जहां इसका आवागमन अधिक होता है वहाँ मात्रात्मक संयोजन अधिक होगा।

12.4.1 अभिगम्यता को प्रभावित करने वाले घटक

अभिगम्यता अनेक कारणों से प्रभावित होती है व निम्न घटकों से निश्चित होती है –

(1) भौतिक घटक : इसमें निम्न कारक हैं –

(i) धरातल: धरातल परिवहन के विभिन्न साधनों की अभिगम्यता को निश्चित करते हैं। यदि एक स्थान रेल मार्ग से अभिगम्य नहीं हो सकता है इसका स्थान सड़क मार्ग या वायु परिवहन से गम्य हो सकता है। उदाहरण स्वरूप – तिब्बत की राजधानी ल्हासा वायु परिवहन से अधिक गम्य है जबकि रेल व सड़क यातायात से कम गम्य है। पहाड़ी भागों की तुलना में मैदानी क्षेत्रों की अभिगम्यता अधिक होती है। विश्व के मैदानी क्षेत्रों में परिवहन जाल का घनत्व सर्वाधिक है।

(ii) जलवायु : कोहरे, तूफान या बर्फ गिरने वाले क्षेत्रों में स्थिति केन्द्रों की गम्यता (पहुंच) कम होती है।

(iii) **वनस्पति** :प्राकृतिक वनस्पति से भी केन्द्रों की गम्यता प्रभावित होती है क्योंकि घने वनों वाले क्षेत्रों में परिवहन के विभिन्न साधनों का अधिक विकास नहीं हो पाता है अत: ये कम गम्य होते हैं।

(2) **परिवहन साधन :** परिवहन का माध्यम कौनसा है। रेल, सड़क (मोटर, ट्रक) वायुयान, जहाज आदि। इनमें सड़क मार्ग सर्वाधिक गम्य है जबकि वायु, रेल, जहाज की गम्यता कम है।

(3) **लागत, समय व दूरी :** जिस वस्तु की लागत कम होगी उसकी अभिगम्यता अधिक गत वाली वस्तु की तुलना में कम होगी जैसे – लोह अयस्क व सोना में लोहा अयस्क का परिवहन कम दूरी तक किया जाता है जबकि सोना अधिक दूरी तक परिवहन.किया जाता है। सड़ने, गलने व नष्ट होने वाली वस्तुओं तथा बड़े आकार वाली व टूटने वाली वस्तुओं की अभिगम्यता कम होती है – सब्जी, दूध, मास इत्यादि को समय पर शीघ्र पहुंचाना होता है अत: इनकी अभिगम्यता कम होती है। दूरी भी अभिगम्यता को प्रभावित करती है जैसे दिल्ली – जयपुर में अभिगम्यता दिल्ली –उदयपुर की तुलना में अधिक है। नजदीक के क्षेत्रों व केन्द्रों के मध्य अभिगम्यता अधिक होती है व दूरी के बढ़ने पर यह कम होती जाती है।

(4) **जनसंख्या :** जनसंख्या से तात्पर्य केन्द्र के आकार से है जो केन्द्र जितना बड़ा आकार (जनसंख्या) का होता उसकी अभिगम्यता भी उतनी ही अधिक होगी क्योंकि वहाँ की मांग भी अधिक होगी एवं क्रियाकलाप भी अधिक विस्तृत होगें जैसे – दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, न्यूयार्क, टोकियो आदि।

(5) **परिवहन की आवृत्ति :** किसी स्थान पर पहुंचने के जो साधन हैं उनकी आवृत्ति क्या है उस पर भी अभिगम्यता निर्भर करती है जैसे – एक गाव में दिन में एक ही बस जाती है जबकि ऐसे ही दूसरे गाव के सड़क की सुविधा होने से दिन में अनेक बसें जाती हैं तो पहले गाव कीं अभिगम्यता कम व दूसरे गाव की अभिगम्यता अधिक होती है।

(6) **प्रशासकीय घटक (प्रबंधकीय घटक) :** राजनीति व जननीतियों की इच्छाशक्ति से भी अभिगम्यता प्रभावित होती है जैसे कोई नेता अपने सामर्थ्य व इच्छाशक्ति से अपना नगर छोटा होने पर भी रेल लाइन द्वारा जुड़वा देता है या उद्योगों की स्थापना करवा देता है तो इससे वहाँ की अभिगम्यता अधिक हो जाती है जबकि कोई बड़ा नगर राजनीतिक प्रभाव के अभाव में उपेक्षित रहने से वहाँ की अभिगम्यता कम हो सकती है। जैसे राजस्थान में तत्कालिन रियासतों के प्रमुख केन्द्र बूंदी, टोंक, शाहपुरा, बनेड़ा, प्रतापगढ़, रेल मार्ग के अभाव में विकास की दौड़ में अन्य केन्द्रों से पिछड़ गये व आजादी के समय कम महत्व के क्षेत्र अभिगम्यता अधिक होने से विकास में अग्रणी हो गये जैसे भीलवाड़ा व चितौड़गढ़। इसी प्रकार विभिन्न राजनीतिक दल एवं नेताओं ने अपने वर्चस्व के आधार पर विभिन्न स्थानों पर उद्योग विशेष की स्थापना कराने से उन केन्द्रों का विशिष्ट महत्व हो गया और वे अधिक गम्य हो गये जैसे – चितौड़गढ़ में सुपर स्मेल्टर स्थापित होने से।

12.4.2 संगम स्थल– अभिगम्यता के माप (Measurement of Nodal Accessibility)

परिवहन जाल में किसी स्थान की अभिगम्यता परोक्ष रूप से जाल में उसकी सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करती है यदि किसी व्यक्तिगत केन्द्र की स्थिति ऐसी है कि वहाँ पर पर्याप्त मात्रा में मार्ग आकार मिल जाते हैं तो उनकी अभिगम्यता अधिक होगी। संयोजन में सुधार होने के साथ ही केन्द्र की अभिगम्यता में सुधार हो जाता है। संगम अभिगम्यता को मापने के लिए अनेक विधियाँ प्रचलित हैं-

(1) आव्यूह (Matrix)

(2) व्यास (Diameter)

(3) विपथ (Detour Index)

(4) सहसंख्या (Associate Number)

(1) परिवहन जाल में आव्यूह विधि (The Network as a Matrix) :

आव्यूह विधि ग्राफ सिद्धान्त की देन है जिसमें किसी परिवहन जाल को ग्राफ में परिणित जाता है तथा उस ग्राफ में स्व केन्द्र का अन्य केन्द्रों से संयोजन देखा जाता है। आव्यूह एक सांचा होता है जो V x V से बनता है। इसमें क्षैतिज रेखाएं (पंक्तियाँ) तथा उदग्र रेखाएँ (स्तम्भ/Collumns) होते हैं। पंक्तियों और स्तम्भों की संख्या उनमें विद्यमान केन्द्रों की संख्या के आधार पर होती है।

परम्परानुसार क्षैतिज पंक्तियों के सहारे संचरण, उत्पति केन्द्रों को, उदग्र स्तम्भों के सहारे संचरण के निर्दिष्ट केन्द्रों को प्रदर्शित करते हैं और इन पंक्तियों एवं स्तम्भों के प्रतिच्छेदन से प्रकोष्ठ (Cells) बनते हैं जिनकी संख्या V x V के बराबर होती है इन प्रकोष्ठों के केन्द्रों के मध्य संयोजन के मान को अंकित किया जाता है।

आव्यूह के प्रत्येक प्रकोष्ठ में केन्द्र युग्मों के सम्बन्धों का किसी भी प्रकार की सूचना का अभिलेख हो सकता है, सूचना में संयोजन है या नहीं तथा दूरी लागत, यात्रियों की संख्या, माल की मात्रा आदि की संख्या को इन प्रकोष्ठ में लिखा जाता है किन्तु सबसे सामान्य तौर पर संयोजन आव्यूह (Connectivity Matrix) बनती है जिन केन्द्रों के मध्य प्रत्यक्ष संयोजन होता है Cy से अभिव्यक्त करते हैं जो i^{th} व j^{th} के मध्य प्रत्यक्ष संयोजन दर्शाते हैं।

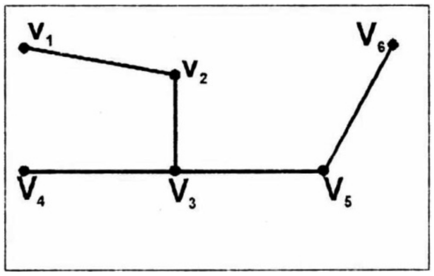

जिन स्थानों के मध्य प्रत्यक्ष संयोजन है तो वहां Cy का मान 1 लिखेंगे जैसे V_1 - V_2 = 1 जिन स्थानों के मध्य अप्रत्यक्ष संयोजन है तो वहाँ का मान शून्य (0) होगा जैसे V_1 – v_3 = 0 इसी प्रकार केन्द्र का उसी केन्द्र से संयोजन भी शून्य (0) लिखेंगे क्योंकि एक ही केन्द्र का उसी केन्द्र से संयोजन अर्थहीन होता है जैसे V_1 – V_1 = 0

तालिका : 12.2

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	0	0	0	0
V_2	1	0	1	0	0	0
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	0	0
V_5	0	0	1	0	0	1
V_6	0	0	0	0	1	0

दक्षिण राजस्थान का सड़क परिवहन जाल

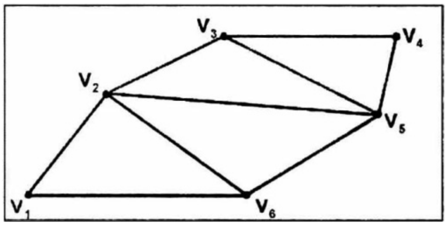

विभिन्न केन्द्रों के मध्य संयोजन को संयोजकता के आव्यूह में प्रदर्शित करने पर विभिन्न केन्द्रों की अभिगम्यता व अभिगम्यता स्तर का ज्ञान भी हो जाता है।

तालिका : 12.3

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	0	0	0	0
V_2	1	0	1	0	0	0
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	0	0
V_5	0	0	1	0	0	1
V_6	0	0	0	0	1	0

तालिका : 12.4

केंद्र	**मान**	**स्तर**
$V^{2,}$ $V^{5,}$	4	I
$V^{3,}$ $V^{6,}$	3	II
$V^{1,}$ $_{V}{}^{2,}$	2	III

इस आव्यूह को संयोजन आव्यूह कहते हैं। मान देखने पर ज्ञात होता है कि अभिगम्यता स्तर और अभिगम्यता सूचकांक में सीधा सम्बन्ध पाया जाता है।

सम्बद्धता या संयोजकता (Connectivity) : मार्ग जाल में बिन्दुओं के मध्य सम्पर्क की पूर्णता को मार्ग जाल की सम्बन्धता कहते हैं। किसी मार्ग जाल में भुजाओं की संख्या अधिक होती है

उसका सम्बन्धता स्तर भी उतना ही अधिक होता है। उच्च सम्बन्धता उच्च मार्ग जाल विकास स्तर का प्रतीक होता है।

संयोजकता के प्रकार (Types of Connectivity) : संयोजकता दो प्रकार की होती है –

(A) प्रत्यक्ष संयोजकता (Direct Connectivity): जब Cij = 1 हो तो केन्द्र युग्मों में प्रत्यक्ष संयोजन होता है जैसे दक्षिणी राजस्थान सड़क परिवहन जाल आव्यूह में $V_1 – V_2 = 1$

(B) अप्रत्यक्ष संयोजकता (Indirect Connectivity):

(i) जब केन्द्र युग्मों में अन्य केन्द्रों के माध्यम से संयोजन नहीं होता है तो Cij= 0 होता है वहाँ अप्रत्यक्ष संयोजकता है जैसे दक्षिणी राजस्थान सड़क परिवहन जाल में $V_1 - V_2 = 0$

(ii) केन्द्र विशेष का उसी केन्द्र से संयोजन कर्ण प्रविष्टियाँ हैं– इसमें भी Cij = 0 होता है तो अप्रत्यक्ष संयोजकता है जैसे $–V_1 - V_2 = 0$

Cij इसमें

C = संयोजकता

i = उत्पत्ति केन्द्र

j = निर्दिष्ट केन्द्र

संयोजकता आव्यूह : इसे संयोगी आव्यूह या सम्मित आव्यूह (Symmetrical Matrix) या द्विदिशा आव्यूह (Binary Matrix) भी कहते हैं। इस आव्यूह के प्रकोष्ठों में जाल के सम्बन्ध में न्यूनतम ज्ञात सूचनाओं का उल्लेख होता है। यह आलेख एक इकाई मानकर किया जाता है हर पंक्ति व स्तम्भ में वही सूचना होती है –

(a) एक केन्द्र की प्रत्येक केन्द्र से अभिगम्यता का स्तर प्रकोष्ठ प्रविष्टियों होती है।

(b) एक केन्द्र की समस्त केन्द्रो से संयोजकता पंक्ति का योग है।

तालिका : 12.5

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	0	0	0	1
V_2	1	0	1	0	1	1
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	1	0
V_5	0	1	1	1	0	1
V_6	1	1	0	0	1	0

तालिका : 12.6

केन्द्र	मान	स्तर
$V^{2,}$ $V^{5,}$	4	I
$V^{3,}$ V^{6}	3	II
$V^{1,}V^{4}$	2	III

तालिका के आधार पर यह कह सकते हैं कि V_2 व V_5 में सम्बद्धता अधिक है जबकि V_1 व V_4 में यह सबसे कम है।

घात आव्यूह या बहुपथ संयोजन (Power Matrix Multi step Matrix)

प्रत्येक जाल में स्थित समस्त केन्द्रों में प्रत्यक्ष संयोजन नहीं होता है अर्थात् वे जाल के अन्य केन्द्रों से मध्यवर्ती मार्गों के माध्यम से संयोजित होते हैं यह अप्रत्यक्ष संयोजन दो चार पथ या अभेद्य पद वाला हो सकता है अर्थात् अप्रत्यक्ष संयोजन में एक पथ न होकर बहुपथ संयोजन होता है। यह बहुपथ संयोजन आव्यूह संयोजन गुणन से प्राप्त होता हैं।

$Cij = C^2$

$Cij = C_{ik} \times C_{ik}$ इसमें k = अप्रत्यक्ष संयोजन

घात आव्यूह को दक्षिणी राजस्थान के सड़क जाल से निम्न प्रकार समझ सकते हैं।

तालिका : 12.7

C

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	0	0	0	1
V_2	1	0	1	0	1	1
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	1	0
V_5	0	1	1	1	0	1
V_6	1	1	0	0	1	0

C

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0			0	0	1
V_2	1	0	1	0	1	1
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	1	0
V_5	0	0	1	1	0	1
V_6	1	1	0	0	1	0

तालिका : 12.8 : $C \times C = C^2$

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6	
V_1	2	1	1	0	2	1	=07
V_2	1	4	1	2	2	2	=12
V_3	1	1	3	1	2	2	=10
V_4	0	2	1	2	1	1	=07
V_5	2	2	2	1	4	1	=12
V_6	1	2	2	1	1	3	=10

तालिका : 12.9

केन्द्र	मान	स्तर
V_2, V_5	4	I
V_3, V_6	3	II
V_3, V_4	2	III

C^2 का मान इस प्रकार निकाला जाता है।

C^2 आव्यूह में जिस प्रकोष्ठ में पहली बार $C_{ij} = 1$ आया वह उन स्थान युग्मों के मध्य दो पथ (पद) का संयोजन बनाता है।

आव्यूह गुणन उस घात तक किया जाता है जब तक जाल में स्थित समस्त केन्द्रों के मध्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष संयोजन नहीं हो जाता है अर्थात् जब कर्ण को छोडकर प्रत्येक प्रकोष्ठ में 1 हो या 0 अधिक संख्या आये।

यह घात की संख्या के व्यास द्वारा निर्धारित होती है अत: जाल के व्यास द्वारा निर्धारित होती है अत: जाल के व्यास तक गुणा करेंगे यह आव्यूह सी C^n गुणा तक किया जायेगा।

तालिका:12.10 C

C

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	0	0	0	1
V_2	1	0	1	0	1	1
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	1	0
V_5	0	1	1	1	0	1
V_6	1	1	0	0	1	0

C^3

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	2	1	1	0	2	1
V_2	1	4	1	2	2	2
V_3	1	1	3	1	2	2
V_4	0	2	1	2	1	1
V_5	2	2	2	1	4	1
V_6	1	2	2	1	1	3

तालिका :12.11: $C \times C^2 = C^3$

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6	
V_1	2	6	3	3	3	5	= 22
V_2	6	6	8	3	9	5	= 39
V_3	3	8	4	5	7	4	= 31
V_4	3	3	5	2	6	3	= 22
V_5	3	3	7	6	6	8	= 39
V_6	5	7	4	3	8	4	= 31

तालिका : 12.12

केन्द्र	मान	स्तर
$V_{2,}V_5$	39	I
$V_{3,}V_6$	31	II
$V_{1,}V_2$	22	III

C^3 का मान इस प्रकार निकालेंगे।

निष्कर्ष

C^3आव्यूह में जिस प्रकोष्ठ में पहली बार Cij = 1 आया है वह उन स्थान युग्मों के मध्य तीन पथ का संयोजन बनता है।

कुल आव्यूह (Matrix T)

आव्यूह मे स्थानों के मध्य प्रत्यक्ष संयोजन होता हे तथा आव्यूह गुणन से स्थान युग्मों के मध्य अप्रत्यक्ष संयोजन ज्ञात हो जाता हे इन समस्त आव्यूहों के तत्ववार जोड़ने से कुल आव्यूह प्राप्त होती है

Matrix $T = C^n$

Matrix $T = C^1 + C^3 + \ldots\ldots C^n$

तालिका : – 12.13

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6	
V_1	4	4	4	3	5	7	= 31
V_2	8	10	10	5	12	10	= 55
V_3	4	10	7	7	10	6	= 44
V_4	3	5	7	4	8	4	= 31
V_5	5	12	10	8	10	10	= 55
V_6	7	10	6	4	10	7	= 44

तालिका : 12.14

केन्द्र	मान	स्तर
V_2, V_5	55	I
V_3, V_6	44	II
V_1, V_2	31	III

कूल आव्यूह (M.T) से अभिगम्यता के सन्दर्भ में दो सूचनाएँ प्राप्त होती है

(i) केन्द्र का जाल में स्थित प्रत्येक केन्द्र से गम्यता ज्ञात करना (प्रकोष्ठ प्रविष्टियों से)

(ii) एक केन्द्र की उस जाल के समस्त केन्द्रो से कुछ अभिगम्यता ज्ञात होती है। (पंक्तियों के योग से)

कुल आव्यूह के निर्धारण में संयोजन आव्यूह का गुणन जाल के व्यास की संख्या पर रोक दिया जाता है किन्तु n केन्द्र युक्त एक जाल में एक स्थान से अधिक बार गुजरे बिना न्यूनतम संयोजन (v - 1) से अधिक संयोजन नहीं हो सकता है। इसी कारण संयोजन मानों में अतिरिक्तता आ जाती है जो स्पष्ट इस बात को इंगित करता है कि उन स्थान युग्मों के मध्य इससे छोटा मार्ग उपलब्ध है।

अत: किसी भी मार्ग में जिसकी लम्बाई V - 1 से अधिक है यह अतिरिक्त होगा क्योंकि इनके मध्य छोटा मार्ग उपलब्ध है। जाल के व्यास तक आव्यूह गुणन करने से अतिरिक्ताओं का निवारण नहीं होता है। संयोजकता, आव्यूह को छोडकर सभी आव्यूह में आलेखित केन्द्रों के मध्य अतिरिक्त संयोजन रहते हैं।

इस प्रकार अभिगम्यता निर्धारण में जहां केन्द्रों का सामूहीकरण हो जाता है तो वहाँ अभिगम्यता निर्धारण की यह विधि सफल नहीं रह पाती है क्योंकि केन्द्रों में सामूहीकरण के कारण उनमें अतिरिक्तता बढ़ जाती है। इस अतिरिक्तता को दूर करने के लिए Kartz एव Garrison w.L.

ने अनुमाप का प्रयोग (Use of Scalar) किया। Scalar का मान 0 – 1 के बीच होता है जो प्रत्यक्ष संयोजन को अधिक प्रभावशाली बताता है, तथा बढ़ते हुए अप्रत्यक्ष संयोजन को कम प्रभावशाली अर्थात् बढ़ती हुई दूरी के साथ घटता हुआ संयोजकता प्रभाव बताता है।

Garrison ने Scalar का मान 0.3 माना।

$=SC + S^2 C + S^5 C^3$

=0.3 1 +0.3 + 0.3 0.3

=0.3 +0.09+0.027

Scalar प्रयोग के बाद जो आव्यूह बनेगा उसके सम्बंध में दो तथ्य स्पष्ट होते हैं –

(i) केन्द्र से जाल के अन्य केन्द्रों से अभिगम्यता मालूम होती है।

(ii) पंक्ति के समस्त प्रकोष्ठों के योग से एक केन्द्र का जाल में स्थिति सारे केन्द्रों से अभिगम्यता का स्तर ज्ञात होता है इसमें स्पष्टरूप से देखने को मिलता है कि बढ़ते हुए संयोजन के आधार पर अभिगम्यता का स्तर घटता है अर्थात् अभिगम्यता संयोजन संख्या के बीच विलोम सम्बन्ध है।

Scalar के प्रयोग के बाद केन्द्रों की अभिगम्यता का श्रेणी क्रम निर्धारित किया जाता है यद्‌यपि इस श्रेणीक्रम में अभिगम्यता के श्रेणीक्रम में अन्तर नहीं आता परन्तु बढ़ते हुए संयोजन के साथ अतिरिक्ताएं कम हो जाती हैं किन्तु खत्म नहीं होती है।

न्यूनतम पथ आव्यूह (The Shortest Path Matric e, Matrix “D”)

न्यूनतम पथ आव्यूह स्थान युग्मों के मध्य न्यूनतम मार्ग की लम्बाई बताती है। Matrix “D” द्‌वारा के द्‌वारा स्थान युग्मों में अतिरिक्ताओं को निरर्थक करने का स्थान युग्मों से अतिरिक्ताओं को निरर्थक करने का प्रयत्न किया जाता हे। Matrix “D’’ के द्‌वारा यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि एक मार्ग एक संयोजन केन्द्र युग्मों के मध्य एक ही बार गुजरे। इसे सिम्बले (Shimble) ने एक व्यावहारिक विधि द्‌वारा स्पष्ट किया जिसमें केन्द्र युग्मों के मध्य कुल संयोजन को नहीं बता करके केन्द्र युग्मों के मध्य न्यूनतम मार्ग बताकर लम्बाई ज्ञात की जाती है अर्थात् केन्द्र युग्मों को विशेष गम्यता उसके पथ दूरी के संदर्भ में निश्चित की जाती है।

Matrix “D"(प्रकोष्ठ प्रविष्टियाँ) स्थान युग्मों के मध्य न्यूनतम पथ दूरी बताती है। Matrix “D’ में भी विभिन्न पदों का संयोजन आव्यूह गुणन से निर्धारित किया जाता है जिससे संयोजकता आव्यूह का गुणन किया जाता है।

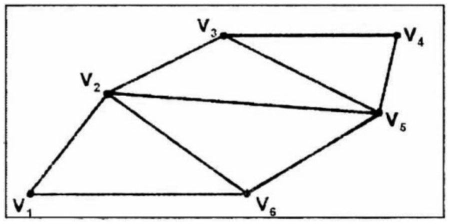

उपर्युक्त परिवहन जाल के लिये संयोजकता एवं न्यूनतम पथ आव्यूह का परिकलन निम्न प्रकार से किया जाएगा।

तालिका - 12.15 C^1

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	1	1	0	0	0	1
V_2	1	0	1	0	1	1
V_3	0	1	0	1	1	0
V_4	0	0	1	0	1	0
V_5	0	1	1	1	0	1
V_6	1	1	0	0	1	0

तालिका - 12.16: D^1

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	–	–	–	1
V_2	1	0	1	–	1	1
V_3	–	1	0	1	1	–
V_4	–	–	1	0	1	–
V_5	–	1	1	1	0	1
V_6	1	1	–	–	1	0

Matrix “D” मे

(i) C प्रथम बार 1 आया वही संख्या 1 लिखेंगे।

(ii) विकर्ण के सहारे 0 लिखेंगे।

(iii) अन्य बचे प्रकोष्ठों में (–) लिखेंगे

तालिका–12.17: C^2

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	2	1	1	0	2	1
V_2	1	4	1	2	2	2
V_3	1	1	3	1	1	2
V_4	0	2	1	2	2	1
V_5	2	2	2	1	1	1
V_6	1	2	1	1	1	3

तालिका–12.18 : D^2

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	1	2	–	2	1
V_2	1	0	1	2	1	1
V_3	2	1	0	1	1	2

V_4	–	2	1	0	1	2
V_5	2	1	1	1	0	1
V_6	1	1	2	2	1	0

Matrix “D^2” में

(i) C में प्रथम बार 1 आया वही संख्या 1 लिखेंगे

(ii) विकर्ण के सहारे 0 लिखेंगे।

(iii) में जिस केन्द्र पर 2 संयोजन द्‌वारा पहुंचा जाता है वहां 2 लिखेंगे।

तालिका – 12.19 : C^3

	V_1	**V_2**	**V_3**	**V_4**	**V_5**	**V_6**
V_1	2	6	3	3	3	5
V_2	6	6	8	8	9	5
V_3	3	8	4	4	7	4
V_4	3	3	5	5	6	3
V_5	3	3	7	7	6	8
V_6	5	7	4	3	8	4

तालिका : 12.20 : D^3

	V_1	**V_2**	**V_3**	**V_4**	**V_5**	**V_6**	
V_1	0	1	2	3	2	1	= 9
V_2	1	0	1	2	1	1	= 6
V_3	2	1	0	1	1	2	= 7
V_4	3	2	1	0	1	2	= 9
V_5	2	1	1	1	0	1	= 6
V_6	1	1	2	2	1	0	= 7

Matrix “D^3” में

(i) C मे प्रथम बार 1 आया वही संख्या 1 लिखेंगे।

(ii) विकर्ण के सहारे 0 लिखेंगे।

(iii) D^3 मे जिस केन्द्र पर 3 संयोजन द्‌वारा पहुँचा जाता हे वह 3 लिखेंगे।

तालिका : – 12.21

केन्द्र	मान	स्तर
V_2, V_5	6	I
V_3, V_6	7	II
V_1, V_2	4	III

यहाँ पर संयोजकता के स्तर में प्रथम स्तर उन केन्द्रों का होगा जहां मान न्यूनतम है, क्योंकि न्यूनतम मान केन्द्र की अभिगम्यता को दर्शाता है व उसकी केन्द्रीय स्थिति का परिचायक है। Matrix “D” में इस प्रकार यह D आव्यूह का गुणन भी हलघात तकनीक से दिया जाता है। इस समय में कर्ण को छोडकर अन्य प्रकोष्ठों में 0 से अधिक संख्या आ जाती है।

(i) जाल में प्रकोष्ठ प्रविष्ठियों से एक केन्द्र का प्रत्येक केन्द्र या अन्य केन्द्रों से अभिगम्यता का स्तर ज्ञात होता है।

(ii) केन्द्र का जाल में स्थित समस्त केन्द्रों में संयोजकता का स्तर ज्ञात होता है 7

Ai=y= 1dji

(iii) Ki (koning Index) Associate No. जाल में स्थित एक केन्द्र का उसी जाल में सबसे दूर स्थित केन्द्र से पथ दूरी होगी।

Ai का मान व अभिगम्यता स्तर में विलोम सम्बन्ध होता है।

मूल्य आव्यूह (The Valued Matrix/Matrix “L”)

उपरोक्त समस्त आव्यूह में अभिगम्यता निर्धारण के लिए उनके मध्य स्थानिक संयोजन सम्बन्ध ज्ञात होता है जिसमें हर संयोजन को समान महत्ता का माना जाता है। प्रत्येक संयोजन को एक मान दिया जाता है परन्तु जाल के सम्बन्ध में न्यूनतम सूचना ही देती है अर्थात् प्रकोष्ठ प्रविष्टियों में संयोजनों की संख्या ही लिखते थे इससे जाल की स्थानिक रचना देखते हैं किन्तु परिवहन जाल की अभिगम्यता उससे अधिक व्यावहारिक स्पष्ट होगी, जिससे आव्यूह के प्रकोष्ठों में संयोजन से अधिक महत्वपूर्ण सूचनाएँ केन्द्र युग्मों के मध्य उपलब्ध हो जैसे – लागत, समय, वहन मात्रा आदि का उल्लेख होता है अत इसके लिए आव्यूह को प्रकोष्ठों में यह प्रविष्टियाँ निश्चित भार युक्त मूल्य वाली हो जाती है इसी कारण से इसे मूल्यांकित का मूल्य आव्यूह कहते हैं क्योंकि केन्द्र युग्मों के मध्य संयोजन को कोई भार दिया जाता है।

इसमें –

(i) गुणन के स्थान पर जोड़ की जाती है।

(ii) गुणा के बाद जोड़ने के स्थान पर न्यूनतम मात्रा लिख दी जाती है।

$x \times y = x + y$

$[x + y = Min.x(x \times y)]$

n = Lik x Ljk = (Min Lik+Ljk]

i = 1

K = 1

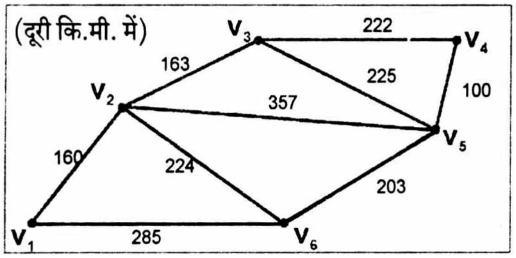

तालिका : 12.22 : L^1

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	160	–	–	–	285
V_2	160	0	163	–	357	224
V_3	–	163	0	222	225	–
V_4	–	–	222	0	100	–
V_5	–	357	225	100	0	203
V_6	285	224	–	–	203	0

तालिका : 12.23 : L^2

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	160	323	–	488	285
V_2	160	0	163	385	357	224
V_3	323	163	0	222	225	387
V_4	–	385	222	0	100	303
V_5	488	357	225	100	0	203
V_6	285	224	387	303	203	0

तालिका : 12.24 :L^3

	V_1	V_2	V_3	V_4	V_5	V_6
V_1	0	160	323	545	488	285
V_2	160	0	163	385	357	224
V_3	323	163	0	222	225	387
V_4	545	385	222	0	100	303
V_5	488	357	225	100	0	203
V_6	285	224	387	303	203	0

तालिका : 12.24 :

केन्द्र	मान	स्तर
$V_{2,}$	1289	I
V_3	1320	II

V_5	1373	III
V_6	1402	iv
V_4	1555	V
$V_{1,}$	1801	Vi

(i) केन्द्र का जाल में स्थित प्रत्येक केन्द्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

(ii) एक केन्द्र का जाल में स्थित अन्य केन्द्रों से सम्बन्ध होता है।

(iii) दो केन्द्रों के मध्य न्यूनतम दूरी/समय/लागत जिस मार्ग से लगती है उससे ही परिकलन किया जाता है।

निष्कर्ष

मूल्य आव्यूह में पर्याप्त दृश्य मिलते हैं जिससे स्थानों के बीच संरचना की अभिगम्यता आती है। इसमें यात्रा मूल्य, समय पर आधारित Matrix 'L' में अभिगम्यता दी गयी है। इसकी तुलना पूर्ववत् आव्यूह में करते हैं तो श्रेणीक्रम में अधिक अन्तर नहीं आता है, परन्तु श्रेणीक्रम अधिक शुद्ध हो जाता है।

बोध प्रश्न– 3

1. अभिगम्यता क्या है?

....

....

2. संगम स्थल अभिगम्यता को मापने की विधियाँ कौन–कौन सी है बताइये।

....

....

3. अभिगम्यता कितने अर्थों में देखी जाती है?

....

....

12.6 सारांश (Summary)

(1) ग्राफ सिद्धान्त परिवहन जाल का वर्णन एवं संश्लेषण के लिए सुविधाजनक एवं परिशुद्धता का माप प्रदान करता है।

(2) ग्राफ सिद्धान्त टोपोलोजी की एक शाखा है।

(3) प्रत्येक जाल में केन्द्रों की संख्या निश्चित होती है।

(4) जाल में प्रत्येक मार्ग दो स्थानों के संयोजन से बनता है एवं दो विभिन्न केन्द्रो को जोड़ता है।

(5) ग्राफ चार प्रकार के होते है।

(6) परिवहन जाल की संयोजकता केन्द्रों और संयोजनों के मध्य वैकल्पिक संयोजनों से निर्धारित होती है। इन्हीं के आधार पर संयोजन जाल का विश्लेषण किया जाता है।

(7) जाल विश्लेषण के दो पहलू होते है – (अ) समग्र जाल की समग्रता का विश्लेषण (ब) जाल में स्थित केन्द्रों की व्यक्तिगत अभिगम्यता।

(8) अभिगम्यता संरचनात्मक एवं मात्रात्मक होती है।

(9) संगम स्थल अभिगम्यता मापने के लिए आव्यूह, व्यास, विपथ और सह संख्या का उपयोग किया जाता है।

12.7 शब्दावली (Glossary)

- **परिवहन जाल :** विभिन्न परिवहन केन्द्रों के मध्य अन्त: संयोजित व्यवस्था।
- **ग्राफ :** बिन्दुओं और रेखाओं का अवस्थित रूप, जिसमें रेखाएँ बिन्दुओं को जोड़ती है।
- **समतल ग्राफ :** इस ग्राफ में दो संयोजकों के प्रतिच्छेदन पर सदैव केन्द्र होता है।
- **दिशा बोध ग्राफ :** दो केन्द्रों के मध्य परिवहन की दिशा दर्शायी जाती है।
- **परिपथ :** एक बन्द बहुभुजाकार आकृति जो केन्द्रों व संयोजनों को जोड़ती है।
- **सहसंख्या :** एक जाल में स्थित एक केन्द्र का उसी जाल में सबसे दूर स्थित केन्द्र की न्यूनतम पथ लम्बाई।
- **सोकता :** दो केन्द्रों के मध्य संयोजन को संयोजकता कहते हैं।

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Abler, Adams and Gould, Spatial Organisation: The Geographer's View of the World, Prentice Hall, New York.
2. Buchannan, C.D., Traffic in Towns, Buchannan Report, HMSO, London.
3. Hagget, P. et al, Locational Analysis in Human Geography, Edward Arnold, London, 1977.
4. Haggett, P. and R.J. Chorley, Network Analysis in Geography, Arnold, London, 1968.
5. Hay, A, Transport Economy, Macmillan, London, 1973.
6. Hoyle, B.S. (Ed.). Transport and Development, Macmillan, London, 1973.
7. Hoyle, B.S and Knowles, Modern Transport Geography, Wiley Europe.
8. Hurst, M.E.E., Transport Geography: Comments and Readings, McGraw Hill, New York, 1974.
9. Hussein, M. et al, Transport Geography: Perspective in Economic Geography Series, Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi.

10. James, P.E and C.F. Jones, (eds.), American Geography: Inventory and Prospect, Syracuse University press, Syracuse, 1954.
11. Johnston, R.J., Multivariate Statistical Analysis in Geography: A premier on The General Linear Model, Longman, London, 1978.
12. Kansky, K.J., Structure of Transportation Network, Research Paper No.48, Department of Geography, University of Chicago.
13. Knowles, R. and J. Wareing, Economic and Social Geography, Heinemann.
14. Lowe, J.C. and S Moriyadas, the Geography, Heinemann.
15. Munby, D., Transport, Penguin.
16. Patankar, P.G., Urban Transport in Distress, Central Institute of Road Transport, Pune.
17. Raza, Moonis and Y.P. Agrawal, Transport Geography of India, Concept Publishing Company, New Delhi, 1985.
18. Robinson, H. and C.G. Bamford, Geography of Transportation, McDonald and Evans, London, 1978.
19. Taaffe, E.J. and et al, Geography, Prentice Hall Inc.
20. Taaffe, E.J. and H.L. Gauthier, Geography of Transportation, Prentice Hall Inc. New Jersey, 1973.
21. Ullman, E.L., American Commodity Flow, University of Washington Press, 1957.
22. White H.P. and M.L. Senior, Transport Geography, Longman, London, 1983.
23. Woodcock, R.G. and M.J. Baily, Quantitative Geography, McDonald & Evans.
24. Yeates, Maurice, an Introduction to Quantitative Analysis in Human Geography, McDgraw–Hill Book Company, New York.

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(1) दो दृश्य एवं अदृश्य

(2) * प्रशासनिक सीमा हटा दी जाती है।

 * ग्राफ मापक पर नहीं बताया जाता है।

* मार्गों के घुमाव छोड़ दिये जाते है व सरल रेखा द्वारा दर्शाएं जाते है।

(3) द

बोध प्रश्न–2

(1) अल्फा, बीटा व गामा सूचकांक

(2) इटा, पाई, आयोटा व थीटा सूचकांक

(3) साइक्लोमेटिक नम्बर, सहसंख्या व व्यास

बोध प्रश्न–3

1. किसी केन्द्र पर पहुंचने की सुगमता अधिगम्यता है।
2. आव्यूह, व्यास, विपथ एवं सह संख्या
3. दो अर्थों में।

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवहन जाल क्या है?
2. ग्राफ की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विभिन्न ग्राफों की सचित्र व्याख्या कीजिए।
4. परिवहन जाल की संयोजकता को मापने के विभिन्न सूचकांकों का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।
5. अभिगम्यता को प्रभावित करने वाले तत्व कौनसे हे?
6. संगम स्थल अभिगम्यता के माप कितने प्रकार के होते है?
7. विभिन्न आव्यूहों के सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

इकाई 13 : महासागरीय जलमार्ग एवं आन्तरिक जलमार्ग (Trade Routes and Inland Water–Ways)

ईकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 परिवहन का महत्व एवं विकास

13.3 परिवहन के आधार

13.4 यातायात के साधनों के प्रकार

13.5 व्यापारिक परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक

13.6 यातायात के साधनों का सापेक्षिक महत्व

13.7 जल परिवहन के प्रकार

13.8 विश्व के प्रमुख महासागरीय जलमार्ग

13.9 आन्तरिक जल परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक

13.10 विश्व के प्रमुख आन्तरिक जलमार्ग

13.11 सारांश

13.12 शब्दावली

13.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.15 अभ्यासार्थ

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि:

- परिवहन का विकास, महत्व, आधार एवं उसके साधनों का सापेक्षिक महत्व,
- विश्व के प्रमुख महासागरीय एवं आन्तरिक जलमार्गों की जानकारी,
- विश्व के प्रमुख महाद्वीपों, देशों एवं प्रदेशों के मध्य वस्तुओं के आदान–प्रदान का ज्ञान।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

परिसंचार–तन्त्र के अन्तर्गत परिवहन तथा संचार दोनों आते है। माल अथवा मानव के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन को

परिवहन तथा संदेश के आदान–प्रदान को संचार कहते हैं। परिवहन एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश के मध्य कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध का द्योतक है। परिवहन, उत्पादन का महत्वपूर्ण अंग है। परिवहन द्वारा वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने से उनकी मूल्य वृद्धि होती है। इस प्रकार परिवहन एक विशेष प्रकार की सेवा प्रदान करने के कारण यह तृतीयक उत्पादन

की श्रेणी में आता है। सेवा क्षेत्र के कार्यों में परिवहन का मुख्य स्थान है। विश्व में लगभग 35 करोड़ व्यक्ति इस कार्य में लगे हुए हैं। विकसित देशों की कुल कार्यरत जनसंख्या का 7-10%, अर्द्धविकसित में 3-50% तथा विकासोन्मुखी देशों में 2% से कम जनसंख्या परिवहन कार्य में लगी हुई है। परिवहन की कार्यशीलता की निम्न विशेषतायें होती हैं–

(i) वस्तुओं एवं व्यक्तियों के आवागमन के रूप में परिवहन द्वारा उत्पादन होता है।

(ii) यह एक अनवरत क्रिया है जिसके द्वारा माँग एवं आपूर्ति की प्रक्रियाएँ परस्पर क्रियाशील रहती हैं।

(iii) इसके उत्पादन का मूल्य किराये के रुप में मिलता है।

(iv) यातायात के साधनों का विकास एवं वितरण रैखिक होने के कारण यह अन्य औद्योगिक क्रियाओं से भिन्न होता है।

(v) यातायात के विकास एवं वितरण में भौतिक एवं मानवीय वातावरण का प्रभाव विशेषत: पड़ता है।

(vi) परिवहन पर भी अन्य आर्थिक क्रियाओं की भाँति वैज्ञानिक एव तकनीकी विकास का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

13.2 परिवहन का महत्व और विकास (Development and Importance of Transportation)

वर्तमान में व्यापारिक, व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास के लिये परिवहन सुविधायें अत्यन्त आवश्यक है। विश्व के सभी देश व्यापारिक वस्तुओं के परस्पर विनिमय के लिए पूर्व की अपेक्षा अत्यधिक आश्रित हैं। विश्व में मानव और माल का यातायात दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप यातायात के साधनों में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं और इनकी गति अधिकाधिक तेज होती जा रही है। पूर्व में एक स्थान से दूसरे स्थान तक बैलगाड़ी से यात्रा करने मे महीनों का समय लगता था। लेकिन अब रेलगाड़ी या मोटरगाड़ी से यह दूरी 1–2 दिन में और वायुयान द्वारा तो केवल कुछ घण्टों में पूरी की जा सकती है। वर्तमान में अटलांटिक महासागर को जलपोत द्वारा 4–5 दिनों में तथा जेट विमान द्वारा केवल कुछ घण्टों में ही पार कर लिया जाता है। जबकि कोलम्बस ने यह यात्रा 79 दिनों में पूर्ण की थी।

पिछली दो शताब्दियों में यातायात के साधनों का अत्यधिक विकास हुआ है। अठारहवीं सदी में केवल यातायात के लिए कुछ सड़कें तथा नहरें थीं। उन्नीसवीं सदी में रेलगाड़ियों और भाप–चालित जलयानों का विकास हुआ। जबकि बीसवीं सदी में स्थल एवं वायु परिवहन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यातायात के साधनों के विकास के साथ–साथ संचार के साधनों में भी महत्वपूर्ण क्रान्ति आई। इस अवधि में टेलीग्राफ, टेलिफोन, वायरलैस, रेडार और स्वचालित कम्प्यूटरों की सहायता से संचार के क्षेत्र में क्रान्ति के फलस्वरुप रेल एंव मोटरगाड़ियों, जलयानों और वायुयानों की गति में तीव्रता आई।

13.3 परिवहन के आधार (Basic of Transportation)

विश्व के विभिन्न प्रदेशों के मध्य विनिमय एवं परिवहन पर उनके परस्पर आर्थिक सम्बन्धों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। उलमैन के अनुसार किन्ही दो प्रदेशों के मध्य परिवहन सम्बन्ध निम्न बातों पर निर्भर करता है –

1. **प्रदेशों के मध्य परिपूरकता :** दो प्रदेशों के मध्य भौतिक तत्वों में विभिन्नता के कारण ही किसी एक प्रदेश में किसी वस्तु विशेष के उत्पादन की विशिष्टता होती है जबकि दूसरे प्रदेश में उस वस्तु की कमी होती है। यह उत्पादन की विशिष्टता एवं आधिक्य ही प्रदेशों के मध्य व्यापार को आधार प्रदान करता है। उदाहरणार्थ गर्म एवं ठण्डे प्रदेशों की भौतिक दशाओं की भिन्नता के फलस्वरुप ही वन्य, कृषि, पशुपालन, खनिज आदि के उत्पादन में भिन्नता पाई जाती है। जो विनिमय के लिए आवश्यक तत्व है। वर्तमान में भौतिक तत्वों की विभिन्नता के साथ ही मानवीय पक्ष भी महत्वपूर्ण हो गया है। समान भौतिक दशाओं के अलावा दो प्रदेशों के मानवीय तत्वों की भिन्नता भी परिवहन एवं व्यापार को आधार प्रदान करती है, क्योंकि मानवीय तत्व आर्थिक क्रियाओं विशेषत : उत्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। विकसित प्रदेशों –उत्तरी अमेरिका और यूरोप के मध्य होने वाला परिवहन एवं व्यापार इसका प्रमुख उदाहरण है। परिवहन के लिए अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि प्रदेशों के मध्य संसाधनों की विशिष्ट परिपूरकता हो ताकि व्यापार में निरंतरता बनी रहे।
2. **प्रदेशों के मध्य आपूर्ति–स्त्रोत का अभाव :** एक प्रदेश विशेष की वस्तु की आपूर्ति के लिये अनेक मध्यवर्ती स्त्रोत हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में वह प्रदेश निकटतम स्त्रोत को ही किसी दूरस्थ स्थित अन्य स्त्रोत की अपेक्षा उस वस्तु विशेष की आपूर्ति के लिये प्राथमिकता देगा। जिससे अनावश्यक परिवहन व्यय नहीं हो।
3. **परस्पर विनिमयता :** दो प्रदेशों के मध्य वस्तुओं के यातायात के लिए तीसरा महत्वपूर्ण कारक परिवहन लागत एव समय है, जिससे दोनों प्रदेशों के मध्य आर्थिक लाभ की स्थिति कायम रहे। यदि वस्तु की माँग एवं आपूर्ति प्रदेश के मध्य दूरी अधिक होने से परिवहन लागत तथा समय अधिक लगता है तो उनके मध्य उस वस्तु विशेष का विनिमय एवं परिवहन नहीं हो सकता। अत: दो प्रदेशों के मध्य परिवहन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए विनिमयता एक महत्वपूर्ण तत्व है।

इससे यह स्पष्ट है कि दो प्रदेशों के मध्य परिवहन के लिए क्षेत्रीय विविधताजन्य परिपूरकता, स्रोत का अभाव तथा विनिमयता आवश्यक कारक हैं।

13.4 यातायात के साधनों के प्रकार (Types of Transportation)

विश्व के विभिन्न भागों में भौतिक–आर्थिक परिस्थितियों एवं तकनीकी विकास के' स्तर के कारण विभिन्न प्रकार के यातायात के साधनों का प्रयोग किया जाता है

(1) मानव भार–वाहक, अर्थात मानव द्वारा अपनी पीठ या कंधों पर माल ढोकर ले जाना। यह साधन मुख्यतया पर्वतीय एवं घाटी क्षेत्रों में लिया जाता।

(2) पशु भार–वाहक, इस परिवहन द्वारा गधे, खच्चर, टट्टू ऊँट आदि की पीठ पर माल ढोकर अथवा बैल–ऊँट गाडियों आदि द्वारा खींचकर किया जाता है।

(3) सड़क–मार्ग द्वारा मोटर–गाड़ियों, बस, ट्रक, ट्रेक्टर–ट्रालियों आदि के द्वारा परिवहन किया जाता है।

(4) रेल–परिवहन, इस साधन द्वारा विभिन्न प्रकार की यात्री–माल गाड़ियों का प्रयोग किया जाता है।

(5) पाईप लाइनों द्वारा पेट्रोलियम, गैस, जल आदि का परिवहन किया जाता है।

(6) आन्तरिक जल–परिवहन के लिए नदियों, नहरों और झीलों द्वारा उपयोग में ली जाती हैं।

(7) महासागरीय परिवहन के अन्तर्गत बड़े–बड़े जलयानों, स्टीमरों एवं नावों का प्रयोग किया जाता है।

(8) वायु मार्ग–वायुयानों द्वारा माल व यात्रियों का परिवहन किया जाता है।

13.5 व्यापारिक परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Commercial Transportation)

औद्योगिक कच्चे तथा निर्मित माल के परिवहन करने के लिए निम्न महत्वपूर्ण बिन्दु हैं – (i) परिवाहित माल का भार, (ii) परिवहन की लागत, और (iii) परिवहन की गति।

घरेलूएवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में परिवहन –लागत का बहु त महत्व है। व्यापारी वस्तु की लागत को कम करने के लिए उसे सस्ते मार्ग द्वारा भेजना चाहते हैं और यह आवश्यक नहीं की सबसे छोटा मार्ग ही सबसे सस्ता हो। किसी सीधे मार्ग में भौतिक संरचना के कारण बाधाएँ हो सकती हैं जिनके कारण मार्ग की लम्बाई अथवा उसे छोटा करने की लागत का भार भी परिवहन लागत को बढ़ा देता है। विनाशी वस्तुएं जैसे दूध, मक्खन, फल, मछली आदि को बाजारों में शीघ्र पहुँचाने के लिए छोटे मार्ग पर भी अधिक किराया देना पड़ता है। जबकि अविनाश शील वस्तुएँ जैसे खनिज, लकड़ी आदि को देर से पहुँचाने वाले लम्बे मार्ग कम परिवहन लागत के कारण उपयुक्त होते हैं।

परिवहन–लागत निम्न कारणों पर निर्भर करती है – (I) माल का स्वरूप एवं आकार, (ii) परिवहन की दूरी, (iii) परिवहन का साधन, (iv) अविरल संचालन में रूकावटें, और (v) लौटते वाहनों को ढुलाई का माल मिलने की संभावना।

13.6 यातायात के साधनों का सापेक्षिक महत्व (Relative Importance of Transportation)

दो प्रदेशों के बीच परिवहन सम्बन्ध यातायात के किसी भी माध्यम द्वारा स्थापित हो सकता है। विभिन्न कालों एव क्षेत्रों में परिवहन के अनेक माध्यम मिलते हैं। प्राचीन काल में जब अजैविक शक्ति के साधनों का विकास नहीं हुआ था, मनुष्य एवं पशु परिवहन के माध्यम थे। सर्वप्रथम प्राचीनतम काल में मनुष्य स्वयं अपना बोझ एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता था। उसके बाद जब कुछ पशुओं को मनुष्य ने पालतू बनाया, तब पशु ही परिवहन के प्रमुख

माध्यम हो गये। तत्पश्चात् बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ी द्वारा परिवहन होने लगा। आज भी प्रारम्भिक आर्थिक तन्त्रों में इस प्रकार के परिवहन माध्यमों का बहुत महत्व है। वनों से लकड़ी का परिवहन करने के लिए उष्ण–कटिबन्धीय भागों में हाथी का उपयोग होता है। मरुस्थलों में ऊँट तथा बीहड़ पर्वतीय क्षेत्रों में टट्टू तथा खच्चर आज भी सर्वप्रमुख परिवहन के साधन है, परन्तु आज विश्व में इस प्रकार के परिवहन का महत्व नगण्य हो गया है। परिवहन के आधुनिक साधनों–विशाल जलपोत, रेलगाड़ियों, वायुयान द्वारा परिवहन किये गये भार, गति तथा परिवहन लागत की तुलना में परम्परागत परिवहन के साधन बहुत पीछे रह जाते हैं। अतः विश्व स्तर पर परिवहन के आधुनिक माध्यम ही महत्वपूर्ण हैं। परम्परागत परिवहन साधनों का महत्व केवल स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर उन्हीं भागों में है जहां अभी आधुनिक परिवहन के साधनों का विकास नहीं हुआ है। परिवहन के आधुनिक माध्यम मुख्यतः निम्न हैं – (i) सड़क मार्ग, (ii) रेलमार्ग, (iii) वायुमार्ग, तथा (iv) जल परिवहन

इन चारों माध्यमों का सापेक्षिक महत्व विभिन्न भौतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन के लिये जल परिवहन में विशाल जलपोतों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रायः सम्पूर्ण माल ढोया जाता है। वायुयानों द्वारा यद्यपि माल–परिवहन अभी बहुत कम होता है। केवल कुछ अत्यन्त हल्की, शीघ्र नष्ट होने वाली अथवा अति मूल्यवान वस्तुओं का परिवहन वायुमार्ग द्वारा किया जाता है। यात्री परिवहन के लिये वायुयान का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। आन्तरिक जल परिवहन का महत्व उन देशों में अधिक है, जहां जल परिवहन के लिए उपयुक्त नौगम्य नदियां उपलब्ध हैं। जल परिवहन में सबसे कम लागत आती है, परन्तु इसमें अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है, इसलिये कम मूल्य एवं अधिक भार वाली वस्तुओं का परिवहन जलमार्ग द्वारा होता है। विश्व में नौगम्य नदियाँ बहुत कम ही देशों में उपलब्ध हैं। जिसके कारण भारी एवं कम मूल्य वाली वस्तुओं का देशान्तरिक परिवहन अधिकांशतः रेलों द्वारा होता है। रेल परिवहन में जल परिवहन की अपेक्षा लागत अधिक पड़ती है। इसकी गति तीव्र होती है तथा आवश्यकतानुसार इसका निर्माण किया जा सकता है। लेकिन रेलमार्गों द्वारा लम्बी दूरी का तथा बड़ी मात्रा में ही माल परिवहन अधिक लाभदायक होता है। कम दूरी तथा कम मात्रा में माल का परिवहन रेल द्वारा अपेक्षाकृत अधिक लागत वाला होता है। रेलमार्गों के निर्माण एवं परिचालन में भी अधिक पूँजी विनियोग की आवश्यकता पड़ती है।

स्थल परिवहन में मोटरकार, बस, ट्रक और रेल सबसे अधिक तीव्र और उत्तम साधन हैं। सड़क–परिवहन की अपेक्षा रेल–परिवहन द्वारा माल अथवा यात्री अधिक मात्रा में तथा लम्बी दूरी के परिवहन के लिए लाभप्रद है। जबकि छोटी–छोटी दूरियों के परिवहन के लिये सड़क–परिवहन सर्वाधिक उपयुक्त है। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के लिये पाईप लाईन द्वारा परिवहन अपेक्षाकृत सस्ता एवं उपयुक्त होता है। जल परिवहन के लिए किसी प्रकार के आधारभूत ढाँचे की आवश्यकता नहीं होने, लम्बी दूरी तथा विशाल भार वहन क्षमता के कारण यह सभी प्रकार के परिवहन के साधनों की तुलना में सबसे सस्ता है। यद्यपि इसकी गति अन्य साधनों की अपेक्षा धीमी है।

13.7 जल परिवहन के प्रकार (Types of Water Transport)

जल परिवहन को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– (i) महासागरीय जलमार्ग, (ii) स्थलीय जलमार्ग। विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये महासागरीय जलपोतों का सर्वाधिक उपयोग होता है। द्‌वितीय विश्व युद्ध से पूर्व भाप–चालित जलपोतों की संख्या अधिक थी, परन्तु विश्व युद्ध के बाद अधिकतर डीजल –चालित जलपोतों का उपयोग किया जाता है। महासागरीय परिवहन ने पृथ्वी पर दूर–दूर क्षेत्रों में उत्पादित माल को भी अन्र्तराष्ट्रीय बाजार में पहुँचना सुलभ कर दिया है। यह परिवहन सस्ता होता है, अत: भारी माल को जल परिवहन द्‌वारा ही भेजा जाता है। महासागरों में न तो कहीं रेल की पटरियाँ बिछानी पड़ती है, और न ही कहीं सड़कें बनानी पड़ती हैं, केवल पोताश्रयों पर टर्मिनल बनाने पड़ते हैं। व्यापारिक परिवहन के लिए उपयोग में लिये जाने वाले जलपोत कई प्रकार के होते हैं, जो निम्न हैं –

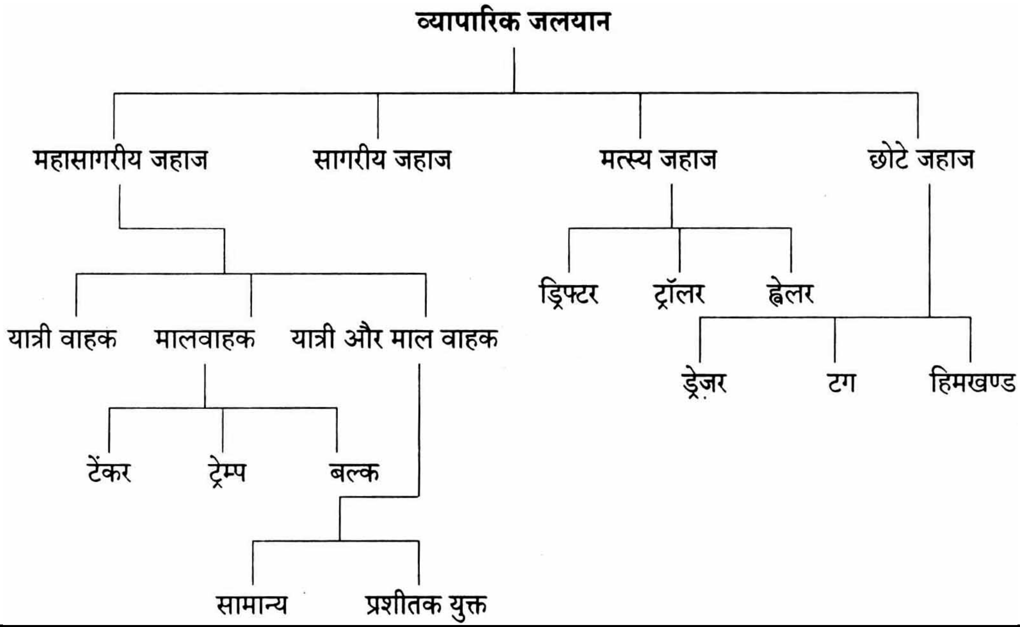

13.8 विश्व के प्रमुख महासागरीय जलमार्ग (Major Oceanic Routes)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिवहन के लिए मुख्य महासागरीय जलमार्ग निम्नलिखित हैं –

1. उत्तरी अटलांटिक महासागरीय जलमार्ग
2. पश्चिमी यूरोप–भूमध्यसागर–हिन्द महासागरीय जलमार्ग
3. केप ऑफ गुड होप जलमार्ग
4. दक्षिणी अटलांटिक जलमार्ग
5. केरिबियन सागर जलमार्ग
6. प्रशान्त महासागरीय जलमार्ग
7. स्वेज नहर मार्ग

8. पनामा नहर मार्ग

1. **उत्तरी अटलांटिक महासागरीय जलमार्ग :** यह विश्व का व्यस्ततम महासागरीय जलमार्ग है जो पश्चिमी यूरोपीय और उत्तरी अमेरिकी देशों को जोड़ता है। उत्तरी अटलांटिक महासागर के दोनों तटों पर विश्व के प्रमुख औद्योगिक रख विकसित देश स्थित हैं। इस जलमार्ग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में खाद्य पदार्थ, कच्चे माल एवं उत्पादित सामग्री की मात्रा विश्व के सभी जलमार्गों से अधिक रहती है। इनके व्यापार में बड़ी भिन्नता और विविधता रहती है। विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लगभग एक –चौथाई भाग इस मार्ग से होता है। इस मार्ग पर प्रथम स्टीमर (जलपोत) 1938 में आरम्भ हुआ था,तब से इस मार्ग के परिवहन का अत्यधिक विकास हुआ है। वर्तमान में लगभग 300 कम्पनियों के जलपोत इस मार्ग पर आवागमन करते हैं।

   पश्चिमी यूरोप के मुख्य पोताश्रय लन्दन, लिवरपूल, हेम्बर्ग, ब्रीमेन, बर्जेन, रोटरडम, एम्सट्रडम, ली हेवर, ब्रेस्ट नान्दीज, रोम, नेपिल्स आदि हैं, जिनकी विकसित पृष्ठभूमि हैं। जबकि इसके पश्चिमी तट पर उत्तरी अमेरिका में हैलीफेक्स और क्यूबेक (कनाडा) तथा न्यूयार्क, बोस्टन, फिलाडेलफिया, बाल्टीमोर, गेलवेस्टन, चार्ल्सटन, न्यूआर्लियन्स, हाउसटन (संयुक्त राज्य अमेरिका) और मध्य अमेरिका के बन्दरगाह हैं।

   इस मार्ग द्वारा यूरोपीय देशों को कनाडा से गेहूँ जी, मछली, मुलायम लकड़ी, लुग्दी, कागज, ऐलुमिनियम, ताँबा, टिटेनियम, जस्ता, एस्बेस्टस, पारा, पोटाश, प्लेटिनम, चाँदी और यूरेनियम तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से गेहूँ कपास, कोयला, पेट्रोलियम, सोयाबीन, मशीनरी, कृषि यन्त्र, वैज्ञानिक उपकरण, मोटरकार, वस्त्र आदि का निर्यात होता है। जबकि यूरोप से मशीनरी, वस्त्र, वैज्ञानिक उपकरण एवं सामान आदि का निर्यात इन देशों को होता है।

   वृहत–वृत मार्ग : यह मार्ग यथासम्भव वृहत–वृत मार्ग (great circle route) का अनुसरण करता है। उत्तरी अमेरिका का पूर्वी तट बहुत कुछ वृहत मार्ग से मिलता–जुलता है, यद्यपि लेब्रेडोर प्रायद्वीप का कुछ भाग आगे निकला हुआ है। पश्चिमी यूरोप को जाने वाले जलपोत उत्तरी अमेरिका के तट के सहारे–सहारे चलते हैं। अत: मध्य अमेरिका में कोलोन (पनामा) से चलने वाले और शिकागो से जाने वाले जलपोत मार्ग में मिलकर एक ही मार्ग का अनुसरण करते हैं। वृहत्–वृत मार्ग का पूर्णत: अनुसरण अग्रलिखित कारणों से नहीं किया जा सकता, क्योंकि (i) लेब्रेडोर प्रायद्वीप आगे निकला हुआ है, (ii) पतनों की सापेक्षिक स्थिति भिन्न है, (iii) गर्म (गल्फ स्ट्रीम) और ठण्डी धारा (लेब्रेडोर) के मिलने से धुन्ध उत्पन्न होती है, (iv) ग्राण्ड बैंक के समीप मार्ग में शैल–भित्तियाँ और शोल्स आते हैं, (v) उत्तरी केरोलिना तट पर हैटरस अन्तरीप के समीप बालू –भित्तियाँ हैं, और (vi) कभी–कभी ग्रीनलैण्ड के पश्चिमी तट से तैरते हुए हिमखण्ड (ice be berg) मार्ग में आते हैं। शीत ऋतु में तूफानों के कारण जलपोतों को वृहत मार्ग छोडकर कुछ दक्षिण की ओर से जाना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय हिम–निरीक्षक दल इस मार्ग के मौसम की रिपोर्ट का प्रत्येक

चार–चार घण्टों में प्रसारण करता है। पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व में जाने वाले जलपोतों के मार्ग एक दूसरे से लगभग 100 किमी दूर हैं ताकि दो भिन्न दिशाओं से जाने वाले जहाज आपस में टकरा न जायें।

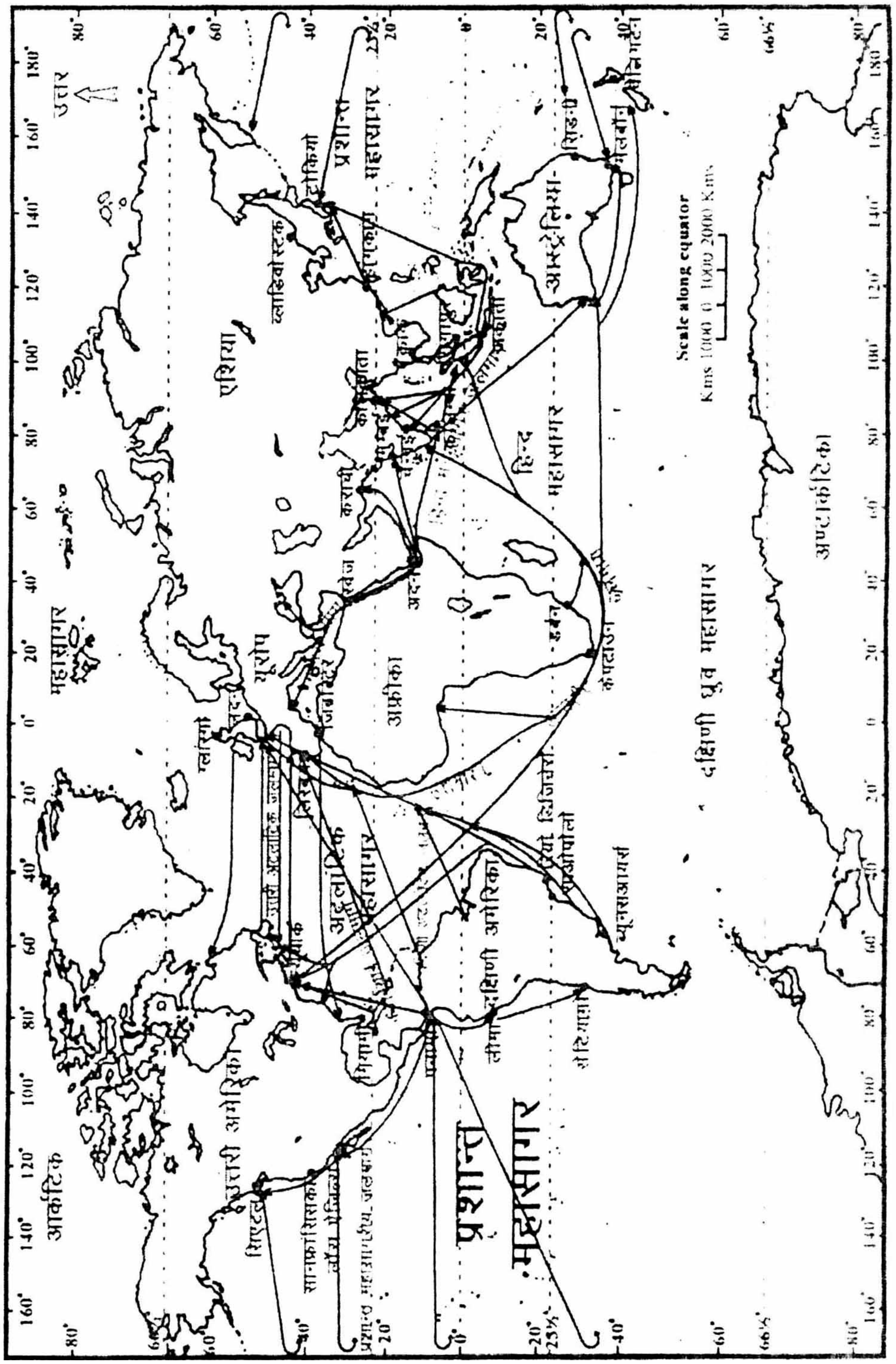

मानचित्र–13.1 : महासागरीय जलमार्ग

इस मार्ग पर परिवाहित माल में भारी विविधता–निर्मित उत्पाद, अर्द्ध–परिष्कृत सामग्री, कच्चे माल और भोज्य पदार्थ होते हैं। उत्तरी अमेरिका से यूरोप को जाने वाले माल का भार, यहाँ से निर्यातित माल की अपेक्षा चार गुना भारी होता है; क्योंकि उत्तरी अमेरिका से गेहूँ सोयाबीन, दुग्ध –उत्पाद तथा अन्य भोज्य पदार्थों का भार होता है। इसके अतिरिक्त कच्चे माल, कपास, कोयला, पेट्रोलियम, धातुएँ, लुग्दी, चीनी, माँस, फॉस्फेट, गन्धक, स्क्रेप आदि यूरोप को निर्यात होते हैं, जबकि यूरोप से आने वाले जहाजों में निर्मित माल और निम्न भार वाला उच्च मूल्य का माल होता है। अत: उत्तरी अमेरिका को जाने वाले जहाजों में बहुत सा स्थान खाली पड़ा रहने के कारण वे जलयान बहुत सस्ते किराये पर भारी माल, जैसे लोहा–इस्पात, इस्पात का सामान, चीनी मिट्टी और पत्थर तक भी यूरोप से ले जाते हैं।

2. **भूमध्यसागर–हिन्द महासागरीय जलमार्ग :** यह विश्व का सबसे लम्बा व्यापारिक जलमार्ग है, जो विश्व के मध्य में स्थित भूमध्य–सागर से होकर जाता है और विश्व के सबसे बड़े थल भाग तथा विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या की सेवा करता है। यह मार्ग यूरोपीय और अमेरिकी अर्थात् पश्चिमी सभ्यता को भारत, चीन और जापान की पूर्वी सभ्यता से जोड़ता है। यह मार्ग पश्चिमी यूरोप से स्वेज नहर और लाल सागर को पार करता हुआ हिन्द महासागर से पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी एशिया, आस्टेलिया और न्यूजीलैण्ड को चला जाता है। इसकी एक शाखा पूर्वी एशिया में चीन और जापान को जाती है।

   भूमध्यसागरीय मार्ग के प्रमुख बन्दरगाह हेम्बर्ग, एम्स्ट्रडम, रोटरडम, लन्दन, साउथेम्पटन, लिवरपूल, ली हेवर, लिस्बन, मार्सेली, जेनोआ, रोम, नेपुल्स, ओदेआ, पोर्ट सईद, अदन, मुम्बई, कोलम्बो, सिंगापुर, पर्थ, एडिलेड, सिडनी तथा अफ्रीका के मोम्बासा, जेन्जीबार, डरबन आदि हैं। सिंगापुर से इसकी एक शाखा हाँगकाँग, सिडनी, टोकियो और मनीला को चली जाती हैं।

   इस मार्ग पर जलयानों को ईंधन (पेट्रोलियम) की आपूर्ति मध्य–पूर्व, रोमानिया, स्वतन्त्र देशों का राष्ट्र (C.I.S.), इण्डोनेशिया और सारावाक के तेल क्षेत्रों से तथा कोयले की आपूर्ति पोर्ट सईद, कोलम्बो और सिंगापुर में होती है। लाल सागर को पार करने के बाद यह मार्ग दो शाखाओं में बंट जाता है– पहला अफ्रीका के पूर्वी तट पर डरबन की ओर, तथा दूसरा सुदूर पूर्व एवं आस्ट्रेलिया की ओर।

   इस मार्ग द्वारा निम्न क्षेत्रों के मध्य व्यापार होता है –

   (i) भूमध्यसागर–काला सागर के देशों के मध्य व्यापार : काला सागर और पूर्वी भूमध्य सागर के अनाज, फल, तम्बाकू, कपास, कच्चा रेशम, खनिज; मध्य–पूर्वी देशों का पेट्रोलियम; टर्की का क्रोमाइट; अरब देशों और ईरान की ऊन, नमदे, कालीन तथा स्वतन्त्र देशों का राष्ट्रकुल (CIS) का अनाज और मैंगनीज पश्चिमी भूमध्यसागरीय देशों–फ्रांस, इटली आदि को निर्यात होते हैं तथा वहाँ से निर्मित सामग्री आयात की जाती हैं।

(ii) पश्चिमी यूरोप और भूमध्यसागरीय देशों के मध्य व्यापार : भूमध्यसागर तटीय क्षेत्रों से फल जैसे संतरे, नींबू अंजीर, अंगूर, किशमिश, मुनक्का और जैतुन; शराब, कॉर्क, कपास, अनाज, जैतुन का तेल, लौह–अयस्क, फॉस्फेट, पोटाश, गन्धक, सिलिका तथा लीबिया, अल्जीरिया और ट्यूनिशिया का पेट्रोलियम पश्चिमी यूरोपीय देशों जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, जर्मनी आदि को निर्यात किया जाता है। जबकि यूरोपीय देशों–इंग्लैण्ड का कोयला, नार्वे, स्वीडन और फिनलैण्ड के वनोत्पाद–लकड़ी, लुग्दी, कागज, सूती वस्त्र, कृत्रिम रेशों के वस्त्र, मशीनरी तथा अन्य निर्मित सामग्री फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी से भूमध्यसागरीय देशों द्वारा आयात की जाती है।

(iii) पश्चिमी यूरोप और पूर्वी एशिया के मध्य व्यापार : इस मार्ग द्वारा भारत से मैंगनीज, अभ्रक, लूट, चाय, कपास, चमड़े का सामान, सूती वस्त्र, चीनी, नारियल का तेल और तिलहन, मलेशिया तथा इण्डोनेशिया से रबर और टिन ,म्यांमार और थाईलैंड से सागवान की लकड़ी और चावल, श्रीलंका से चाय, मसाले और रबर, इण्डोनेशिया से नारियल, काफी, तम्बाकू, फिलीपाइन से हेम्प और नारियल का तेल, जापान से रेशम और निर्मित सामग्री पश्चिमी यूरोपीय देशों को निर्यात किये जाते हैं। जबकि यूरोपीय देशों से मशीनरी, कृषि यन्त्र, मोटरकार, रासायनिक पदार्थ, प्लास्टिक का सामान, विद्युत उपकरण, मशीनी औजार, वैज्ञानिक उपकरण, कैमरे, फिल्म, औषधियां आदि इन देशों द्वारा आयात किये जाते हैं।

(iv) दक्षिणी–पूर्वी एशियाई देशों के मध्य व्यापार : इस क्षेत्र के मध्य व्यापार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा हैं। जापान कच्चा–माल और खाद्य पदार्थ आयात करता है। म्यांमार, इण्डोनेशिया और थाइलैण्ड आदि देशों से चावल, भारत द्वारा लौह–अयस्क, कपास, अभ्रक, तिलहन, चमड़ा, जूट का सामान, इण्डोनेशिया से चीनी, मलेशिया से लौह अयस्क, रबर और टिन, मध्य–पूर्व के अरब देशों से पेट्रोलियम, बांग्लादेश से जूट और जूट का निर्मित माल जापान द्वारा आयात किया जाता है जबकिइस्पात, सूती वस्त्र,रेशमी और कृत्रिम रेशों के वस्त्र, प्लास्टिक की निर्मित सामग्री, उर्वरक, रासायनिक पदार्थ, विद्युत मशीनरी तथा उपकरण, औजार, मोटरकार, जलपोत आदि इन देशों को निर्यात करता है। इसके अतिरिक्त भारत द्वारा दक्षिणी एशियाई, मध्य–पूर्वी और अफ्रीकी देशों को तैयार माल निर्यात किया जाता है। चीन, भारत, जापान, म्यांमार, थाईलैंड, इण्डोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका और मध्य–पूर्व के देशों के मध्य व्यापार होता है।

(v) उत्तरी अमेरिका और भूमध्यसागरीय देशों के मध्य व्यापार: इस जलमार्ग द्वारा ध्रुवसागरीय देशों के उत्पाद जैसे शराब, मुनक्का, किशमिश, जैतुन का तेल, कॉर्क, स्पेन का लौह–अयस्क, टर्की का तम्बाकू, मिश्र की कपास और मध्य–पूर्व के देशों का पेट्रोलियम उत्तरी अमेरिकी देशों को भेजा जाता है। जबकि उत्तरी अमेरिका से मशीनरी और तैयार माल आयात किये जाते हैं।

3. **केप ऑफ गुड होप मार्ग :** यह जल मार्ग पूर्वी उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देशों को अफ्रीका, दक्षिणी–पूर्वी एशिया और ओसेनिया से जोड़ता है। स्वेज नहर का निर्माण हो जाने के पश्चात् इस मार्ग का महत्व कम हो गया है। इस मार्ग द्वारा पश्चिमी यूरोप से जलपोत केप वर्डे द्वीपों के समीप होते द्वारा अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर उत्तम आशा अन्तरीप पर स्थित केपटाउन बन्दरगाह पहुँचते हैं। यहाँ से इण्डोनेशिया जाने वाले जलपोत वृहत्–वृत्त मार्ग से जाते हैं, परशु केपटाउन से तूफानों और हिम–खण्डों से सुरक्षा के कारण आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का मार्ग वृहत् वृत्त से थोड़ा उत्तर में है। मार्ग में जलयानों के ईंधन लेने के लिए केपटाउन, पोर्ट एलिजाबेथ, ऐडिलेड, मेलबर्न, सिडनी आदि बन्दरगाह हैं।

   इस मार्ग द्वारा दक्षिणी–पूर्वी एशिया से रबर, टिन, पेट्रोलियम, खाद्य पदार्थ, चीनी, काफी नारियल, मसाले तथा ओसेनिया से ऊन, दूध उत्पाद, चमड़ा तथा कच्चा माल निर्यात किये जाते हैं तथा बदले में तैयार माल आयात किया जाता है। अफ्रीकी देशों से ताड़ का तेल, आइवरी नदस, फल, गोंद, ऊन, खालें, मक्का, काफी, कोको, चीनी, मास आदि पदार्थ निर्यातित होते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के निर्यातों में सोना और हीरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, इसके अतिरिक्त कुछ लौह –मिश्र धातुयें तथा अलौह धातुयें जैसे ताँबा, जस्ता आदि भी निर्यात की जाती हैं।

   जबकि इस मार्ग द्वारा पूर्वी अफ्रीका से कपास, काफी, तम्बाकू और तिलहन का निर्यात यूरोपीय देशों को होता है। पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका से औद्योगिक और खनन मशीनरी, कृषि उपकरण, मोटरगाडियाँ, रासायनिक पदार्थ, रबड़ का सामान, पेट्रोलियम–उत्पाद और विद्युत उपकरण अफ्रीकी देशों को भेजे जाते हैं।

4. **दक्षिणी अटलांटिक जलमार्ग :** दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप में वन, कृषि, पशुधन एवं खनिज संसाधनों की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। इस महाद्वीप से कच्चे माल का निर्यात यूरोपीय और उत्तरी अमेरिकी देशों को किया जाता है। इसके पूर्वी तट पर रियो–डि–जेनेरो, सेन्टोस, मोण्टेविडियो और ब्यूनस आयर्स प्रमुख बन्दरगाह हैं। दक्षिणी अमेरिका में, ब्राजील और युरूग्वे से अत्यधिक मात्रा में गेहूँ मक्का, मांस, ऊन, और खालें निर्यात होती हैं। इनके अतिरिक्त काफी, वनस्पति तेल, चर्बी, मोम, चर्म शोधक पदार्थ, कपास, तम्बाकू, इमारती लकड़ी का भी निर्यात किया जाता है। यहाँ से लौह–अयस्क, मैंगनीज, क्रोमियम, टंगस्टन, बॉक्साइट, अभ्रक, आदि खनिजों का निर्यात भी बड़ी मात्रा में होता है। जबकि उत्तरी अमेरिका और यूरोप से इस्पात, रेलवे इंजन व वैगन, औद्योगिक मशीनरी, मोटरकार, रासायनिक पदार्थ, वस्त्र तथा अन्य निर्मित पदार्थ आयात किये जाते हैं।

   इस महाद्वीप के पूर्वी तटीय बन्दरगाहों द्वारा युरूग्वे, अर्जेण्टीना और ब्राजील के मध्य पारस्परिक व्यापार भी भारी मात्रा में होता है। अर्जेण्टाइना से ब्राजील को खाद्यान्न, फूल और शराब का जबकि ब्राजील से अर्जेण्टाइना को केला, काफी, लौह–अयस्क और लकड़ी का निर्यात होता है।

5. **केरिबियन सागरीय जलमार्ग :** इस सागर में स्थित द्वीप समूहों तथा वेनेजुएला, गुयाना, सुरीनाम आदि देशों का संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय देशों को खाद्य व खनिज पदार्थों का निर्यात होता है। यहाँ से चीनी, शीरा, केला, काफी, कोको, नारियल, सब्जियों, कठोर वनस्पति, रेशे, कपास, कठोर लकड़ी तथा गन्धक, बॉक्साइट, पोटाश, नमक, फॉस्फेट, पेट्रोलियम, लौह–अयस्क आदि खनिजों का भी निर्यात होता है। जबकि अमेरिका और यूरोप से आयात किये जाने वाले पदार्थों में खाद्य सामग्री, रसायन,कागज, वस्त्र, मशीनरी, मोटरगाडियाँ आदि प्रमुख होती हैं। इस मार्ग का सम्बन्ध उत्तरी अमेरिका के न्यू ओर्लियन्स, गेल्वेस्टन, हाउसटन, मौरिसविले, स्पेरोज पोइन्ट,फिलाडेलफिया, न्यूयार्क आदि उत्तरी अमेरिकी तथा लन्दन, लीहेवर, हेम्बर्ग आदि यूरोपीय बन्दरगाहों से है। पनामा नहर मार्ग द्वारा यह जलमार्ग उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तटीय बन्दरगाहों सेनफ़ासिसको, सीएटल और बैंकुवर तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटीय बन्दरगाहों से जुड़ा है।
6. **प्रशान्त महासागरीय जलमार्ग :** यह महासागर विश्व का सबसे बड़ा महासागर है, किन्तु इसका व्यापारिक परिवहन की दृष्टि से बहुत कम महत्व है। उत्तरी प्रशान्त जलमार्ग अमेरिका के पश्चिमी तट को एशियाई देशों से जोड़ता है। इसकी एक शाखा चीन और जापान से पश्चिमी अमेरिका तट पर पहुँचने के लिए एल्यूशियन द्वीपों के समीप वृहत–वृत मार्ग का अनुसरण करती है। जबकि दूसरी शाखा हवाई द्वीप होती हुई एशियाई देशों तथा आस्ट्रेलिया–न्यूजीलैंड (ओसेनिया) को जाती हैं। इस मार्ग पर लॉस एंजिलीस, सेनफ्रांसिसको, सीएटल, पोर्टलैंड, वैंकुवर और प्रिंस रूपर्ट उत्तरी अमेरिकी तथा टोकियो, योकोहामा, कोबे, ओसाका, शंघाई, टीन्टसिन, हाँगकाँग आदि प्रमुख एशियाई बन्दरगाह हैं।

   पश्चिमी अमेरिकी तट से लकड़ी, लुग्दी, कागज, गेहूँ कपास, पेट्रोलियम, स्क्रेप, गन्धक, फॉस्फेट तथा तैयार माल का निर्यात होता है। जबकि चीन, जापान, फिलीपाइन आदि से नारियल, चीनी, हैम्प, चाय, पैक्ड मछली, वनस्पति तेल और सूती वस्त्र आते हैं। औद्योगिक उन्नति के कारण जापान विद्युत उपकरण एवं सामान, वस्त्र, सस्ती कारें और वृहत् जलपोत अमेरिका के बाजारों में भेजता है।
7. **स्वेज नहर मार्ग :** यह मार्ग व्यापारिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस नहर का निर्माण 1869 में पूर्ण हुआ था। यह भूमध्यसागर और लाल सागर के मध्य स्थित है तथा भूमध्य सागर को हिन्दी महासागर से जोड़ती है। इस नहर की लम्बाई 162 किमी, चौड़ाई 60 मीटर और गहराई 10 मीटर है। मिश्र सरकार ने इस नहर का राष्ट्रीयकरण 1956 मे कर लिया था। जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) ने इसके राष्ट्रीयकरण को 1967 में स्वीकार किया। इस नहर के भूमध्यसागरीय तट पर पोर्ट सईद प्रमुख बन्दरगाह है। जहाँ से स्वेज नहर मझोला झील को पार करती हुई अलकन्तारा,अलफिदरान और इस्माइलिया नहरी पोताश्रयों के दक्षिण में स्थित टिमशाह, झील–ग्रेट बिटर और बीटर झील को पार करती हैं। इस नहर के दक्षिण छोर पर लाल सागर में स्वेज और तौफिक बन्दरगाह हैं। यहाँ से यह नहर लगभग 50 किमी तक बिछल सीधी है।

स्वेज नहर द्वारा यूरोपीय देशों और भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इण्डोनेशिया और अन्य एशियाई देशों के मध्य की दूरी कम हो गई है। इस मार्ग द्वारा लिवरपूल से मुम्बई तक लगभग 8000 किमी, लिवरपूल से योकोहामा के बीच 5400 किमी और लिवरपूल से सिडनी के बीच 2000 किमी की दूरी कम हो गई है। जिससे इन देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिला है।

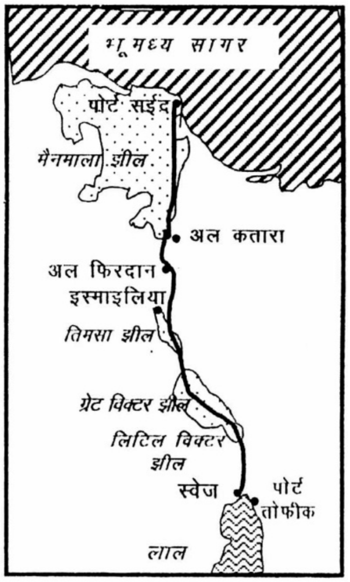

मानचित्र–13.2 : स्वेज नहर

इस जलमार्ग द्वारा फारस की खाड़ी के देशों से पेट्रोलियम एवं उसके उत्पाद, भारत तथा अन्य देशों से धातुएँ, मैंगनीज, अभ्रक, टिन, रबर, चाय, जूट और जूट का सामान, कपास, सूती वस्त्र, मांस, ऊन, नारियल, वनस्पति तेल, चमड़ा, इमारती लकड़ी काफी, मसाले आदि यूरोपीय देशों को निर्यात होते हैं। जबकि यूरोप से आयातित माल में इस्पात, मशीनरी, रेलवे का सामान, मोटरगाडियाँ, रासायनिक पदार्थ, वस्त्र तथा विविध प्रकार का निर्मित माल आयात किया जाता है।

8. **पनामा नहर मार्ग :** यह नहर अटलांटिक महासागर और प्रशान्त महासागर को जोड़ती है। इस नहर का उद्घाटन 15 अगस्त, 1914 को हुआ था। वर्तमान में इस नहर पर संयुक्त राज्य अमेरिका का नियंत्रण हैं। इस नहर की लम्बाई 82 किमी, चौड़ाई 16 किमी तथा गहराई लगभग 12 मीटर है। इस नहर के सबसे ऊँचे भाग की समुद्रतल से ऊँचाई 26 मीटर है। इसमें तीन स्थानों पर लॉक्स बने हैं– अटलांटिक तट पर गातून लॉक्स, मध्य में पैडरो लॉक्स और प्रशान्त तट पर मिराफ्लोर्स लॉक्स। इन लॉक्स द्वारा जहाज अपेक्षाकृत कम गहरे भाग को पार कर लेते हैं। इस नहर को पार करने में लगभग 7–8 घण्टे लगते हैं तथा यहाँ से प्रतिदिन लगभग 50 जलपोत पार होते हैं।

   इस नहर के निर्माण से यूरोपीय तथा उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट के जलयानों को प्रशान्त महासागरीय तट पर स्थित बन्दरगाहों पर जाने के लिए कम दूरी तय करनी पड़ती है। इससे न्यूयार्क से सेनफ्रांसिस्को जाने में 13000 किमी, न्यूआर्लियन्स से सेनफ्रांसिस्को में 14200 किमी, लिवरपूल से सेनफ्रांसिस्को में 9100 किमी, न्यूयार्क से बालपैरजो में 6000 किमी तथा न्यूयार्क और आस्ट्रेलिया के किसी पत्तन के बीच लगभग 6400 किमी दूरी की बचत होती है। इस जलमार्ग में तूफान और हिम शैल नहीं आने के कारण यह केपहॉर्न और मैगलन जलसंयोजक मार्गों की अपेक्षा बहुत अधिक सुरक्षित है।

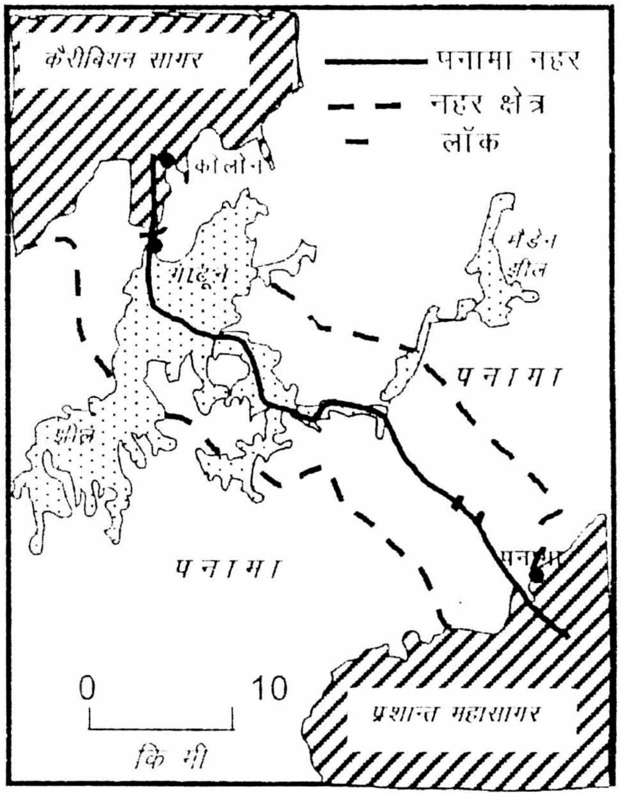

मानचित्र–13.3 : पनामा नहर

इस नहर के निर्माण से संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी और पश्चिमी भागों, संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी और दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट, संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग और एशियाई देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग और आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, पश्चिमी यूरोप और पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटीय देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा मिला है। इस मार्ग द्वारा जलयान उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट और पश्चिमी यूरोप से विभिन्न प्रकार
कच्चा व तैयार माल ले जाते हैं। इनमें संयुक्त राज्य अमेरिका से खाद्य पदार्थ और कोयला, ब्राजील से कॉफी, वेनेजुएला से पेट्रोलियम तथा जमैका से एलुमिनियम आदि का निर्यात होता है। इस मार्ग द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका से जापान को कोयला, कोक, फॉस्फेट और कपास निर्यात होते हैं।

इस जलमार्ग द्वारा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट को भी अत्यधिक लाभ हुआ है। चिली से ताँबा, कोलम्बिया से खनिज तेल और काफी, बोलिविया से जस्ता और टिन, पेरू से नाइट्रेट का परिवहन होता है। इनके अतिरिक्त यहाँ से लौह–अयस्क, ताँबा, एण्टीमनी, सीसा, जस्ता, टिन, केला, कपास, कोको, कॉफी, चीनी आदि उत्तरी अमेरिकी एवं यूरोपीय देशों को भेजे जाते है। पनामा नहर द्वारा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड से ऊन, मक्खन, पनीर, खालें, सीसा, जस्ता, अन्य धातुएँ उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट को भेजी जाती हैं। जबकि बदले में यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से तैयार माल एवं

मशीनरी तथा वेनेजुएला और कोलम्बिया का पेट्रोलियम और अन्य खनिज निर्यात किये जाते हैं।

13.9 आन्तरिक जल–परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक

विश्व में आन्तरिक जल–यातायात में बहुत विषमता एव विविधता पाई जाती है। इस यातायात का उपयोग मुख्यतया उत्तरी अमेरिका एव यूरोप के आर्थिक एव औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों द्वारा किया जाता है। जबकि विश्व के अन्य क्षेत्रों में आन्तरिक जलमार्गों का उपयोग सीमित रूप से किया जाता है। इन मार्गों का उपयोग मुख्यत: भारी माल को देश के आन्तरिक भागों तक पहुँचाने में होता है, क्योंकि यह स्थल परिवहन की अपेक्षा बहुत सस्ता होता है।

आन्तरिक जल यातायात को दो भागों में बाँटा जा सकता है– (i) प्राकृतिक जलमार्ग : नदियाँ और झीलें, (ii) कृत्रिम जलमार्ग : नहरें।

(i) नदियों में वर्ष भर पर्याप्त जलापूर्ति : आन्तरिक जल–परिवहन के लिए यह आवश्यक है कि नदियों में सालभर पर्याप्त मात्रा में जल बहता रहे, ताकि उनमें जहाज या नावें चलाई जा सकें। इस दृष्टि से भूमध्यरेखीय तथा मध्य अंक्षाशीय प्रदेश उपयुक्त है। इनके अतिरिक्त मानसूनी एवं भूमध्यसागरीय प्रदेश भी इसके लिए उपयुक्त हैं। भूमध्यरेखीय प्रदेश में अमेजन तथा मध्य अंक्षाशीय प्रदेश में मिसीसिपी एवं मिसौरी तथा यूरोप की नदियों में जल की भरपूर मात्रा रहती है। उत्तरी भारत में बहने वाली नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलने के कारण उनमें वर्ष भर जल बहता है।

(ii) नदी–जल के प्रवाह की तीव्रता : नदी–जल के प्रवाह की सामान्य तीव्रता होना आवश्यक है, क्योंकि समतल मैदानी भागों में नदी की ढाल प्रवणता अत्यन्त कम तथा पर्वतीय क्षेत्रों में अत्यधिक तीव्र होने के कारण ये जल–परिवहन के लिए अनुपयुक्त होते हैं।

(iii) नदी–मार्ग में जल–प्रपात या क्षिप्रिका का नहीं होना : जिन नदियों में जल–प्रपात और क्षिप्रिकाएँ पाई जाती हैं, वे जल–यातायात के लिए अनुपयुक्त होती हैं। अफ्रीका महाद्वीप की अधिकांश नदियों में इनकी उपस्थिति होने के कारण वे नौगमन के लिए उपयोग में नहीं आती।

(iv) नदी–मार्ग की स्थिति : जल परिवहन के लिए सीधी धारा के रूप में बहने वाली नदियाँ अधिक उपयोगी होती हैं। क्योंकि इनसे जल यातायात के व्यय में कमी आती है।

(v) नदी–धारा का स्वरूप : जो नदियाँ बार –बार अपनी धाराएँ बदलती हैं, वे जल यातायात के लिए उपयोगी नहीं होती हैं। क्योंकि उनके द्वारा परिवहन किये गये माल को उतारने के लिए नये स्थान पर घाट का निर्माण अत्यधिक खर्चीला होता है।

(vi) नदी–मुहाने पर विकसित पत्तन : जिन नदियों के पृष्ठ–प्रदेश व्यापारिक एव औद्योगिक दृष्टि से विकसित होते हैं एवं जिनके मुहाने पर पत्तन विकसित होते हैं, वे नदियाँ जल यातायात के लिए अधिक उपयोगी होती हैं। जबकि अविकसित बन्दरगाह वाली नदियाँ अपेक्षाकृत कम उपयोगी होती हैं।

(vii) पृष्ठ–प्रदेश के उत्पादन–भार की मात्रा एवं मूल्य : यह परिवहन भारी एवं कम मूल्य वाले पदार्थों के परिवहन के लिए उपयुक्त होता है। जिन नदियों के पृष्ठ–प्रदेश में कृषि एवं

खनिज पदार्थों का उत्पादन अधिक होता है, वहाँ जल परिवहन अधिक उपयोगी साबित हुआ है।

(viii) अन्य कारक : आन्तरिक जल परिवहन को नियन्त्रित करने वाले अन्य कारकों में नदी धारा अथवा नहर की चौड़ाई, गहराई एवं जल का उच्चावच, वैकल्पिक परिवहन की सुविधा, परिवहन की व्यवस्था एवं संगठन, प्रशासनिक नीतियां, पृष्ठ–प्रदेश का औद्योगिक एव व्यापारिक–स्तर, माल की सुरक्षा आदि प्रमुख हैं।

13.10 विश्व के प्रमुख आन्तरिक जलमार्ग (Major Inland Waterways)

विश्व में आन्तरिक जल परिवहन के लिए मुख्य मार्ग निम्न हैं –

1. उत्तरी अमेरिका में महान् झील, सेन्ट लारेन्स ओहियो, मिसीसिपी एव उसकी सहायक नदियाँ,
2. उत्तरी यूरोप में राइन, वेजर, एल्व, सीन, म्यूज, ऑडर, विस्चुला, डेन्यूब आदि नदियाँ,
3. CIS में वोल्गा, डॉन, नीपर, डोनेत्स, नीस्टर, ओब, लीना, येनिसी आदि नदियाँ,
4. दक्षिण–पूर्वी एशिया में – (i) चीन में हवांगहो, यांगटिसिक्यांग आदि नदियाँ (ii) भारत में गंगा एवं उसकी सहायक नदियाँ, एव (iii) म्यांमार की इरावदी व सालविन तथा वियतनाम की मिकांग नदी, तथा
5. दक्षिणी अमेरिका में अमेजन नदी।

1. **उत्तरी अमेरिका के आन्तरिक जलमार्ग :** इस महाद्वीप में अधिकांश आन्तरिक जलमार्ग पूर्वी भाग में स्थित हैं। महाद्वीप के पश्चिमी भाग शीतकाल में न्यून तापक्रम, कम वर्षा, विषम धरातल एवं अविकसित अपवाह प्रणाली के कारण जल परिवहन का सीमित उपयोग होता है। यहाँ की अधिकांश नदियाँ आन्तरिक झीलों तथा व्यापारिक दृष्टि से पिछड़े सागरों में गिरती हैं। उत्तरी अमेरिका में महान् झीलें, सेण्ट लरिन्स, मिसीसिपी और उसकी सहायक नदियाँ महत्वपूर्ण जलमार्ग हैं।

   (i) वृहद् झील मार्ग : संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा देशों की सीमा पर स्थित सुपीरियर, मिशिगन, लूरेन, इरी तथा ओण्टोईरयो विश्व में आन्तरिक जल यातायात की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन झीलों के पृष्ठ –प्रदेश खनन, कृषि, पशुपालन, औद्योगिक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से विश्व के सर्वाधिक विकसित प्रदेशों में से हैं। वृहद् झील–सेन्ट लारेन्स नदी जलमार्ग सुपीरियर झील के पश्चिमी तट पर स्थित डुलुथ से लेकर पूर्वी तट पर सेन लारिन्स खाड़ी तक 2400 किमी लम्बी दूरी तय करता है। शीतकाल में ध्रुवीय शीत लहरों के प्रभाव से जमने के कारण यह जलमार्ग बन्द हो जाता है। इस मार्ग द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका का लगभग 10 प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय तथा 19 प्रतिशत घरेलू व्यापार होता है। इस जलमार्ग के अवरोध को दूर करने के लिए सू तथा

वैलेण्ड नहरों का निर्माण किया गया है। इस जलमार्ग को निम्न उप–भागों में बाँटा जा सकता है– (i) सुपीरियर झील मार्ग द्वारा शिकागो, गैरी तथा डेट्रायट बन्दरगाहों तक माल का परिवहन, (ii) मिशिगन झील पर स्थित ग्रीनवे, मिलवाकी, रेसिन, शिकागो, गैरी आदि बन्दरगाहों द्वारा कच्चे तथा तैयार माल का परिवहन, (iii) शिकागो बन्दरगाह से पेट्रोलियम तथा अन्य खनिज पदार्थों को अन्य औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँचाना।

(ii) मिसीसिपी एवं सहायक नदी जलमार्ग : यह जलमार्ग संयुक्त राज्य अमेरिका के महान् मैदान को मैक्सिको की खाड़ी से जोड़ता है। यह कृषि, पशुपालन, खनन एव औद्योगिक दृष्टि से विकसित पृष्ठ–भूमि वाला प्रदेश है। इसमें मिसीसिपी, मिसौरी, ओहियो आदि नौगम्य नदियाँ बहती हैं। इस जलमार्ग द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के कुल जल परिवहन का लगभग 37

प्रतिशत कोयला तथा कोक, 27 प्रतिशत खनिज तेल तथा उसके उत्पाद, 12 प्रतिशत कंकड़ एवं बालू, 5 प्रतिशत रासायनिक पदार्थ, 4.5 प्रतिशत अनाज एवं 4 प्रतिशत इस्पात तथा लौह–अयस्क का परिवहन होता है।

2. **यूरोप के आन्तरिक जलमार्ग :** इस महाद्वीप में नदियों एवं नहरों के उन्नत जाल के कारण यहाँ विश्व में सर्वाधिक विकसित आन्तरिक जल यातायात है। यहाँ की नदियाँ ऊँचे बरफीले पर्वतों से निकल कर सघन जनसंख्या, उन्नत कृषि एवं उद्योग धन्धों वाले समतल प्रदेश से होती हुई उत्तरी सागर में गिरती हैं। यहाँ की प्रमुख नदियों राइन, सीन, ल्वायर, वेजर, एल्ब, ऑडर, विस्चुला आदि हैं। ये नदियाँ सदावाही तथा सामान्य प्रवाह वाली हैं। राइन नदी को यूरोप के व्यापार की जीवन रेखा माना जाता इस महाद्वीप में आन्तरिक जल परिवहन के लिए प्राकृतिक, आर्थिक, व्यापारिक एव औद्योगिक दृष्टि से आदर्श दशाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ अनेक नहरों का निर्माण कर सभी प्रमुख नदियों को जोड़ दिया गया है, जिससे किसी भी दिशा में जल परिवहन किया जा सकता है। इंग्लैण्ड, बेल्जियम, इटली आदि देशों में इन नदियों द्वारा कुल जल परिवहन का 60–80 प्रतिशत तथा जर्मनी का 40 प्रतिशत जल परिवहन नहरों द्वारा होता है। जबकि यूरोप के अन्य देशों में आन्तरिक जल यातायात द्वारा 25 प्रतिशत तक माल परिवहन किया जाता है। इस महाद्वीप की अधिकांश नौगम्य नदियों दक्षिण में आल्पस पर्वतों से निकलकर उत्तर की ओर बहती हैं। इन नदियों को आपस में जोड़ने के लिए पूर्व–पश्चिम दिशा में अनेक नौगम्य नहरें बना दी गई हैं, जिनमें निम्न नहरें प्रमुख हैं : (i) डोर्टमण्ड–एप्स नहर (ii) फिनो नहर (iii) हेवेल–फ्री नहर (iv) ब्रोम्बर्ग नहर (v) फ्रेडरिक विलियम नहर (vi) ऑडर–वार्थे नहर (vii) लुदविंग्स नहर (viii) वेजर –एल्ब नहर (ix) हँसा नहर तथा (x) कील नहर।

राइन नदी परिवहन के दृष्टिकोण से न केवल यूरोप बल्कि सम्पूर्ण विश्व में महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा लगभग 800 किमी. की दूरी तक सीधा जल परिवहन होता है। इस नदी द्वारा वेजर, एल्ब, ऑडर, विस्चुला, रोन, सीन तथा डैन्यूब नदियों तक नहरों द्वारा परिवहन

किया जाता है। एल्ब तथा डैन्यूब यूरोप की दूसरी महत्वपूर्ण नौगम्य नदियाँ हैं। इस मार्ग द्वारा पेट्रोलियम, लौह–अयस्क, धात्विक, खनिज, कोयला, ऊन, कपास, लकड़ी, लुग्दी, अखबारी कागज, रसायन आदि का परिवहन किया जाता है।

CIS में वोल्गा, डॉन, नीपर, डोनेत्स तथा नीस्टर नदी प्रणाली विकसित नौगमन सेवाएँ प्रदान करती हैं। इस नदी प्रणाली द्वारा देश का लगभग 50 प्रतिशत माल परिवहन किया जाता है। लेनिन–डॉन–वोलग नहर द्वारा डॉन तथा वोल्गा नदियों को जोड़ने से CIS का लगभग 65 प्रतिशत माल–परिवहन होता है। वोल्गा नदी CIS की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदी है, जो देश के सर्वाधिक विकसित कृषि–खनन– औद्योगिक पृष्ठप्रदेश से गुजरती है। डॉन, नीपर, डोनेत्स आदि दक्षिण की ओर बहने वाली अन्य प्रमुख नदियाँ हैं, जिनसे देश का 16 प्रतिशत जल परिवहन होता है। आर्कटिक सागर में गिरने वाली मुख्य नदियाँ ओब, येनिसी, लीना और इरतिश हैं, जो केवल ग्रीष्मकाल में परिवहन के उपयुक्त हैं। जबकि शीतकाल में ध्रुवीय शीत लहरों के कारण ये जम जाती हैं। CIS को उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्रों में वोल्गा, बाल्टिक नहर, बाल्टिक–श्वेत सागर नहर तथा अन्य नदियों द्वारा जोड़ा गया है। इस देश के यूरोपीय भाग में जल परिवहन अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है, जिससे लगभग 90 प्रतिशत माल का परिवहन होता है। जबकि रुस के पूर्वी भाग में न्यून तापमान, लम्बा शीतकाल आदि के कारण जल परिवहन द्वारा मात्र 10 प्रतिशत माल का परिवहन होता है।

3. दक्षिणी–पूर्वी एशिया के आन्तरिक जलमार्ग

चीन में आन्तरिक जल परिवहन : दक्षिणी पूर्वी एशिया में चीन आन्तरिक जल परिवहन में अग्रणी हैं। यहाँ यांग्टिसी, सिक्यांग, ह्वांगहो, हान, सुँगारी, पी तथा मीन नदियों द्वारा जल यातायात होता है। यांग्टिसी यहाँ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नौगम्य नदी है, जो अपनी सहायक नदियों एव नहरों द्वारा जल परिवहन सुलभ कराती है। चीन की अधिकांश नदियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है, जो देश के आन्तरिक कृषि–औद्योगिक क्षेत्रों को समुद्र तटीय पत्तनों से जोड़ती हैं। नदी जल–स्तर में ऋत्विक परिवर्तन के कारण जलयानों का आकार एवं भारवाहन क्षमता प्रभावित होती है। ग्रीष्मकाल में जल–स्तर अधिक उच्च रहने के कारण बड़े–बड़े जहाज आ जाते हैं जबकि शीतकाल में केवल छोटे स्टीमर ही चल पाते हैं।

चीन के उत्तरी भाग में दीर्घ शीत ऋतु एवं न्यून तापक्रम होने के कारण जल यातायात विकसित नहीं हो पाया है। यहाँ सुँगारी नदी में हार्विन से सीमा तक केवल छोटे स्टीमर एवं नावों द्वारा ही परिवहन होता है। दक्षिणी चीन जल यातायात की दृष्टि से विकसित हैं। एक भाग में सिक्यांग, मीन, हॉन आदि नदियों द्वारा जल–यातायात की सुविधा है। ह्वांगहो तथा पी, नदियों में भी जल–यातायात की सीमित सुविधा है।

भारत आन्तरिक जल परिवहन के विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। यहाँ गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ नौगम्य हैं, परन्तु इनमें नौ–परिवहन नगण्य है। जबकि 19वीं शताब्दी में गंगा नदी में कोलकाता से इलाहाबाद तथा ब्रह्मपुत्र नदी द्वारा डिब्रुगढ तक माल का

यातायात होता था। भारत में जल परिवहन के पिछड़ेपन के प्रमुख कारण निम्न हैं – (क) रेलमार्ग का समानान्तर विकास एवं प्रतिस्पर्धा (ख) जल–स्तर में मौसमी पीरवर्तन (ग) जल परिवहन के लिए संगठनात्मक व्यवस्था का अभाव तथा (घ) बांग्लादेश का अमैत्रीपूर्ण व्यवहार। वर्तमान में नदियों द्वारा लकड़ी, चूना तथा खनिजों का सीमित परिवहन होता है।

4. **अन्य देशों में आन्तरिक जल–यातायात :** दक्षिणी–पूर्वी एशिया में म्यानमार, थाईलैण्ड, वियतनाम, कम्बोडिया आदि देशों में इरावदी, सालवीन मिकांग आदि नदियाँ आन्तरिक भागों को समुद्र तटीय भागों से जोड़ती हैं। इन नदियों द्वारा लकड़ी एवं अन्य वनोत्पादों का सीमित परिवहन किया जाता है।

बोध प्रश्न – 1

1. परिवहन के साधनों का अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है?

....

....

2. परिवहन के प्रमुख आधार क्या हैं?

....

....

3. यातायात के लिए किन–किन साधनों का प्रयोग किया जाता है?

....

....

4. व्यापारिक जलयानों के प्रकार बताइये।

....

....

5. विश्व के प्रमुख महासागरीय जलमार्ग कौन–कौन से हैं?

....

....

6. आन्तरिक जलमार्गों का महत्व बताइये।

....

....

7. अटलांटिक महासागरीय जलमार्ग का क्या महत्व है?

....

....

8. स्वेज नहर के प्रमुख बन्दरगाहों के नाम बताइये ।

....

....

13.11 सारांश (Summary)

औद्योगिक एव व्यापारिक विकास के लिए परिवहन अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक हैं। परिवहन के साधनों की द्रुतगति एवं लागत में कमी से विश्व के प्रदेशों के मध्य दूरी में निरन्तर कमी आई है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्रान्ति के फलस्वरूप जल परिवहन विदेशी व्यापार का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है, जिसके कारण प्रदेश विशेष के उत्पादों के विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिला है। आज विदेशी व्यापार में दूरी, समय तथा लागत में आई कमी भी इसी का परिणाम है। जलयानों के बढ़ते आकार और ईंधन के प्रयोग से जल परिवहन यातायात के अन्य साधनों की तुलना में सस्ता है।

13.12 शब्दावली (Summary)

- **परिसंचार तन्त्र** : इसके अन्तर्गत परिवहन और संचार दोनों आते हैं। वस्तु अथवा मानव के आवागमन को परिवहन तथा संदेशों के आदान–प्रदान को संचार कहते हैं।
- **परिपूरकता** : विश्व के विभिन्न प्रदेशों में भौतिक एवं आर्थिक तत्वों की भिन्नता के कारण वस्तु विशेष के उत्पादन की भिन्नता पाई जाती है। जिसके कारण एक प्रदेश की दूसरे प्रदेश पर निर्भरता रहती है।
- **परस्पर विनिमयता** : दो प्रदेशों के मध्य वस्तुओं के आदान–प्रदान को परस्पर विनिमयता कहते हैं।
- **परिवहन लागत** : वस्तुओं अथवा मानव के आवागमन का भाड़ा/किराया परिवहन लागत कहलाता है।
- **पृष्ठभूमि** : किसी बन्दरगाह अथवा नगर केन्द्र के चारों ओर स्थित क्षेत्र जिनके मध्य सेवाओं का आदान–प्रदान होता है।

13.13 सन्दर्भ गन्ध (Reference Books)

1. कौशिक एस.डी. एवं गौतम, अलका : संसाधन भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ, 2006, पृ.565–596.
2. कौशिक एस.डी. : आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त, शिवाजी रोड, मेरठ, 2003, पृ. 380 – 404.
3. सिंह, जगदीश एवं सिंह, काशीनाथ : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 2001, पृ. 437–453.
4. श्रीवास्तव, वी.के एवं राव, बी.पी : आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2003, पृ. 315–339.
5. यादव, एस.पी. सिंह.एव.गर्ग, एस.एस : संसाधन भूगोल, प्रगति प्रकाशन, मेरठ, 1998, पृ. 262–303.
6. नेगी, बलवीर सिंह : संसाधन भूगोल, केदारनाथ रामनाथ प्रकाशन, मेरठ, पृ. 132–173.

7. Zimmerman, E.W. : World Resources and Industries, Harper and Coy, New York.
8. Choudhary, M.R. : Economic Geography, Oxford & IBH Publishing, New Delhi, 1982,p. 255–276.
9. Leong, G.C. : Human and Economic Geography, Oxford University Press, London, 1982.

13.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यापारिक एव औद्योगिक विकास के लिए परिवहन के साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। परिवहन के द्वारा दो प्रदेशों के मध्य वस्तुओं की विषमता के आर्थिक क्रियाएँ परस्पर आश्रित तथा क्रियाशील रहती हैं।
2. दो प्रदेशों के मध्य वस्तुओं की मांग परिपूरकता, मध्यवर्ती आपूर्ति –स्रोत का अभाव तथा परस्पर विनिमयता परिवहन के प्रमुख आधार हैं।
3. यातायात के लिए मानव पशु भारवाहक, सड़क, रेल, पाइपलाइनों एव जलयानों वायुयानों का प्रयोग किया जाता है।
4. व्यापारिक जलयान के अन्तर्गत मुख्यतया महासागरीय, सागरीय, मत्स्य तथा छोटे जहाज आते हैं।
5. उत्तरी अटलांटिक, पश्चिमी यूरोप–भूमध्य सागर–हिन्द महासागर, केप ऑफ गुड होप, दक्षिणी अटलांटिक, केरिबियन सागर, स्वेज नहर तथा पनामा नहर मार्ग प्रमुख महासागरीय जलमार्ग हैं।
6. आन्तरिक जलमार्गों द्वारा कच्चा एवं निर्मित भारी माल एक देश के एक भाग से दूसरे भाग में स्थित औद्योगिक एव व्यापारिक परिवहन लागत द्वारा भेजा जाता है। केन्द्रों तक आसानी से
7. यह विश्व का व्यस्ततम महासागरीय जलमार्ग है जो पश्चिमी यूरोपीय और उत्तरी अमेरिकी देशों को जोड़ता है। उत्तरी अटलांटिक महासागर के दोनों तटों पर विश्व के प्रमुख औद्योगिक एव विकसित देश स्थित हैं। इस जलमार्ग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में खाद्य पदार्थ, कच्चे माल एवं उत्पादित सामग्री की मात्रा विश्व के सभी जलमार्गों से अधिक रहती है। विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लगभग एक–चौथाई भाग इस मार्ग से होता है।
8. स्वेज नहर के भूमध्यसागरीय तट पर पोर्ट सईद तथा लाल सागर में स्वेज और तौफिक प्रमुख बन्दरगाह हैं।

13.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवहन के प्रमुख आधारों का वर्णन कीजिये।
2. यातायात के साधनों के सापेक्षिक महत्व का वर्णन कीजिए।
3. उत्तरी अटलांटिक महासागरीय जलमार्ग पर एक लेख लिखिए।
4. यूरोप के प्रमुख आन्तरिक जलमार्ग कौन–कौनसे हैं? उनका वर्णन कीजिए।

इकाई14 :वॉन थूईनेन के कृषि अवस्थिति सिद्धान्त के संदर्भ में : भूमि– उपयोग की स्थानिक संरचना (Spatial Organisation off Land use with Special Reference to Won Thunen's Theory of Agriculture Location)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 वॉन थुइनेन का सिद्धान्त

14.3 वॉन थूइनेन की मान्यताएं

14.4 वॉन थुइनेन द्वारा प्रतिपादित वलय या मण्डल

14.5 वॉन थुइनेन की स्वीकारोक्तियां

14.6 थुइनेन की आलोचना

14.7 समालोचना

14.8 सिद्धान्त का महत्व

14.9 सारांश

14.10 शब्दावली

14.11 संदर्भ ग्रन्थ

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप समझ सकेंगे –

- कृषि–भूमि उपयोग में भिन्नताएं,
- वॉन थूइनेन का सिद्धान्त,
- वॉन थुइनेन के सिद्धान्त की आलोचना – समालोचना,
- वॉन थूइनेन के सिद्धान्त का महत्व।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

कृषि प्राचीन काल से ही मानव–सभ्यता एवं संस्कृति के विकासक्रम की प्रतीक एव प्रगति का आधार मानी जाती रही है और समय–समय पर इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। आदिम स्थानान्तरण कृषि से लेकर आधुनिक विकसित व्यापारिक कृषि तक इसमें कई परिवर्तन एवं संशोधन हुये हैं।

भूमि–उपयोग से तात्पर्य सामाजिक मूल्यों के अनुसार किसी क्षेत्र में प्राकृतिक वातावरण के साथ आर्थिक शक्तियों की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न भूमि–प्रारुप से है।

कृषि उत्पादन विस्तृत क्षेत्र में होता है, लेकिन किसी क्षेत्र विशेष में कौनसी फसल विशेष का उत्पादन किया जाये, इसका निर्णय करना पड़ता है इन निर्णयों के फलस्वरूप ही कृषि की गतिविधियों से उत्पन्न प्रारुप व स्थिति में परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे कृषि भूमि उपयोग की स्थानिक सरंचना विकसित होती है।

चित्र – 14.2 में दर्शाया गया है कि किस प्रकार स्थिति लगान (लाभ) किसी क्षेत्र में फसल के उत्पादन को निर्धारित करता है? जैसा कि 'अ' वस्तु का उत्पादन 40 कि.मी. दूरी तक व 'ब' वस्तु का उत्पादन 8० कि.मी. दूर तक व 'स' वस्तु का उत्पादन 120 कि.मी. तक हो सकता है लेकिन इस चित्र का गहन अध्ययन करें तो पता लगेगा कि 'अ' वस्तु का उत्पादन वक्र बाजार से 26 कि.मी. की दूरी तक ही 'ब' वस्तु की वक्र रेखा से उपर रहता है। लेकिन 26 कि.मी. के बाद 'ब' का लाभ मूल्य 'अ' की अपेक्षा बढ़ जाता है। अत: 'ब' का उत्पादन 'अ' की अपेक्षा लाभप्रद हो जाता है, इसी प्रकार स का वक्र 60 कि मी. की दूरी तक 'ब' की अपेक्षा नीचा रहता है अर्थात 'ब' फसल का उत्पादन लाभप्रद है, लेकिन 60 कि.मी. की दूरी के बाद 'ब' का वक्र 'स' से नीचा हो जाता है। अत: फसल 'स' से लाभ मिलने लगता है अत: 'स' वस्तु का उत्पादन ही अधिक उपयोगी होता है। ये वक्र फसलों के तुलनात्मक अधिक लाभ की दशाएँ प्रकट करते हैं। अब अगर 'अ', 'ब', 'स' वस्तुओं की उत्पादन की अधिकतम लाभ की स्थितियों को आधार मानकर इसे बाजार (केन्द्र) के चारों ओर घुमाया जायेगा तो स केन्द्रीय वृत्तों की रचना होगी जो बाजार के चारों और 'अ', 'ब', 'स' फसलों के उत्पादन क्षेत्रों की सीमा बताती है जो तुलनात्मक लाभ के नियम पर आधारित है।

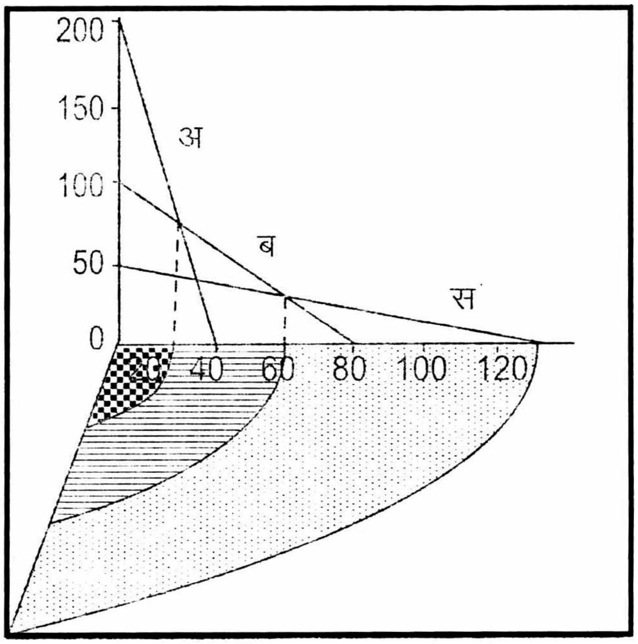

चित्र–14.1 : प्रति हेक्टर स्थिति लगान

वास्तव में थूइनेन का कृषि का स्थानीयकरण सिद्धान्त दो क्षेत्रों के तुलनात्मक लाभ पर आधारित है, उसके अनुसार अगर दो क्षेत्रों में दो फसलों का उत्पादन संभव हो और प्रत्येक क्षेत्र में किसी एक फसल का उत्पादन दूसरी फसल की अपेक्षा अधिक होता हो तो प्रत्येक क्षेत्र को उस फसल (अधिक उपज वाली) के उत्पादन में विशिष्टीकरण करना चाहिये ताकि अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

तालिका – 14.1 : गेहूँ एवं मक्का का 'अ' व 'ब' क्षेत्र के उत्पादन

	'अ' क्षेत्र	'ब' क्षेत्र
गेहूँ	30 क्विंटल	25 क्विंटल
मक्का	50 क्विंटल	30 क्विंटल

उक्त सारिणी में 'अ' में मक्का व 'ब' में गेहूं (मूल्य की दृष्टि से) उत्पादन अधिक लाभकारी होगा।

कृषि भूमि उपयोग में जैसे–जैसे किसी केन्द्र से दूरी बढ़ती जाती है केन्द्र का प्रभाव कम होता जाता है, इस दृष्टि से कृषि उत्पादन का क्षेत्र बाजार के निकट होने पर अधिक लाभ प्राप्त करता है और जैसे–जैसे बाजारी केन्द्र से क्षेत्र की दूरी बढ़ती जायेगी लाभ कम प्राप्त होता जायेगा व दूर के क्षेत्र घटती उपयोगिता के हो जायेंगे। इसे एक वस्तु के उत्पादन व बेचने पर प्राप्त लाभ पर लागू किया जाय तो निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त कर सकते है

किसान का शुद्ध लाभ = उ (बा.मू.-उ.ला.) - उ x प.ला. x दूरी

उ = प्रति इकाई भूमि की उपज

बा.मू. = प्रति इकाई उपज का बाजार में मूल्य

उ.ला. = प्रति इकाई उत्पाद की उत्पादन लागत

प.ला. = प्रति इकाई उत्पाद की परिवहन लागत

दू = भूमि की बाजार से दूरी

इस प्रकार कृषि में विस्तृत क्षेत्र का उपयोग होता है अत: कृषक को जो मूल्य प्राप्त होगा उसमें उत्पादन लागत व माल को बाजार तक पहुंचाने की लागत भी कम करनी होगी। यहां हम फसल 'अ' की बाजार से दूरी के कारण स्थिति लगान (स्थिति लाभ) में भिन्नता इस प्रकार पायेंगे, यह मानते हुये कि बाजार से 'अ' फसल का प्रति इकाई मूल्य 200 रु. प्राप्त हो रहा है।

तालिका – 14.2 : प्रति इकाई भूमि का स्थिति का लगान

दूरी किलोमीटर में	0	10	20	30	40
कुल परिवहन लागत	0	50	100	150	200
प्रति इकाई भूमि की स्थिति का लगान (लाभ)	200	150	100	50	0

चित्र – 14.2 में उक्त तालिका को आरेख द्वारा प्रदर्शित किया गया है, इसमें बनने वाले लाभ के वक्र से भी स्पष्ट है कि 40 कि.मी. तक की दूरी तक ही फसल का उत्पादन लाभप्रद होगा इसके आगे हानि होने लगती है अत: उत्पादन रूक जायेगा इससे यह स्पष्ट है कि एक फसल

के उत्पादन में दूरी महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे ही हम अन्य फसलों के लिये भी बाजार से उनकी सापेक्षिक दूरी तक उत्पादन की स्थिति ज्ञात कर सकते है। इसमें प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिये अलग–अलग लाभ का वक्र बनेगा। जो यह स्पष्ट करता है कि फसलों का उत्पादन, बाजार से कितनी दूरी तक लाभप्रद होगा या लाभ की स्थिति लिये होगा। प्रत्येक कृषि उत्पादन के लिये लाभ का वक्र निम्नांकित दशाओं पर निर्भर करेगा।

1. वस्तु का बाजारी मूल्य उसकी मांग और पूर्ति पर निर्भर करता है।
2. वस्तु के भारीपन, टिकाउपन व परिवहन लागत पर निर्भर करता हैं।
3. यहां वस्तु की उत्पादन लागत सभी जगह समान मानी गई हैं।
4. यहां भूमि की प्रति इकाई एक उपज विशेष होती है ।जो समान मानी गई है।
5. यहां वस्तु का बाजार मूल्य भी समान माना गया है।

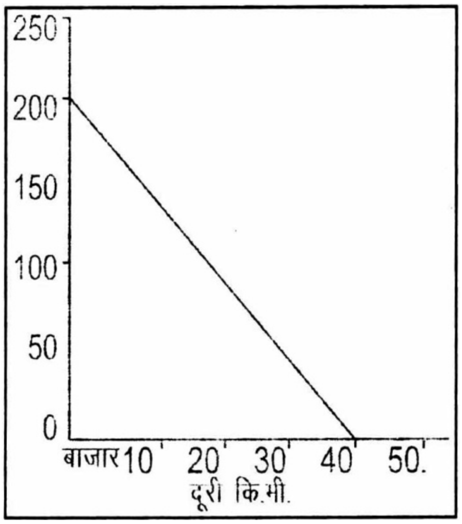

चित्र – 14.2 : स्थिति लगान (रुपयों में)

14.2 वॉन थूइनेन का सिद्धान्त (Theory of Von Thunen)

वॉन थुइनेन का पूरा नाम जॉहन हेनरिच वॉन थुइनेन (Johan Heinrich Von Thunen) था जो उत्तरी जर्मनी में रोस्टोव नगर के निकट 'टेलोव' के कृषि फार्म का मालिक था, उसने पाया कि वास्तविक दशाओं में कृषि उत्पादन की भिन्नता के कई कारण है उदाहरण के लिये भूमि का ढाल, भूमि की उर्वरा शक्ति, वर्षा, जल प्रवाह आदि में भिन्नता पाई जाती है अत: फसल उत्पादन में भी भिन्नता मिलती हैं लेकिन इन सभी प्रभावक तत्वों को हटा दिया जाये तो भी क्या कृषि उत्पादन में भिन्नता आयेगी अर्थात् तब भी क्या इसमें ऐसा कोई आधारभूत कारण निहित है जो कृषि भूमि के उपयोग की भिन्नता को स्पष्ट करता है? वॉन थूइनेन ने कई वर्षो के कृषि अनुभव के आधार पर 1826 में अपनी पुस्तक 'एकाकी प्रदेश' (Isolated State) में अपने विचारों को बताया जिसमें उसने स्पष्ट किया कि एक 'दूरी' का चर ही न केवल कृषि के स्वरूप को प्रभावित करता है बल्कि उससे सम्पूर्ण स्थानिक अर्थ व्यवस्था भी प्रभावित होती है।

14.3 वॉन थुइनेन की मान्यताएं (Assumptions of Von Thunen)

1. एक ऐसा एकाकी प्रदेश (Isolated State) हो जिसमें केवल एक ही नगर हो और उसकी पृष्ठ भूमि में एक विस्तृत कृषि प्रदेश हो,
2. यह नगर आस–पास के कृषि प्रदेश की अतिरिक्त पैदावार का एक मात्र बाजार हो तथा यह नगर अन्य किसी कृषि प्रदेश से माल आयात न करता हो,
3. यह एकाकी प्रदेश अपनी अतिरिक्त पैदावार को इस नगर में ही बेचता हो और अन्य बाजारों में माल न जाता हो
4. इस प्रदेश में एक समान धरातल, मिट्टी की उर्वरता व जलवायु हो और फसलों के उत्पादन के योग्य हो
5. इस एकाकी प्रदेश में नगर के अतिरिक्त शेष ग्रामीण आबादी हो तथा किसान अधिकतम लाभ प्राप्त करने के इच्छुक हो तथा नगर में मांग के अनुसार फसलों में फेर बदल करने में सक्षम हो
6. परिवहन का साधन इस प्रदेश में एक ही प्रकार का हो यथा घोड़ागाड़ी या बैलगाड़ी। (तत्कालीन दशाओं में यही परिवहन का प्रमुख साधन था।)
7. परिवहन खर्च दूरी व भार के अनुपात में बढ़ता हो।

वॉन थूइनेन ने उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर यह बताया कि कृषि के लिये किस प्रकार का भूमि उपयोग का विकास होगा। यह उस वस्तु के बाजारी मूल्य, उत्पादन लागत व परिवहन खर्च पर निर्भर करेगा। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

किसान का लाभ = प्राप्त बाजारी मूल्य – (उत्पादन लागत + परिवहन खर्च)

इस सूत्र के आधार पर थूइनेन ने कुछ चुने हुए पदार्थ के लाभ को तालिका– 14.3 में प्रदर्शित किया है।

तालिका 14.3 में प्रति एकड़ बाजार से प्राप्त मूल्य प्रति इकाई उत्पादन खर्च, प्रति इकाई परिवहन लागत जो दूरी के अनुपात में घटती–बढ़ती है व प्राप्त लाभ को प्रदर्शित किया है। इस तालिका से स्पष्ट है कि लकड़ी का उत्पादन बाजार से तीन इकाई दूरी तक व अनाज का उत्पादन पांच इकाई दूरी तक ही हो सकता है, इससे आगे परिवहन खर्च दोनों वस्तुओं पर इतना बढ़ जाता है कि लाभ समाप्त हो जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नगर के पास वस्तुओं के उत्पादन में अधिक चुनाव की गुंजाइश है जबकि नगर से दूरी बढ़ने पर चुनाव की गुंजाइश घटती जाती है। यह सब अन्य सभी दशाओं को समान मानकर, केवल दूरी के अनुपात में परिवहन लागत की वृद्धि के आकलन से स्पष्ट होता है। उक्त सारिणी में ईंधन (लकड़ी) के उत्पादन में 1 इकाई तक लाभ 40 है जबकि तीन इकाई दूरी पर शून्य हो जाता है। यहां आर्थिक लगान (Economic rent) या स्थिति लगान का नियम व दूरी प्रभाव क्षीणता का नियम दोनों ही साथ–साथ लागू है। वॉन थूइनेन के सिद्धान्त को समझने के लिये आर्थिक लगान व स्थिति लगान को समझना आवश्यक है।

आर्थिक लगान (Economic rent)

आर्थिक लगान वह लाभ है जो किसी भूमि की प्रति इकाई द्वारा, अन्य घटिया किस्म की भूमि की प्रति इकाई से अच्छे गुणों वाली (उपजाऊ) होने के कारण मिलता हैं। (Economic rent is the surplus income that can be obtained from one unit of land over that which can be obtained from an inferior unit of land) चूंकि उक्त सरलीकृत आर्थिक भूदृश्य (एकाकी प्रदेश) में यह जानते है कि कृषक को समान मूल्य मिल रहा है किन्तु परिवहन लागत में दूरी की आनुपातिक दर से वृद्धि होने के कारण नगर से जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है कृषक का आर्थिक लगान (लाभ) कम होता जाता है।

यहां आर्थिक लगान का तात्पर्य बाजार के संदर्भ में कृषि उत्पादन के लिये सबसे महत्वपूर्ण लाभ की स्थिति से है, जो बाजार से दूरी पर निर्भर करता है। अत: इस नियम को व्यक्त करने के लिये इसे आर्थिक लगान (Economic rent) के बजाय स्थिति लगान (Location rent) के रूप में भी व्यक्त कर सकते है। यहां अधिकतम स्थिति का लाभ बाजार के निकट प्राप्त होगा और जैसे –जैसे बाजार से दूरी बढ़ती जायेगी स्थिति का लाभ कम होता जायेगा। यहां तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ प्राप्त करने से ही कृषि भूमि का उपयोग निर्धारित होता है। इसी आधार पर नगर के चारों ओर कृषि भूमि उपयोग के संकेन्द्रीय वृत्तों या मण्डलों की कल्पना थूइनेन ने की।

तालिका - 14.3 : उत्पादन पर लागत व लाभ

ईंधन					अनाज			
वृत्त नगर से दूरी इकाई में	1 बाजार में मूल्य	2 उत्पादन खर्च	3 परिवहन खर्च	4 लाभ	1 बाजार में मूल्य	2 उत्पादन खर्च	3 परिवहन खर्च	4 लाभ
½	200	140	10	50	80	50	3	27
1	200	140	20	40	80	50	6	24
$1^{1/2}$	200	140	30	30	80	50	9	21
2	200	140	40	20	80	50	12	18
$2^{1/2}$	200	140	50	10	80	50	15	15
3	200	140	60	0	80	50	18	12
$3^{1/2}$	200	140	70	0	80	50	21	9
4	200	140	80	0	80	50	24	6
$4^{1/2}$	200	140	90	0	80	50	27	3
5	200	140	100	0	80	50	30	0

14.4 वॉन थुइनेन द्वारा प्रतिपादित वलय या मण्डल (Land–use Zones According to Von Thunen)

1. **पहला वलय या मण्डल** : चित्र संख्या 14.5 के अनुसार नगर के पास ही भूमि का उपयोग शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के उत्पादन में होगा जैसे दूध व शाक सब्जियां क्योंकि ये जल्दी खराब होने वाली वस्तुएं है। नगर में दूध व दुग्ध पदार्थो तथा शाक सब्जी की जितनी अधिक मांग होगी, उतना ही यह वलय अधिक बड़ा होगा अर्थात अधिक दूरी तक फैला होगा। यह नकदी फसलों का क्षेत्र होगा इसमें फल, शाक, सब्जी व दुग्ध व्यवसाय महत्वपूर्ण होता है। गहन कृषि के लिये अधिक श्रम व भारी मात्रा में खाद का उपयोग किया जाता है। इसकी अधिकतम दूरी 4 मील (लगभग 6 किलोमीटर) मानी गई क्योंकि तत्कालिन दशाओं में घोड़ा गाड़ी से अधिक दूर खाद ले जाना संभव नहीं था।
2. **दूसरा मंडल या वलय :** इसमें ईंधन के लिये लकड़ी (वृक्ष) उगाई जायेगी, क्योंकि उस समय लकड़ी की ईंधन का मुख्य साधन थी अधिक भारी पन के कारण ईंधन दूर से लाना लाभप्रद नहीं था। सारिणी से स्पष्ट हो जाता है कि अनाज की अपेक्षा लकड़ी का (ईंधन का) उत्पादन अधिक उपयुक्त है क्योंकि लकड़ी का उपयोग ईंधन व भवन निर्माण में अधिक होता था और परिवहन लागत भी अधिक होती थी इसलिये परिवहन लागत को कम करने के लिये नगर के नजदीक उगाया जाता था।
3. **तीसरा मंडल या वलय:** इसमें अनाज का उत्पादन होगा इसमें गहन कृषि की जायेगी व भूमि परती नहीं छोड़ी जायेगी। इसमें ईंधन भी हो सकता है लेकिन ईंधन की अपेक्षा अनाज उत्पादन में अधिक लाभ होने लगता है। अत: अनाज ही उगाया जायेगा। इस वलय में छ: वर्षीय फसली चक्र अपनाया जाता था।
4. **चौथा वलय या मंडल :** इसमें अनाज की खेती होगी लेकिन ईंधन के लिये लकड़ी का उत्पादन बिल्कुल नहीं होगा।
5. **पांचवा वलय या मंडल :** इसमें अनाज की खेती होगी लेकिन परती भूमि का विस्तार बढ़ जायेगा यहां विस्तृत कृषि होगी।
6. **छठा वलय या मंडल :** इसमें पशुपालन का क्षेत्र होगा यहां पर पनीर व मक्खन का उत्पादन होगा जो कि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएं नहीं है उन पर परिवहन भार भी कम होगा साथ ही पशुओं को बेचने के लिये (मांस के लिये) बाजार तक ले जाया जा सकता है। यह स्थायी चरागाह का क्षेत्र होगा।

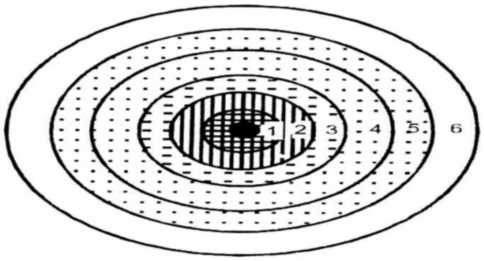

चित्र – 14.3 : वान थूइनेन के अनुसार भूमि उपयोग के लिए वलय या मण्डल

14.5 वॉन थुइनेन की स्वीकारोक्तियां

1. **यातायात के साधन में परिवर्तन :** थूइनेन ने इस बात को स्वीकार किया कि अगर यातायात का साधन बदलकर जल यातायात हो जाये तो संकेन्द्रीय वृत्त नदी या नहर के सहारे समानान्तर पेटियों में बदल जायेंगे। चित्र 14.4।

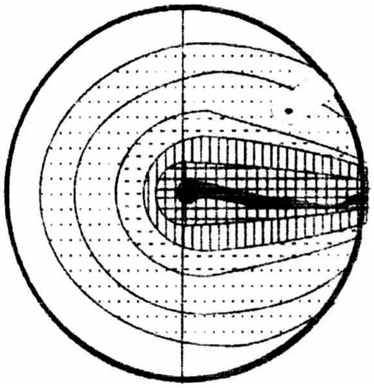

चित्र– 14.4 : जल यातायात एवं छोटे केन्द्र का प्रभाव

2. **पृष्ठ–प्रदेश में अन्य केन्द्र की उपस्थिति :** थूइनेन ने इस बात को भी स्वीकार किया कि इसी क्षेत्र में अगर कोई छोटा नगर उस कृषि क्षेत्र में होता है तो उसके पास का कृषि भूमि उपयोग बड़े नगर के विरुद्ध दिशा में छोटे नगर के आस–पास छोटे संकेन्द्रीय (भूमि उपयोग के) वृत्त बन जायेंगे अर्थात् छोटा नगर भी अपने आस–पास के भूमि उपयोग को प्रभावित करेगा (चित्र 14.5)।

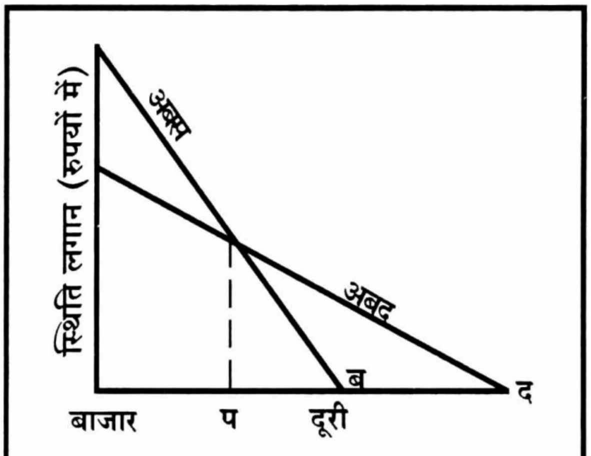

चित्र – 14.5 : फसलों के संयुक्तीकरण का प्रभाव

3. **फसलों के संयुक्तीकरण का प्रभाव :** जैसे किसी क्षेत्र में 'अ' और 'ब' दो ऐसी फसलें है जो सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्पादित की जा सकती है लेकिन बाजार से 'प' बिन्दु तक 'स' के साथ व प बिन्दु से बाहर 'द' फसल के साथ बोना (sowing) लाभप्रद होता है। इस प्रकार संयुक्त फसलों के अनुसार भी वृत्त भी बढ़ते जायेंगे जो मांग पर निर्भर करते हैं।

4. **दो बाजार के केन्द्रों का प्रभाव :** अगर दो बाजार के केन्द्र होंगे तो दोनों के चारों ओर संकेन्द्रीय वृत्तों का निर्माण होगा और तब बाहरी कटिबन्ध (वलय) अण्डाकार हो जायेगा तथा कटी हुई रेखा दोनों के पृष्ट प्रदेशों के मध्य की सीमा रेखा बन जायेगी। चित्र – 14.6।

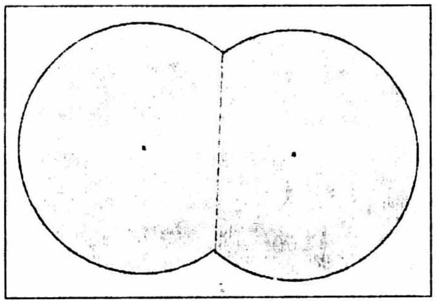

चित्र – 14.6 : दो बाजारों के केन्द्रों का प्रभाव

5. **दो से अधिक केन्द्रों का प्रभाव :** दो या दो से अधिक बाजारी केन्द्र होने पर अधिक जटिलता आ जायेगी इस दशा में आन्तरिक वलयों का झुकाव अलग–अलग बाजार के केन्द्रों की ओर होगा तथा बाहरी केन्द्रों का झुकाव सम्पूर्ण क्षेत्र के केन्द्रों की ओर होगा जैसे–जैसे बाजारी केन्द्र बढ़ते जायेंगे उनके पृष्ठ प्रदेशों में भूमि उपयोग का स्वरूप अधिक जटिल होता जायेगा। देखिये चित्र संख्या 14.7

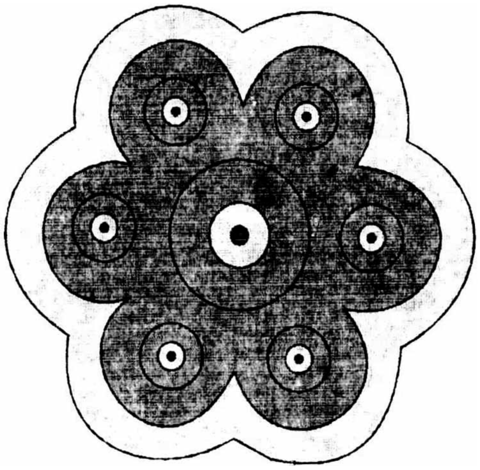

चित्र– 14.7 : दो से अधिक केन्द्रों का प्रभाव

6. **परिवहन मार्गो के विकास का प्रभाव :** वॉन थूइनेन ने यह भी अनुभव किया सडकों का विकास होने पर दूरी का प्रभाव कम होने लगता है, क्योंकि सडकों के सहारे माल व मनुष्यों की गतिशीलता सरल हो जाती है और बढ़ भी जाती है तब भूमि उपयोग का स्वरूप इन परिवहन मार्गो के सहारे–सहारे संकेन्द्रीय न रहकर लम्बा हो जाता हैं।

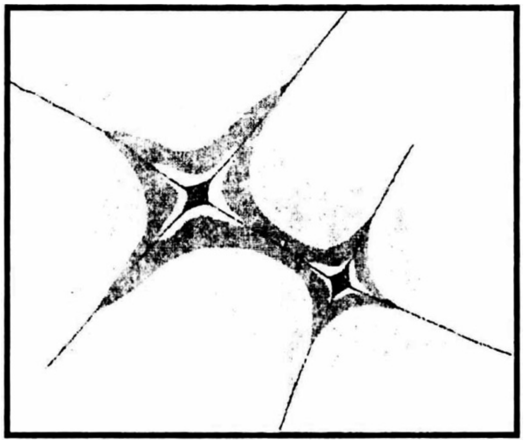

चित्र– 14. 8 : परिवहन मार्गों के विकास का प्रभाव

आर.एम.हर्ड (1903) व आर.एल.हेग (1926) ने थूईनेन के विचार को नगरीय भूमि उपयोग को स्पष्ट करने के लिये (प्रथम प्रयास के रुप में) किया। हर्ड के अनुसार भूमि का मूल्य आर्थिक लगान पर निर्भर करता है, आर्थिक लगान भूमि की स्थिति पर निर्भर करता है, भूमि की स्थिति सुविधाओं पर और सुविधाएं, समीपता पर निर्भर करती है।

वान वाल्कन वर्ग व सी.सी.हेड (1952) ने ग्रामीण बसाव और भूमि उपयोग के अध्ययन में पाया कि सम्पूर्ण यूरोप में थूईनेन के अनुसार भूमि उपयोग पाया जाता है। उन्होंने 8 वस्तुओं के उत्पादन के आधार पर (गेहूं, राई, जई, जी, मक्का, आलू चुकन्दर व घास) यूरोप में उत्पादन की गहनता को आका जो थूईनेन के विचारों से साम्यता रखता है (चित्र 14.9) ।

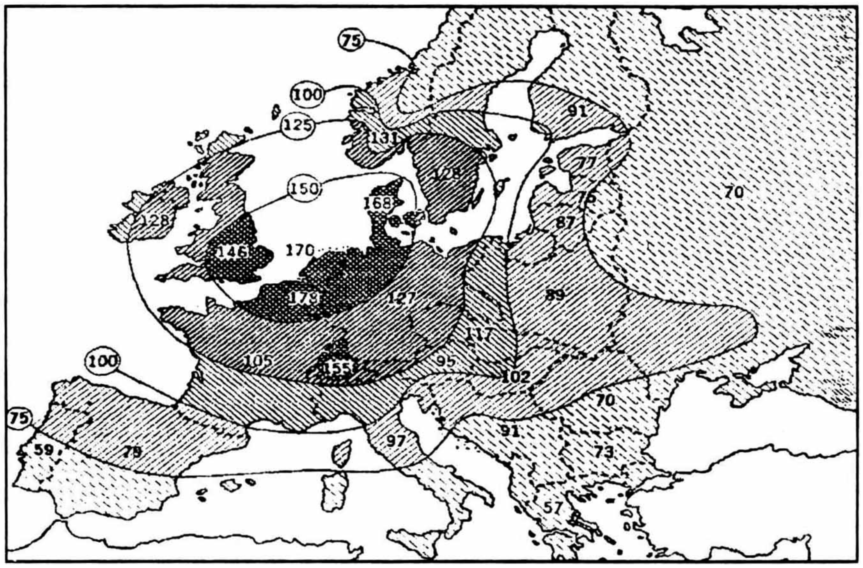

चित्र– 14.9 : यूरोप में कृषि उत्पादन की गहनता

(यूरोप की औसत उपज प्रति हेक्टेयर 100 मानकर)

बोध प्रश्न – 1

1. वॉन थुइनेन कहां का रहने वाला था ?

....

....

2. थूईनेन ने अपने सिद्धान्त में कितने वलय या मण्डल बताए ?

....

....

3. एकाकी प्रदेश को स्पष्ट कीजिए।

....

....

4. टेलोव का कृषि फार्म कहां स्थित था ?

....

....

5. क्या परिवहन लागत दूरी के अनुपात में बढ़ती है ?

....

....

6. थूईनेन का पूरा नाम क्या था ?

....

....

14.6 थूईनेन की आलोचना

1. ऐसा एकाकी प्रदेश जिसमें सब दशायें समान हो वास्तविक जगत में मिलना संभव नहीं है।
2. परिवहन के साधन भी भिन्न–भिन्न व कई प्रकार की सघनता से युक्त मिलते है। तथा परिवहन लागत भी आनुपातिक दर से न बढ़कर अधिक दूरी पर कम होती जाती है।
3. किसी भी प्रदेश में धरातल, जलवायु, मृदा की उर्वरता आदि में सर्वत्र समानता नहीं पाई जाती है।
4. समय के साथ परिवर्तन से लकड़ी ही ईंधन का मुख्य साधन नहीं रही है।
5. शीतकरण विधि के विकसित होने से वस्तुओं को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है एवं अधिक दूरी तक (द्रुतगामी परिवहन साधनों से) जल्दी पहुंचाया जा सकता हैं अत: दूरी का इतना प्रभाव नहीं पड़ता जैसा थूईनेन ने माना है।
6. नगरों के चारों और समतल मैदान नहीं होते है बल्कि झीलें, तालाब, पहाड़ी भाग, नदियां, पठारी भाग व बंजर जमीन भी होती है अत: जहां पहाड़ी भाग, पठारी भाग, दलदल आदि भी होते हैं वहां संकेन्द्रीय वलय नहीं बनते है बल्कि मृदा की उत्पादन क्षमता में अन्तर होने से संबंधित मण्डलों या वलयों का फैलाव कम या ज्यादा हो सकता है।
7. शफी ने (1977) अलीगढ़ जिले की कोइल तहसील के गांवों के भूमि उपयोग – प्रति रूपों का विभिन्न चरों के आधार पर अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि कृषि प्रधान देश में जहाँ कृषि ही मानव का मुख्य व्यवसाय है वहां बसाव से दूरी का प्रभाव भूमि उपयोग पर

नहीं पड़ता बल्कि वहां उपलब्ध सिंचाई की सुविधाओं से दूरी का प्रभाव, कृषि भूमि उपयोग को प्रभावित करता है।

8. बाजार में प्राप्त फसलों के मूल्य भी समान नहीं होते है यह फसल की गुणात्मकता पर निर्भर करते हैं।
9. उत्पादन लागत भी सर्वत्र समान नहीं होती है यह अलग – अलग क्षेत्र में भिन्न–भिन्न हो सकती है।

14.7 समालोचना

कई विद्वानों ने वॉन थूईनेन के सिद्धान्त को उपयुक्त और अनुपयुक्त ठहराने की कोशिश की है साथ ही यह भी पाया कि थूईनेन द्वारा प्रतिपादित क्रमबद्धता कृषि के वास्तविक क्षेत्र में नहीं मिलती है फिर भी होर्वथ (1969) ने अपने अध्ययन में पाया कि बीसवीं शताब्दी में भी अर्द्ध विकसित देशों में उक्त प्रकार के वलयों का स्वरूप देखने को मिलता है, उसने आदिसअबाबा के आस–पास के क्षेत्र में जहां काफी समानताएँ है फिर भी 246 व कि.मी. क्षेत्र में यूक्लिपट्स के वन है और इनसे शहर के लिये ईंधन की लकड़ी प्राप्त होती है। इससे भी महत्वपूर्ण इस वनीय प्रदेश का आकार है जो वॉन थूइनेन के द्वारा प्रस्तावित एकाकी प्रदेश में नहर के आने से भूमि–उपयोग के प्रारुप से मिलता है। शहर के पास में शाक–सब्जी का क्षेत्र है इससे आगे मिश्रित कृषि का क्षेत्र है इसकी गहनता जैसे–जैसे नगर से दूरी बढ़ती जाती है, धीरे–धीरे कम होती जाती हैं।

चिशोलम् (1962), गोरेवाल (1959), हाल (1966), डूबर, डन, लॉश, आइजार्ड, गेरीसन आदि ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर थूईनेन के सिद्धान्त को अलग–अलग रूप से उपयुक्त बताया। स्वीडिश भूगोलवेताओं जोनासन ने यूरोप के कृषि भूमि उपयोग को थूईनेन के अनुरूप पाया। भारत में इनायत अहमद (1952) ने अपने अध्ययन में बताया कि आज भी अधिवासों के निकट चाहे ग्राम हो या नगर, कृषि भूमि का उपयोग बस्तियों के आस–पास अधिक सघन रूप से फसलों के उत्पादन में होता है व जैसे –जैसे बस्तियों से दूरी बढ़ती जाती है, फसल का उत्पादन व फसल की गहनता में कमी आती जाती है और अधिक दूर के क्षेत्र, चरागाह या अन्य प्रकार के भूमि उपयोग के क्षेत्र बन जाते है। मण्डल (1980) ने भी कृषि भूमि का उपयोग गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पटना, बक्सर, वाराणसी व इलाहाबाद के आस–पास स्पष्ट रूप से पाया यद्यपि इसका मूल रूप आधुनिक वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान की वृद्धि के कारण संशोधित हो गया है। फिर भी दूरी का प्रभाव व तुलनात्मक लाभ का आशिक प्रभाव आज भी भूमि उपयोग पर देखा जाता है।

यह सत्य है कि थूइनेन का सिद्धान्त आज पुराना हो गया है, इसे आज लागू नहीं किया जा सकता है। आज के संदर्भ में कृषकों के फसलें उगाने के लिये जो लागत तत्व आदि प्रभावित करते थे उनमें परिवर्तन हो गया है। दूरी का प्रभाव भी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। आज नगरों में माल जल्दी पहुंचाना ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। हम जानते है कि भूमि की भौतिक स्थिति होती है, परन्तु समय के अनुसार इसकी आर्थिक स्थिति व सामाजिक स्थिति बदलती रहती है। इसके कारण हमें उसका स्वरूप बदला हुआ दिखाई देता है।

14.8 सिद्धान्त का महत्त्व

वॉन थूईनेन का कृषि भूमि उपयोग का सिद्धान्त या कृषि के स्थानीयकरण का सिद्धान्त दो मूल प्रवृत्तियों के विवेचन से संबंधित है। (1) तुलनात्मक लाभ व (2) दूरी का प्रभाव। ये दोनों ही प्रवृत्तियां आज भी किसी न किसी रूप में कम या अधिक मात्रा में, कृषि भूमि उपयोग को प्रभावित करती है। अध्ययनकर्त्ता सिद्धान्त की मौलिक सत्यता एवं वैज्ञानिक विश्लेषण – प्रकृति की आलोचना न करके व्यावहारिक एव वास्तविक परिस्थितियों का समावेश करते हुए कृषि भूमि उपयोग के स्वरूप में भिन्नता पाते हैं। जितनी अधिक विषमता किसी क्षेत्र के संसाधनों में होगी उतना ही अधिक सरलीकृत प्रतिरूप भंग होकर उस क्षेत्र की व्यवस्था को जटिल से जटिलतर बनायेगा यही जटिलताएं हमें वास्तविक दशाओं में देखने को मिलती है। इससे सिद्धान्त का महत्व कम नहीं होता है। थूईनेन ने अपने विचारों से कृषि भूगोल के अध्ययन में नए अध्याय का शुभारम्भ किया और अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। थूईनेन का "आर्थिक लगान" का विचार पहुंच को नापने का एक स्तरीय पैमाना है जो उसकी सबसे महत्वपूर्ण देन कहीं जा सकती है।

बोध प्रश्न – 2

1. होर्वथ ने थूईनेन के विचारों का समर्थन किया या विरोध किया ?

   ....

   ....

2. थुइनेन का सिद्धान्त व्यवहारिक अधिक है या सैद्धान्तिक ?

   ....

   ....

3. भूमि की कौनसी स्थिति बदलती रहती है ?

   ....

   ....

4. आज के संदर्भ में थूईनेन के सिद्धान्त में परिवर्तन क्यों पाये जाते है ?

   ....

   ....

14.9 सारांश (Summary)

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर थूईनेन के सिद्धान्त के अनुसार कृषि भूमि उपयोग को समझने में सहायता मिलती है। यद्‌यपि तत्कालीन दशाओं और आज की परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हो गये है लेकिन उसका आधारभूत विचार–भूमि उपयोग का वलयों या मण्डलों में विकसित होना – आज भी संशोधित/आशिक रूप में सही दिखाई देता है। विभिन्न विद्‌वानो ने इसे ग्रामीण, नगरीय, महाद्‌विपीय, यहां तक की विश्व स्तर तक के भूमि उपयोग के अध्ययन में अनुभव किया है। कई विद्‌वानो ने थूईनेन के विचारो की आलोचना भी की है। फिर भी इसका

भूलभूत आर्थिक लगान का नियम (तुलनात्मक लाभ) एवं दूरी प्रभाव क्षीणता नियम किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभाव डालते दिखाई देते है। थुइनेन की यह एक प्रकार से सबसे उपयोगी देन है। उसका "आर्थिक लगान" का विचार गम्यता/पहुँच (accessibility) को नापने का स्तरीय माना कहा जा सकता है। व इसे विभिन्न दशाओं में काम में लिया जा सकता है।

14.10 शब्दावली (Glossary)

- कृषि भूमि उपयोग : सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में किसी क्षेत्र में प्राकृतिक वातावरण के साथ आर्थिक शक्तियों की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न भू–प्रारूप।
- स्थिति लगान : भौगोलिक स्थिति से प्राप्त लाभ।
- चर : विभिन्न प्रभाव डालने वाले सक्रिय तत्व।
- बाजारी केन्द्र : ऐसे केन्द्र जहां वस्तुओं, सेवाओं का लेन–देन होता हो।
- दूरी प्र भाव क्षीणता : दो वस्तुओं के मध्य दूरी बढ़ने से उनके प्रभाव में कमी आना।
- शुद्ध लाभ : किसी वस्तु के बेचने पर प्राप्त राशि से स भी प्रकार के खर्चे घटाने पर प्राप्त लाभ।

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. जैन, हरकचन्द : सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल, कमलेश प्रकाशन, भीलवाड़ा – 1984
2. जोशी, नन्दवल्लभ : आर्थिक भूगोल की सैद्धान्तिक रूपरेखा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर – 1986
3. सिंह, जे.एस. एवं सिंह, के.एन. : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी – 1980
4. कौशिक, एस.डी. : आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ – 1976
5. Lloyd, P.E. and Dicken, P. : Location in Space : A Theoretical Approach to Economic Geography, Harper International ed. New York - 1972
6. Van Thunen, J.H. : Translated as Von Thunen’s Isolated State by C.M. Vartenberg, edited by P.Hall, (1966), Pergamon, London, 1826.
7. Horvath, R.J. : von Thunen’s Isolated State and the area around Addis Ababa, Ethiopia, Annals of the Association of American Geographers 59, 308–323, 1969.
8. Mandal R.B. : Central Place Hierarchy in Bihar Plain, the National Geographical journal of India, Vol. XXI (2) pp. 120–126, 1975.

9. Chisholm, M. : Rural Settlement an land use Hutchinson, London, 1962.

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. जर्मनी
2. 6 वलय या मण्डल
3. ऐसा प्रदेश जिसमें भौतिक दृष्टि से व मानवीय दृष्टि से सभी प्रकार की समानताएं पाई जाती हो।
4. जर्मनी के रोस्टोव नगर के पास।
5. परिवहन लागत में जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है, अनुपात में कमी आती जाती है।
6. जॉन हेनरिच वॉन थुइनेन।

बोध प्रश्न – 2

1. समर्थन किया।
2. सैद्धान्तिक
3. सामाजिक–आर्थिक स्थिति बदलती रहती है।
4. द्रुत गति के परिवहन साधन, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रभाव, सिंचाई की सुविधाएं, भू–आकार, परिवहन लागत, भूमि की उर्वरता आदि कई तत्व।

14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वॉन थुइनेन के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उसके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न भूमि उपयोग के वलय या मण्डलों का वर्णन कीजिए।
2. वॉन थुइनेन के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए उसकी आलोचना, समालोचना कीजिए।
3. 'वॉन थुइनेन का सिद्धान्त आज के संदर्भ में अव्यवहारिक है।' समीक्षा कीजिए।

इकाई 15 : निर्णय लेने की प्रक्रिया : स्थितिगत निर्णय–व्यवहारात्मक दृष्टिकोण (Decision Making Process : Location Decision–Behavioural View)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 निर्णयन की विशेषताएं

15.3 निर्णयन के सिद्धान्त

15.4 निर्णयन लेने की प्रक्रिया

15.4.1 निर्णय प्रक्रिया का आधार

15.4.1.1 उद्देश्य

15.4.1.2 सूचनाओं की प्राप्ति

15.4.1.3 विकल्पों की वरीयता

15.4.1.4 उद्देश्यया प्रेरणा

15.4.2 निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले तत्व

15.4.3 निर्णय लेने की विधियां

15.4.3.1 परम्परागत विधि

15.4.3.2 वैज्ञानिक विधि

15.5 निर्णयों के प्रकार

15.6 स्थिति सम्बन्धी निर्णय प्रक्रिया

15.6.1 एक फर्म के लिये उद्योग की स्थिति का चयन

15.6.2 फर्म की स्थापित स्थिति से नई स्थिति का चयन

15.6.3 कृषि व्यवस्था में निर्णय - प्रक्रिया

15.7 सारांश

15.8 शब्दावली

15.9 संदर्भ ग्रन्थ

15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप समझ सकेंगे –

- निर्णय लेने की प्रक्रिया अदृश्यात्मक एव बौद्धिक है,

- निर्णय लेने की प्रक्रिया मानव व्यवहार से संबंधित है,
- निर्णय लेने की प्रक्रिया में विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है,
- निर्णय लेने की प्रक्रिया विभिन्न तत्वों से प्रभावित होती है,
- स्थितिगत निर्णयों के उदाहरण।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन काल से ही जब से मानव ने होश संभाला है वह निर्णय लेने लगा है उस समय उसके निर्णय छोटे–छोटे हुआ करते थे लेकिन समय के साथ उनमें परिवर्तन आया है वह कई बड़े – बड़े निर्णय लेने लगा हैं। मानव जिन परिस्थितियों में कार्य करता है वे निरन्तर परिवर्तनशील है अत: उसे परिस्थितियों से अनुकूलन करना पड़ता है व निर्णय लेने पड़ते है। किन्ही दो व्यक्तियों द्वारा स्व ही स्थान, एक ही समय एव एक ही प्रकार की परिस्थितियों में लिया गया निर्णय भी भिन्नता लिये हो सकता है। अत: निर्णयों के बारे में कोई सर्व सम्मत सिद्धान्त विकसित नहीं हो सकता है फिर भी मानव द्वारा विभिन्न निर्णय लिये जाते है। उनको समझने का प्रयास किया गया है। इससे पूर्व की हम निर्णय लेने की प्रक्रिया का अध्ययन करें 'निर्णय' को स्पष्ट करना भी आवश्यक है, निर्णय शब्द "किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से" है। जी.आर.टेरी के अनुसार "निर्णय लेना किसी कसौटी पर आधारित है दो या दो से अधिक सम्भावित विकल्पों में से किसी एक का चयन है।" इस प्रकार उक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि निर्णय अपने आपमें स्वतंत्र नहीं है बल्कि वह निर्णय लेने की प्रक्रिया की अंतिम दशा है जो निश्चितता व दृढ़ता को प्रकट करती है। मानव द्वारा विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के लिये विशेष प्रकार की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसे निर्णय लेने की प्रक्रिया या निर्णयन कहते है। निर्णय लेने की प्रक्रिया द्विस्तरीय है। (अ) बौद्धिक प्रक्रिया (ब) दृश्यात्मक प्रक्रिया

(अ) बौद्धिक प्रक्रिया या अदृश्यात्मक प्रक्रिया (Invisible Process) : मानव अपने स्वार्थ, लाभ या हित की पूर्ति के कारण विभिन्न प्रकार के निर्णय लेता है इसके लिये उसे एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया से गुजरना होता है, जो बौद्धिक होती है यही निर्णय लेने की प्रक्रिया या निर्णयन कहलाती है। इसी पर उसके निर्णय निर्भर करते है। यह दो या दो से अधिक विकल्पों में से किसी एक को चयन करने की प्रक्रिया है इस प्रक्रिया में मानव अनिर्णय की स्थिति से निर्णय की ओर आता है वही निर्णय कहलाता है। यह मुख्य रूप से बौद्धिक स्तर पर सम्पन्न होती है अत: इसे अदृश्यात्मक प्रक्रिया कहा जाता है।

(ब) दृश्यात्मक प्रक्रिया (Visible Process) : जब मानव निर्णय ले लेता है तो उसे मूर्त रूप प्रदान करता है जो हमें उद्योगों, कृषि कार्यो, सड़कों, बांधों पुलों, नहरों आदि के रूप में (दृश्य – गतिविधियों के रूप में) दिखाई देने लगता है। अगर मूर्त रूप न ले तो निर्णयन प्रक्रिया अधूरी रह जाती है।

किसी भी क्षेत्र में आर्थिक भूदृश्य व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लिये गये निर्णयों का मिलाजुला प्रदर्शन कहा जा सकता है, लेकिन ये बहुत जटिल एवं विभिन्नता लिये होते है। सामान्यत: किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था में उत्पादक का

मुख्य उद्देश्य कम से कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता है और उपभोक्ता भी कम से

कम खर्च कर अधिक से अधिक वस्तु खरीदना चाहता है अत: अर्थव्यवस्था में लगे विभिन्न व्यक्ति, समुदाय अपने – अपने हितों व स्वार्थों के लिये विभिन्न प्रकार के निर्णय लेते रहते है ये निर्णय मानव–व्यवहार पर निर्भर करते है और मानव व्यवहार विभिन्न स्थानों पर पाई जाने वाली दशाओं, परिस्थितियों से प्रभावित होता है। स्वयं भी परिवर्तन शील है। उसे वातावरण से अनुकूलन करना पड़ता है, अत: वह वातावरण से प्रभावित भी होता है और उसे प्रभावित भी करता है।

मानव कभी आदर्श मानव की तरह व्यवहार करता है तो कभी सामान्य मानव की तरह। इस सम्बन्ध में भूगोल वेताओं का अध्ययन अधिक विस्तृत नहीं हैं, पिछले कुछ वर्षो से ही इस ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। इस सारी व्यवस्था को समझने के लिये निर्णयन या निर्णय लेने की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है । यह प्रक्रिया दो या दो से अधिक विकल्पों में से किसी एक को चुनने से संबंधित है। इस प्रक्रिया में अनिश्चय की स्थिति से निश्चय की ओर आते हैं। इसकी निम्न विशेषताएं है –

15.2 निर्णयन की विशेषताएं (Charactersitics of Decision Making Process)

(1) यह स्व बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें विवेक की आवश्यकता होती है।

(2) यह एक गतिशील प्रक्रिया है जो सतत् जारी रहती है। जब तक निर्णय न ले लिया जाये।

(3) निर्णय लेने की प्रक्रिया में पूर्वानुमान सम्मिलित होता है, जिसको कई चर प्रभावित करते हैं अत: निर्णयन की प्रक्रिया भी विभिन्न चरों से प्रभावित होती है।

(4) निर्णय लेने की प्रक्रिया में जोखिम व अनिश्चितता बनी रहती है।

(5) निर्णय लेने की प्रक्रिया नियोजन का एक अंग होती है क्योंकि हमें नियोजन के लिये भी विभिन्न विकल्पों के मध्य श्रेष्ट विकल्प का चयन करना होता है।

(6) निर्णयन से ही प्रबन्ध के प्रमुख कार्यो, नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियंत्रण आदि का सुचारु रूप से संचालन संभव है।

(7) निर्णयन एव निर्णय एक नहीं है। निर्णय, निर्णयन की अन्तिम अवस्था है जो एक संकल्प का प्रतीक है।

(8) निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसी समस्या का उदय होना, भूतकाल पर निर्भर करता है, जबकि समस्या का समाधान (सर्वोत्तम का चयन) वर्तमान में होता है और निर्णय लेने व क्रियान्वयन से भविष्य की दिशा निर्धारित होती है।

(9) निर्णय लेने की प्रक्रिया में विकल्पों के गुण दोषों के मूल्यांकन के आधार पर निर्णय लिये जाते हैं।

(10) निर्णय लेने की प्रक्रिया में कभी–कभी नये निर्णय भी लेने पड़ते हैं अत: नवीन निर्णयों का जन्म भी हो सकता है।

15.3 निर्णयन के सिद्धान्त (Principles of Decision Making)

वर्तमान वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ ही मानव व्यवहार के सम्बन्ध में भी कई बातें स्पष्ट होती जा रही है। इस सम्बन्ध में कई सिद्धान्त एव निष्कर्ष उपलब्ध है जो यह बतलाते है कि कौन–सी परिस्थितियों में मानव कैसा व्यवहार करेगा, लेकिन मानव – व्यवहार के सम्बन्ध में उपलब्ध निष्कर्ष न तो पूर्ण है और न ही सभी परिस्थितियों में समान रूप से लागू होते है, क्योंकि मानव कभी अधिकतम लाभ के लिये निर्णय लेता है तो कभी लाभ की अपेक्षा आत्म संतुष्टि या प्रशंसा या प्रसिद्धि के लिये निर्णय लेता है। कभी वह उत्पादक, कभी उपभोक्ता, कभी मालिक तो कभी सरकार के अंग के रूप में निर्णय लेता है, कभी – कभी तो वह अकेला मालिक, उत्पादक, उपभोक्ता के रूप में कार्य करता है अत: निर्णय लेने की प्रक्रिया बड़ी जटिल है। इस संबंध में सार्वभौम सिद्धान्त संभव नहीं है फिर भी कुछ सिद्धान्त है उनमें कुछ उपयोगी अंश है, जो इस प्रकार हैं –

(i) **अधिकतम लाभ का सिद्धान्त :** इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न विकल्पों में से ऐसे विकल्प का चयन करना चाहिये जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके यह लाभ मौद्रिक भी हो सकता है और अमौद्रिक भी हो सकता है।

(ii) **समय का सिद्धान्त :** यह सिद्धान्त समय पर निर्णय लेने पर जोर देता है अगर समय पर निर्णय नहीं लिये जाते है तो लाभ की अपेक्षा हानि भी हो सकती है।

(iii) **गतिशीलता का सिद्धान्त :** जैसा कि हम जानते है कि मानव जिन परिस्थितियों में कार्य करता है वे निरन्तर परिवर्तनशील है अत: इस प्रकार के निर्णय लेने चाहिये कि वे परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी स्वीकार्य हो सके या उनमें समयानुसार संशोधन, परिवर्द्धन एवं परिवर्तन किये जा सके।

(iv) **मानवोचित व्यवहार का सिद्धान्त :** मानव व्यवहार को समझना बहुत जटिल कार्य है फिर भी मानव के व्यवहार की सामान्य रख असामान्य परिस्थितियों के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे कि किसी फर्म में कर्मचारियों की छंटनी की जाती है तो कर्मचारियों के असहयोगी दृष्टिकोण का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। यह असहयोगी दृष्टिकोण किस रूप में प्रकट होगा? इसका अनुमान लगाना तो कठिन है फिर भी कर्मचारी कार्य का बहिष्कार, हड़ताल या कभी–कभी तोड़फोड़ भी कर सकते है। यह अनुमान लगाया जा सकता है यह प्रत्येक व्यक्ति की विचारधारा, दृष्टिकोण व जीवन मूल्यों पर निर्भर करता है।

(v) **अनुपात सिद्धान्त.** इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न साधन – भूमि, श्रम, पूंजी, तकनीक के सापेक्षिक संयोजनों से जो परिणाम आते है उनमें विभिन्न साधनों की मात्रा व घटकों में परिवर्तन कर उचित संयोजन से सर्वाधिक उपयुक्त परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

(vi) **वैयक्तिक स्वहित का सिद्धान्त :** इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वहितों को ध्यान में रखकर निर्णय लेता है। स्वहित आर्थिक भी हो सकते है और अनार्थिक भी हो सकते है। कुछ व्यक्ति अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु ही निर्णय लेते है जबकि कुछ व्यक्तिगत

महत्वाकांक्षाओं, आवश्यकताओं या आत्मसंतुष्टि व प्रशंसा जैसे अनार्थिक लाभ के लिये भी निर्णय लेते हैं।

बोध प्रश्न – 1

1. निर्णय किसे कहते हे ?

 ....

 ....

2. निर्णय और निर्णयन में क्या अन्तर है ?

 ....

 ....

3. निर्णय लेने की कौन–कौन सी विधियां हैं ?

 ....

 ....

4. निर्णयन–प्रक्रिया की अवस्थाएं कौन–कौन सी हैं ?

 ....

 ....

15.4 निर्णयन की प्रक्रिया (Decision - Making Process)

मानव द्वारा संचालित विभिन्न गतिविधियों में समय–समय पर निर्णय लेने पड़ते है किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था चाहे व छोटी हो या बड़ी मानव द्वारा संचालित होती है चूंकि मानव त्रुटियां करने वाला है उसके कई उद्देश्य होते है अत: निर्णय लेने की प्रक्रिया पर इनका प्रभाव पड़ता है। वह परिवर्तनशील परिस्थितियों में कार्य करता है, उनका भी प्रभाव निर्णय लेने पर पड़ता है। आर्थिक भूगोल में वर्तमान में जहां एक और आर्थिक समृद्धि के प्रयत्न जारी है वहीं दूसरी ओर आर्थिक असंतुलन व प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है अत: इस दृष्टि से आर्थिक निर्णय सम्बन्धी प्रक्रिया को समझना आवश्यक है जो निर्णयन प्रक्रिया के सामान्य स्वरूप को समझने पर ही स्पष्ट हो सकती है।

15.4.1 निर्णयन प्रक्रिया का आधार

निर्णय लेने की प्रक्रिया निम्नांकित आधारभूत तत्वों पर निर्भर करती है –

15.4.1.1 सूचनाओं की प्राप्ति

सामान्यत: हमें दिन प्रतिदिन कई प्रकार की सूचनाएं प्राप्त होती है लेकिन निर्णयन प्रक्रिया में इन सभी का उपयोग नहीं होता है। इसके लिये हमारी आवश्यकताएं, मूल प्रश्न या उद्देश्य व समस्याओं से सम्बंधित सूचनाएं ही ग्रहण की जाती है ताकि हमारा उद्देश्य प्राप्त हो सके। हर व्यक्ति या संस्था द्वारा सूचनाएं एकत्र एवं ग्रहण करने की अपनी विशिष्ट व्यवस्था रहती है, जिससे सूचनाएं एकत्र कर उनका आकलन कर निर्णय लिये जाते है। सूचनाएं दो प्रकार की होती है। (1) व्यक्तिगत सूचनाएं व (2) सार्वजनिक सूचनाएं।

(1) व्यक्तिगत सूचनाएं

(अ) प्रत्यक्ष ज्ञान : ये सूचनाएं व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुभव एवं उसके अन्य व्यक्तियों से पारस्परिक सम्पर्को से प्राप्त होती है। जैसे टेलीफोन पर वार्ता या पत्रों के माध्यम से प्राप्त होती है। व्यक्तिगत सूचनाएं व्यक्ति की गतिशीलता उसकी आयु, उसका मानसिक स्तर, शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक और आर्थिक स्तर, उपलब्ध समय, मौद्रिक उपस्कधता, मुद्रा के खर्च की क्षमता, सांस्कृतिक स्तर व अनुभव से प्रभावित होती है। इस प्रकार उद्देश्यात्मक वातावरण से प्राप्त सूचनाएं बहुत कम ग्रहण की जाती है। वास्तव में व्यवहार में अनुभव के आधार पर ही सूचनाएं ग्रहण की जाती है, विश्लेषित की जाती है व निर्णय लिये जाते हैं।

(ब) पारस्परिक सम्पर्क : सूचनाओं की प्राप्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान के अतिरिक्त पारस्परिक सम्पर्क भी महत्वपूर्ण आधार है। हमारा ज्ञान भी स्वयं के प्रत्यक्ष ज्ञान के अतिरिक्त दूसरों के प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष ज्ञान पर निर्भर होता है यह आवश्यक नहीं कि यह ज्ञान सत्य होगा बल्कि संशोधित भी हो सकता है। जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है सूचनाओं की प्राप्ति में कमी होती जाती है। वैसे ही एक व्यक्ति के किसी एक समुदाय की सदस्यता व एक से अधिक समुदाय की सदस्यता से प्राप्त सूचनाओं में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। अत: ये सब तत्व सूचनाओं को, विशेष कर वैयक्तिक सूचनाओं को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार की सूचनाएं, एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से वार्ता, बैठकों, दूरभाष व पत्रों के माध्यम से प्राप्त होती है। ये सूचनाएं भी आपसी दूरी, समुदाय की सदस्यता, सूचना देने वाले के शैक्षिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक स्तर व विश्वसनीयता पर निर्भर करती है। ऐसे ही सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति के शैक्षिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक स्तर, उसकी उम्र व ग्रहण करने की क्षमता पर भी निर्भर करती है।

(2) **सार्वजनिक सूचनाएं :** सूचना प्राप्ति का अन्य महत्वपूर्ण साधन समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्में, सरकारी एजेन्सियां है जो सार्वजनिक सूचनाएं उपलब्ध कराती है। ये सूचनाएं न तो समान रूप से प्राप्त होती है और न ही इनकी विश्वसनीयता की गारंटी होती है फिर भी यह व्यक्ति के विचारों को प्रभावित करने व संशोधित करने में महत्वपूर्ण माध्यम का कार्य करती है। हेगर स्ट्रेन्ड के अनुसार – सार्वजनिक सूचनाओं के प्रसार के केन्द्र बड़े नगर होते है जहां से सूचनाएं दूसरे बड़े केन्द्र की ओर छलांग लगा जाती है। ऐसा सामान्यत: नये विचार, नई शोध के संदर्भ में अधिक होता है और निकटवर्ती क्षेत्रों में इनका प्रसार न होने से या कम होने से यहां "पड़ौसी प्रभाव" (Neighbourhood effect) कम हो पाता है। इससे क्षेत्रीय विषमताएं उत्पन्न होती है। इन पर भौतिक तत्वों का, संचार के माध्यमों का प्रभाव पड़ता है ये पक्षपात पूर्ण या क्षेत्रीयता से संबंधित भी हो सकती है।

संक्षेप में व्यक्ति को प्राप्त सूचनाएं प्रत्यक्ष ज्ञान, पारस्परिक सम्पर्क व सार्वजनिक सूचनाओं पर निर्भर करती है। जिस पर कई बातें प्रभाव डालती है यह भी सत्य है कि जो निर्णय करता है उसका ज्ञान भी सीमित होता है अत: उसके निर्णय भी शत – प्रतिशत सही नहीं

हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि निर्णयकर्ता सभी प्राप्त सूचनाओं का उपयोग करेगा ही। क्योंकि वस्तु परक वातावरण में प्राप्त सूचनाओं में से व्यक्ति परक सूचनाएं ही वह उपयोग में लेता है। ऐसा इसलिये होता है, कि उसे उद्देश्य पूर्ण व्यवहार के संदर्भ में जो प्रासंगिक है, उपयोगी है, उन्हें ही वह ग्रहण करता है, शेष सूचनाओं को वह छोड़ देता है (चित्र संख्या 152) क्योंकि वह कई बातों से प्रभावित होता है।

15.4.1.2 विकल्पों की वरीयता

निर्णयन प्रक्रिया का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार विभिन्न विकल्पों की वरीयता निर्धारित करना होता है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करना, विश्लेषण करना, मूल्यांकन करना व विभिन्न विकल्पों की वरीयता निर्धारित करना होता है। यह सब कल्पनाओं के सहारे संभव होता है। वरीयता चयन में निर्णयकर्त्ता की उम्र, शैक्षिक स्तर, आय का स्तर मानसिक स्तर, स्थिति, लैंगिकता व गतिशीलता का प्रभाव पड़ता है और वह श्रेष्ठतम या श्रेष्ठतम से नजदीक के विकल्प का चयन करता है।

15.4.1.3 उद्देश्य या प्रेरणा

सामान्यत: मूल प्रश्न या समस्या या उद्देश्य पर ही सूचनाएं प्राप्त की जाती है। वरीयता का निर्धारण निर्णयकर्त्ता के मूल प्रश्न, प्रेरणा या उद्देश्य पर निर्भर होता है इन्हें मुख्यत: मानव की महत्वाकांक्षाएं, लाभ प्राप्ति, इज्जत, विश्वास, इच्छा, आत्म संतुष्टि, सौन्दर्यबोध, नैतिक मूल्य आदि प्रभावित करते है। ये सब मानव के उद्देश्य या इच्छित स्तर से सम्बंधित है, जो एक मनोवैज्ञानिक पक्ष है इन्हें प्राप्त करने पर उसे संतोष प्राप्त होता है। सामान्यत: मानव की प्रवृत्ति कम से कम प्रयत्न करने की होती है उसकी कुछ व्यक्तिगत मान्यताएं भी होती हैं ये भी उसके उद्देश्यों की पूर्ति हेतु लिये जाने वाले निर्णयों को, उसके शिक्षा के स्तर, आयु, आय के स्तर, स्थिति, लैंगिकता व गतिशीलता के साथ प्रभावित होते हैं।

इस प्रकार निर्णयन – प्रक्रिया सूचनाओं की प्राप्ति, वरीयता व निर्णयकर्ता के उद्देश्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित होती है, जो कई तत्वों से प्रभावित होती है इसी कारण लिये गये निर्णय आदर्श न होकर संतोषप्रद ही होते है या दूसरे शब्दों में यह प्रक्रिया संतोषप्रद विकल्पों से ही संबंधित होती है। कभी–कभी अपवाद स्वरूप ही श्रेष्ठतम विकल्प से संबंधित होती हैं।

15.4.2 निर्णयन–प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Affecting the Decision Making Process)

सूचनाओं की प्राप्ति उनकी वरियता का निर्धारण व उद्देश्य प्राप्ति की यह प्रक्रिया कई तत्वों से प्रभावित होती है।

(1) गतिशीलता : जो व्यक्ति इधर –उधर आता जाता है, विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएं करता है, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान अधिक व्यापक होता है, जबकि कम गतिशील, कम दूरी पर आने – जाने वाले का अनुभव सीमित होता है।

(2) आयु : सामान्यत: जो उम्र में छोटा होता है, उसका अनुभव एवं ज्ञान भी सीमित होता है, जबकि अधिक उम्र के व्यक्ति का ज्ञान व अनुभव अधिक विस्तृत होता हैं।

(3) शैक्षिक स्तर : शिक्षित व्यक्ति किसी बात को अधिक सरलता से समझ सकता है, लेकिन अधिक शिक्षित व्यक्ति कम शिक्षित व्यक्ति को कोई जानकारी देता है तो शायद कम शिक्षित व्यक्ति को सही समझ में न आये अगर दोनों का शिक्षा का स्तर समान है तभी सूचनाओं का आदान–प्रदान शीघ्र व सही हो पाता है।

(4) समय : सभी प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करने हेतु समय एक आवश्यक तत्व है, जहां समय का अभाव होता है। वहां सूचनाएं सही प्राप्त नहीं की जा सकती है तब आधी– अधूरी या संतोषप्रद सूचनाएं ही प्राप्त की जा सकती है और उनकी वरीयता निर्धारण भी सही नहीं हो पाती है।

(5) सामाजिक आर्थिक स्तर : व्यक्ति विशेष का सामाजिक एव आर्थिक स्तर भी एक प्रमुख प्रभावक तत्व है, जैसे एक इंजीनियर व एक मजदूर के ज्ञान व अनुभव में काफी अन्तर पाया जाता है क्योंकि मजदूर केवल पत्थर, ईंट, सीमेंट आदि के बारे में ही सोचता है, जबकि इंजीनियर मकान या बांध के प्लान, उनकी डिजाइन व इनके गुण दोषों के बारे में भी ध्यान रखता है।

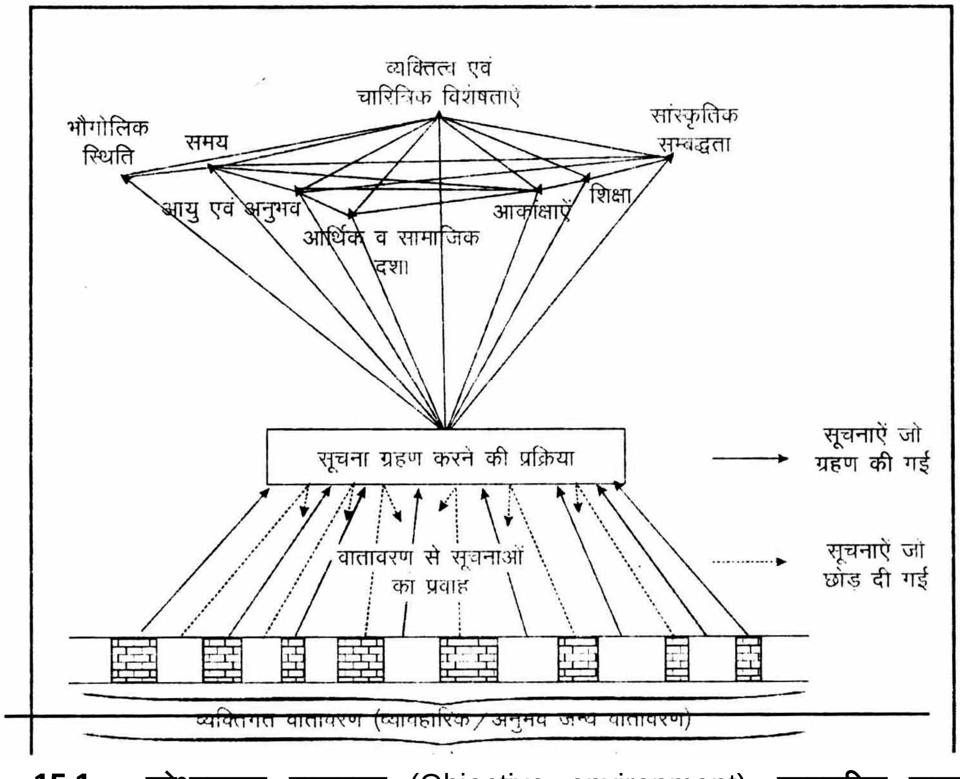

चित्र– 15.1 : उद्देश्यात्मक वातावरण (Objective environment), **व्यवहारिक वातावरण** (Behavioural environment) **उद्देश्यात्मक वातावरण के भाग के रूप में**

(6) आयुवर्ग : सूचनाओं का आदान–प्रदान एक ही आयुवर्ग के व्यक्तियों में अधिक होता है जबकि भिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों में यह सीमित होता है।

(7) विश्वसनीयता : विभिन्न प्रकार की सूचनाएं हमें प्राप्त होती है लेकिन विश्वसनीय स्त्रोत से प्राप्त सूचनाओं को ही अधिक महत्व दिया जाता है, जबकि अविश्वसनीय सूचनाओं को या तो महत्व दिया ही नहीं जाता है, या केवल सुनकर, पढ़कर, नकार दिया जाता है।

(8) क्रियात्मक दूरी : भौतिक दूरियों की अपेक्षा क्रियात्मक दूरियां सूचनाओं के प्रसार को अधिक प्रभावित करती हैं, जैसे – जैसे दूरी बढ़ती जाती है, सूचनाओं की प्राप्ति में कमी होती जाती है। इसका महत्वपूर्ण कारण है कि जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है, या तो उसकी लागत बढ़ जाती है या उसमें समय अधिक लगता है।

(9) समुदाय : मनुष्य समूह में रहना पसंद करता है वह विभिन्न समुदायों या संस्थाओं से जुड़ा होता है अत: वह विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करता रहता है और आदान –प्रदान करता हैं यहां भी भिन्न प्रकार के समुदायों के मध्य ज्ञान की सूचनाओं का आदान –प्रदान कम होता है यहां प्रस्तुत चित्र संख्या 15.3 में पहली अवस्था में ही एक समुदाय के सदस्यों के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान अधिक व सरल होता है। दूसरी अवस्था में किसी समुदाय का सदस्य न होने पर सूचनाओं का आदान–प्रदान सीमित होता है। तीसरी अवस्था में सूचना देने व लेने वाले से अलग समुदाय का होने से और कम मात्रा में आदान–प्रदान होगा, चौथी अवस्था में अलग–अलग व्यक्तियों के कारण सूचनाओं का आदान–प्रदान और भी कम होता हैं जबकि पांचवी अवस्था में अलग–अलग समुदायों के व्यक्तियों में सूचनाओं का आदान–प्रदान सबसे कम होता

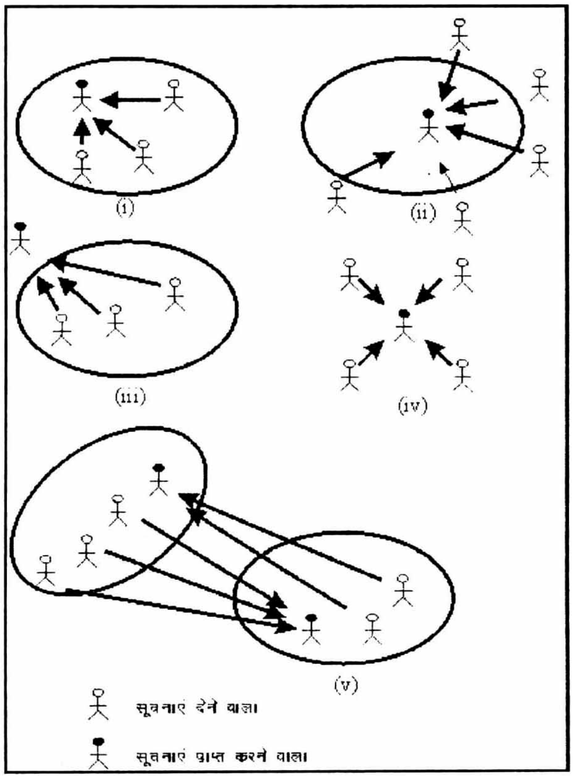

चित्र – 15. 2 : समुदायों में सूचनाओं का प्रवाह

(10) कम से कम प्रयास या श्रम : मानव की प्रवृत्ति होती है कि वह कम से कम प्रयास करता है या कम से कम श्रम करना चाहता है। अत: अधिकांश दशाओं में वह संतोषप्रद समाधान से ही संतुष्ट हो जाता है और अधिक प्रयास या श्रम के मार्ग को छोड़ देता है।

(11) समूहन : जहां पहले ही कई आर्थिक गतिविधियां संचालित हो रही है, ऐसी दशा में कुछ नये उत्पादक पूर्व में व्यक्तियों द्वारा लिये गये निर्णयों व समूहन से होने वाले लाभों को देखकर अनुभव कर समूहन केन्द्रों पर अपने निर्णय ले लेते हैं।

15.4.3 निर्णय लेने की विधियां (Method of Decision Making)

निर्णय लेने की सामान्यत : दो विधियां प्रचलित है (1) परम्परागत विधि (2) वैज्ञानिक विधि

15.4.3.1 परम्परागत विधि

इस विधि में यह देखा जाता है कि किसी निश्चित समय में किन परिस्थितियों में किस प्रकार के निर्णय सही सिद्ध हुये है, और उनमें क्या सुधार किये जा सकते है? इसमें परम्पराओं का निर्वाह एवं भूल सुधार वाली प्रक्रिया अपनाई जाती है।

15.4.3.2 वैज्ञानिक विधि

इस विधि के निम्न अंग है–

(क) समस्या की पहचान. समस्या की जानकारी प्राथमिक दृष्टि से आवश्यक है अगर समस्या को सही समझा जायेगा तो समाधान भी सही हो सकेगा। इसमें असंगत तथ्यों को अलग करना, मुख्य घटकों को गौण घटकों से, सारगर्भित बातों को व्यर्थ की बातों से अलग करना होता है। अत: समस्या व समस्या के कारणों को अच्छी तरह समझना आवश्यक है।

(ख) समस्या का विश्लेषण : अगर समस्या अधिक जटिल है तो उसका विश्लेषण आवश्यक है अत: उसे कई भागों में विभाजित करना होता है। इसके लिये कोई मार्ग या मापदंड निश्चित नहीं है। इसमें समस्या की जानकारी, उपलब्ध साधन, समस्या के विभिन्न अंग व उन पर नियंत्रण व अनियंत्रण, निर्णय की भविष्यता, निर्णय की गुणात्मकता, निर्णय की बारम्बारता आदि का विश्लेषण आवश्यक है।

(ग) संभावित विकल्पों का विकास : यह दशा अधिक महत्वपूर्ण है अत: निर्णयकर्त्ता को खुले मस्तिष्क का होना आवश्यक है, उसे जितने भी संभावित विकल्प हो उनको स्वीकार करना चाहिये उसे उपलब्ध सूचनाओं का भरपूर उपयोग करना होता है।

(घ) विकल्पों का मूल्यांकन : विभिन्न विकल्पों से प्राप्त होने वाली सफलता का मूल्यांकन करना चाहिये जिससे की उद्देश्य की पूर्ति हो सके अर्थात् न्यूनतम लागत पर अधिकतम लाभ प्राप्त ह या संतोष प्राप्त हो। मूल्यांकन करते समय विकल्पों के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों को भी ध्यान में रखना चाहिये। यह सब निर्णयकर्त्ता की व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर करता है।

(ङ) समाधान का चयन या निर्णय लेना : जब सभी विकल्पों का तुलनात्मक मूल्यांकन हो जाता है तो उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक का चयन किया जाना ही निर्णय लेना है यह स्थिति ही अनिश्चय से निश्चय की ओर आने की व संकल्प की प्रतीक है।

(च) निर्णयों का क्रियान्वयन एवं अनुगमन : जब निर्णय ले लिया जाता है तो उसे कार्यरूप में लागू किया जाता है। क्रियान्वयन एवं अनुगमन के बिना निर्णयों की कोई महत्ता नहीं होती है। अत: निर्णयों की उपयोगिता, उपादेयता व व्यवहारिकता उनके क्रियान्वयन एवं अनुगमन में ही है। आर्थिक भू दृश्यों का विकास आर्थिक निर्णय लेने व उन्हें मूर्त रूप प्रदान करने पर ही संभव हो पाता है।

संक्षेप में निर्णयन प्रक्रिया में प्रथम दशा में समस्या की पहचान, दूसरी में समस्या का विश्लेषण, तीसरी दशा में संभावित विकल्पों का निर्धारण, चौथी दशा में विकल्पों का मूल्यांकन पांचवी दशा में निर्णय लेना व अंतिम दशा में निर्णय को क्रियान्वित करना होता है। क्रियान्वयन की दशा में परिवर्तन या संशोधन करना पड़ सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप पुन: सूचनाओं की प्राप्ति का कार्य शुरु हो जाता है और चक्रीय प्रक्रिया शुरु हो जाती है। जैसा कि चित्र संख्या 15.4 में दर्शाया गया है।

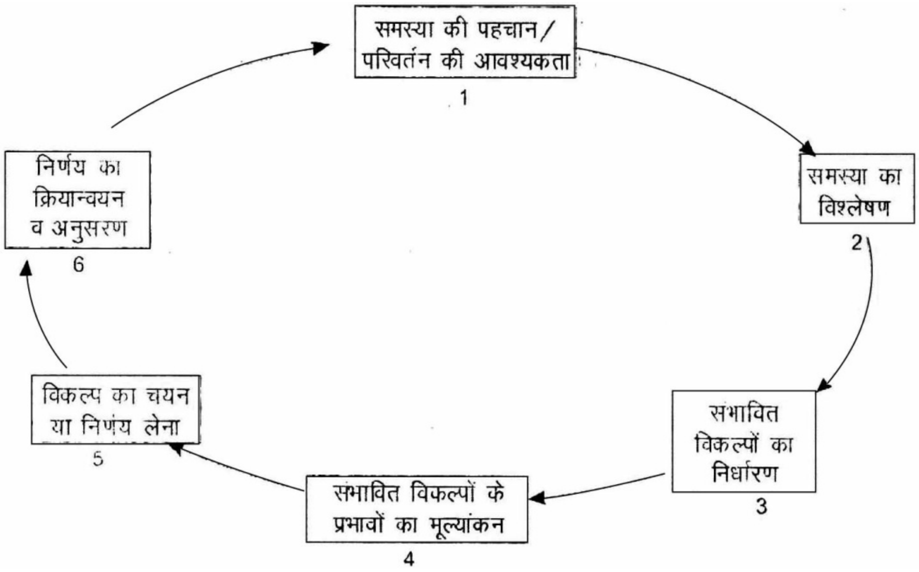

चित्र - 15.3: निर्णयन प्रक्रिया

बोध प्रश्न – 2

1. क्या निर्णय लेने की प्रक्रिया सभी स्तरों पर समान रूप से अपनाना संभव है?
....
....
2. कोई सी भी प्रक्रिया अपना कर आदर्श निर्णय लिये जा सकते है क्या?
....
....
3 किन कारणों से निर्णय लेने की प्रक्रिया अधिक प्रभावित होती है?

....

....

4. ''मानव हमेशा अधिकतम लाभ के लिये निर्णय लेता है।" क्या यह कथन सही है?

....

....

5. सर्वश्रेष्ठ (आदर्श) निर्णय संयोगवश ही लिये जाते है या संतोषप्रद निर्णय?

....

....

15.5 निर्णयों के प्रकार (Types of Decision)

वैसे तो मानव कदम – कदम पर निर्णय लेता है लेकिन निर्णयों की प्रकृति के अनुसार कई तरह के निर्णय होते है जो इस प्रकार है–

(i) अल्पकालिक व दीर्घकालिक निर्णय : वे निर्णय जिनके बारे में अधिक सोचने समझने की कम आवश्यकता होती है और तत्काल लेने होते है इनका प्रभाव समस्या की गंभीरता को कम करना होता है। जैसे बाजार में वस्तु के मूल्य में भारी अन्तर आ जाता है तो व्यापारी तत्काल मूल्य वृद्धि या मूल्यों में कमी का निर्णय करता है। कुछ निर्णय दीर्घकालीन प्रभाव वाले होते है अत: दीर्घकालीन प्रभाव वाले निर्णयों के लिये अधिक विश्लेषण, मूल्यांकन आदि का सहारा लेना पड़ता हैं।

(ii) व्यक्तिगत एवं संस्थागत निर्णय : कुछ निर्णय व्यक्ति विशेष से संबंधित होने से उनका महत्व व्यक्ति के लिये निजी रूप में होता है। उनका प्रभाव भी व्यक्ति विशेष पर ही पड़ता है। जबकि संस्थागत निर्णय अधिक व्यापक हो सकते है, जो संस्था के अस्तित्व,कार्यविधि व उद्देश्यों को प्रभावित करते है। इस प्रकार के निर्णयों को समूह द्वारा लिये जाते है। ये सामूहिक निर्णय भी कहलाते है। इन्हें व्यक्तिगत निर्णयों से अच्छा माना जाता है।

(iii) चालू निर्णय एवं महत्त्वपूर्ण निर्णय : कुछ निर्णय सामान्य किस्म के होते है, जो नित्य प्रति आने वाली छोटी–छोटी समस्याओं के समाधान के लिये लिये जाते है। जिनमें विश्लेषण, अधिकार, बुद्धि की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। जबकि महत्वपूर्ण निर्णय कभी–कभी ही लिये जाते है, उनमें निर्णयन की पूरी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

(iv) कार्यात्मक एवं सकार्यात्मक निर्णय : कुछ निर्णय पुनरात्मक 'प्रकृति के होते है इनके लिये नई विधि खोजने की आवश्यकता नहीं होती है, इनमें अधिक श्रम, समय व खर्च की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि ऐसे निर्णय पहले भी हो चुके होते है अत: उनका सहारा या आधार मिल जाता है। इसके विपरीत कार्यात्मक निर्णय विशेष प्रकार से लिये जाते है। इनके लिये हर बार नया मार्ग अपनाना पड़ता है। ये विशेष प्रकृति के होने के कारण ही विशेष प्रक्रिया अपना कर लिये जाते है। जैसे किसी उद्योग की स्थापना करना या किसी फर्म की नई शाखाएं खोलना आदि।

इसी प्रकार संगठनात्मक, विभागीय, अन्तर्विभागीय, प्रबन्धात्मक आदि कई प्रकार के निर्णय होते हैं जो अलग– अलग उद्देश्यों पर निर्भर करते है।

15.6 स्थिति सम्बन्धी निर्णयन–प्रक्रिया (Locational Decision – making)

आर्थिक भूगोल में हम आर्थिक गतिविधियों की स्थिति से संबंधित होते है। अत: अर्थतंत्र की स्थिति के निर्धारण का कार्य सम्पूर्ण निर्णयन–प्रक्रिया का एक अंग मात्र है। लेकिन जैसा कि हम निर्णय लेने की प्रक्रिया में देख चुके है कि निर्णय सर्वोत्तम (आदर्श) की अपेक्षा संतोषप्रद ही लिये जाते है। छोटे उद्योगों में भूल सुधार व परिवर्तन की संभावना अधिक रहती है, लेकिन बड़े उद्योगों में पहले ही सारी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है वहां परिवर्तन, संशोधन की संभावना कम रहती है। यहां हम उद्योगों व खेती में निर्णयन प्रक्रिया के उदाहरणों द्वारा मानव व्यवहार से लिये गये निर्णयों का अध्ययन करेंगे।

15.6.1 एक फर्म के लिये उद्योग की स्थिति का चयन (Selection of Location for a firm or Industry)

सामान्यत: एक फर्म के लिये या एक व्यक्ति के लिये उद्योग की स्थिति का चयन दो दशाओं में होता है (1) कोई व्यक्ति या फर्म पहली बार उद्योग स्थापित करें (2) या पहले से स्थापित उद्योग की असंतोषप्रद स्थिति को छोडकर नई स्थिति का चयन करें। दोनों ही दशाओं में उद्योग के लिये विशेष प्रकार की स्थिति की आवश्यकता होती है अत: जिस क्षेत्र या स्थान पर उद्योग स्थापित किया जाना है उस क्षेत्र के बारे में विस्तृत जानकारी की आवश्यकता होती है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुभव, आपसी सम्पर्क एवं प्राप्त सूचनाओं पर आधारित होती है। इससे एक मानसिक मानचित्र तैयार होता है। क्षेत्र विशेष या प्रदेश विशेष का चयन विभिन्न उपलब्ध संभाव्यताओं के मूल्यांकन पर निर्भर होता है यहां संस्थापक उनकी गुणात्मकता व अन्य बातों पर विचार करता है।

अगली कड़ी में संतोषप्रद स्थितियों में से एक दूसरे से तुलनात्मक अध्ययन करके संतोषप्रद स्थिति का चयन किया जाता है। जब संस्थापक अधिक संतोषप्रद स्थिति का चयन कर लेता है तब उसका निर्णय स्थान विशेष या क्षेत्र विशेष में उद्योग की स्थापना का हो जाता है। नये संस्थापक का अनुभव कम हो तो उसकी आयु, शैक्षणिक स्तर, अपने अंग्रेजों की सलाह, मानसिक स्तर, आर्थिक – सामाजिक स्तर, उद्देश्य पूर्ति, क्षेत्रीय झुकाव आदि कई बातों से उसका निर्णय प्रभावित हो सकता है। जबकि अनुभवी संस्थापक अपेक्षाकृत अधिक संतोषप्रद निर्णय ले सकता है। अधिकांश स्थिति चयन सम्बन्धी निर्णय जिन्दगी में एक या दो बार ही लिये जाते है। छोटी फर्मों के निर्णय इस प्रकार होते है कि या तो इस पार या फिर उस पार। लेकिन बड़ी फर्मों के लिये खोज का कार्य इच्छित स्तर प्राप्त करने तक जारी रहता है जो खर्चीला व अधिक समय लेने वाला होता है चूंकि इच्छित स्तर एक काल्पनिक दशा है अत: इसे प्राप्त करना आसान नहीं है। अगर बार – बार निर्णय लेने में असफलता मिलती है तो या तो

इच्छित स्तर में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है या अपने तलाश के साधनों को अधिक सक्षम बनाना पड़ता है तभी सफलता मिल सकती है फिर भी अगर वह असफल होता है तो वह मार्ग छोड़ना पड़ सकता है या फिर किसी संतोषप्रद के निकट की कमतर स्थिति को स्वीकारना पड़ता है (चित्र 1.54)।

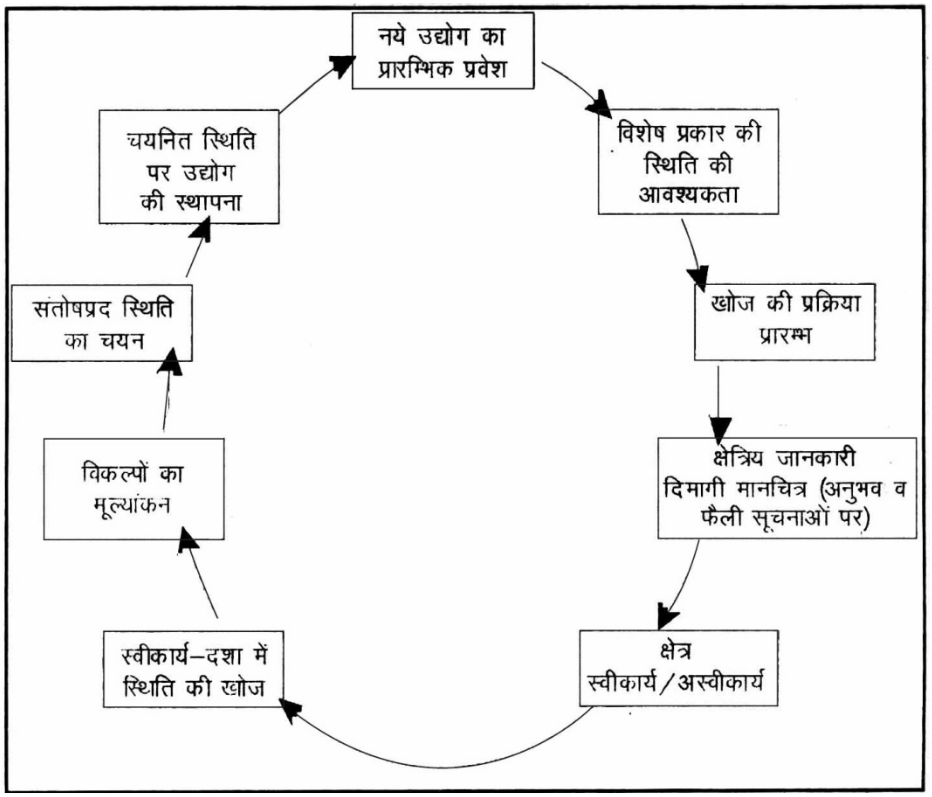

चित्र– 15.4 : उद्‌योग की स्थिति का चयन

15.6.2 फर्म की स्थापित स्थिति से नई स्थिति के चयन का उदाहरण (Relocation of Existing Firm)

किसी फर्म की स्थापित स्थिति में समय व स्थान के अनुसार कभी–कभी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है तब नई स्थिति का चयन करना होता हैं । इसके लिये (1) बसाव – स्थल (SITE) की भूगर्भिक बनावट, धरातल की बनावट, धरातल का ढाल वहां की जलवायु आदि की जानकारी आवश्यक होती है। इसके साथ ही (2) सापेक्षिक स्थिति (SITUATION) का ज्ञान आवश्यक है सापेक्षिक स्थिति में आस – पास के क्षेत्र में उपलब्ध सुविधाएं – कच्चा माल, परिवहन, पानी की उपस्कधता, श्रम, बाजार व नगरों से सापेक्षिक दूरी का ध्यान भी रखना पड़ता है। जहां दोनों में पर्याप्त संतुलन होता है उस स्थिति का चयन अनुकूल होता है। हो सकता है कि जिस समय फर्म की स्थापना की थी उस समय उक्त दोनों दशाएं अनुकूल रही हो लेकिन समय के साथ – साथ परिवर्तन आने से फर्म के लिये नई स्थिति का चयन या उसकी शाखा फर्म की स्थापना कर समस्या का समाधान प्राप्त किया जाता है। लेकिन समस्या का दबाव अधिक हो तो फर्म

की स्थिति में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। ये दबाव कई तरह के हो सकते है जैसे – उत्पादन वृद्धि से फर्म का विस्तार आवश्यक हो जाय या उस स्थान पर फर्म की लीज खत्म हो जाय, या उत्पादन घट जाये, मशीनें पुरानी हो जाय या पुरानी तकनीक के कारण लाभ प्रदाता कम हो जाये। ऐसे कई आन्तरिक व बाहय दबाव होते है जिसके कारण नई स्थिति के चयन की आवश्यकता हो जाती है। इस कारण विश्लेषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। समस्या का कारण ढूंढना और उसका समाधान ही विश्लेषण का आधार बनता है। जब समस्या का कारण ढूँढ लिया जाता है तो विभिन्न विकल्पों पर विचार किया जाता है। जैसे श्रम की कमी को स्वयं चालित मशीनें लगाकर, या स्थाई श्रमिक रखकर या श्रम कीं कमी के समय दूसरों से समझौता कर या अधिक मजदूरी देकर, काम के घंटे बढ़ाकर समाधान किया जा सकता है। अगर उत्पादन गिर रहा है तो अच्छी नई मशीनें लगाकर, अकुशल श्रमिकों को कुशल बनाकर या उनकी छंटनी करके या कच्चे माल की कमी को पूर्ति बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

जब विभिन्न विकल्प ढूँढ लिये जाते है तो उनका मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। कई बार नई स्थिति पर फर्म की स्थापना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का खर्च, नई स्थिति पर सफलता में अनिश्चितता, नये स्थान को प्राप्त करने का खर्च, स्थान परिवर्तन की अवधि में उत्पादन में होने वाले व्यवधान से होने वाली हानि, किसी फर्म का किसी स्थिति विशेष से प्राप्त सम्मान आदि बातों का भी मूल्यांकन आवश्यक होता है। इन सबके बाद भी दबाव ज्यादा होते है तो ही फर्म स्थिति का परिवर्तन करने का निर्णय लेती है तब विभिन्न विकल्पों में से किसी अधिकतम संतोषप्रद विकल्प का चयन करके फर्म की नई स्थिति का निर्णय किया जाता है। उपरोक्त सभी कारण विभिन्न स्तर पर अपना प्रभाव डालते है। अत: निर्णयकर्त्ता के व्यवहार को व निर्णय को प्रभावित करते है।

15.6.3 कृषि व्यवस्था में निर्णयन–प्रक्रिया (Decision - making in Agriculture)

जहां उद्योगों में स्थिति का चयन कर निर्णय किया जाता है वहीं कृषि में स्थिति सम्बन्धी निर्णय उत्पादक को नहीं लेना होता है क्योंकि कृषि में भूमि की स्थिति निश्चित होती है। अत: यहां उत्पादक को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह निश्चित करना पड़ता है कि कहा किस वस्तु का उत्पादन किया जाये ? दूसरे शब्दों में भूमि का श्रेष्ठतम रूप में उपयोग किस फसल के उत्पादन में किया जा सकता है ? जिससे अधिकतम लाभ या आवश्यकता, की पूर्ति हो सके इस सम्बन्ध में जे. बुल्पर्ट ने 1964 में मध्य स्वीडन में कृषकों द्वारा की जा रही कृषि की उत्पादकता का अध्ययन किया और पाया कि श्रमिक उत्पादकता के श्रेष्ठतम एवं वास्तविक प्रतिरूपों के तुलनात्मक अध्ययन में श्रमिकों की क्षमता का दो तिहाई उपयोग ही हो रहा था जबकि वास्तविक एव संभावित उत्पादकता का विन्यास क्षेत्रीय रूप से एक समान था इसका कारण कृषकों का उपलब्ध सीमित ज्ञान, सूचनाओं का पूरा उपयोग न करने व इन पर विभिन्न बातों के पड़ने वाले प्रभावों के कारण था (चित्र - 15.5)।

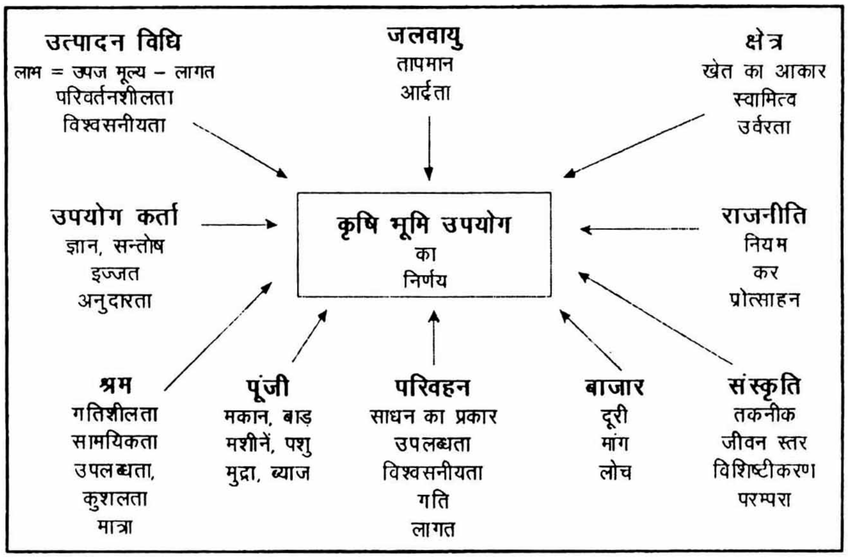

चित्र – 15.5 : कृषि भूमि उपयोग का निर्णय

कृषि – भूमि उपयोग पर कृषि भूमि का ढाल, तापमान, वर्षा, आर्द्रता, खेत का आकार, स्वामित्व, भूमि की उर्वरता आदि दशाएं प्रभाव डालती है वहीं बाजार मूल्य, बाजार से दूरी, परिवहन की सुविधा, सिंचाई की सुविधा, सरकार के नियम व कर, सरकारी प्रोत्साहन, उत्पादन की तकनीक, जीवन स्तर, परम्पराएं, पूंजी की उपलब्धता, मशीनों का उपयोग, पशु संसाधन, श्रम की उपलब्धि, श्रमिक उत्पादकता एवं उपलब्धता आदि कई तत्वों का प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही कृषक की सक्रियता, आयु, अनुभव, शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक स्तर, पूर्व में लिये गये निर्णयों का प्रभाव, जोखिम उठाने का साहस, विश्वास, उद्देश्य आदि भी कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धी निर्णय को प्रभावित करते है। अत: इस सम्बन्ध में कोई सार्वभौम सिद्धान्त का प्रतिपादन करना बहुत कठिन है क्योंकि मानव का भिन्न – भिन्न दशाओं में व्यवहार भी एक सा या भिन्न–भिन्न हो सकता है। इस संदर्भ में हगेट (1965) के विचार महत्वपूर्ण है कि 'वास्तव में मानव की निर्णय लेने की प्रक्रिया न तो पूर्णत: तर्क संगत है और न ही पूर्ण अव्यवस्थित है बल्कि यह अवसर, पसन्द और परिकलन की संभाव्यता सम्बन्धी समिश्रण हैं।

15.7 वर्तमान के संदर्भ में स्थिति सम्बन्धी निर्णय (Locational Decision in Present Contest)

अत: जैसा कि हमने फर्म या उद्योग व कृषि उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों का अध्ययन किया यद्यपि प्रारम्भिक रूप से इन सिद्धान्तों के प्रति आकर्षण तो है लेकिन आजकल व्यवहार में ये अधिक प्रचलित नहीं है। बदलती हुई परिस्थितियों में अन्य प्रकार के निर्णय अधिक प्रभावशाली हो रहे है जो इस प्रकार है -

(1) सभी प्रकार के निर्णयों में चाहे वे स्थितिगत निर्णय हो या अन्य प्रकार के, बहुत कम शोध पर आधारित होते है व बहुत कम विकल्पों का मूल्यांकन कर लिये जाते है।

(2) आज के युग में किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था हो उसे पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों से सामंजस्य करना पड़ता है और निर्णय लेने पड़ते है आज पारस्परिक अन्तर्निर्भरता बढ़ गई है। अत: उनसे उत्पन्न व्यापक प्रभावों का पूर्वानुमान लगाना कठिन है क्योंकि निर्णयकर्त्ता का ज्ञान सीमित होता हैं। अत: समय के अनुसार निर्णयों में परिवर्तन व संशोधन करना पड़ता है।

(3) आज के संदर्भ में स्थिति सम्बन्धी निर्णय उतने महत्वपूर्ण नहीं है जितने अन्य प्रकार के निर्णय महत्वपूर्ण होते हैं।

(4) प्राचीन विचारों, सिद्धान्तों के आधार पर स्थिति सम्बन्धी निर्णय के मॉडल आदर्शक है जबकि आजकल व्यवहारिक विज्ञान के आधार पर उनमें काफी अन्तर पाया जाता है।

(5) आज की जटिल दशाओं में अनुभवी निर्णयकर्त्ता के लिये भी निर्णय का क्रियान्वयन करते समय तक परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता हैं।

(6) पुराने सिद्धान्त अधिक सरल थे जहां उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को अलग मानकर देखा जाता था जबकि वास्तव में मानवीय तत्व मांगकर्त्ता एवं पूर्तिकर्त्ता (उत्पादक एवं उपभोक्ता) दोनों तरह से व्यवहार करता है।

अत: व्यवहारात्मक दृष्टि से आदर्श स्थिति को प्राप्त करना स्वप्न है। व्यवहार में वह उससे कम ही पाई जाती है अर्थात् केवल संतोषप्रद निर्णय की स्थिति हो सकती है या प्राप्त की जा सकती है।

बोध प्रश्न – 3.

1. समय सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये।

   ....

   ....

2. निर्णय के मुख्य प्रकारों के नाम बताइये।

   ....

   ....

3. ''मानव की निर्णय लेने की प्रक्रिया न तो पूर्णत: तर्कसंगत है और न ही पूर्णत: अव्यवस्थित है, बल्कि यह अवसर पसन्द और परिकलन की संभाव्यता सम्बन्धी मिश्रण है।'' यह विचार किसने व्यक्त किये ?

   ....

   ....

4. क्या व्यवहारिक दृष्टि से आदर्श स्थिति ज्ञात करना संभव है?

   ....

   ....

5. एक ही मानव कभी उत्पादक, कभी उपभोक्ता, कभी सरकार की नियंत्रण व्यवस्था का अंग बनकर, कभी संसाधनों के मालिक के रूप में जो निर्णय करता है। वे निर्णय बहुत सरल होते है या जटिल ?

....

....

6. व्यक्तिगत निर्णय अच्छे होते है या संस्थागत निर्णय ?

....

....

15.8 सारांश (Summary)

मानव व्यवहार से संबंधित स्थितिगत निर्णय लेने की प्रक्रिया भूगोल वेताओं के लिये एक नवीन विचार है। 20वीं शताब्दी में ही भूगोलवेताओं ने इसके व्यवहारिक पक्ष पर अध्ययन किये है, इनमें टी. हेगर स्ट्रेन्ड (1952), जे. बुल्पर्ट (1964), डब्ल्यू.एस. लटरेल (1962), ए. प्रेड (1967), पी. अग. गोल्ड (1969), ब्राऊन (1968), वॉन थूईनेन (1826), आदि प्रमुख है।

चूंकि यह अध्ययन मानव – व्यवहार से संबंधित है, जो परिवर्तनशील वातावरण में कार्य करता है अत: मानव द्वारा व्यक्तिगत एव सामूहिक रूप से किसी समय, स्थान एवं परिस्थिति विशेष में लिये गये निर्णयों के परिणाम स्वरूप ही आर्थिक–भूदृश्यों का निर्माण होता है। उसके निर्णय आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक व व्यावहारिक आदि कई तत्वों से प्रभावित होते है। विषय का नया क्षेत्र होने के कारण भूगोलवेताओं के लिये यह एक चुनौती है।

15.9 शब्दावली

- **पड़ौसी प्रभाव :** पास–पास में स्थित व्यक्तियों का प्रभावित होना।
- **वरीयता :** अनेक में से किसी एक का चयन।
- **निर्णयन :** निर्णय लेने से पूर्व की बौद्धिक प्रक्रिया
- **क्रियान्वयन :** निर्णय को मूर्त रूप देना।
- **कार्यात्मक :** किसी भी प्रकार के कार्य से संबंधित
- **मानसिक मानचित्र :** कल्पना पर आधारित मानचित्र
- **इच्छित स्तर :** वह स्तर जहां इच्छा की पूर्ति हो।
- **विन्यास :** स्वरूप या प्रारुप
- **सार्वभौम सिद्धान्त :** जो सिद्धान्त सभी जगह मान्य एवं सत्य हो।

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जैन, हरकचन्द : **सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल**, कमलेश प्रकाशन, भीलवाड़ा – 1984
2. जोशी, नन्द वल्लभ : **आर्थिक भूगोल की सैद्धान्तिक रूपरेखा**, राजस्थान हिन्दी फ़–थ अकादमी, जयपुर – 1986
3. सिंह, जे.एस. एवं सिंह, के.एन. : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्व**, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी – 1980
4. कौशिक एस.डी. : **आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त**, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ - 1976

5. LLoyd, P.E. and Dicken, **P. : Location in Space : A Theoretical Approach to Economy Geography**, Harper International ed. New York – 1972
6. Christaller, W. : **Translated by C.W. Baskin as central place in Southern Geogramay**, Englewood Cliffs N.J. 1966.
7. Losch, A. : **The economics of location, Translated by W.H. woglom and W.F. Stolpes**, Yale university press, New Haven 1954.
8. Fishbwon : **Decision and value theory**, New York, 1964.
9. Jeffrey, R.C. : **The logic of Decision**, New York, 1965.
10. Zipf, G.K. : **Human Behaviour and the Principle of Least effort**, Combirdge, 1949.

15.11 बोध प्रश्नो के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. दो या दो से अधिक विकल्पों में से किसी सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना निर्णय कहलाता है।
2. निर्णय, निर्णयन की अंतिम अवस्था है, जो दृढ़ निश्चय का प्रतीक है, जबकि निर्णयन एक जटिल एवं अदृश्य बौद्धिक प्रक्रिया होती है।
3. दो विधियां है (1) परम्परागत (2) वैज्ञानिक

   (1) समस्या की पहचान (2) समस्या का विश्लेषण (3) संभावित विकल्पों का निर्धारण
4. विकल्पों का मूल्यांकन (5) निर्णय लेना (6) निर्णय को क्रियान्वित करना।

बोध प्रश्न – 2.

1. .नही
2. नहीं, अधिकांश निर्णय संतोषप्रद ही होते हैं।
3. वातावरण से प्राप्त सूचनाएं, प्रत्यक्षज्ञान, निर्णयकर्ता की आयु, उपलब्ध समय, आर्थिक–सामाजिक स्तर, शैक्षिक स्तर लैंगिकता, गतिशीलता आदि कई तत्व प्रभावित करते है।
4. नही
5. संयोगवश

बोध प्रश्न – 3.

1. समय सिद्धान्त के अनुसार समय पर निर्णय लेना ही उचित है अन्यथा हानि हो सकती है।
2. (अ) अल्पकालिक व दीर्घकालिक निर्णय

   (ब) व्यक्तिगत एव संस्थागत निर्णय

   (स) चालू निर्णय एवं महत्वपूर्ण निर्णय

   (द) कार्यात्मक एवं अकार्यात्मक निर्णय

3. हगेट
4. नही
5. जटिल

15.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निर्णय किसे कहते है ? निर्णय लेने की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।
2. निर्णयन के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए, निर्णय लेने की विधियों को स्पष्ट कीजिए।
3. निर्णय लेने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उसको प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
4. निर्णयन की विशेषताएं बताते हुए स्थिति संबंधी किसी एक निर्णय की व्याख्या कीजिए।
5. निर्णयन प्रक्रिया का आधार स्पष्ट करते हुए निर्णयों के प्रकार बताइये और किसी एक प्रकार के स्थितिगत निर्णय की व्याख्या कीजिए।

इकाई 16 : केन्द्रीय–स्थल सिद्धान्त की परिवर्तित प्रकृति (Changing Nature of Central Place Theory)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 केन्द्रीय स्थानों की परिभाषा

16.3 वाल्टर क्रिस्टलर का केन्द्रीय स्थान सम्बन्धी सिद्धान्त

16.3.1 क्रिस्टलर की मान्यताएं

16.3.2.1 केन्द्रीय स्थानों का पदानुक्रम

16.3.2.2 क्रिस्टलर की K व्यवस्था

16.3.3 क्रिस्टलर का सिद्धान्त

16.3.3.1 बाजार सिद्धान्त

16.3.3.2 यातायात सिद्धान्त

16.3.3.3 प्रशासनिक सिद्धान्त

16.4 केन्द्र स्थानों की केन्द्रीयता

16.4.1 कार्यात्मक पदानुक्रम का स्तर

16.4.2 माल व सेवाओं की संख्या

16.5 क्रिस्टलर के सिद्धान्त की आलोचना

16.6 लॉश का केन्द्र स्थल तंत्र

16.7 क्रिस्टलर व लॉश के विचारों की तुलना

16.8 क्रिस्टलर व लॉश के विचारों की आलोचना

16.9 केन्द्रीय स्थानों के सिद्धान्त की परिवर्तित प्रकृति

16.10 केन्द्रीय स्थानों के अध्ययन का महत्व

16.11 सारांश

16.12 शब्दावली

16.13 संदर्भ ग्रन्थ

16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे -

- केन्द्रीय स्थानों की परिभाषा,

- क्रिस्टलर की मान्यताएं व केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त,
- K व्यवस्था एव क्रिस्टलर के सिद्धान्त के विभिन्न रूप,
- केन्द्रीय स्थानों की केन्द्रीयता,
- क्रिस्टलर के सिद्धान्त की आलोचना,
- लॉश के विचार व क्रिस्टलर से तुलना,
- क्रिस्टलर व लॉश के सिद्धान्त की आलोचना,
- केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की परिवर्तित प्रकृति,
- केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त के अध्ययन का महत्व

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव की मूलभूत आवश्यकताओं के कारण विभिन्न पदार्थो की मांग स्वाभाविक है, क्योंकि सभी पदार्थ धरातल पर समान रूप से नहीं पाये जाते है। एक ओर तकनीकी विकास के कारण अत्यधिक उत्पादन होने से तथा दूसरी ओर कम विकास एव बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मांग और पूर्ति में असन्तुलन होने से व्यापार का जन्म होता है। अत: अधिकता वाले स्थानों से कमी वाले स्थानों की ओर इनका प्रवाह व लेन–देन होता है। यह पहले सीमित क्षेत्र में होता था लेकिन धीरे–धीरे बढ़ता हुआ विश्व–स्तरीय हो गया है। विश्व का प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे पर निर्भर हो गया है। अत: विनिमय एव व्यापार के लिये किसी क्षेत्र में कुछ केन्द्रों की स्थापना हो जाती है और आस–पास के क्षेत्र का आर्थिक विकास होने व जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण इन केन्द्रों का आकार व संख्या भी बढ़ने लगती है इन्हीं केन्द्रीय स्थानों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

16.2 केन्द्रीय स्थानों की परिभाषा (Definition of Central Places)

केन्द्रीय स्थानों से तात्पर्य ऐसे केन्द्रों से है जहां विभिन्न प्रकार की मानवीय गतिविधियां आस–पास के क्षेत्र में फैली जनसंख्या के लिये विभिन्न प्रकार की वस्तुओं एव सेवाओं की (मांग की) पूर्ति के लिये प्रदान की जाती है या संचालित होती है, ये केन्द्र विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के मिलन केन्द्र भी होते है। नगरीय बस्तियां इसी प्रकार के केन्द्रीय स्थान होती है जो अपने चारों ओर फैले ग्रामीण क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध रखती है। नगर अपने विशेष कार्यों से आस–पास के क्षेत्र की सेवा करता है। उसे माल प्रदान करता है व बदले में वह ग्रामीण क्षेत्र से सेवा या माल प्राप्त करता है। वास्तव में यह आदान –प्रदान एक चक्रीय व्यवस्था के रूप में स्थापित हो जाता है, जहाँ एक दूसरे के मध्य माँग और पूर्ति के रूप में चक्र चलता रहता है इसे ही हम दूसरे शब्दों में व्यापार कह सकते हैं।

केन्द्रीय स्थान शब्द का प्रयोग 1931 में मार्क जैफरसन ने किया लेकिन' इसको ठोस आधार 1933 में वॉल्टर क्रिस्टलर ने दिया सामान्यत: केन्द्रीय स्थान का अर्थ कस्बा या नगर समझा जाता है। लेकिन किसी एक नगरीय क्षेत्र में कई केन्द्रीय स्थान हो सकते है, जो सेवा या माल के वितरण बिन्दुओं का कार्य करते है और प्रत्येक वितरण केन्द्र अपने अपने आस–पास के क्षेत्र

को सेवाएं प्रदान करता है ये सेवाएं किसी कस्बे वाले क्षेत्र की भी हो सकती है और किसी ग्रामीण क्षेत्र की भी हो सकती है।

16.3 वाल्टर क्रिस्टलर का केन्द्रीय स्थल सम्बन्धी सिद्धान्त (Walter Christaller's Theory of Central Places)

क्रिस्टलर ने 1933 में "दक्षिणी जर्मनी में केन्द्रीय स्थान" (Central Places in southern Germany) नामक ग्रन्थ में अपने विचार व्यक्त किये। उसने पुस्तक को तीन भागों में बाटा। पहला भाग सैद्धान्तिक व्याख्या का था, दूसरा भाग प्रायोगिक विधियों वाला था, तीसरे भाग में उक्त सिद्धान्त को परखा गया। मूल रूप में उसका सिद्धान्त नगरीय व ग्रामीण बस्तियों के वितरण से सम्बन्धित है। क्रिस्टलर ने सिद्धान्त को कुछ मान्यताओं के आधार पर विकसित किया जो इस प्रकार है -

16.3.1 क्रिस्टलर की मान्यताएं (Assumptions of Christaller)

(1) एक समान धरातल : क्रिस्टलर की मान्यता के अनुसार प्रदेश एक समतल मैदान है यह सीमा रहित है इसमें धरातल मिट्टी की उर्वरता, जलवायु आदि सब एक समान है।

(2) ग्रामीण जनसंख्या का समान वितरण : इस क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या का वितरण भी सर्वत्र समान है।

(3) जनसंख्या की समान प्रवृत्ति : इस क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या की आय भी समान है एव क्रय शक्ति भी समान है।

(4) जनसंख्या केन्द्रों का त्रिभुजाकार वितरण : इस क्षेत्र में जनसंख्या के केन्द्रों का त्रिभुजाकार वितरण है यह वितरण इसलिये आवश्यक है जिससे सभी स्थानों पर जनसंख्या की सेवा हो सके।

(5) प्रत्येक कार्य के लिये बाजार सीमा : इस मान्यता के अनुसार एक कार्य के लिये अधिकतम दूरी निर्धारित होती है जिसके बाहर किसी दिये हु ये कार्य के लिये व्यक्ति नहीं जा सकते है यह सीमा या दूरी उस कार्य द्वारा निर्धारित होती है। निम्न स्तरीय कार्य के लिये व्यक्ति कम दूरी की यात्रा करेंगे जबकि उच्च स्तरीय कार्य के लिये अधिक दूरी तय करेंगे। निम्न स्तरीय कार्यो के केन्द्रीय स्थान छोटे होंगे व उच्च स्तरीय कार्यों के केन्द्रीय स्थान बड़े केन्द्र होंगे।

(6) किसी कार्य के लिये न्यूनतम मांग का स्तर : इस मान्यता के अनुसार किसी सेवा, माल या व्यापार को चलाने के लिये न्यूनतम मांग का स्तर (न्यूनतम जनसंख्या) होना चाहिये जब तक यह स्तर नहीं होगा वहां कार्य प्रारम्भ नहीं होगा जैसे – जैसे जनसंख्या बढ़ती जायेगी मांग का स्तर भी बढ़ता जायेगा वैसे ही केन्द्र स्थान की सेवा कार्य का स्तर भी बढ़ता जायेगा, क्योंकि उच्च स्तर के कार्य अधिक जनसंख्या की मांग पर निर्भर करते हैं।

(7) जनसंख्या का निश्चित स्थानिक व्यवहार : इस मान्यता के अनुसार उस क्षेत्र का व्यक्ति अपने निकटतम केन्द्र से ही वस्तु खरीदेगा और उस वस्तु के खरीदने के लिये अन्य केन्द्र को कोई महत्व नहीं देगा।

(8) समान परिवहन के साधन एवं समान परिवहन खर्च : इस मान्यता के अनुसार इस प्रदेश में परिवहन का एक ही प्रकार का साधन है तथा परिवहन – व्यय भी दूरी के अनुपात में बढ़ता है अत: परिवहन खर्च भी सभी स्थानों पर समान है।

(9) अकलमन्द जनसंख्या : इस मान्यता के अनुसार इस प्रदेश में रहने वाली जनसंख्या उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों दशाओं में आदर्श स्थिति में व्यवहार करते है। उत्पादक के रूप में वे अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहते है जबकि उपभोक्ता के रूप में कम से कम खर्च करके अधिकतम वस्तु क्रय करना चाहते है।

उक्त मान्यताओं के आधार पर केन्द्रों की स्थिति का निर्धारण आधारभूत रूप से मांग और पूर्ति पर निर्भर करता है। क्रिस्टलर ने उक्त मान्यताओं के आधार पर ही "सरलीकृत आर्थिक भूदृश्य" (Simplified economic) को आधार बनाकर केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो इस प्रकार है।

"सरलीकृत आर्थिक भूदृश्य" में सर्वप्रथम किसी उत्पादक या सेवा प्रदान करने वाले के लिये यह आवश्यक है कि वह जिस वस्तु का उत्पादन करने जा रहा है या जो सेवा प्रदान करने जा रहा है,इसके लिये उसे पर्याप्त भुगतान प्राप्त हो जायेगा व आस–पास के क्षेत्र से उत्पादन की अतिरिक्त लागत प्राप्त जो जायेगी' एवं उसे पर्याप्त लाभ भी मिल जायेगा इन सबके लिये न्यूनतम जनसंख्या या न्यूनतम मांग का स्तर (Threshold) होना आवश्यक है। जब वह इस बात से आश्वस्त हो जाता है कि लाभ की वहां आवश्यक एवं पर्याप्त दशाएं उपलब्ध है तभी वह वस्तु का उत्पादन या सेवा का कार्य शुरु करता है।

हमारे इस मॉडल में सभी बातें समानता लिये हुये है अत: ग्राहकों की माल खरीदने की मात्रा वस्तु के मूल्य पर निर्भर करती है इस दृष्टि से सभी को समान मूल्य देने पर समान मात्रा में वस्तु या सेवा प्राप्त हो जाती है लेकिन सब बातें समान होते हुये भी परिवहन लागत दूरी के अनुपात में बढ़ती है यह लागत या तो उत्पादक को दूर तक माल पहुंचाने में लगेगी या दूर स्थित उपभोक्ता को केन्द्र पर आकर माल खरीदने में लगती है। ऐसी दशा में जो केन्द्र पर स्थित ग्राहक है वे मूल्य कम होने पर अधिक मात्रा में माल खरीद सकेंगे जबकि दूरी पर स्थित ग्राहकों को अधिक मूल्य पर माल मिलने के कारण वे कम मात्रा में माल खरीद सकेंगे क्योंकि दूरी का परिवहन खर्च माल का मूल्य बढ़ा देगा (इस क्षेत्र के सभी ग्राहकों की आय समान है व खर्च की क्षमता भी समान है।

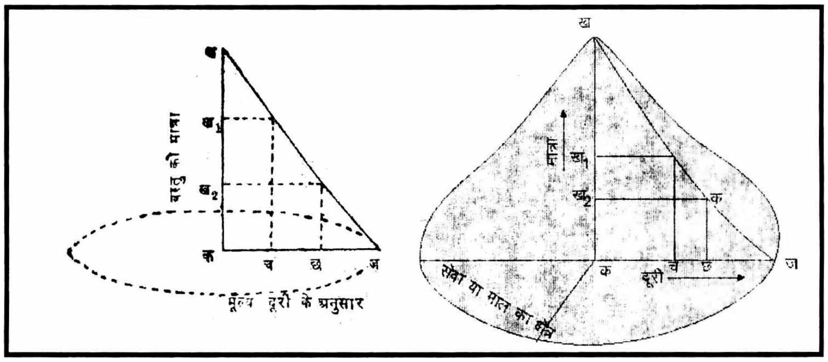

चित्र – 16.1 : सेवा या माल का क्षेत्र

चित्र– 16.1 के अनुसार ग्राहकों की स्थिति 'क' पर होने पर वह अधिक मात्रा में माल खरीद सकेगा जबकि च,छ,ज जो केन्द्र से दूर अलग – अलग स्थानों पर स्थित है उन्हें दूरी के अनुपात में परिवहन खर्च भी देना पड़ेगा अत: उनकी क्रय क्षमता दूरी बढ़ने के साथ कम होती जायेगी और एक सीमा के बाद वह वस्तु का मूल्य इतना हो जायेगा कि वहां का ग्राहक वस्तु या माल नहीं खरीद पायेगा इसे इस सूत्र से व्यक्त किया जा सकता है -

उत्पादक से दूरी पर मूल्य = प्रारम्भिक मूल्य + दूरी के अनुपात में परिवहन लागत

दूमू = प्रा.मू. + दूरी x प.ला.

उक्त विश्लेषण से क ख ज त्रिभुज बनेगा अगर इस त्रिभुज को केन्द्र क के सहारे घुमाया जायेगा तो एक शंकुआकार आकृति बन जायेगी इस शंकु की परिधि, उस वस्तु के बाजार के क्षेत्र को प्रकट करेगी।

अगर क्षेत्र की जनसंख्या की मांग की पूर्ति नहीं होती है तो दूसरा उत्पादक इस क्षेत्र में आयेगा पूर्ववर्ती सभी दशाएं समान होने की स्थिति में नये उत्पादक के लिये स्थिति का चुनाव प्रतिबंधित होगा क्योंकि पहले वाले उत्पादक से प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है अगर वह भी उसी केन्द्र पर उसी माल का उत्पादन करें। तब दोनों का लाभ बंट जाएगा व दोनों को हानि होगी। लेकिन अगर वह 'क' के बाजारी क्षेत्र से दूर हटकर 2r की दूरी पर माल का उत्पादन शुरु करेगा तो दोनों को ही अधिकतम लाभ प्राप्त होगा (यहां r से

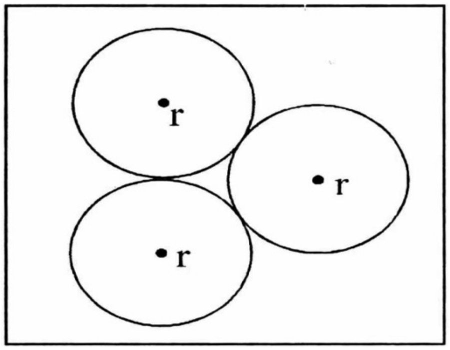

चित्र – 16.2 : प्रत्येक केन्द्र एक दूसरे से 2r की दूरी पर

तात्पर्य 'क' के बाजारी क्षेत्र के अर्द्धव्यास से है) या पहले वाले के बाजारी क्षेत्र में स्थापित होने पर दोनों में प्रतिस्पर्धा होगी व दोनों का लाभ कम हो जायेगा। अत: उपयुक्त स्थिति 2r की दूरी पर स्थापित होने से प्राप्त हो सकेगी व दोनों को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा (चित्र– 16.2)।

अगर माल या सेवा की पूर्ति उस क्षेत्र में फिर भी नहीं होती है तो तीसरा, चौथा, पांचवा या n संख्या तक उत्पादक इसी सिद्धान्त के आधार पर उत्पादन प्रारम्भ करेंगे और इसी सिद्धान्त के आधार पर व्यवसाय स्थापित करेंगे और प्रत्येक का वृत्ताकार बाजारी क्षेत्र बन जायेगा लेकिन जैसे – जैसे उत्पादक बढ़ेंगे बाजारी क्षेत्रों के आपसी सम्बन्धों में समस्याएं उत्पन्न होने लगेगी। चित्र– 16.3 अ के अनुसार अगर विभिन्न उत्पादक केन्द्रों के बाजारी क्षेत्र केवल एक दूसरे को स्पर्श करेंगे तो बीच के क्षेत्र के ग्राहक बिना माल या सेवा की पूर्ति के रह जायेंगे।

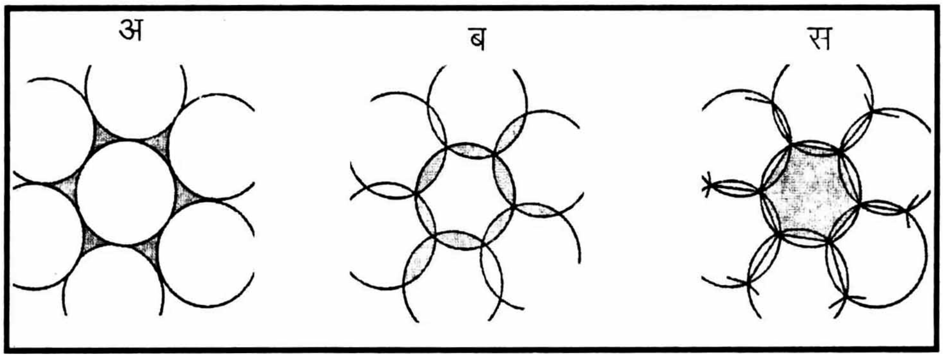

चित्र– 16.3 : विभिन्न उत्पादक केन्द्रों के बाजारी क्षेत्र

चित्र– 16.3 अ में इसको गहरे रंग में दर्शाया गया है। इस समस्या का समाधान सभी उत्पादकों का थोड़ा सा बाजारी क्षेत्र का अतिक्रमण कर किया जाये तो उत्पादकों में प्रतिस्पर्द्धा शुरु हो जायेगी (अतिक्रमण क्षेत्रों के मध्य का भाग चित्र– 16.3 ब में गहरे काले रंग से दिखाया गया है) लेकिन अतिक्रमण क्षेत्रों के मध्य में एक विभाजक रेखा बन जायेगी। इस रेखा पर स्थित ग्राहक दोनों केन्द्रों से समान मूल्य पर माल खरीद सकेंगे (चित्र – 16.3 स) तथा यह बाजारी क्षेत्र वृत्ताकार से एक षट्कोणीय आकृति में बदल जायेगा जिससे केन्द्र का बाजारी क्षेत्र या प्रभाव क्षेत्र अधिक सुडौल आकृति का बन जायेगा (चित्र - 16.4)।

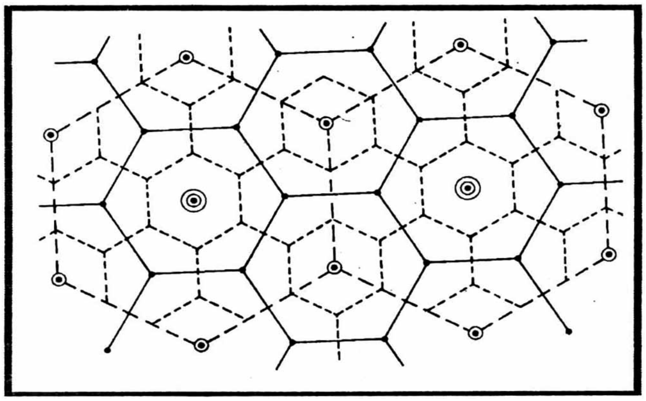

चित्र – 16.4 : बाजारीय क्षेत्र की षट्कोणीय आकृति

वृत्ताकार की जगह षट्भुजाकार (Hexagonal) आकृति ही क्रिस्टलर के अनुसार अधिकतम उपयुक्त एवं आदर्श स्थिति हो सकती है। जहां उत्पादकों एवं ग्राहकों में आपस में संतुलन हो जाता है। अत: एक वस्तु के उत्पादन की दृष्टि से षट्कोणीय क्षेत्रों की सेवा के लिये एक समान व संगठित उत्पादक केन्द्रों का जाल स्थानिक व्यवस्था में विकसित हो जायेगा। ऐसी षट्कोणीय स्थिति से आस – पास के कोई भी तीन केन्द्र सीधी रेखाओं द्वारा मिला दिये जाने पर समत्रिबाहु त्रिभुज का निर्माण करेंगे जो बिना प्रतिस्पर्द्धा के सभी केन्द्रों के लिये अधिकतम लाभ की स्थिति वाले होंगे।

16.3.2 केन्द्रीय स्थानों का पदानुक्रम : (Hierarchy)

उपरोक्त स्थिति एक वस्तु के उत्पादन की एक दशा बताती है, लेकिन उपरोक्त अध्ययन से आगे हम पाते है कि सामान्यत: कुछ वस्तुएं या सेवाएं निम्न स्तर की होती है कुछ उच्च स्तर की होती है। निम्न स्तर की वस्तुओं की मांग का क्षेत्र भी छोटा होता है जबकि उच्च स्तर की वस्तुओं का मांग का स्तर भी अधिक होता है या उनकी पहुंच का क्षेत्र भी व्यापक होता है। जैसे प्राथमिक शिक्षा या प्राथमिक चिकित्सा निम्न स्तर की सेवा है अत: इनकी मांग का स्तर भी निम्न या छोटा होता है। जबकि विश्वविद्यालय स्तर की सेवा या सर्जन विशेषज्ञ की सेवाएं उच्च स्तर की सेवा कहलाती है। इनकी मांग का स्तर भी उच्च होगा और इनकी मांग का क्षेत्र भी अधिक व्यापक होगा। लॉयड एवं डिकन के अनुसार उत्पादक केन्द्रों की बार–बार आवृति माल के स्तर से विपरीत सम्बन्ध रखती है। (The frequency of occurences of production point is inversely related to the order of goods.)।

इससे तात्पर्य है कि निम्न स्तर के माल या सेवा से संबंधित केन्द्रों की संख्या अधिक होगी व उच्च स्तर के माल या सेवा के केन्द्रों की संख्या कम होगी। क्रिस्टलर के अनुसार इस प्रकार के केन्द्रों की स्थिति पदानुक्रम में व्यवस्थित होती है। क्रिस्टलर के पदानुक्रम (Hierarchy) को समझने के लिये यह समझना आवश्यक है कि एक स्तर का केन्द्र न केवल अपने स्तर का माल या सेवाएं प्रदान करता है बल्कि अपने से निम्न स्तर की सभी सेवाएं एवं माल भी प्रदान करता है। जैसे किसी बड़े नगर में विश्वविद्यालय स्थापित है तो वहां नर्सरी से लेकर प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, कॉलेज स्तर की सेवाएं भी उपलब्ध होती है अर्थात् वह केन्द्र निम्न स्तर की सेवाएं भी प्रदान करता है।

16.3.3 क्रिस्टलर की K व्यवस्था

क्रिस्टलर के अनुसार सभी प्रकार के माल व सेवाओं को स्तरीकृत या श्रेणीकृत किया जाता है। जिसका मांग का स्तर सबसे कम है उसे 1 श्रेणी का व सबसे उच्च स्तर की मांग के स्तर के माल या सेवा को ग़ श्रेणी का मान सकते है। जैसा कि हम जानते है n श्रेणी का माल या सेवा का विस्तृत बाजारी क्षेत्र होता है अत: ये सुविधाएं दूर–दूर स्थित केन्द्रों पर ही उपलब्ध होती है इन्हें हम बड़े नगरों में पाते है। माना कि हमारे मैदानी भाग में जनसंख्या 50 लाख है और प्रत्येक 5 लाख की जनसंख्या पर एक कॉलेज की मांग का स्तर है तो इस क्षेत्र में 10 कॉलेज के केन्द्र होंगे ये उच्च स्तर के सेवा केन्द्र या केन्द्रीय स्थान कहे जा सकते है। इसके साथ ही इस केन्द्र पर इससे निम्न स्तर की सेवाएं यथा– उच्च माध्यमिक, माध्यमिक, उच्च प्राथमिक, प्राथमिक, नर्सरी व के.जी. जैसी सेवाएं भी उपलब्ध होगी। लेकिन यहां हम पायंगे कि जैसे–जैसे सेवा का स्तर नीचा होता जायेगा उतना ही वह छोटे क्षेत्र की सेवा कर पायेगा और उसके बाहर के क्षेत्रों की मांग की पूर्ति नही हो पाती है तब उससे निम्न स्तर के (छोटे) केन्द्र विकसित होने लगते है जो प्रत्येक तीन बड़े केन्द्रों के मध्य स्थित होते है। इस प्रकार पदानुक्रम सीमान्त माल की जितनी संख्या होगी उतने ही केन्द्र विकसित होते चले जायेंगे क्रिस्टलर ने इसे K = 3 मूल्य नाम दिया जो प्रत्येक स्तर पर स्थायी सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार प्रत्येक नया केन्द्र व

इसका बाजारी क्षेत्र इससे उच्च स्तर के 3 बड़े केन्द्रों में बंट जाता है। प्रत्येक बड़े नगर के पृष्ट प्रदेश में दो, उससे छोटी श्रेणी के नगरों के बराबर व उससे भी छोटी श्रेणी के 6 केन्द्रों के बराबर का क्षेत्र होगा जब एक बार K मूल्य स्थापित हो जाते है तो पूरे पदानुक्रम में स्थायी रहते है तब एक पांच स्तरीय पदानुक्रम में एक महानगर, उच्च स्तर का माल या सेवा 2 नगरों, 6 कस्बों, 18 ग्रामों और 54 पुरवों के बराबर पूर्ति करता है (चित्र –16. 5)।

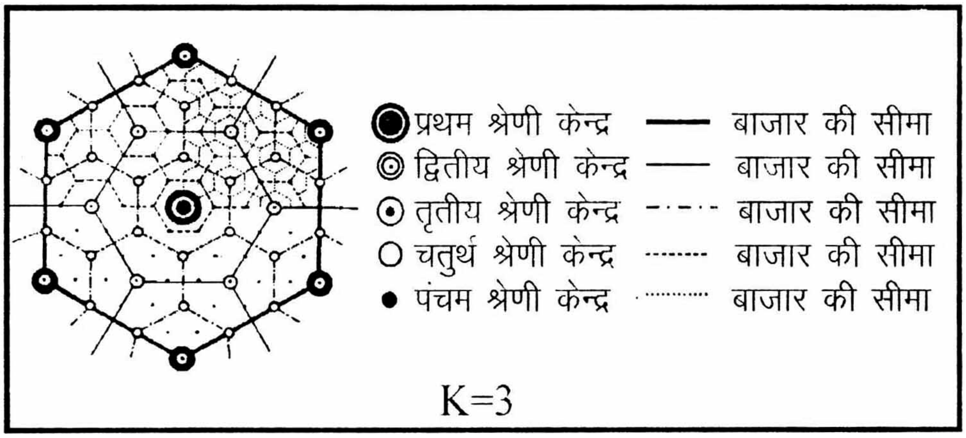

चित्र – 16.5: K = 3

16.3.3.1 बाजार सिद्धान्त (Market Principle)

क्रिस्टलर के K=3 सिद्धान्त के अनुसार निम्न स्तर के केन्द्रों की संख्या तिगुनी बढ़ जाती है वहीं उस श्रेणी (निम्न स्तर) के केन्द्रों की जनसंख्या 1/3 रह जाती है अर्थात प्रथम श्रेणी के केन्द्र की जनसंख्या 1/3 है तो उससे निम्न स्तर (द्वितीय श्रेणी) के 3 केन्द्र K/3 होगे व की जनसंख्या के होंगे और 9 केन्द्र तीसरी श्रेणी के होंगे तो उनकी जनसंख्या K/9 होगी। इसी तरह चतुर्थश्रेणी के 27 केन्द्र होंगे व इनकी जनसंख्या K/27 होगी। इस प्रकार इनका क्रम 1, 3, 9, 27, 81.... के रूप में होगा। इस व्यवस्था में गौण केन्द्र मुख्य केन्द्र के चारों ओर सीमा रेखा के कोनों पर स्थित होंगे (चित्र – 16.6)।

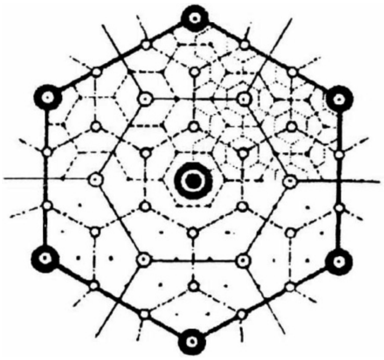

चित्र - 16.6 : बाजार सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में क्रिस्टलर ने विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उत्पादित वस्तु प्राप्त करने को आधार माना है। दूसरे शब्दों में यह बाजारी सिद्धान्त (Market Principle) पर आधारित है अत:

विभिन्न केन्द्रों का पदानुक्रम – आकार एवं मध्य का स्थान उनकी दूरी पर आधारित है। इस दृष्टि से उच्च श्रेणी के केन्द्र अधिक दूर–दूर स्थित होंगे व निम्न श्रेणी के केन्द्र सापेक्षिक रूप से पास में होंगे।

यह बाजारी सिद्धान्त समान रूप से फैली हुई अधिकतम ग्राहकों की संख्या को कम से कम केन्द्रीय स्थानों द्वारा पूर्ति के विचार पर आधारित है।

16.3.3.2 यातायात सिद्धान्त (Treffic Principle)

K=3 के आधार पर ही क्रिस्टलर ने K=4 मूल्य पर यातायात सिद्धान्त स्पष्ट किया। इसमें परिवहन लागत को कम से कम करना महत्वपूर्ण है साथ ही मार्ग निर्माण का खर्च भी कम से कम हो। इस प्रकार की व्यवस्था में मुख्य केंद्र के चरो ओर गौण केंद्र सीमा रेखा के किनारे मुख्य केन्द्रों के मध्य में सीधे जोड़ने वाले मुख्य यातायात के मार्गो पर ठीक मध्य में स्थित होंगे। यहाँ एक उच्च स्तर का केंद्र का क्षेत्र व इससे नीचे के स्तर के 3 केन्द्रो (6 घेरे हुए केन्द्रों का 1/2 क्षेत्र) से घिरा होगा जैसा की चित्र 16.7 में दर्शाया है। चूंकि इसमें से प्रत्येक केंद्र, पास के दोनों बड़े केन्द्रों से सेवायें प्राप्त करता है अत: 6 केन्द्रों और उनके प्रदेश का आधा अर्थात तीन बड़े केंद्र और उसके पृष्ट प्रदेश के साथ मिलकर K=4 पदानुक्रम का निर्माण करते है व केन्द्रों की संख्या 1,4,16,64,256,............... हो जाती है। क्रिस्टलर का यह सिद्धांत कम ही देखने को मिलता है। श्रीवास्तव (1977) ने बहराइच जिले के सामयिक बाजार व ग्रामीण विकाश के अध्ययन में इसका आंशिक प्रतिरूप पाया।

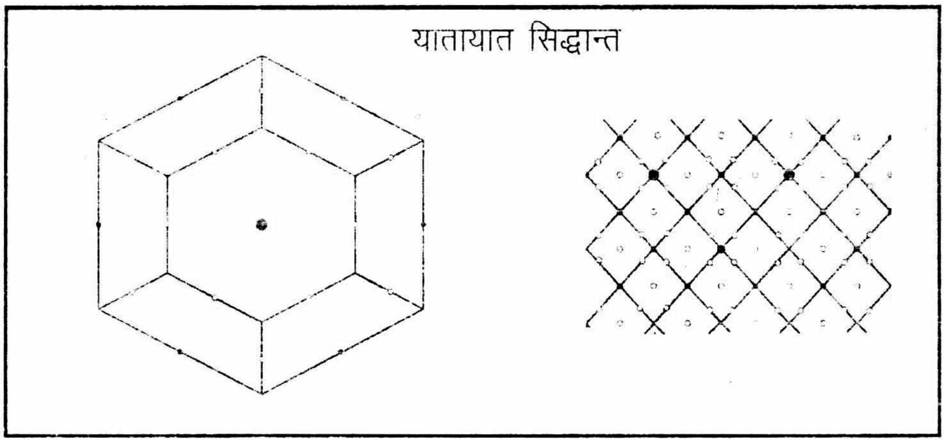

चित्र- 16.7: यातायात सिद्धान्त

16.3.3.3 प्रशासनिक सिद्धान्त (Administrative Principle)

क्रिस्टलर के अनुसार जिन क्षेत्रों में प्रशासनिक नियंत्रण आवश्यक है वहां सुरक्षा व राजनैतिक सेवाओं की पूर्ति आवश्यक होती है वहां K=7 मूल्य वाले प्रशासनिक – सिद्धान्त पर केन्द्रों की स्थिति निर्भर करती है। इस मॉडल में गौण केन्द्र मुख्य केन्द्र के इधर–उधर स्थित होते है। यहां एक उच्च स्तर का केन्द्र का क्षेत्र (स्वयं के क्षेत्र सहित) 7 निम्न स्तर के केन्द्रों के बराबर

होता है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय स्थानों का क्रम 1, 7, 49, 343....... रूप में होता है जैसा कि चित्र सं. 16.8 में दर्शाया गया है।

तीनों सिद्धान्त अलग – अलग विशेषताओं वाले है, इनमें से कोई भी सिद्धान्त किसी प्रदेश विशेष में अधिक प्रभावशाली हो सकता है या तीनों कम ज्यादा मिलकर भी प्रभावी हो सकते है, लेकिन बाजार–सिद्धान्त इनमें प्रमुख है।

संक्षेप में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की विशेषताएं इस प्रकार है –

(1) केंद्र स्थानों का आकारिक पदानुक्रम पाया जाता है।

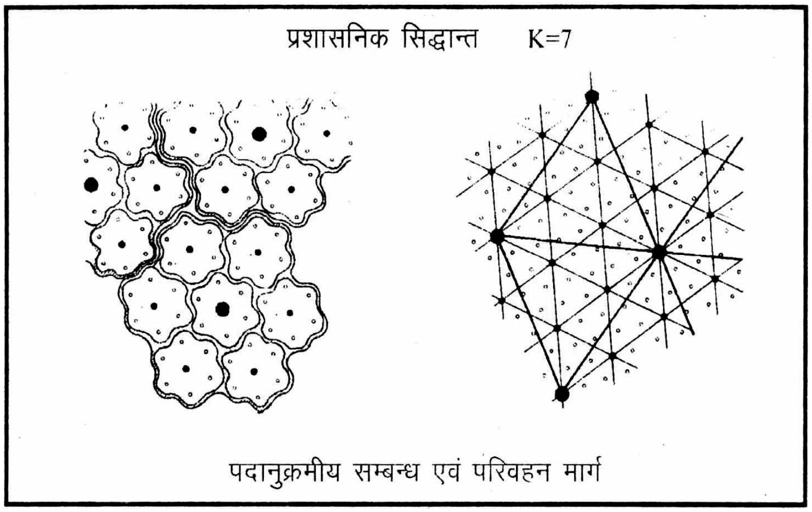

चित्र - 16.8 : पदानुक्रमीय सम्बन्ध एवं परिवहन मार्ग

(2) केन्द्र स्थानों का पदानुक्रम जितना ऊंचा होगा वहां केन्द्रीय सेवाओं की संख्या व जटिलता उतनी ही अधिक होगी।

(3) केन्द्र स्थानों के सेवा क्षेत्र (पृष्ट प्रदेश) षट्भुजाकार होते है।

(4) प्रथम श्रेणी से लेकर n श्रेणी के केन्द्रों की संख्या एक निश्चित गणितीय अनुपात के अनुसार होती है।

(5) केन्द्र स्थानों के पदानुक्रम के अनुसार ही यातायात के मार्गो का भी पदानुक्रम विकसित होता है।

(6) निम्न स्तर के कार्यो का बाजार क्षेत्र छोटा होता है व उससे उच्च स्तर के कार्यो के केन्द्र में भी स्वत: ही पाया जाता है।

(7) विभिन्न क्षेत्रों में स्थित विभिन्न स्तर के केन्द्रो के मध्य निश्चित दूरी होती है।

बोध प्रश्न – 1

1. केन्द्रीय स्थान किसे कहते है ?

....

....

2. व्यापार से आपका तात्पर्य है।

....

....

3. केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त को किसने, कब प्रतिपादित किया?

....

....

....

....

4.अक्लमन्द जनसंख्या को स्पष्ट कीजिये।

....

....

5. सरलीकृत आर्थिक भूदृश्य को स्पष्ट कीजिये।

....

....

6. क्या षट्कोणीय आकृति ही अधिक सुडौल आकृति है ?

....

....

7. क्रिस्टलर की K व्यवस्था को समझाइये।

....

....

8. निम्नांकित में से कौनसा सिद्धान्त महत्वपूर्ण है –

(अ) बाजारी सिद्धान्त (ब) यातायात सिद्धान्त (स) प्रशासनिक सिद्धान्त( )

16.4 केन्द्र स्थानों की केन्द्रीयता (Centrality of Central Places)

केन्द्र स्थानों की केन्द्रीयता वहां के कार्य या सेवाओं की संख्या, उनका स्तर, विस्तार व आकार आदि पर निर्भर करती है लेकिन यह भी ध्यान रहना चाहिये कि वे सभी गतिविधियां जो एक केन्द्र द्वारा आस–पास के क्षेत्र के लिये अपनायी जाती है वे ही केन्द्रीय कार्य कहलाती है। अगर सेवाएं विदेश या निर्यात से संबंधित हो तो वे केन्द्रीय कार्य नहीं कहलाती है। केन्द्रों की केन्द्रीयता निम्नानुसार निर्धारित की जाती है।

16.4.1 कार्यात्मक पदानुक्रम का स्तर

इससे तात्पर्य किसी केन्द्र द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले माल या सेवा के स्तर से है क्योंकि सभी केन्द्रों पर सभी प्रकार के कार्य या सेवाएं समान स्तर की प्रस्तुत नहीं की जाती। अत: महानगर, नगर, कस्बे, ग्राम आदि सभी अपने आस–पास के प्रदेश के संदर्भ में ही केन्द्रीय कहलाते है। सामान्यत: केन्द्र का महत्व उसकी जनसंख्या के आकार या नगर के क्षेत्रीय विस्तार पर आकार जाता है लेकिन वास्तव में न तो केन्द्र की जनसंख्या, न ही केन्द्र का आकार उसकी केन्द्रीयता के महत्व को स्पष्ट करता है। यद्यपि इनमें आपसी सम्बन्ध अवश्य होता है। अर्थात् उच्चस्तर के केन्द्रीयता वाले केन्द्र अधिक जनसंख्या वाले व बडे आकार के होते हैं। लेकिन एक

केन्द्र द्वारा अपने पृष्ट प्रदेश को दी जाने वाली सेवाएं एवं माल के द्वारा ही केन्द्रीयता निर्धारित की जाती है और केन्द्र स्थानों का पदानुक्रम भी केन्द्र स्थानों के कार्यो के पदानुक्रम से संबंधित होता है। जैसा कि हमने नर्सरी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा में पाया है। अतः कार्यात्मक पदानुक्रम का स्तर जितना ऊंचा होगा, कार्य से सम्बंधित केन्द्रीयता भी उतनी ही ऊंची होगी।

16.4.2 माल व सेवाओं की संख्या

केन्द्र स्थान की केन्द्रीयता का आकलन उसके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं की संख्या से भी किया जाता है। यदि दो नगर एक समान स्तर की सेवाएं प्रदान करते है लेकिन एक नगर दूसरे की अपेक्षा ज्यादा संख्या में सेवाएं प्रदान करता है तो वह अधिक महत्वपूर्ण होगा और उसका स्तर भी अधिक ऊंचा होगा।

16.5 क्रिस्टलर के सिद्धान्त की आलोचना (Critisism)

(1) यह सिद्धान्त मूलतः आदर्श दशाओं के आधार पर विकसित है, जो वास्तविक दशाओं में लागू होना कठिन है।

(2) क्रिस्टलर ने बस्तियों के पदानुक्रम को सबसे ऊंचे स्तर से प्रारम्भ किया जबकि महानगर पहले छोटी बस्तियां ही होते है और समय के साथ विकसित होते हैं।

(3) क्रिस्टलर की K व्यवस्था का मुख्य दोष यह है कि यह वस्तुओं में मांग की भिन्नता या अन्तर को अधिक परिवर्द्धित कर देता है यह आवश्यक नहीं है कि सभी उच्च स्तर के केन्द्र सभी छोटे स्तर के केन्द्रों के कार्य करते ही हो।

(4) यह आवश्यक नहीं है कि सभी केन्द्रों का क्रम एक समान हो।

(5) वास्तविक दशाओं में केन्द्रों का जाल इस प्रकार के षट्कोणीय रूप में नहीं मिलता है।केन्द्र न तो आकार में ही समान होते है और न ही समान दूरी पर स्थित होते है।

(6) क्रिस्टलर का सिद्धान्त केन्द्र स्थान व पृष्ट प्रदेश को बन्द व्यवस्था मानकर विकसित किया गया है जो आपसी मांग और पूर्ति पर निर्भर है लेकिन आज ऐसा संभव नहीं है।

(7) जनसंख्या का समान वितरण भी एक आदर्श स्थिति है जो संभव नहीं है।

(8) एक समान परिवहन व्यवस्था की कल्पना एक स्थिर प्रकृति की व्यवस्था बताता है, वह भी आज संभव दिखाई नहीं देती हैं।

(9) आज के संदर्भ में ऐसे सिद्धान्त जो स्थिर प्रकृति के है अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहे गये है। क्रिस्टलर ने इस बात को अनुभव नहीं किया कि बहुराष्ट्रीय एवं बहुकार्यात्मक कम्पनियों की दशा में किस प्रकार केन्द्रों की स्थिति महत्वपूर्ण होगी।

बोध प्रश्न - 2

1. क्या केंद्र का आकार या वहां की जनसंख्या, केन्द्रीय निर्धारित करती हे?

   ....

   ....

2. केन्द्रीय स्थानों के पदानुक्रम से आपका क्या तात्पर्य हे?

………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………

3. क्या क्रिस्टलर के अनुसार सभी स्तर के उच्च स्तर केंद्र निम्न स्तर का माल या सेवा प्रदान करती हे

………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………

4. क्रिस्टलर की K व्यवस्था एक बार स्थापित होने पर स्थित रहती है। क्या आप इस कथन से सहमत है ?

………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………

16.6 लॉश का केन्द्र स्थल तंत्र (Losch's Central Place System)

अगस्त लॉश ने 1940 मे केन्द्रीय स्थानों के जर्मन भाषा मे अपनी पुस्तक मे विचार प्रकट किये लेकिन 1954 मे The Economic of the Location के रूप में अंग्रेजी में अनुवाद किया तभी उसके विचारों को महत्व मिला। लॉश ने क्रिस्टलर के सिद्धान्त की षट्कोणीय व्यवस्था से सहमति प्रकट की और त्रिभुजाकार व्यवस्था को भी माना लेकिन उसने इसमें आवश्यक संशोधन भी किये। लॉश ने आवश्यक संशोधन कर अधिक लचीली व्यवस्था को प्रस्तावित किया जो वास्तविक दशाओं के अधिक अनुरूप है। लॉश ने K मूल्यों को परिवर्तित माना।

लॉश ने बताया कि षट्कोणों की आकृति व दृष्टिकोण को परिवर्तित करने से K=9, 12, 13, 16, 19, 21, 27 – – – – – व्यवस्था प्राप्त की जा सकती है। लॉश ने बताया कि यह आवश्यक नहीं है कि सभी उच्च स्तर के केन्द्र निम्न स्तर के केन्द्रों के कार्य करते ही हो, लॉश के अनुसार षट्कोणीय आकृति में कई अभिस्थापन (Orientation) करने से वास्तविक केन्द्रीय स्थलतंत्र विकसित होता है। जितनी संख्या में केन्द्र द्वारा माल या सेवाएं प्रदान की जाती है उसी के अनुसार बाजारी क्षेत्र का आकार भिन्नता लिये होता है। महानगर को केन्द्र मानकर अगर षट्कोणीय जालों को इस प्रकार प्रत्यारोपित किया जाये कि उत्पादन केन्द्र जितना संभव हो उतना एक रेखीय समूह में आ जाये (जो कि यातायात सिद्धान्त की मूल विचारधारा के अनुकूल हो) तो षट्कोणीय क्षेत्र 6 भागों में बंट जायेंगे इससे उत्पादक केन्द्रों के मध्य की दूरी कम हो जायेगी, माल का प्रवाह बढ़ जायेगा। कई केन्द्र एक–दूसरे से मिलन की दशा में (Coincide) आ जायेंगे। इससे अधिकतम खरीद स्थानीय स्तर पर होने लगेगी। इस व्यवस्था में कम से कम प्रयास का सिद्धान्त (Principle of least effort) पाया जो मानव की प्रवृत्ति को बताता है कि वह कुछ प्राप्त करने के लिये जहां तक संभव हो सके कम से कम प्रयास या मेहनत करना पसन्द करता है।

लॉश के भूदृश्य की विशेषता हे की प्रत्येक खण्ड स्पष्ट ओर बराबर दो भागों मे पुनः बट जाता हे॰ जिसमे एक खण्ड मे अधिक विकसित व तीव्रतर विशिष्टीकरण के केन्द्र होंगे व दूसरे खण्ड मे

ऐसे केन्द्रो की संख्या काफी कम होगी। इन्हे लॉश ने क्रमश: नगर के धनी खण्ड (City Rich Sector) व नगर के निर्धन खण्ड (City Poor Sector) नाम दिया। देखिये चित्र सं. 16.9

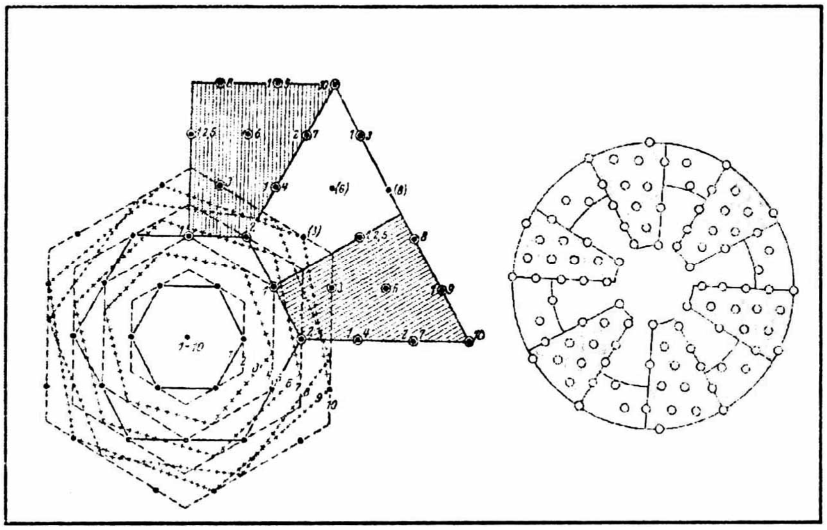

चित्र - 16.9 लॉश के अनुसार 6 खण्डीय व्यवस्था

16.7 क्रिस्टलर व लॉश के विचारो की तुलना (Comparision of Christaller and Losch's Thought)

(1) क्रिस्टलर का अध्ययन प्रदेश द.प. जर्मनी का बवेरिया प्रान्त था ओ जहां उसने 1933 मे अध्ययन किया जबकि लॉश का अध्ययन क्षेत्र यू.एस.ए. का आयोवा प्रान्त था जहां उसने 1945 मे अध्ययन किया।

(2) क्रिस्टलर ने बस्तियों के पदानुक्रम को सबसे ऊंचे स्तर के नगर से प्रारम्भ किया जबकि लॉश ने ग्रामीण स्तर की बस्तियों से क्रम को ऊपर की ओर बढाया।

(3) क्रिस्टलर का सिद्धांत तृतीयक कार्यो व सेवाओं के लिए अधिक उपयुक्त हे जबकि लॉश का मॉडल बाजार पर आधारित निर्माण उद्योगों के स्थानिक वितरण को समझने मे सहायक हैं।

(4) क्रिस्टलर के अनुसार सभी उच्च स्तर के निम्न स्तर के कार्य भी करते हे, जबकि लॉश के अनुसार ऐसा आवश्यक नही

(5) क्रिस्टलर के अनुसार एक बार K मूल्य जब स्थापित हो जाते है, तो फिर सम्पूर्ण पदानुक्रम मे स्थायी रहते है, लेकिन लॉश के अनुसार ऐसा आवश्यक नहीं है। उसने K मूल्यों को परिवर्तित माना।

(6) क्रिस्टलर की व्यवस्था विरल जनसंख्या के प्रदेशों मे नगरों के प्रतिरूप को समझने मे सहायक है जबकि लॉश की व्यवस्था सघन आबादी की बस्तियों के क्षेत्र में आर्थिक परिवर्तन को समझने में सहायक है।

(7) क्रिस्टलर के अनुसार अलग-अलग पदानुक्रम स्तर के केंद्र अलग–अलग प्रकार के माल की पूर्ति करते है जबकि लॉश के अनुसार एक ही केन्द्र सभी प्रकार के माल की पूर्ति कर सकता है।

(8) क्रिस्टलर के अनुसार एक स्तर के सभी केन्द्र एक समान कार्य व एक समान आकार वाले होतें है जबकि लॉश के अनुसार समान आकार के केन्द्रों पर समान कार्य होगें, यह आवश्यक नहीं है।

(9) क्रिस्टलर की व्यवस्था सैद्धांतिक अधिक है जबकि लॉश की व्यवस्था वास्तविक संसार के निकट है।

(10) लॉश का मॉडल अधिक जटिल है जबकि क्रिस्टलर का मॉडल सरल है।

8.16 क्रिस्टलर व लॉश के विचारों की आलोचना)Criticism of Christaller and Losch's Thought (

(1) क्रिस्टलर और लॉश द्वारा प्रस्तुत मॉडल स्थिर प्राकृतिक के है दोनों ने यह नहीं बताया कि समय के अनुसार इनमे किस प्रकार परिवर्तन आ सकता है, क्योंकि इसमे वर्णित दशाएं काल्पनिक है, जबकि परिवर्तन एक वास्तविकता है।

(2) दोनों पूर्णत: बन्द व्यवस्था मानी है जिसमे केन्द्र स्थान से उपलब्ध सेवाओं का उपयोग कृषि क्षेत्र करता है और कृषि क्षेत्र में उत्पादित माल का उपयोग केन्द्र स्थान कि फर्म व उद्योग करते है लेकिन अगर कृषि क्षेत्र से उत्पादित वस्तुएं सीधे अन्य प्रदेश को निर्यात कर दी जाती है तो त्रिभुजाकार व्यापार का प्रतिरूप विकसित होगा तब ये पूर्णत: खुली व्यवस्था कही जायेगी।

(3) दोनों के अनुसार ग्राहकों पर परिवहन खर्च का प्रभाव पड़ता है विशेष का जबकि किसी केन्द्र पर एक ही प्रकार का कार्य होता है, जबकि वास्तविक दशाओं में सभी केन्द्र एक से अधिक कार्यो या सेवा केन्द्र होते है और ग्राहक को यात्रा का आधार बहुउद्देशीय होता है। अत: परिवहन लागत एक से अधिक कार्यों पर विभाजित हो जायेगी इससे मांग का वक्र प्रभावित होगा और व्यवस्था का रूप भी परिवर्तित हो जायेगा।

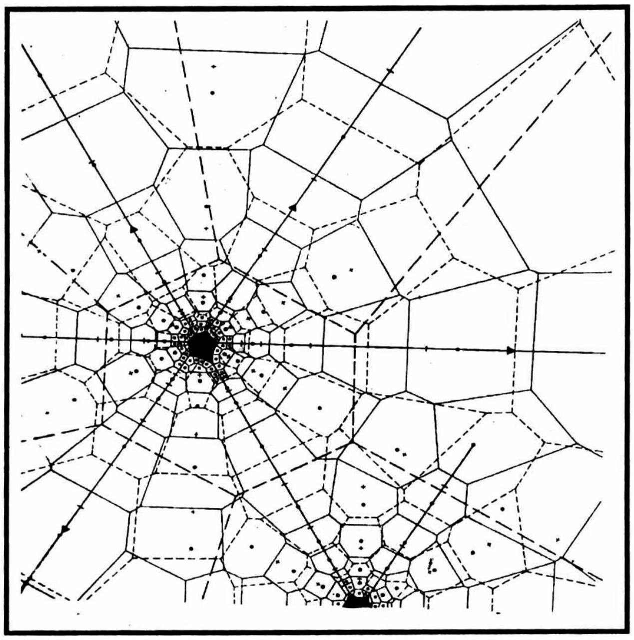

(4) आइजार्ड ने बताया कि दोनों के अर्थतंत्र सुडौल आकृति के है जबकि कार्य विशेष के लिये आवश्यक बाजार केन्द्र के निकट छोटा होगा और दूरी बढ़ने के अनुसार अपेक्षाकृत बड़ा होगा। साथ ही कृषि उत्पादन भी कम गहन होता जायेगा व जनसंख्या भी दूरी बढ़ने के अनुसार कम होती जायेगी (चित्र –16.10)।

चित्र – 16.10 : आइजार्ड के अनुसार दो अर्थ तंत्र'

(5) दोनों के अनुसार यह मॉडल ऐसी दशाओं से संबंधित है जहां पर कच्चे माल की आवश्यकता नहीं है अर्थात् माल सर्वत्र सुलभ है या समान मूल्य पर उपलब्ध हो जाते है, जबकि वास्तव में स्थिति निर्धारण में कच्चे माल का व बाजार पर आधारित दशाओं का प्रभाव पड़ता है कच्चा माल न तो सर्वत्र सुलभ है और न ही समान मूल्य पर उपलब्ध होता है।

(6) दोनों की अभिधारणा उपभोक्ता जनसंख्या के समान वितरण पर आधारित है जबकि विभिन्न केन्द्रों पर भिन्न–भिन्न औद्योगिक गतिविधियां व सेवाएं होती है व विभिन्न केन्द्रों पर कार्य के अवसर भी अन्तर लिये हुये होते है अत: उससे जनसंख्या का वितरण प्रभावित होता है।

(7) दोनों ने समूहन के प्रभाव को पूर्णत: अस्वीकार किया है, जो कि एक महत्वपूर्ण स्थिति निर्धारक तत्व है, क्योंकि नगरीयकरण के कारण बाहय बचतें प्राप्त होती है और समूहन की प्रवृत्ति को बढ़ाती है।

(8) दोनों ने दूरी को भौतिक रूप से लिया है जो सीधी रेखा में मानकर विचार किया गया है, जबकि मार्ग सीधे न होकर टेढ़े–मेढ़े भी होते हैं व समय–दूरी व लागत–दूरी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

(9) दोनों के अध्ययन में पदानुक्रम का निर्धारण कार्यो के आधार पर किया गया है न कि जनसंख्या के आधार पर। जबकि इन दोनों का एक आधार न होते हुये भी एक दूसरे से नजदीकी सम्बन्ध रखते हैं।

(10) क्रिस्टलर व लॉश दोनों ने ही जनसंख्या के घनत्व को महत्व नहीं दिया जबकि अलग–अलग नगरों में जनसंख्या का घनत्व भी अलग–अलग पाया जाता है जो जनसंख्या के समान वितरण के विचार को ही भंग कर देता है।

16.9 केन्द्रीय स्थानों की परिवर्तनीय प्रकृति (Changing Nature of Places)

जैसा कि हमने पिछले अध्ययन में पाया कि विभिन्न विद्वानों ने अपने – अपने विचारों से केन्द्रीय स्थानों की व्याख्या की है, जो यह बताती है कि समय के साथ में इन विचारों में परिवर्तन होता रहा है। जे.जी. कोहल ने 1850 में आदर्श नगर – प्रदेश में बसावों की सेवा के लिये 'शाखा जाल' (Branching network) विचार का प्रतिपादन किया जिसको एक शताब्दी बाद में क्रिस्टलर ने 1933 में प्रयुक्त किया। सी.एच. कूले ने 1894 में अपना "यातायात व्यवधान सिद्धान्त" के द्वारा बताया कि जहां एक प्रकार के यातायात में किसी प्रकार का व्यवधान आता है और दूसरे प्रकार का यातायात प्रारम्भ होता है वहां पर भी केन्द्रीय स्थान

विकसित हो जाते है जैसे जल व स्थल यातायात में व्यवधान के कारण बन्दरगाह नगर विकसित हुये है जो विभिन्न सेवा व माल के केन्द्र होते हे।

आर.एस. हेग (1927) के अनुसार जहां माल सस्ती दर पर तैयार होता है वहां जनसंख्या का जमाव बढ़ जाता है और वे केन्द्र स्थान तेजी से विकसित होते है। डब्ल्यू.आई.जार्ड (1956) के अनुसार जनसंख्या का वितरण, ग्रामीण एवं शहरी भूमि उपयोग के प्रतिरूप तथा माल के प्रवाह के द्वारा केन्द्रीय स्थानों की स्थिति, सरंचना एवं कार्यो का निर्धारण होता है। आईजार्ड के अनुसार केन्द्र के निकट अधिक जनसंख्या होने से केन्द्र का बाजार का क्षेत्र सेवा विशेष के लिये छोटा होगा और जैसे – जैसे दूरी बढ़ेगी वैसे–वैसे जनसंख्या का घनत्व कम होता जायेगा और बाजार का क्षेत्र बड़ा होता जायेगा। अत: यह सुडौल आकृति का न होकर विषम कोण समभुज क्षेत्र के समान हो जायेगा (चित्र - 16.10) । ए.के. फिलब्रिक ने 1957 में Nested hierarchy theory द्वारा अपने विचार प्रकट किये फिलब्रिक के अनुसार विभिन्न केन्द्र एक दूसरे से किसी न किसी माध्यम से जुड़े होते है और इनमें अन्तर्सम्बन्ध होता है।

आज जब कि तकनीकी और वैज्ञानिक विकास के कारण विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है तो न केवल क्षेत्रीय, प्रादेशिक व देशीय व्यापार का बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भी स्वरूप, बहुत बदल गया है और जटिल हो गया है। आज बाजारी क्षेत्र भी अधिक जटिल हो गया है विकसित देशों के केन्द्र आज माल व सेवा की पूर्ति अर्द्धविकसित व अविकसित देशों को करते है। वहीं विकासशील देशों के केन्द्र भी अब विकसित देशों व अविकसित देशों को माल व सेवाएं प्रदान कर रहे है। आज इसी व्यापारिक जटिलता के कारण प्रादेशिक व्यापार संघ बने है जैसे साफ्टा, यूरोपियन आर्थिक समुदाय, लेटिन अमेरिकन संगठन या आशियान समूह आदि। आज के संदर्भ में दोनों के सिद्धान्त जो कि स्थिर प्रकृति के है अधिक महत्वपूर्ण नहीं रह गये है। दोनों ने इस बात को अनुभव नही किया कि बहुकार्यात्मक एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की दशा में केन्द्रों की स्थिति किस प्रकार होगी। आज की परिस्थितियों में फर्मो की अनिश्चितता, अधूरा ज्ञान व सरकारों पर निर्भरता तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं। इसके कारण न्यूनतम लागत व अधिकतम लाभ का विचार पुराना पड़ गया है। अत: भूगोलवेताओं आर्थिक गतिविधियों के अध्ययन में पुरातन व्यवहार की अपेक्षा स्वामित्व, संस्थागत सरंचना व व्यवस्थापन के उद्देश्यों का
विश्लेषण करने लगे है। आज राजनैतिक एव सामाजिक नियंत्रण से भी उनका संरचनात्मक व्यवहार नियंत्रित हो रहा है। टाटा का सिंगुर में नैनो मोटर की इकाई की स्थापना संबंधी विवाद इस संदर्भ में देखा जा सकता है। अत: समय के साथ जो परिवर्तन हो रहे है वे उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुसार न होकर समय की मांग के अनुकूल है।

16.10 केन्द्रीय स्थानों के अध्ययन का महत्त्व (Importance of Study of Central Places)

यद्यपि विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीय स्थानों से सम्बंधित विचार आज अपनी उपयोगिता खो रहे है लेकिन प्रादेशिक नियोजन या आर्थिक नियोजन की दृष्टि से केन्द्रीय

स्थानों के अध्ययन का बहुत महत्व है, विशेष कर ग्रामीण अधिवासों की नियोजित वृद्धि, विश्लेषण, वर्णन एवं विवेचन के लिये बहुत आवश्यक है। इसके द्वारा प्रादेशिक असंतुलन को कम करने, असंतुलित सेवा – सुविधाओं को संतुलित करने, परिवहन की अपर्याप्त सुविधाओं को पर्याप्त रूप से विकसित करने, ग्रामीण उपभोक्ताओं की असुविधाओं को कम करने तथा विभिन्न संसाधनों तक केन्द्रीय स्थानों की पहुंच को बढ़ाने में सहायता मिलती हे। केन्द्रीय स्थानों का अध्ययन मानव, सेवाएं तथा माल के प्रवाह को युक्ति संगत बनाने व प्रादेशिक विकास के लिये वृद्धि केन्द्रों की स्थिति ज्ञात करने में सहायक है और साथ ही केन्द्रीय स्थानों के कार्यो या सेवाओं के युक्ति संगत वितरण को निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है।

केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त के अनुसार जर्मनी में प्रादेशिक नियोजन किया गया उत्तरी पूर्वी पोल्डर क्षेत्र में प्रारम्भिक वर्षो में अधिवासों की स्थिति, जनसंख्या का आकार, सम्बद्धता, पदानुक्रम तथा सेवा कार्य व विपणन कार्यों का निश्चय इसी सिद्धान्त के आधार पर किया गया जिसमें समय के साथ–साथ परिवर्तन आता गया और वह प्रादेशिक तंत्र का एक अंग बन गया। लेकिन यह स्मरणीय है कि किसी प्रदेश के नियोजन में किसी एक प्रकार का सिद्धान्त सदैव के लिये लागू नहीं किया जा सकता है। उसमें समय–समय पर संशोधन व परिवर्तन तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार अपेक्षित है।

बोध प्रश्न – 3

1. क्रिस्टलर व लॉश के मॉडल में मुख्य अन्तर क्या है?
   ....
   ....
2. 'कम से कम प्रयास के सिद्धान्त' से क्या तात्पर्य है?
   ....
   ....
3. लॉश द्वारा लिखित पुस्तक का नाम बताइये।
   ....
   ....
4. समय–दूरी व लागत–दूरी को समझाइये।
   ....
   ....
5. केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का उपयोग कहां किया जाता है?
   ....
   ....

16.11 सारांश (Summary)

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम यह मान भी लें कि ऐसा समानता युक्त सरलीकृत आर्थिक भू–भाग अस्तित्व में हो तो भी उसमें स्थानिक दृष्टि से कई प्रकार की आर्थिक गतिविधियां,

भिन्नता लिये हुये स्थित होगी और विशेष प्रकार की दशाओं में माल व सेवाओं का उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग का मानव के आर्थिक व्यवहार के आधार पर क्षेत्र का प्रारुप विकसित होगा।

वास्तविक आर्थिक भूदृश्य में उत्पादक एवं उपभोक्ता बहुत जटिल व्यवहार करते है एक के परिवर्तन का प्रभाव दूसरे पर एवं सम्पूर्ण व्यवस्था पर पड़ता है, इसीलिये मांग और पूर्ति के आधार पर क्षेत्रीय विषमताएं विकसित होती जाती है। कई अध्ययन यह बताते है कि अर्थतंत्र में इस प्रकार का पदानुक्रम एवं क्रम आशिक रूप में ही पाया जाता है लेकिन दूरी का प्रभाव कम या ज्यादा देखा जाता है। यहां दूरी को भौतिक दूरी न मानकर इसे समय–दूरी व लागत – दूरी के रूप में देखकर अध्ययन करने से निष्कर्ष के अधिक निकट आया जा सकता है

16.12 शब्दावली (Glossary)

- **केन्द्र स्थान :** आस–पास के क्षेत्र को माल या सेवाएं देने वाले केन्द्र।
- **सरलीकृत भूदृश्य** : जिस भूभाग में भौतिक एव मानवीय दशाओं में एक समानता पाई जाये।
- **पदानुक्रम** : विभिन्न केन्द्रों द्वारा दी जाने वाली सेवा या माल के स्तर से पदानुक्रम निर्धारित होता है। यह दी जाने वाली सेवा या माल की संख्या द्वारा भी निर्धारित होता है।
- **न्यूनतम मांग का स्तर :** न्यूनतम जनसंख्या की मांग।
- **अक्लमन्द :** बुद्धिमान व्यक्ति जो आदर्श रूप में व्यवहार करता है।
- **स्थानिक** : क्षेत्रीय।
- **नगर के धनी खण्ड :** जिस खण्ड में नगरों की संख्या अधिक हो।
- **सुडौल आकृति :** ऐसी आकृति जो सभी दृष्टि से पूर्ण हो।
- **बाजारी क्षेत्र :** वह प्रदेश जहां तक किसी केन्द्र का माल या सेवा की पहुंच हो।
- **षट्कोणीय आकृति :** वह आकृति जिसकी 6 कोण व 6 भुजाएं समान हो।
- **वृद्धि केन्द्र :** ऐसे केन्द्र जहां आर्थिक गतिविधियों का ध्रुवीकरण होता है और इनके विकास के साथ–साथ आस–पास का प्रदेश भी विकसित होता है।

16.13 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. जैन, हरकचन्द **: सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल**, कमलेश प्रकाश, भीलवाड़ा - 1984
2. जोशी, नन्द वल्लभ : **आर्थिक भूगोल की सैद्धान्तिक रूपरेखा**, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–1986
3. सिंह, जे.एस. एवं सिंह, के.एन. : **आर्थिक भूगोल के मूल तत्त्व**, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी–1980
4. कौशिक, एस.डी. : **आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त**, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ–1976

5. LLoyd,P.E. and Dicken, P. : **Location in Space : Theoretical Approach to Economic** Geography, Harper International ed. New York–1972
6. Christaller, W. : **Translated by C.W. Baskin as Central Places in Southern Geogramay**, Englewood Cliffs N.J.1966.
7. Losch, A. : **The economics of Location, Translated by W.H. woglom and W.F. Stolpes**, Yale university press, New Haven 1954.
8. Isard, W. : **Location and Space Economy**, M.I.T. Press, New York, 1956.

16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. जो केन्द्र आस–पास के क्षेत्र को माल या सेवाओं की मांग की पूर्ति करता है, केन्द्र स्थान कहलाता है।
2. अधिकता वाले स्थानों से कमी वाले स्थानों की ओर वस्तु का प्रवाह या लेन – देन होता है, व्यापार कहलाता है।
3. वॉल्टर क्रिस्टलर ने 1933 में।
4. जो आदर्श रूप में व्यवहार करें।
5. ऐसा भूदृश्य जहां भौतिक दृष्टि एवं मानवीय व्यवहार की दृष्टि से समानता पाई जाती हो।
6. हां।
7. पदानुक्रम के स्तरों में प्रत्येक स्तरों (श्रेणी) में प्रत्येक स्तर पर केन्द्रों के मध्य स्थायी सम्बन्ध दर्शाता है।
8. (अ)

बोध प्रश्न – 2

1. नहीं।
2. केन्द्रीय स्थानों का पदानुक्रम उनके द्वारा दी जाने वाली सेवा या माल के स्तर से निर्धारित होता है।
3. हां।
4. नहीं।

बोध प्रश्न – 3

1. एक आदर्शक है जबकि दूसरा वास्तविकता के निकट है।
2. मानव की प्रवृत्ति किसी वस्तु की पूर्ति या प्राप्ति के लिये 'कम से कम प्रयत्न या श्रम करने की होती है, इसे ही कम से कम प्रयास का सिद्धान्त' कहते हैं।
3. The Economic of Location,

4. .दूरी तय करने में लगने वाला समय या लागत क्रमश : समय–दूरी व लागत–दूरी कहलाती है।
5. प्रादेशिक व आर्थिक नियोजन में।

16.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. क्रिस्टलर के केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. केन्द्र स्थानों की केन्द्रीयता से क्या तात्पर्य है ? स्पष्ट कीजिये और क्रिस्टलर की K व्यवस्था को बताइये।
3. लॉश और क्रिस्टलर के विचारों की तुलना करते हुए उनकी समीक्षा कीजिए।
4. केन्द्रीय स्थान किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये व क्रिस्टलर की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुये उसके सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
5. "क्रिस्टलर का सिद्धान्त आदर्शक है जबकि लॉश का सिद्धान्त लचीला है।" स्पष्ट कीजिये।

इकाई 17 : आर्थिक प्रदेश : निर्धारण की विधियाँ (Economic Regions: Methods of Delineation)

इकाई की रूपरेखा

17:0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 आर्थिक प्रदेश का अर्थ

17.3 आर्थिक प्रदेश संकल्पना

17.3.1 भौतिक – आर्थिक प्रादेशीकरण

17.3.2 ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण

17.3.3 राज्य स्व नियोजित प्रदेश के रूप में

17.3.4 एकीकृत आर्थिक प्रादेशीकरण

17.4 आर्थिक प्रदेशों के निर्धारण की विधियाँ

17.4.1 विविध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन

17.4.2 संसाधनों के उपयोग करने की प्रविधि तथा अभिरूचि

17.4.3 आर्थिक विकास हेतु अवस्थापन की उपलब्धता

17.4.4 आर्थिक विकास की अवस्था

174.4.1 परम्परागत सामाजिक अवस्था

17.4.4.2 आर्थिक विकास की पूर्वावस्था

17.4.4.3 आर्थिक विकास की शैशवावस्था

17.4.4.4 आर्थिक विकास की प्रौढ़ावस्था

17.4.4.5 अत्यधिक उपभोग की अवस्था

17.4.5 आर्थिक तंत्र का स्वरूप एवं सामान्य आर्थिक कल्याण सम्बन्धी दशायें।

17.5 आर्थिक प्रादेशीकरण की सांख्यिकीय विधियां

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 संदर्भ – ग्रन्थ

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप समझ पायेगें कि' -

- आर्थिक प्रदेश,

- आर्थिक प्रदेशों की संकल्पना,
- भूगोल तथा प्रादेशिक नियोजन का क्या सम्बन्ध,
- आर्थिक प्रदेशों का निर्धारण।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत जैसे देश में आर्थिक प्रादेशीकरण को लम्बे समय तक महत्व नही दिया गया, लेकिन भारतीय भूगोलवेत्ताओं, अर्थशास्त्रियों समाजशास्त्रियों, इंन्जिनियरों ने इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। भूगोलवेत्ताओं ने इस दिशा में अपना योगदान देकर नये आयाम प्रस्तुत किये हैं। इस क्रम में प्रो. एस.पी. चटर्जी की भविष्यवाणी कि "भविष्य में प्रादेशिक नियोजन कार्य में भारतीय भूगोलवेत्ता सीधे जुड़े रहेगें, अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से भारत में भूगोल की जड़े बहुत गहरी हैं। क्योंकि भूगोल ग्रामीण तथा प्रादेशिक नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं।

निर्मल कुमार बोस ("Cultural Zones of India'', Geog of India. Rev. of India, 1956, Vol. XVIII No. 4) ने अपने शोध पत्र में स्वतंत्रता से पूर्व हुए प्रोदशीकरण की चर्चा की हैं। प्रादेशीकरण पर एक आलोचनात्मक विवरण स्वतंत्रता से पूर्व एम.एन.पॉल तथा ए.टी.ए. लियरमन्थ (A.T.A. Learmonth) ने प्रस्तुत किये थे।

17.2 आर्थिक प्रदेश (Economic Region)

आर्थिक प्रदेश ऐसे प्रदेश होते हैं, जिनमें अर्थव्यवस्था उद्योग, व्यापार, परिवहन तथा सम्बन्धित तृतीयक क्रियाओं में समानता देखी जा सकती हैं। आर्थिक प्रदेश भौगोलिक व सांस्कृतिक तत्वों के द्वारा जनित क्षेत्र होता हैं जिनको आर्थिक क्रियाओं, संसाधनों के प्रकार, उनके उपयोग में समानता के आधार पर निर्धारित किया जाता हैं।

17.3 आर्थिक प्रदेश संकल्पना (Concept of Regien)

भारतीय शोधपत्रों तथा मोनोग्राफ्स के आधार पर नियोजन के लिए आर्थिक प्रादेशिकरण हेतु चार मुख्य सिद्धांत सामने आते हैं : –

(1) भौतिक – आर्थिक प्रादेशीकरण (Physio–Economic Regionalization)

(2) ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण (Energy Resoureses Regionalization)

(3) राज्य एक नियोजित प्रदेश के रूप में (State of Planning Regions)

(4) एकीकृत आर्थिक प्रादेशीकरण (Integral Economic Regionalization)

इसके साथ ही वृहद् आकार के आर्थिक प्रदेशों के अध्ययन के साथ–साथ मध्यम और छोटे स्तर के आर्थिक प्रदेशों का अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत ही आर्थिक प्रादेशीकरण का कार्य स्थानीय नियोजन व बहुउद्देशीय योजनाओं के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

मांग सगमी प्रदेशों (Nodel Regions) के नियोजन सम्बन्धी अध्ययन के द्वारा महानगरों व नये शहरों को महत्व प्राप्त हुआ। इस अध्ययन के लिए गणितीय विधियों का उपयोग आर्थिक प्रादेशीकरण में किया गया हैं।

17.3.1 भौतिक आर्थिक प्रादेशीकरण (Physio–Economic Regionalization)

यह नियोजन प्रदेशों के अध्ययन के लिए आधार है जिसे भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने विकसित किया हैं। इसमें भौतिक प्रदेशों को आर्थिक प्रादेशीकरण में परिवर्तित किया गया हैं। इस प्रकार के "भौतिक आर्थिक" प्रदेशों के निर्धारण में प्राकृतिक समानताऐं जैसे उच्चावच, जलवायु आदि का उपयोग किया गया है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषता जैसे कृषि व प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग को भी ध्यान में रखा गया है। इस प्रकार के प्रादेशिक नियोजन में राज्य की सीमाओं को अस्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण पर वी.एल.एस पी.राव (Regional Planning, Calcutta 1949) का कार्य प्रथम प्रयास था। इन्होंने अपने शोध –पत्र में "प्रदेशवाद को गतिशील सिद्धान्त मानते हुए बताया कि इनका उद्देश्य प्रादेशीक संसाधनों का अनुकूलतम उपभोग हैं, अपनी बात को आगे समझाते हुए उन्होने बताया कि प्रादेशीक नियोजन में समान दृश्य भूमि, जीवन दर्शन इत्यादि संसाधनों के उपभोग तथा आर्थिक उत्पादन अपना स्थान रखते हैं। उन्होने यू.एस.एस.आर., यू.एस.ए, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया व अन्य देशों में किये गये प्रयोगों को भी स्पष्ट किया।

वी.एल.एस..पी.राव ने एस.एस. बोस व एम.पी.चौधरी के साथ मिलकर एक प्रारूप प्रादेशिकरण पर तैयार किया, जिसमे भारत को इक्कीस "पूर्ण निर्धारित प्रादेशिक नियोजन खण्डों में विभक्त किया (Well defined Regional Planning, Provinces) इनमे से अधिकतर प्रदेशों का नामकरण दो तत्व के आधार पर किया गया है, जैसे कृषि–औद्योगिक खण्ड या मध्य कृषि व वन प्रदेश, मालवा या मिश्रित कृषि खण्ड इत्यादि।

वी.एल.एस..पी.राव व एल.एस. भट्ट ने भारत के प्राकृतिक आर्थिक प्रादेशीकरण पर अपना कार्य करते हुए 1964 में संसाधन विकास के लिए एक प्रादेशिक प्रारूप प्रस्तावित किया (V.L.S. Prakash Reo, L.S Bhat, A Regional Framework for Resource Development, Bombay, Geog. Mag., 1964,10, No 1) इसमे भारत को ग्यारह प्रदेशों में विभक्त किया, जिसका आधार प्रदेश के आतंरिक भाग में कम से कम अंतर तथा पड़ौसी प्रदेश से अधिकतम अंतर रहा हैं। इनमे से ज्यादातर मुख्य प्राकृतिक प्रदेश हैं, जैसे पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, मध्यवर्ती पठार इत्यादि। इसके साथ–साथ 51 उप–प्रदेशों की पहचान भी की गई है। मुख्य प्राकृतिक प्रदेश की पहचान सामान्य प्रादेशिक विकास के आधार पर की गई है। महानगरों को इस वर्गीकरण से पूरी तरह अलग रखा गया है।

इस शोध पत्र ने प्राकृतिक आर्थिक प्रादेशीकरण की दिशा में नये आयाम स्थापित किये। विस्तृत सही आकड़ों के आधार पर कुल मिलाकर लगभग 60 प्रादेशिक इकाईयां विभिन्न कोटि क्रम की बनाई गयी। इनमें से अधिकतर इकाइयाँ राज्य सीमाओं से नही मिल रही हैं फिर भी राज्यों में इसका विरोध नही किया। कुछ राज्यों ने तो एक प्रदेश के रूप में वर्गीकृत किया जैसे राजस्थान, आसाम, जम्मू व कश्मीर। प्राकृतिक कृषि खण्डों के साथ समानता रखने वाले समान खण्ड। के अतिरिक्त संगमी व महानगरीय विस्तारों को भी पहचाना गया हैं जहां औद्योगिक, वाणिज्यिक एवं प्रशासनिक क्रियाएँ राज्यों के निमार्ण में मुख्य भूमिका अदा करती है।

भौतिक एवं आर्थिक प्रादेशीकरण पर कार्य डा. पी नाथ द्वारा तैयार रिपोर्ट जो कि योजना आयोग के लिए बनाई गयी थी, में प्रस्तुत किया गया। इसके अन्तर्गत 15 "संसाधन" विकास प्रदेश तथा 61 भाग सम्मिलित हैं। यह स्कीम प्रो. वी.एल.एस पी. राव तथा डा.एल.एस.भट्ट के प्लान के समान हैं। प्रो. एम.एस ठाकर (M.S. Tkakar) ने इसे आधारभूत स्कीम बताते हुए स्पष्ट किया है कि प्राकृतिक कारकों में अंतर व देश के विभिन्न भागों में कृषि व खनिज संसाधनों की उपलब्धता बहुत से विकास सम्बन्धी नियोजन के लिए उपयोगी है।

17.3.2 ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण (Energy Resource Regionalization)

ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण कार्य, भारतीय ऊर्जा में निपुण लोगों द्वारा किया गया। 1957 में बैंगलोर में एक भारतीय गोष्ठी ऊर्जा इंन्जिनियरों द्वारा रखी गई जिसमें भारत को ऊर्जा प्रदेशों में बांटने के विचार को सर्व सम्मति से माना गया और गहन आर्थिक विकास के लिए आवश्यक बताया। केन्द्रीय जल एवं शक्ति निगम भारत के (Central Water and Power Commission of India) के.एल.विज (K.L. Vij) व सी.के. चन्द्रन (C.K.Chandran) ने बताया कि आर्थिक भूगोल के आधार पर देश को' राष्ट्रीय नियोजन हेतु सुविधा क्षेत्रों में बांटा जाना चाहिये। ये नियोजन के लिए देश के राजनीतिक खण्डों से अधिक उपयोगी होंगे उनकी राय में राष्ट्र हित को ध्यान रखते हुए इस प्रकार की स्कीम के प्रारूप की आवश्यकता है। इस उद्देश्य से जल संसाधन, कोयला तथा तेल भंडार को आधार मानते हुए 8 वृहद प्रदेशों में देश को विभक्त किया। इन्हे ''पावर प्रदेश" (Power Regions) की संज्ञा दी गई। ये प्रदेश ऊर्जा केन्द्रीयकरण के प्रभाव क्षेत्र होगें। जलशक्ति संसाधन का केन्द्रीकरण मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रों से सम्बन्धित होता है। इस विभाजन के अन्तर्गत प्रदेश हैं – दक्षिण पश्चिम घाट, उत्तरी पूर्वी घाट, पूर्वी घाट गोदावरी का मैदान, पूर्वी हिमालय, मध्य हिमालय, पश्चिम हिमालय, सतपुरा, आसाम। भारत में ऊर्जा प्रादेशीकरण स्कीम का विकास रूचिकर होने पर भी इस दिशा में विस्तार से कार्य नही हो सका। इस प्रादेशीकरण में राज्य सीमाओं का ध्यान नही रखा गया था। फिर भी बहुत से ऊर्जा प्रदेशों की पहचान बहुत से राज्यों के द्वारा रही है।

भारत में ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण, आर्थिक प्रादेशीकरण की अवधारणा की दृष्टि से विशिष्ठ है। इस दिशा में आर्थिक भूगोलवेताओं तथा इंन्जिनियरों द्वारा किया गया कार्य अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

17.3.3 राज्य एक नियोजित प्रदेश के रूप में (State as Planning Regions)

राज्यों को यदि अधिकारिक तौर पर नियोजन प्रदेश मान लिया जाये तो यह स्वाभाविक होगा कि उनके संसाधनों, सम्भावनाओं व विकास की दिशा का गहराई से अध्ययन किया जाना चाहिये।

राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों का एक व्यवस्थित सर्वेक्षण नेशनल कॉन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च द्वारा किया गया जो एक भौगोलिक प्रदेश का टेक्नो इकोनोमिक सर्वेक्षण था। यह प्रदेश के तकनीकी तथा आर्थिक, संसाधनों के विकास व अन्य विकास की सम्भावनाओं पर आधारित था। इस सर्वेक्षण का प्रमुख उद्देश्य ऐसे क्षेत्रों की पहचान करना था जो आर्थिक विकास

की संभावना रखते हैं ताकि उन क्षेत्रों के लिये तीव्र आर्थिक विकास कीं योजना उनके सम्पूर्ण आर्थिक विकास के लिए बनाई जा सके।

संसाधनों का आकलन अर्थशास्त्रियों द्‌वारा तथा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों द्‌वारा तकनीकी जानकारी जैसे कृषि, खनन, उद्‌योग, ऊर्जा, वन, यातायात तथा मानव शक्ति के आकड़े राज्यों में भ्रमण करके एकत्रित किये गये। क्योंकि क्षेत्रीय सर्वेक्षण कार्य नही किया गया अत: विशेषज्ञों के व्यक्तिगत निरीक्षण की भूमिका महत्वपूर्ण रही। राज्यों के प्रतिनिधियों ने ड्राफ्टिंग के कार्य में सहायता प्रदान की व कार्टोग्राफी विभाग ने मानचित्रों के प्रकाशन में रूचि दिखाई। रिपोर्ट में भौगोलिक पद्धति का उपयोग राज्यों की स्थिति, सीमा, प्राकृतिक संसाधनों तथा उद्‌योगों की अवस्थिति दर्शाने में की गई। कुल मिला कर तकनीकी आर्थिक सर्वे (Techno–Economic Survey) आर्थिक व भौगोलिक अध्ययन ही है।

पी.सी. मेहलानोबिस (P.C. Mahalanobis) ने मैसूर राज्य का भौगोलिक अध्ययन इसलिए प्रस्तुत किया कि वे मैसूर को "नियोजन प्रदेश" के रूप में देखना चाहते थे। इसके लिए एक प्रादेशिक सर्वे क्षण इकाई (Regional Survey Unit) की स्थापना भारतीय सांख्यिकीय विभाग (Indian Statistical Institute) में की गई जिसका कार्य नियोजन के उद्देश्य से भौगोलिक सर्वेक्षण करना था। इसका प्रथम कार्य दो खण्डों में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन में मैसूर राज्य के संसाधनों के वितरण व आर्थिक भिन्नताओं का विस्तृत प्रारूप था। इन नियोजन प्रदेशों के निर्धारण के लिए सुपर इम्पोज विधि का प्रयोग किया गया, जिनमें भौतिक–कृषि प्रदेशों (Physio–Agronomic Regions) फसलों के वितरण, जल प्रवाह, वर्षा, बस सेवा व उनकी बारम्बारता जैसे मानचित्रों का उपयोग किया गया। इस सर्वे क्षण कार्य में भौगोलिक विधियों का प्रयोग करने के कारण सुधार हु आ जैसा कि ए.टी.ए. लियरमन्थ (A.T.A Learmonth) ने कहा कि हमारा कुल मिलाकर उद्देश्य यही है कि प्रादेशिक सर्वे क्षण किस प्रकार प्रादेशिक। नियोजन के लिए मददगार हो सकता हैं।

17.3.4 एकीकृत आर्थिक प्रादेशीकरण (Integral Economic Regionalization)

इस प्रकार के प्रादेशीकरण का मूल भारतीय भूगोल में लगभग 1960 से हैं। आर्थिक प्रादेशिकरण के कार्य में बहु त से कारकों का प्रभाव पड़ता हैं। आर्थिक प्रादेशिकरण के सिद्धांत में प्राकृतिक अवस्था का आर्थिक मूल्यांकन तथा प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका का महत्वपूर्ण रही है। उत्पादन की दृष्टि से ऊर्जा का विकास, बहु उद्देशीय जल प्रोजेक्ट, व औद्‌योगिक विकास नगरीयकरण में सहायक हैं तथा यही प्रदेश निर्माण में भी सहायक हैं। राज्य सीमाओं को ध्यान में अवश्य रखा गया परंतु नगर प्रदेशों के निमार्ण में आवश्यक नही माना गया।

(कु) पी.सेन गुप्ता एन.सी.ए.ई.आर के कार्टोग्राफी भूगोल मानचित्रों का प्रकाशन तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण (Techno–Economic Survey) में व्यवस्थित रूप से करवाने में सहायक रही हैं। इन्होने उपरोक्त सर्वे रिपोर्ट जो आसाम, प. बंगाल इत्यादि की थी के लिखने, जानकारियाँ प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया।

पी. सेन गुप्ता उपरोक्त अनुभवों के आधार पर सहमत थी कि भूगोलवेता प्रादेशिक विकास में अधिक योगदान दे सकता हैं (P.Sen Gupta Geographer's contribution to planning for Resource Developmnet in India. Summer School of Geographers,1962) इन्होने नियोजन के लिए गहन आर्थिक प्रादेशीकरण हेतु सिद्धांतों व आधार को विकसित किया। अपने अनुभव एव ज्ञान का प्रयोग इन्होंने भारत के उ. पूर्वी प्रदेश के संदर्भ में किया। सेन गुप्ता ने इन प्रदेशों में उद्योगों और अर्थ व्यवस्था के मापन के लिए कोलोसोवस्की (Kolosovsky's) द्वारा निर्धारित मापदण्डों का प्रयोग किया हैं। कोलोसोवस्की के अनुसार किसी प्रदेश में आर्थिक विकास वहां के प्रादेशिक ऊर्जा संसाधन और प्राकृतिक संसाधनों का समुचित तकनीकी उपयोग करने से निर्धारित होता है। इसे "ऊर्जा उत्पादन चक्र" (Energy Production Cycle) कहा गया हैं। इस चक्र में संसाधनों के प्रारम्भिक उत्पादन से, जिसमे खनन उद्योग भी सम्मिलित है, अंतिम चरण तक जिसमें की उत्पादित वस्तु का विक्रय होता हैं, सभी प्रकार की अर्थव्यवस्था और तकनीकी वृद्धि सम्मलित है। कोलोसोवस्की ने आर्थिक विकास के प्रादेशिक स्वरूप को " (Territorial Production Complex (TPC) का नाम दिया हैं। इन्होंने 9 सामान्य उत्पादन ऊर्जा चक्र बनाये हैं जो भारत वर्ष में भी लागू होते हैं। सेन गुप्ता ने आर्थिक प्रादेशीकरण के लिए उन्ही चक्रों का उपयोग किया हैं।

एस.पी. चटर्जी ने नेशनल एटलस ऑर्गनाइजेशन द्वारा (National Atlas Organisation) किये गये भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण के रूप तथा प्रकृति को समझाने का प्रयास किया। यह ऊपर स्पष्ट किये गये सभी कार्यो में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। प्रो.

चटर्जी के अनुसार आर्थिक प्रादेशिकरण में चार वृहदाकार प्रदेश 23 द्वितीय वर्ग प्रदेश 200 तृतीय वर्ग प्रदेशों तथा 1000 चतुर्थ वर्ग के प्रदेश बनाये जा सकते हैं। वृहदाकार प्रदेशों का निमार्ण बहुत से राज्यों को मिलाकर किया जा सकता हैं तथा निम्न तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए – जनसंख्या विकास का इतिहास तथा भौगोलिक तथ्य, आर्थिक सम्बद्धता, कृषि उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों की बहुआयामी विशेषताऐं इत्यादि। उपरोक्त कार्य में आर्थिक रख भौगोलिक प्रदेशों को विशेष महत्व मिला है। आर्थिक प्रदेश, प्रादेशीकरण को समझने से पूर्व हमें प्रदेश नियोजन तथा इसका भूगोल से सम्बन्ध समझना अनिवार्य हैं।

नियोजन एक मानवीय क्रिया कलाप हैं जो पूर्णरूप से मानव लक्षणों पर आधारित होता हैं। अर्थात् नियोजन आधारभूत रूप से मनुष्य, उसका व्यवहार, आकांक्षाओं, उसके विचार तथा क्षमताओं से जुडी हुई प्रक्रिया है। यह मानव प्रक्रिया ही होती हैं जो मानव की क्षमता निर्धारित करती हैं। नियोजन की प्रक्रिया हमेशा भविष्यवादी तथा आशावादी होती है। इस प्रक्रिया का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव में इतनी क्षमता है कि वह अपने लक्ष्य व उसकी पूर्ति के लिए रणनीति का निर्माण करे।

प्रादेशिक नियोजन भौतिक नियोजन प्रक्रिया मात्र न होकर सतत विकसित होते प्रादेशिक जैविक तंत्र की प्रक्रिया है। यह आर्थिक, सामाजिक –सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पहलुओं की उपेक्षा नही करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से आर्थिक कार्यो का उचित स्थान पर केन्द्रित होना, प्रादेशिक नियोजन के लिए अत्यधिक महत्व रखता है। परिणामस्वरूप क्षेत्र की अर्थव्यवस्था विकासोन्मुखी

बन जाती है। इस प्रकार प्रादेशिक नियोजन स्थानिक एकता को ध्यान में रखते हुए भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक नियोजन का अनूठा संश्लेषण है।

आर्थिक प्रादेशीकरण का सर्वप्रथम कार्य कु. पी सेन गुप्ता द्वारा 1967 में किया गया। उनका यह कार्य रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयोग दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया। प्राकृतिक प्रदेश और आर्थिक प्रदेश एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। फिर भी एक नही होते। प्राकृतिक प्रदेश के निर्धारण में भू–दृश्यावलियों और उच्चावच के विकास को ध्यान में रखा जाता हैं। जिसे मनुष्य ने अपनी क्रियाओं द्वारा बहुत कुछ परिवर्तित किया है। आर्थिक प्रदेश निर्धारित करते समय केवल उन्ही मानवीय क्रियाओं को ध्यान में रखा जाता हैं जिनसे उस प्रदेश की जनसंख्या और समाज की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता मिलती है। आर्थिक प्रादेशीकरण से अविकसित और विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में और प्रादेशिक संसाधनों का समुचित उपयोग करने में सहायता मिलती है। इसमें कृषि उद्योग, भारी मशीन उद्योग और समस्त प्रादेशिक उद्योगों को अपनी विशिष्टता में प्रगति करने का लाभ मिलता हैं। इनमें न केवल प्रदेश का बल्कि समूचे देश का वस्तु विनिमय करने में और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ होता हैं। आर्थिक प्रगति प्रादेशिक योजनाओं पर निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देश में जहां अधिकांश जनसंख्या गांवो में रहती है तथा कृषि कार्य पर निर्भर है, वहां योजना के प्रदेश आर्थिक प्रदेशों के आधार पर बनाये जायें, यह आवश्यक है। इस प्रकार आर्थिक प्रदेश वह प्रदेश होता है जिसमें सामान्य आर्थिक दृश्य की समानता रहती हैं। ऐसे प्रदेशों में प्रादेशिक – भौगोलिक तथ्यों में क्षेत्रीय सम्बद्धता पायी जाती हैं।

17.4 आर्थिक प्रदेशों के निर्धारण की विधियाँ (Methods of Delineation of Economic Regions)

सामान्यत : आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन आर्थिक भू–दृश्यों में निहित निम्नांकित तत्वों के आधार पर किया जा सकता हैं –

1. विविध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन,
2. संसाधनों के उपयोग करने की प्राविधि तथा अभिरूचि,
3. आर्थिक विकास हेतु अवस्थापन /ढांचागत (Infrastructure) की उपलब्धता,
4. आर्थिक विकास की अवस्था,
5. आर्थिक तंत्र का स्वरूप एव सामान्य आर्थिक कल्याण सम्बन्धी दशायें।

17.4.1 विविध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन

प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन आर्थिक भूदृश्य के आधारभूत पक्ष हैं। इन संसाधनों में मिट्टी, जल, खनिज, जैविक, मानव मुख्य हैं। इनकी उपस्थिति, वितरण का प्रतिरूप, मात्रा, गुणवता व उपयोग की परिस्थितियाँ आर्थिक भूदृश्य के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन संसाधनों का उपयोग कर ही मानव आर्थिक भूदृश्य का निर्माण करता है। अर्थ तंत्र का स्वरूप विभिन्न संसाधनों से प्रभावित होकर एक विशिष्ट रूप ग्रहण करता है।

17.4.2 संसाधनों के उपयोग करने की प्राविधि तथा अभिरूचि

किसी देश अथवा प्रदेश के लिए संसाधनों की मात्रा या विविधता का विशेष महत्व तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके प्रयोग में अभिरूचि न हो और उपयोग की विधियां ज्ञात न हो। कोई प्रदेश तब तक विकसित नही होता जब तक वहां रहने वाले लोगों में अपने प्रदेश को विकसित करने की भावना नही होती। उत्पादन बढ़ाना आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक है लेकिन संसाधनों के उपयोग की भावना शोषणात्मक नही होनी चाहिए। संसाधनों का उपयोग जनकल्याणक हो न कि भौतिकवादी।

17.4.3 आर्थिक विकास हेतु अवस्थापना /ढांचागत सुविधाओं की उपलब्धता

किसी प्रदेश का आर्थिक स्वरूप तथा वहां के विभिन्न साधनों का उपयोग, आर्थिक विकास की अवस्थापना की प्राप्ति से सम्बन्धित होता है। अवस्थापना के अन्तर्गत आर्थिक विकास हेतु सामान्य साधन तथा सुविधायें जैसे श्रम, पूंजी तकनीकी ज्ञान, शिक्षा, शक्ति संसाधन परिवहन के साधन तथा संचार माध्यम, सिंचाई व्यवस्था आदि सम्मिलित हैं। इन सभी की अनुपस्थिति में आर्थिक विकास असंभव होता है। किसी प्रदेश के अवस्थापन सम्बन्धी दशाओं से उसके आर्थिक विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है।

17.4.4 आर्थिक विकास की अवस्था

क्षेत्र विशेष का आर्थिक भू–दृश्य वहां के आर्थिक विकास की अवस्था पर निर्भर करता है, यह अवस्था उसका स्वरूप निर्धारित करती हैं। आर्थिक विकास की अवस्था के कारण विभिन्न प्रदेशों के आर्थिक दृश्यावली में अंतर आ जाता है। आर्थिक विकास की प्रत्येक अवस्था में अर्थव्यवस्था की विशेष संरचना तथा तकनीकी प्रगति और विभिन्न प्रकार की सम्बद्ध समस्यायें होती हैं। आर्थिक विकास की अवस्थाओं को हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते है –

17.4.4.1 परम्परागत सामाजिक अवस्था

इस अवस्था में सामंतवाद या साम्राज्यवादी विचार के कारण विकास कार्य नही होता। जनकल्याण हेतु आर्थिक कार्य नही किये जाते। इस अवस्था में शासक के सम्मान को बढ़ाने व राजकोष को सम्पन्न बनाने के लिए काम किया जाता है। आज इस अवस्था से सभी देश मुक्त हो चुके है।

17.4.4.2 आर्थिक विकास की पूर्वावस्था

इस अवस्था में जनकल्याण की भावना जाग्रत हो जाती है व विकास के चिह्न प्रकट होने लगते है। साम्राज्यवादी विचारों के खिलाफ आवाज उठने लगती है। इस अवस्था में विभिन्न प्रकार के उद्योगों में पूंजी लगाकर विकास करने का प्रयास किया जाता हैं। मांग बढ़ने लगती है। कृषि – उद्योग में नई तकनीकों का प्रारम्भ होने लगता है। लेकिन प्रगति की गति मंद रहती है।

17.4.4.3 आर्थिक विकास की शैशवावस्था

आर्थिक विकास, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होने लगता है। प्राय: सभी संस्थायें आर्थिक विकास के लिए योजनायें प्रस्तुत करती है। कुल उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन दोनो में वृद्धि होने लगती है। इस अवस्था का लक्ष्य आर्थिक विकास ही होता है। प्रदेश की सभी दशायें आर्थिक विकास के अनुकूल हो जाती है।

17.4.4.4 आर्थिक विकास की प्रौढ़ावस्था

प्रारम्भिक आर्थिक योजनाओं से आगे बढ़ने की क्षमता इस अवस्था में आ जाती है। औद्योगिक प्रगति होती हैं और सभी प्रकार की औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन होने लगता है। नई – नई तकनीक का प्रयोग किया जाता है तथा औद्योगिक उत्पादन के बढ़ने के कारण पूंजी का संचय प्रारम्भ हो जाता हैं। विदेशों से भी पूंजी विनियोग सम्भव हो जाता हैं। जर्मनी, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन आदि इसी अवस्था में है।

17.4.4.5 अत्यधिक उपभोग की अवस्था

इस अवस्था में विज्ञान उन्नति कर अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। प्रविधियां परिष्कृत और उच्च कोटि की हो जाती है। उत्पादन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करना आसान हो जाता है। आवश्यकता के माल की प्रचुरता हो जाती हैं तथा विलासिता व फैशन की वस्तुओं का उत्पादन वृहद मात्रा में होने लगता है। जनकल्याण के कार्यो की अधिकता हो जाती है। विश्वकल्याण की भावना विकसित हो जाती हैं और दूसरे देशों में इस हेतु धन लगाया जाता है। इस स्थिति में आज संयुक्त राज्य अमेरिका है।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में आर्थिक भूदृश्य का स्वरूप भिन्न होता है और प्रत्येक देश का आर्थिक भू–दृश्य उसके विकास की अवस्था के ही अनुरूप है।

17.4.5 आर्थिक तंत्र का स्वरूप एवं सामान्य आर्थिक कल्याण सम्बन्धी दशायें

आर्थिक विकास की अवस्था के माध्यम से ही किसी देश के आर्थिक तंत्र का विशिष्ट स्वरूप निर्धारित होता है। किसी स्थान पर प्राथमिक कार्यो को महत्व दिया जाता है तो कही – कही द्वितीयक व तृतीयक प्रकार के कार्यो की अधिकता होती है। आर्थिक तंत्र के स्वरूप के आधार पर ही आर्थिक भूदृश्य का विकास होता है। जिन स्थानों या प्रदेशों में 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि व दूसरे प्राथमिक कार्यो में संलग्न होती है, अर्थतंत्र अधिक विकसित नही हो पाता है जबकि जहां 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या उद्योग धन्धों एवं तृतीयक कार्यो में लगी है वहां प्रौद्योगिक अर्थतंत्र विकसित होता है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि किसी देश अथवा प्रदेश को विशेष आर्थिक स्वरूप प्राप्त करने के लिए बहुत से भौतिक तथा मानवीय पक्षों से प्रभावित होना पड़ता है, और यही प्रक्रिया उस देश या प्रदेश की पहचान बनती है व कार्य योजना हेतु आधार प्रस्तुत करती है । विश्व में अलग – अलग प्रकार के आर्थिक तंत्र, विकास की अवस्थायें, भूदृश्य की विशेषताऐं तथा

प्रादेशीकरण की विषमता से यह तथ्य प्रतिपादित होता है कि आर्थिक विकास की दौड़ में विश्व के देश अनेक वर्गो में विभक्त है। अत: आवश्यक हो जाता है कि प्रादेशीकरण के आधारों को रेखांकित किया जाये।

17.5 आर्थिक प्रादेशीकरण की सांख्यिकीय विधियां (Quantitative Methods in Economic RegionaliZation)

किसी राज्य या वृहद् क्षेत्र के आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन 'करने के लिए कुछ प्रभावी प्रतीकों (Indicators) अथवा निष्कर्षो का चुनाव कर लिया जाता है। किन्तु इस विवेचन के आधार पर किये गये आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन केवल उनकी सामान्यीकरण दशाओं का ही द्योतक होता है। इसलिए क्षेत्र के विभिन्न वस्तु पदार्थो की मात्रा के आधार पर सांख्यिकीय विधि द्वारा आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन किया जाता है। इसे सांख्यिकीय विधि द्वारा आर्थिक प्रादेशीकरण कहा जाता है।

भारतीय अर्थशास्त्रियों व योजना निर्माताओं के पास सांख्यिकीय विधि एक महत्वपूर्ण औजार है पूर्व में किये गये भौतिक आर्थिक सर्वे क्षण वर्णनात्मक प्रकृति के रहे है, लेकिन अब सांख्यिकीय पद्वति का उपयोग तेजी से हो रहा है। ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण (Energy Resources Regionalization) एक तरफ तो ऊर्जा संसाधन की सांख्यिकी गणना पर, तो दूसरी ओर प्रदेश में पावर वितरण की अधिकतम दूरी पर आधारित है। तकनीकी आर्थिक सर्वे क्षण ("Tecno–Economic Survey") मात्रात्मक सूचकांक प्राकृतिक संसाधनों की खोज से लेकर खर्च होने वाली पूंजी की आवश्यकता तक का अनुमान लगा लिया जाता है। इस प्रकार यह पद्वति गहन आर्थिक प्रादेशीकरण के लिए व उत्पादन के लिए आर्थिक सम्बद्धता का ज्ञान प्राप्त कर देती है।

जब से भारतीय सांख्यिकी संस्थान Indian Statistical Institute (ISI) में भूगोल विभाग में प्रादेशिक सर्वेक्षण इकाई (Regional Survey Unit) की स्थापना हुई है गणितिय विधियों का प्रयोग आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में अधिक हुआ है। आई.एस.आई. के एम.एन.पॉल ने संतुलित विकास के लिए अपने अध्ययन में बताया कि आर्थिक विकास के लिए सीमांकन हेतु बहुत से सूचकांको का प्रयोग प्रादेशिक नियोजन में पूंजी वितरण में किया जाना चाहिए इस कार्य में मुख्य बाधा सूचकांको का चयन तथा उनको दिये जाने वाला महत्व है।

भारत में प्रादेशिक स्तर के विकास हेतु मात्रात्मक विधियों का प्रयोग अधिक हो रहा है । रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया (Registrar General of India) के अशोक मित्रा (Ashok Mitra) ने अपने मोनोग्राफ में विभिन्न प्रकार के प्रारम्भिक सांख्यिकीय आकड़ों का गणितीय मूल्यांकन किया (A.Mitra "Levels of Regional Development in India, Census of India, 1961 Vol–I, Part–I–A(i)), New Delhi 1964")

बी.बैरी ने भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण में गणितीय विधियों के प्रयोग को महत्व देते हुए इन विधियों को वैज्ञानिक माना। इन्होने भारत के आतंरिक व्यापार के आंकडों (Accounts Relating to the Inland Track of India) जो कि मार्च 1960 तक बारह महिनों के थे, का अध्ययन मुख्य रूप से मल्टीपल फैक्टर एनेलेसिस (Multiple Factor Analysis) द्वारा

किया। उन्होने आवश्यक वस्तुओं तथा क्षेत्रीय आर्थिक संरचना के बीच सम्बन्ध को पहचाना तथा जब इन आंकडों को भारत के मानचित्र पर दर्शाया गया तब 4 मुख्य कार्यात्मक आर्थिक प्रदेश उभरकर आये जो कि महानगर थे, कलकता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली तथा 3 कार्यात्मक प्रदेश उभरे जो कलकता, बम्बई, मद्रास के केन्द्र थे। इस अध्ययन का विशेष महत्व होते हुए भी गणितिय विधियों का प्रयोग आर्थिक प्रादेशीकरण में तेजी से बढ़ा है।

सोवियत रूस के भूगोलवेताओं ने भारत का अध्ययन कर भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। प्रो.के.एम. पोपोव (K.M. Popov) के निर्देशन में यू.एस.एस.आर की विज्ञान अकादमी के भूगोल संस्थान ने बहुत से मोनोग्राफ "रीजन्स ऑफ इण्डिया" के नाम से प्रकाशित किये।

प्रारम्भिक सोवियत भूगोलवेताओं ने इस विषय पर जो काम किया वह उपलब्ध साहित्य पर आधारित था। 50वें दशक के अंत में सोवियत व भारतीय भूगोलवेताओं ने मिलकर इस समस्या का अध्ययन किया। गैलिना सदास्युक (G.Sdasyuk) जो इस अध्ययन की लेखिका हैं कि निमंत्रण पर प्रो.पी.सी. मेहलोनोबिस (P.C. Mahalanabis) ने भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण की समस्या का अध्ययन किया। यह कार्य आपने 1959–60 में रीजनल सर्वे यूनिट (ISI) के तत्वाधान में उन संभावनाओं का पता लगाने के लिए किया जिसमें सोवियत अनुभवों का उपयोग भारतीय परिस्थितियों में किया जा सके। 1962 में सोवियत प्रो.आई.वी. कोमार (Prof, I.V. Komar) ने भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण की समस्या का अध्ययन किया। जाने माने सोवियत भूगोलवेता प्रो.

ए.एम राबचिकोब (Pro. A.M. Ryabchikov) तथा वी.ए.निकोलेव (V.A. Nikolaev) ने उसी समय भारत के भौतिक भौगोलिक प्रादेशीकरण व देश के आर्थिक प्रादेशीकरण के आपसी सम्बन्ध पर अध्ययन किया।

कम विकसित क्षेत्रों के विकास के लिए विज्ञान और तकनीक का प्रयोग करने के संदर्भ में यूनाईटेड नेशन्स कॉनफ्रेन्स जेनेवा में हुई। इस गोष्ठी में एल.एस. भटट्, एम.एन. पॉल, आई.वी. कोमार, के.एम. पोपोव ने मिलकर शोध पत्र प्रस्तुत किया जो एक रिपोर्ट के रूप में था।

क्षेत्र के विभिन्न वस्तु पदार्थो की मात्रा के आधार पर सांख्यिकीय विधि से आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन किया गया है उनमें से एक रैखिक समाश्रयण विधि (Line Regression Method) इस प्रकार हैं –

रैखिक समाश्रयण विधि (Line Regression Method)

सर्वप्रथम किसी क्षेत्र की छोटी प्रशासकीय इकाई (जनपद/तहसील) के आधार पर विभिन्न संसाधन से सम्बन्धित आकड़ों को एकत्रित किया गया है। कृषि, श्रमिक, प्रतिव्यक्ति आय, साक्षरता, स्कूल, चिकित्सालय में चारपाइयों की संख्या सहकारी समितियां, बैंक, पत्रालय, टेलीफोन, रेडियो, छपाई प्रेस, सिनेमा घर, सडकों की लम्बाई, मोटर गाडियों की संख्या आदि के आंकड़ों एकत्रित करके उन्हे प्रति 10,000 संख्या के अनुपात में बदलकर, (क्योंकि सभी आकड़ों का प्रयोजनात्मक महत्व नही होता) सम्पूर्ण आंकड़ों के लिए भार सूचक आकड़े बना लिए जाते

है॥ भार को स्वेच्छा से निर्धारित किया जाता है। भार सूचक आंकड़ों को जोड़कर इकाई का आर्थिक सूचकांक प्राप्त कर लिया जाता है। इस प्रकार आर्थिक विकास का सूचकांक क्षेत्र की सभी इकाइयों के लिए निकाले जाते है। उत्पादन के आकड़े कृषि तथा खनिज सम्बन्धी आंकड़ों को जोड़कर निकाले जा सकते है बडे आंकडों के होने पर उनकी गणना करने में कठिनाई होती हैं इससे बचने के लिए उनको लॉगरिथम्स द्वारा प्रकट किया जाता है। इस प्रकार उत्पादन सम्बन्धी आंकडों को (Log x) तथा आर्थिक विकास सूचकांक को (Log y) द्वारा प्रकट करके ग्राफ पर अंकित किया जाता है तथा ग्राफ पर उपयुक्त रेखा खींच ली जाती हैं । उपयुक्त रेखा का समीकरण : –y = a + bx

तदनन्तर आर्थिक विकास व उसके संसाधनों के सह सम्बन्धों को प्रकट करने के लिए उपयुक्त रेखा निम्नांकित सूत्र द्वारा निकाली जाती हैं।

$$Na + \sum xb = \sum y$$

$$Xa + \sum x^2 b = \sum xy$$ (सूत्र द्वारा a तथा b का मान प्राप्त होगा)

['N' सम्पूर्ण संस्थाओं की बारम्बारता को प्रकट करता हैं।]

अब आर्थिक विकास तथा उत्पादन का सहसम्बन्ध ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक हैं। सहसम्बन्ध निकालने का सूत्र निम्न है :

$$r = \frac{n\sum xy - \sum x \sum y}{\sqrt{n\sum x^2 - \Sigma^2 x[x] n \sum y^2 - \sum y^2}}$$

इस प्रकार जब भार r = का मूल्य ज्ञात हो जाता हैं तो इस पर टेस्ट का प्रयोग किया जाता हैं। इसका सूत्र निम्नांकित हैं : –

$$r = r = \frac{r = \sqrt{n-2}}{\sqrt{i - r^2}}$$

इस प्रकार क्षेत्र के आर्थिक विकास एवं उसके संसाधनों के सह सम्बन्ध को निर्धारित किया जाता हैं। तथा आगे चलकर इसी के आधार पर आर्थिक विकास सम्बन्धी अन्य तथ्यों की जानकारी स्पष्ट करने में सहायता भी मिलती है । डी.सी.जेशंकर (Jayashankar D.C. Delineation of Economy Regional by liner Regression Method, Regional Planning, Ed by R.P. Mishra 1969 PP–228–235) मैसूर राज्य के 18 जनपदों के आंकड़ों को संकलित करते हुए उपयुक्त रेखा का मान तथा सभी जनपदों का सहसम्बन्ध (Rho) निकाला गया है। तथा इसके आधार पर सम्पूर्ण राज्य को दो प्रादेशिक योजना प्रदेशों के अन्तर्गत विभाजित किया है। प्रथम कोटि के प्रदेशों के अन्तर्गत वह जनपद सम्मिलित किये गये है जिनका विकास का स्तर औसत से कम हुआ है तथा दूसरी कोटि के प्रदेशों में औसत से अधिक विकास होने वाले जनपदों को रखा गया है।

भारत में समस्या आर्थिक पिछड़ेपन की है। भारत का औद्योगिकरण करने के लिए कुछ साहसिक तर्क संगत निर्णय लेने होगें। यह कार्य आर्थिक प्रदेशों की प्रकृति व उनके निमार्ण के अध्ययन बिना संभव नही है। प्रादेशिक योजना के लिए राज्य का आर्थिक विकास पर नियंत्रण

आवश्यक है। परिणाम स्वरूप भारत के आर्थिक प्रादेशीकरण पर वास्तव में पहले ध्यान नही दिया गया, जो कि भारतीय भूगोल में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण सिद्धान्त के विकास को देखा जाये तो बढ़ता आपसी सम्बन्ध व परिवर्तन स्पष्ट होता हैं जैसे "भौतिक (Physiographic) प्रादेशीकरण (विशेष रूप से ऊर्जा संसाधन) एक गहन प्रादेशीकरण वाद है। इतना ही नही मात्रात्मक विधियों का अधिक से अधिक प्रयोग करते हुए आर्थिक प्रादेशिकरण व संभावित विकास पर कार्य किया गया।

निष्कर्ष के रूप में सामान्य आर्थिक प्रादेशीकरण देश व शहर नियोजन (Country and Town Planning) तथा "निचले स्तर से नियोजन" (Planning from below) विस्तृत प्रादेशीकरण व गहन अध्ययन पर आधारित होना चाहिए। भारत में अनेक भाषायें बोली जाती हैं ऐसे में किसी भी प्रकार के प्रादेशीकरण को लागू करने की समस्या व राज्यों की सीमायें एक बाधा हैं। इस समस्या के समाधान के लिए, राज्यों को आर्थिक नियोजन के आधार पर निर्धारित कर दिया जाये लेकिन इस कार्य में भाषा एवं सीमाओं की कठिनाई हैं। एक अन्य विचार के अनुसार, जिससे कुछ केन्द्रीय मंत्रियों एवं भूगोलवेताओं का सम्बन्ध है इसे "संसाधन प्रादेशीकरण स्कूल" कहते हैं। इस वर्ग का मत हैं कि, नियोजन हेतु प्रादेशीकरण करते समय राजनैतिक सीमाओं की अवेहलना की जानी चाहिये। इस विचार का उद्देश्य संसाधनों का बहुआयामी उपयोग करना रहा है। तीसरे विचार के अनुसार आर्थिक प्रदेशों के निर्माण में सहायक कारकों के मध्य पाये जाने वाला सम्बन्ध है। इस प्रकार आर्थिक प्रदेशों के निमार्ण को लेकर भौगोलिक आर्थिक नियोजनकर्ता एक मत नही है।

अन्तत: यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में भूगोलविदों ने देश के नियोजन हेतु प्रादेशीकरण करने में अत्यधिक समय खर्च किया है और अब तक कोई विशेष आर्थिक प्रादेशीकरण ऐसा नही है जो इस नियोजन प्रक्रिया का आधार बन सके। इस संदर्भ में भूगोलवेता तथा नियोजन शिक्षण संस्थाओं का विशेष उतरदायित्व होता है क्योंकि ये लोग ही इस प्रकार के प्रादेशीकरण करने की क्षमता रखते है। ऊपर वर्णित देश के भूगोलवेताओं द्वारा किये गये प्रयासों को बताया गया है जिसके आधार पर देश का प्रादेशीकरण करने की दिशा में कुछ अधिक गम्भीर प्रयास किये गये है।

हाल ही में हुई तकनीकी क्रान्ति, सूचना तकनीकी तथा भौगोलिक सूचना तंत्र के विकास ने भूगोलवेताओं के लिए एक ऐसा आर्थिक प्रादेशीकरण तैयार करना सुगम बना दिया है जो कि देश के नियोजको हेतु आधार उपलब्ध करा सके। यदि ऐसा प्रादेशीकरण उपलब्ध हो सके तो देश में आर्थिक क्षेत्रीय असमानताओं को समाप्त करने हेतु बल मिल सकता है।

यहाँ यह सुझाव देना उचित ही होगा कि राष्ट्रीय भूगोलवेता संघ (NAGI) भौगोलिक सूचना तंत्र के क्षेत्र में विशेषज्ञों का चयनकर देश के योजना आयोग से मिलकर तथा नियोजन शिक्षण संस्थाओं के साथ मिलकर देश का ऐसा आर्थिक प्रादेशीकरण करे जिसे देश की नियोजन प्रक्रिया का आधार बनाया जा सके। इस प्रकार का आर्थिक प्रादेशीकरण एक वर्ष की अवधि में समाप्त कर लेना चाहिये ताकि देश की आने वाली सभी पंचवर्षीय योजनाओं का आधार ऐसे प्रदेशों को बनाया जा सके। परिणामस्वरूप हमारी परियोजनाएं व योजनाएँ कुछ वास्तविकता के करीब हो पायेंगी।

बोध प्रश्न – 1

1.आर्थिक प्रदेश क्या हैं ?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

2. आर्थिक प्रदेश निर्धारण की दो विधियाँ कौनसी हैं ?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

3. भूगोलवेता तथा प्रादेशिक नियोजन में सम्बन्ध बताऐं।

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

4. भारत का सामान्य आर्थिक प्रादेशीकरण किस पर आधारित हो ?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

5. आर्थिक प्रादेशीकरण में कौनसी तकनीकें सहायक हैं ?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

17.6 सारांश (Summary)

आर्थिक प्रदेश में अर्थव्यवस्था, उद्योग, व्यापार, परिवहन व अन्य सम्बन्धित तृतीयक व्यवसायों की समानता होती है। भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण का कार्य आज भी कठिन है। भारत में नियोजन के लिए आर्थिक प्रादेशीकरण हेतु चार मुख्य सिद्धान्त हैं –

1. भौतिक – आर्थिक प्रादेशीकरण
2. ऊर्जा संसाधन प्रादेशीकरण
3. राज्य एक नियोजन प्रदेश
4. एकीकृत आर्थिक प्रादेशीकरण

आर्थिक प्रादेशीकरण पर कार्य सर्वप्रथम 1967 में किया जो कि रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयोग दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। आर्थिक प्रादेशीकरण के कार्य में एम.एन. पॉल, अशोक मित्रा, प्रो. बेरी, प्रो. के.एम. पोपोव, एन.एन. कोलोसोवस्की, पी.सेन गुप्ता, गेलिना सदास्युक आदि विद्वानों का योगदान महत्वपूर्ण रहा। आर्थिक प्रदेशों के निर्धारण विधि को दो भागों में बांटा जा सकता हैं –

1. वर्णनात्मक विधि 2. मात्रात्मक विधि

भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण हेतु कुछ साहसिक कार्य की आवश्यकता है। वर्तमान तकनीकी, सूचना तकनीक, भौगोलिक सूचना तंत्र ने भूगोलवेताओं को नयी दिशा दी है।

17.7 शब्दावली (Glossary)

- **प्रादेशीकरण (Regionalisation)** : किसी संपूर्ण क्षेत्र या भूखंड को चयनित आधारों पर अनेक उपविभागों या प्रदेशों में विभाजन की प्रक्रिया।
- **आर्थिक प्रदेश (Economy Region)** : ऐसे भौगोलिक प्रदेश जिनमें अर्थव्यवस्था उद्योग, व्यापार, परिवहन व अन्य सम्बन्धित तृतीयक क्रियाओं की समानता पायी जाती है।
- **नगरीयकरण (Urbanization)** : किसी ग्राम्य प्रधान समाज के नगरीय प्रधान में रूपान्तरण की प्रक्रिया को नगरीयकरण कहते हैं।
- **औद्योगिकीकरण (Industrialization)** : जब एक प्रदेश की अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है, उसे औद्योगिकीकरण कहते हैं।
- **महानगर (Metropolis)** : जनसंख्या की दृष्टि से दस लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों को महानगर कहते ?
- **अवसंरचना (Infrastructure)** : किसी अर्थव्यवस्था या क्षेत्र के सम्यक् विकास के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना या ढांचा जिसके ऊपर ही समस्त विकास कार्य निर्भर होते है।
- **मात्रात्मक विधि (Quantitative Method)** : परिकल्पनाओं के परी क्षण त था सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु आंकडों की संख्यात्मक व्याख्या।
- **संतुलित विकास (Balance Development)** : सम्पूर्ण प्रदेश या इकाई का एक समान विकास होना।
- **निचले स्तर से नियोजन (Planning From below)** : सम्पूर्ण विकास हेतु प्रदेश की सबसे छोटी इकाई का चयन कर विकास का लाभ देना।

17.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Alexander, E.R. : **Approaches to Planning : Introducing Current planning Theories, Concept, Issues**, Gorden & Breach, Philadelphia, 1992
2. Bhat, L.S. : **Regional Planning in India SPTS**, Calcutta, 1971
3. Chatterjee, S.P. : **"Region, Regionalism and Economic Regionalisation"** The Geographer Vol. XIV, 1967
4. Datta, Chaudhary : **"Regional Planning in India" in Issues in Regional Planning edited by Dunham and hilborst,** Mouton, London, 1971
5. Misra, R.P., Sundram K.V., Prakash Rao, V.L.S. : **Regional Development Planning in India,** A new Stratagy, Vikas Publishing house, New Delhi, 1974

6. Misra, R.P. (ed) : **Regional Planning, Concepts, Techniques, Policies and case studies,** Concept, New Delhi, 1992
7. Mitra, A. **levels of Regional Development in India**, Census of India, New Delhi, 1965
8. Pal, M.L. : **"A Method of Regional Analysis of Economic Development with special Reference to South India : General of Regional Science,** Vol. 5, No.1, 1968)
9. Sen Gupta, P.S. Sadasyuk, G : **Economic Regionalisation of India : Problems and Approaches, Census of India Monograph,** Edited by Mitra, New Delhi, 1968

17.9 बोध प्रश्नों के उतर

1. ऐसे प्रदेश जिनमें अर्थव्यवस्था, उद्योग, व्यापार परिवहन व अन्य सम्बन्धित तृतीयक क्रियाओं की समानता पायी जाती हैं।
2. 1. गुणात्मक विधि, 2. मात्रात्मक विधि
3. एक भोगोलवेता प्रादेशिक नियोजक को संक्रियात्मक व्यवहारिक सहायता प्रदान कर सकता हैं।
4. निचले स्तर से नियोजन (Planning from below) तथा विस्तृत प्रादेशीकरण व गहन अध्ययन पर आधारित हो।
5. तकनीकी क्रांति, सूचना तकनीक, भौगोलिक सूचना तंत्र

17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आर्थिक प्रदेश की संकल्पना को विस्तार से समझाओ।
2. आर्थिक प्रदेश क्या हैं? इनके निर्धारण की विधियों को स्पष्ट करों।

इकाई 18 : भारत के आर्थिक प्रदेश (Economic Regional of India)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण
18.3 आर्थिक प्रादेशीकरण नियोजन के आधार
18.4 भारत के आर्थिक प्रदेश
18.4.1 उत्तरी पूर्वी प्रदेश
18.4.2 पूर्वी प्रदेश
18.4.3 उत्तरी मध्य प्रदेश
18.4.4 मध्य प्रदेश
18.4.5 उत्तरी पश्चिमी प्रदेश
18.4.6 पश्चिमी प्रदेश
18.4.7 दक्षिणी प्रदेश
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 संदर्भ ग्रन्थ
18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ सकेंगे कि : –

- किस प्रकार आर्थिक प्रादेशीकरण संतुलित विकास के लिए आवश्यक हैं,
- आर्थिक प्रदेशों का निर्धारण,
- भूगोलवेत्ताओं का प्रादेशीकरण में क्या योगदान है,
- भारत के आर्थिक प्रदेश।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राकृतिक संपदा की दृष्टि से भारत सम्पन्न देश है। भारत में वे सभी संसाधन उपलब्ध हैं जो आधारभूत उद्योग से लेकर उपभोक्ता उद्योग के लिए आवश्यक हैं। भारत के पास उच्च किस्म के लौह अयस्क मैगनीज, डोलोमाइट, मैगनेसाइट, कोयला जो कि धातु उद्योग का प्रमुख कच्चा माल है, तथा सीमेन्ट उद्योग, सेरेमिक उद्योग, एल्यूमिनियम उद्योग के कच्चे माल की दृष्टि से सम्पन्न है। भारत का पेट्रोलियम, कोयला प्राकृतिक गैस संसाधन रसायन उद्योग को विकास

के चरम पर पहुँचा सकता है। भारत की जलविद्युत उत्पादन संभावना तथा अणुशक्ति संसाधन विकास ऊर्जा आधारित उद्योगों के विकास में सहायक हो सकता है। भारत के पहाड़ों में स्थित सुरक्षित वन लकड़ी, रसायन, कागज व लुग्दी उद्योग के लिए आधार हैं। भारत का विस्तृत समुद्री तट समुद्री जीवों, रसायनों तथा शक्ति संसाधनों, ज्वारीय शक्ति (Tidal Energy) जो कि रसायन तथा अन्य ऊर्जा आधारित उद्योगों का आधार हो सकता है। प्राकृतिक सम्पदा में धनी होने के बाद भी भारत गरीब तथा पिछड़ा हुआ देश है। भारत की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर भार बढ़ता ही जा रहा है। इस समस्या के निराकरण लिए आवश्यकता है कि प्राकृतिक व मानव शक्ति संसाधनों का क्रमिक विकास बिना अतिरिक्त नुकसान के होना चाहिए। केवल नियोजित प्रयासों के द्वारा ही भारत के आर्थिक– सामाजिक जीवन तथा औद्योगिक व आर्थिक विकास किया जा सकता है। भारत की अत्यधिक जनसंख्या महानगरीय विस्तार, बेरोजगारी, शक्ति स्रोतों की कमी, अपर्याप्त यातायात सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध संसाधनों का प्रभावी उपयोग होना चाहिए। इस हेतु विस्तृत क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता होगी जो कि देश के संसाधनों के प्रभावी उपयोग हेतु सुझाव दे सकता है।

भारत विकासशील देश है जहां आर्थिक विकास में क्षेत्रीय भिन्नता पायी जाती हैं। भारत के कुछ राज्यों का उपभोग स्तर बहुत निम्न स्तर पर है जैसे उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, केरल आदि जबकि कुछ राज्यों का उपभोग स्तर देश के स्तर से भी उच्च है जैसे पंजाब, महाराष्ट्र आदि। इसी प्रकार देश के औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन देखा जा सकता है। आज भी देश के औद्योगिक प्रदेशों में जनसंख्या का जमाव अधिक है जैसे हुगली औद्योगिक प्रदेश। भारत में आमदनी व तकनीक उद्यमता आदि का केन्द्रीयकरण कुछ उच्च विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में होने के कारण देश की आर्थिक संरचना में असंतुलन पैदा हो गया है। इसके लिये संतुलित प्रादेशिक आर्थिक विकास की आवश्यकता होगी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक प्रादेशिक नियोजन ही देश के आर्थिक विकास को सही दिशा दे सकता है।

मेहलानोबिस के अनुसार "भारत जैसे वृहद देश के आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल कुल उत्पादन में वृद्धि करना ही नही बल्कि प्रदेशों का सर्वांगीण विकास करना है। इस प्रकार प्रादेशिक अवधारणा का विशेष महत्व आर्थिक नियोजन के संदर्भ में विशिष्ट

18.2 भारत में आर्थिक प्रादेशीकरण (Economic Regionalization)

भारत में संसाधन विकास की संभावनाऐं उज्जवल हैं। सेन गुप्ता द्वारा आर्थिक प्रादेशिक नियोजन सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख विचार प्रस्तुत किए गए हैं : –

1. विभिन्न स्तर के प्रत्येक प्राकृतिक प्रदेश के संसाधनों तथा दोहन क्षमता का समूचित मूल्यांकन करके प्रदेशों की योजना निर्धारित करनी चाहिए। इस प्रकार आर्थिक योजना का आधार प्राकृतिक प्रदेश एवं उनके उपप्रदेशों पर ही केन्द्रित किया जाना चाहिए।

2. योजना प्रदेशों का चयन नीचे से (Planning from Below) प्रारम्भ होना चाहिए। इस दृष्टि से पहले लघु प्रदेश का निर्माण किया जाना फिर उनका समूहन करके मध्याकार के समूहों का संगठन करने के पश्चात वृहत प्रदेश बनाये जायें।
3. लघु प्रदेश बहु संसाधन क्षेत्र के रूप में होगा। मध्याकार के आर्थिक प्रदेश बहुउद्देशीय होना चाहिये तथा इसमें स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय महत्व के उत्पादनों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जबकि वृहत आर्थिक प्रदेशों में एक से अधिक राष्ट्रीय महत्व के उत्पादों को व्यक्त करना चाहिए। वृहत प्रदेशों को भोजन, भारी भवन सामग्री तथा ईंधन की दृष्टि से आत्म निर्भर होना चाहिए, जिससे लम्बे रेल मार्ग के व्यय में बचत हो सके।
4. प्रशासकीय सीमाएं, योजना प्रदेशों की निर्धारित सीमाओं से नही कटनी चाहिए। लघु प्रदेश के अन्तर्गत कुछ तहसीलों या स्थानों की इकाइयाँ ली जा सकती है, जिनमें प्राकृतिक तथा संसाधनों सम्बन्धी समानता हो। मध्याकार प्रदेशों में जिले की इकाईयों समाहित की जानी चाहिए, जबकि वृहद प्रदेशों का निर्माण कई राज्यों को मिलाकर किया जा सकता है।
5. आर्थिक प्रदेश नियोजन का आधार उत्पादन विशेषीकरण होना चाहिए।
6. प्रादेशिक योजना का आधार सम्मिश्र समाकलित प्रदेश होना चाहिए।
7. प्रत्येक प्रदेश का समाकलित विकास (Integrated Development) होना चाहिए। वे प्रदेश परस्पर सम्बन्ध एवं अन्योन्याश्रित होने चाहिए। इसी प्रकार समांगी तथा मार्ग संगमी देशों में भी बराबर पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित रहना चाहिए।
8. आर्थिक प्रादेशिक नियोजन इस प्रकार से किया जाये कि आर्थिक प्रगति तथा उसके परिणाम स्वरूप होने वाले लाभों का उपयोग कम विकसित प्रदेशों में किया जा सके।
9. आर्थिक प्रादेशिक नियोजन सम्बन्धी कार्य में केन्द्रीय अवस्थिति सिद्धान्त को केवल नगर के लिए ही प्रस्तुत नही करना चाहिए वरन् सम्पूर्ण उद्योग शक्ति सम्मिश्र के लिये उसे प्रयुक्त करना चाहिए।

आर्थिक प्रादेशीकरण का सर्वप्रथम कार्य कुमारी पी सेन गुप्ता द्वारा 1968 में किया गया। उनका यह कार्य रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयोग दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है।

भारतीय भूगोलवेत्ता कुमारी (डॉ.) पी. सेन गुप्ता तथा उनकी सहयोगी सोवियत भूगोलवेत्ता श्रीमती (डॉ.) जी. सदास्युक ने कुछ अन्य सोवियत विशेषज्ञों के परामर्श से भारत के लिए प्रादेशिक योजना सन् 1968 में प्रस्तुत की थी। इस प्रादेशिक योजना में बहुत से आर्थिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक चरों के आधार पर भारत को (i) वृहद आकार प्रदेशों (ii) मध्याकार प्रदेशों (iii) लघु प्रदेशों में विभाजित किया गया है। सेन गुप्ता तथा गैलिना सदास्युक ने भारत को 7 वृहद (Macro) आर्थिक नियोजन प्रदेशों में विभक्त किया। यह प्रदेश नदी घाटियों के आधार पर बनाये गये हैं। साथ ही इस प्रादेशीकरण में यह भी ध्यान रखा गया है कि इनकी सीमाएं यथा संभव राज्यों की सीमाओं से मिलती जुलती हो। इन्होंने प्रदेशों में उद्योगों और अर्थव्यवस्था के मापन के लिए एन.एन. कोलोस्विस्की (N.N Kolosivesky) द्वारा निर्धारित मापदण्डों का प्रयोग किया है। कोलोस्विस्की के अनुसार ऊर्जा संसाधन और प्राकृतिक संसाधन का समुचित तकनीकी उपयोग करने से निर्धारित होता है। इसे ऊर्जा उत्पादन चक्र "energy Production

Cycle" कहा गया है। इस चक्र में संसाधनों के प्रारम्भिक उत्पादन से, जिसमें खनन उद्योग भी सम्मिलित है, अंतिम चरण तक, जिसमें की उत्पादित वस्तु का विक्रय होता है सभी प्रकार की अर्थव्यवस्था और तकनीकी वृद्धि सम्मिलित है। कोलोस्विस्की आर्थिक विकास के प्रादेशिक स्वरूप को "Territorial Production Complex (TPC)" का नाम दिया है।

कोलोस्विस्की ने मुख्य रूप से 9 सामान्य उत्पादन ऊर्जा चक्र बताये हैं जो भारत वर्ष में भी लागू होते हैं। सेन गुप्ता व गैलिना सादस्युक ने आर्थिक प्रादेशीकरण के लिए उन्हीं 9 चक्रों का उपयोग किया है। ये चक्र इस प्रकार हैं –

1. **पायरो–धात्विक खनिज उत्पादन चक्र (Pyro–Metallurgical Cycle) :** जिसमें लौह अयस्क एवं कोयले का उपयोग, इस्पात भारी मशीन निर्माण उद्योग तथा रसायन उद्योग के लिए किया जाता है।
2. **पायरो अधात्विक खनिज उत्पादन चक्र (Pyro–Metallurgical Cycle of non ferrous Metals) :** जिसमें वह उद्योग चक्र सम्मिलित है जो अलौह धातु ओ के खनन, शोधन तथा सह उत्पादन व अन्य उपशिष्ट पदार्थो के उपयोग से सम्बन्धित है।
3. **पेट्रोलियम–गैस रसायन उत्पादन चक्र (Petroleum and Gas Chemical Cycle) :** खनन, ऊर्जा, रसायन तथा कच्चे तेल व गैस के सम्पूर्ण प्रक्रम का प्रतिनिधत्व करता है।
4. **जल–विद्युत शक्ति संचालित उद्योग चक्र (Hydro–Power Industry Cycle) :** जिसमें वृहद सस्ती जलविद्युत शक्ति का उत्पादन कर उसका उपयोग ऐसे उद्योगों में किया जाये जो ऊर्जा आधारित है जैसे एल्यूमिनियम, इलेक्ट्रों–रसायन उद्योग आदि।
5. **उपभोग पदार्थो से सम्बन्धित औद्योगिक उत्पादन चक्र (Cycle of Consumer industries) :** इसमे हल्का इन्जीनियरिंग उद्योग, वैज्ञानिक उपकरण, विद्युत सामान बनाने के उद्योग सम्मिलित हैं। ये उद्योग, विशेष जनघनत्व क्षेत्रो के समीप होते हैं।
6. **काष्ट उद्योग सम्बन्धी उत्पादन चक्र (Wood–Processing Cycle) :** इसमें वन सम्बन्धी उद्योग और लकडियों से प्राप्त रासायनिक उद्योग सम्मिलित किये जाते हैं। ये विशेष रूप से वन प्रदेश में पाये जाते हैं।
7. **कृषि पदार्थ सम्बन्धी औद्योगिक उत्पादन चक्र (Agro–Processing Cycle) :** इसमें कृषि उत्पादन, उर्वरकों का उत्पादन व प्रयोग व कृषि यन्त्रों का उपयोग सम्मिलित है
8. **सिंचाई एवं कृषि जन्य उपयोग चक्र (Irrigation - Agricultural Cycle) :** इसमें वो उद्योग सम्मिलित हैं जिसमें सघन कृषि, खाद्यान्न उत्पादन, व्यापारिक फसलों का उत्पादन, सिंचाई व्यवस्था सम्मिलित है।
9. **सागरीय शक्ति औद्योगिक उत्पादन चक्र (Marine - Energy Industry Cycle) :** जिसे नवें चक्र के रूप में माना गया है। इसके अन्तर्गत समुद्री जल से प्रात जैविक सामग्री व खनिज पदार्थ व इससे सम्बन्धित रासायनिक उद्योग तथा ज्वार शक्ति से प्राप्त ऊर्जा सम्मिलित है।

प्राकृतिक प्रदेश और आर्थिक प्रदेश एक दूसरे से सम्बन्धित होते है फिर भी एक नहीं होते। प्राकृतिक प्रदेश के निर्धारण में भू–दृश्यावलियों और उच्चावच के विकास को ध्यान में रखा जाता है, जिसे मनुष्य ने अपनी क्रियाओं द्वारा बहुत कुछ परिवर्तित किया है। आर्थिक प्रदेश निर्धारित करते समय केवल प्रदेश की जनसंख्या और समाज को आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता मिलती है। आर्थिक प्रादेशीकरण से अविकसित और विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में और प्रादेशिक संसाधनों का समुचित उपयोग करने में सहायता मिलती है। इसमें कृषि उद्योग, भारी मशीन उद्योग और समस्त प्रादेशिक उद्योगों को अपनी विशिष्टता में प्रगति करने का लाभ मिलता है। इसमें न केवल प्रदेश का बल्कि समूचे देश का वस्तु–विनिमय करने में और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ होता है। आर्थिक प्रगति प्रादेशिक योजनाओं पर निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है तथा कृषि पर निर्भर है, योजना के प्रदेश आर्थिक प्रदेशों के आधार पर बनाया जाना आवश्यक है।

सामान्यत : आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन आर्थिक भू–दृश्यों में निहित निम्न तत्वों के आधार पर किया जा सकता है –

1. विविध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन,
2. संसाधनों के उपयोग करने की प्राविधि तथा अभिरूचि,
3. आर्थिक विकास हेतु अवस्थापन की उपस्कधता,
4. आर्थिक विकास की अवस्था
5. आर्थिक तंत्र का स्वरूप एवं सामान्य आर्थिक कल्याण सम्बन्धी दशायें।

इसके अतिरिक्त क्षेत्र के विभिन्न वस्तु, पदार्थो की मात्रा के आधार पर सांख्यिकीय विधियों द्वारा भी आर्थिक प्रदेशों का परिसीमन किया जाता है। इसे सांख्यिकीय विधि द्वारा आर्थिक प्रादेशीकरण कहा जाता है।

18.3 आर्थिक प्रादेशीकरण नियोजन का आधार (Economic Regionalization is a Basis for Planning)

देश की आर्थिक प्रगति प्रादेशीकरण योजनाओं पर निर्भर करती हैं। ये सभी प्रादेशिक योजनायें राज्यों की सीमाओं से हटकर बनाई जानी चाहिए, क्योंकि एक प्रदेश के प्राकृतिक व मानवीय संसाधन एक निश्चित राज्य में ही हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं हैं, जैसे – पेयजल की समस्या का समाधान यदि उसी राज्य में खोजा जाये तो कठिनाई हो सकती है। इन समस्याओं का समाधान पडोसी राज्यों से मिलकर किया जा सकता है, इसके लिए प्रादेशिक योजना की आवश्यकता है। एक प्राकृतिक प्रदेश में भू–उच्चावच, नदियों का अपवाह, जल की मात्रा, खनिज संसाधन, कुटीर उद्योग, मानव घनत्व और उद्योग विविध प्रकार के होते है। उनका विकास राज्य की प्रशासनिक इकाईयों के आधार पर समुचित रूप से नही हो सकता। उसके लिए प्रशासनिक इकाईयों की सीमाओं से ऊपर उठकर विकास करना आवश्यक है। भारत जैसे देश में नदी जल विवाद को सुलझाने के लिए दो सुझाव दिये जाते हैं। प्रथम जल को राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में रखना। द्वितीय, राष्ट्रीय जल ग्रिड का निर्माण। चूंकि अभी जल राज्य

सूची में है अत: नदी जल विवाद मे केन्द्र की सीमित भूमिका होती है। राज्य सूची का विषय होने के कारण राज्यों के बीच जल बंटवारे को लेकर विवाद हो जाता है। भारत में इसके कुछ उदाहरण – कावेरी जल विवाद, कृष्णा नदी विवाद, नर्मदा जल विवाद, यमुना जल विवाद, गोदावरी विवाद, सोन नदी विवाद आदि है। यदि इस प्रकार के विवाद को राजनीतिक सीमाओं से हटकर सुलझाया जाये तो समाधान निश्चित है। भारत में योजना के प्रदेश आर्थिक प्रदेशों के आधार पर बनाया जाना आवश्यक है। नदियां का पानी लेने के लिए प्रादेशिक योजना होनी चाहिए, क्योंकि नदियाँ एक राज्य से होकर नहीं बल्कि अनेक राज्यों मे होकर बहती है। इसी प्रकार खनिज, खनन उद्योग, जल–विद्युत का वितरण, यातायात के साधनों का विकास आदि ऐसे कारक है जो प्रादेशिक रूप से ही विकसित किये जा सकते हैं।

भारत में प्रादेशिक योजना के लिए भूगोलवेत्ताओं व विशेषज्ञों ने अपनी सम्मतियां दी हैं। कुछ संस्थाओं ने भारत की प्रादेशिक योजनाऐं बनाई है। राज्यों के तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट (Techno–Economic Survey) को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया है।

18.4 भारत के आर्थिक प्रदेश (Economic Regions of India)

एकीकृत आर्थिक प्रादेशीकरण का प्रारम्भ सन् 1960 के बाद भारत में महसूस किया गया। समन्वित आर्थिक प्रादेशिकरण में संसाधनों व प्राकृतिक अवस्था का आकलन आर्थिक दृष्टि से किया जाता है। इस प्रकार के प्रदेशों की सीमा निर्धारण के लिए ऊर्जा का विकास, बहुउद्देशीय योजनाओं, औद्योगिक प्रगति व नगरीयकरण को महत्व दिया गया है। पी.सेन गुप्ता ने प्रो. कोलोसोवस्की के ऊर्जा उत्पादन चक्र (Energy Production Cycles) को आधार माना है। इन चक्रो को आधार मानकर सेन गुप्ता ने भारत को 7 वृहद आकार (Macro Economic Regions), 42 मध्य आकार प्रदेशों तथा लघु प्रदेशों में विभाजित किया है।

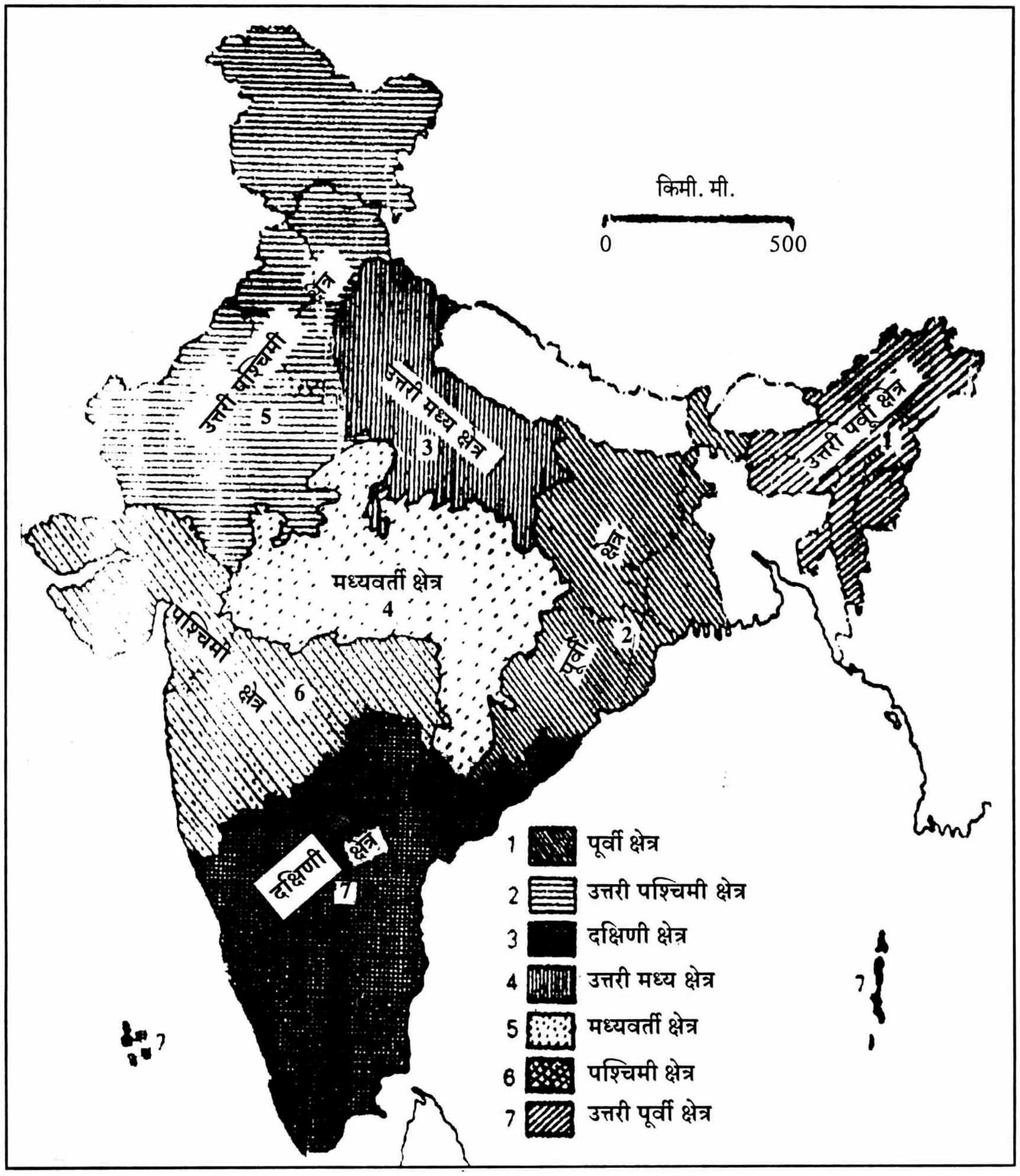

मानचित्र – 18. 1 : भारत में आर्थिक प्रदेश

उपरोक्त कुल 7 वृहदआकार Macro–Regions प्रदेशों को पुन: मध्याकार (Meso–Regions) व लघु प्रदेशों (Micro–Regions) में बाँटा गया है जैसा कि तालिका – 18. 1 से स्पष्ट हो रहा है

18.4.1 उत्तरी–पूर्वी प्रदेश (North Eastern Region)

इस प्रदेश में आसाम, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मणिपुर तथा मेघालय राज्यों को सम्मिलित किया गया है। यह विशाल आर्थिक प्रदेश है। यह प्रदेश बांग्लादेश द्‌वारा भारत से अलग रूप में है। प. बंगाल के दार्जिलिंग के सहारे थलमार्ग के द्‌वारा ही भारत से इसका सम्बन्ध है। इस प्रदेश को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है -

तालिका – 18.1 : भारत के वृहदाकार आर्थिक प्रदेश (Macro-Economic Regions) (मानचित्र–18.1)

1. उत्तर पूर्वी प्रदेश आसाम, त्रिपुरा,नागालैण्ड, मणिपुर तथा मेघालय
2. पूर्वी प्रदेश पं. बंगाल, उड़ीसा,बिहार, झारखंड
3. उत्तरी मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल
4. मध्य प्रदेश,मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
5. उत्तरी पश्चिमी प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व दिल्ली
6. पश्चिमी प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, दादर, नागर, दमनदीप
7. दक्षिणी प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू, केरल, गोवा, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह

उत्तरी पूर्वी प्रदेश के मध्याकार आर्थिक प्रदेश (Meso-Economic Regions of North -Easter Region) (मानचित्र–18.2)

1.1 उपरी ब्रह्मपुत्र घाटी (लखीमपुर, सिबसागर व दारन जिला)
1.2 निचली ब्रह्मपुत्र घाटी (नवगांव, कामरूप, गोलपाड़ा जिला)
1.3 खनिज युक्त पठार, शिलोंग का पठार (उत्तर काशी व जयतिया पहाड़िया, गारो पहाड़ियां व जिला)
1.4 पूर्वी एवं उत्तरी पहाड़ियां (नागालैण्ड, नेफा, मणिपुर, त्रिपुरा मिजो पहाड़ियां, कंचर घाटी, यू.एम. व एन.सी. पहाड़ियां)

1.1.3 खनिज युक्त पठार के (शिलोंग–पठार) लघु आकार के आर्थिक प्रदेश (Micro-Economic Regions of Shillong Plateau) (मानचित्र–18.3)

1.3(अ) उत्तरी पठार क्षेत्र
1.3. (ब) द.प. पठारी क्षेत्र (तुरा रंगरेनगिरी Tura Rangrenggiri)
1.3 (स) द. पू. पठारी क्षेत्र (शिलोंग, चेरापूंजी)

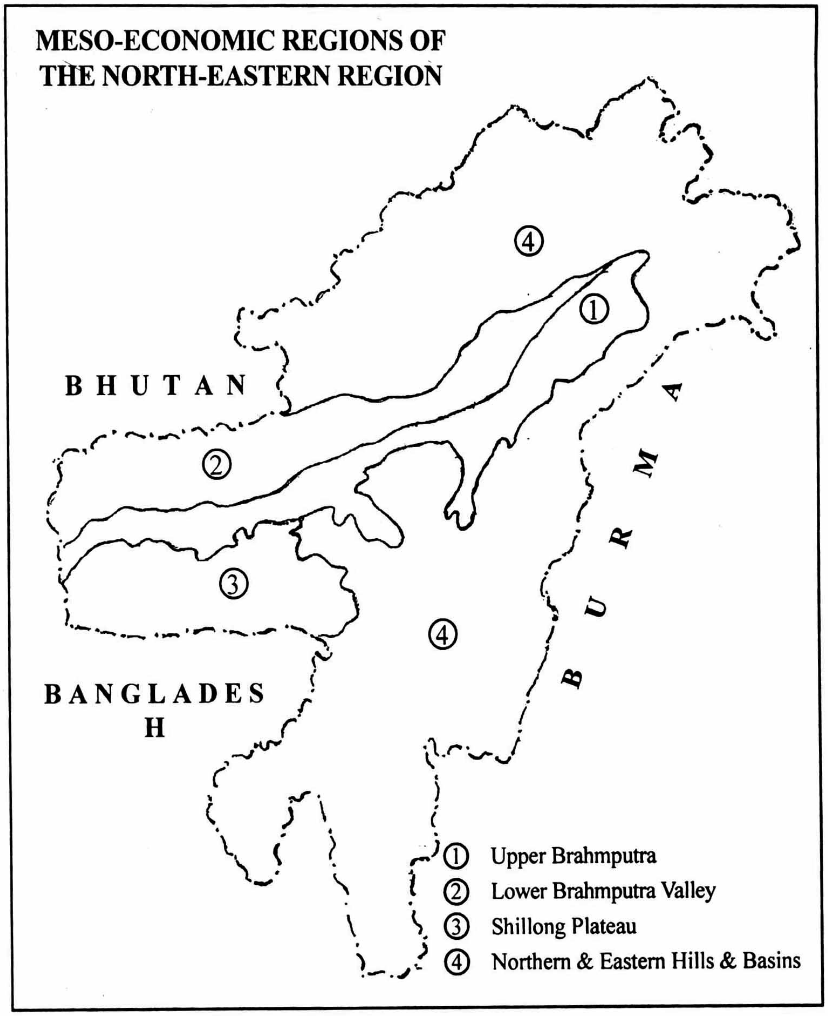

मानचित्र – 18.2 : Meso - Economic Regions of the North-Eastern Region

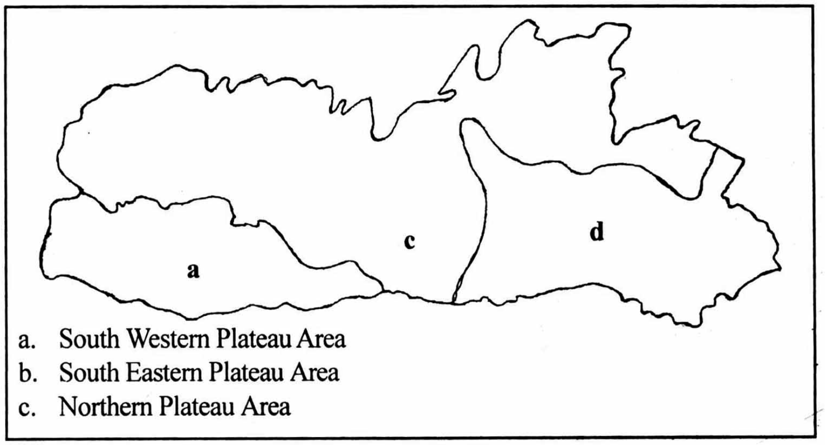

मानचित्र –18.3 : Micro Units of the Shillong Plateau
(Meso-Economic Region)

(अ) ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी

(ब) निचली ब्रह्मपुत्र घाटी

(स) खनिज युक्त पठार

(द) पूर्वी एवं उत्तरी पहाड़ियां

उत्तरी पूर्वी प्रदेश एक विशाल प्रदेश है, इसमें अनेक भौतिक एवं प्राकृतिक विविधताएँ देखी जा सकती हैं। इसका अधिकांश भाग पर्वतीय है। यह पूर्वोतर हिमालय तथा मेघालय के पठार से आबद्ध है, इसके मध्य में बह्मपुत्र घाटी स्थित है।

इस प्रदेश के मुख्य विकसित केन्द्र इटानगर, शिलांग, गोहाटी, नवगांव, डिब्रुगढ़, इम्फाल, कोहिमा तथा अगरतला हैं। इस प्रदेश में पर्याप्त सम्पन्नता विद्‌यमान है क्योंकि इसमें भूवैज्ञानिक विकास क्रम की दृष्टि से विविधता पायी जाती है।

पेट्रोलियम संसाधन की दृष्टि से प्रसिद्ध इस क्षेत्र में सर्वप्रथम तेल निकाला गया था। यह प्रदेश सम्पूर्ण भारत के पेट्रोलियम उत्पादन का 30 प्रतिशत उत्पादित करता है। यहां खनिज तेल के भंडार मुख्यत: टर्शीयरी युग की चट्टानों में पाया जाता है। यहाँ तेल के प्रमुख केन्द्र नाहर कटिया, डिग्बोई, सुरमाघाटी, लखीमपुर रूद्र सागर हैं। यहाँ कोयला तथा प्राकृतिक गैस भी निकाले जाते हैं। यहाँ लिग्राइट किस्म का कोयला निकाला जाता है।

इस प्रदेश में कृषि कार्य महत्वपूर्ण है। जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि व्यवसाय में संलग्र है। यहाँ की प्रमुख फसलें गन्ना, चाय, जूट, चावल है। चाय उत्पादन में यह प्रदेश सम्पूर्ण भारत में प्रथम स्थान रखता है। यहां के चाय बागानों में चाय उत्पादन के साथ–साथ उसे सुखाने व पैकिंग इत्यादि का कार्य किया जाता है। यहाँ अल्पमात्रा में जूट, गन्ना, चावल का उत्पादन किया जाता है। यह स्थानीय औद्‌योगिक कच्चे माल की पूर्ति करता है। सब्जी, फलों व तम्बाकू का उत्पादन भी यहाँ किया जाता है।

वन संसाधन की दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण देश में महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रदेश में सदाबहार, पतझड़, नदी तटीय व पर्वतीय प्रकार के वन पाये जाते हैं। वनों के लिए इस प्रदेश में अनुकूल जलवायु के साथ–साथ विस्तृत पहाड़ी क्षेत्र की उपलब्धता रही है। इस प्रदेश में 1000 से 2000 मीटर की ऊंचाई पर आर्द्रशीतोष्ण वन पाये जाते हैं ये सघन वन हैं। कम ऊँचाई पर साल के वनों का इस आर्थिक प्रदेश की अर्थ व्यवस्था में उच्च स्थान प्राप्त है।

इस प्रदेश में बहुत सी औद्‌योगिक क्रियायें सम्पादित होती हैं जिनमें – कृषि पर आधारित उद्‌योगों में मुख्य रूप से चीनी, चाय, सूती वस्त्र, लूट उद्‌योग का अच्छा विकास हुआ है जिनके प्रमुख केन्द्र शिवसागर (चीनी उद्‌योग) लखीमपुर व शिवसागर (चाय उद्‌योग) व सिलघाट में जूट उद्‌योग विकसित हुआ है।

पैट्रो रसायन उद्‌योग का विकास नुनमती, बोंगाई गाँव व डिग्बोई में हुआ है। इसका निमार्ण खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस से होता है।

वन आधारित उद्‌योगों का पर्याप्त विकास वनों की अधिकता से हुआ है। यहाँ वन आधारित उद्‌योगों में फर्नीचर, लकड़ी चीरना, दियासलाई, कागज उद्‌योग प्रमुख हैं।

उपरोक्त उद्योगों के अलावा यहाँ मिट्टी के बर्तन, विद्युत सामान व लघु उद्योग विकसित हुए हैं।

उत्तरी पूर्वी आर्थिक प्रदेश में परिवहन सुविधाओं को देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि यहाँ रेलमार्ग का घनत्व विरल पाया जाता है। असम की बह्मपुत्र घाटी के अलावा शेष भाग में रेल मार्ग बहुत कम या बिल्कुल नहीं हैं। त्रिपुरा में कुमार घाट तक ही रेलमार्ग है। भविष्य की योजना के अनुसार इस रेल मार्ग को अगरतला तक तथा बाद में इसे त्रिपुरा के दक्षिण में साबरू तक बढ़ाया जा सकता है। मिजोरम में भैरवी तक व मणिपुर में जिरीबाम तक रेलमार्ग हैं। अरूणाचल प्रदेश तथा मेघालय में कोई रेलमार्ग नहीं हैं। नागालैण्ड में भी दीमापुर तक रेलमार्ग ही है। इस प्रदेश की विरल जनसंख्या, सघन वन, पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण रेल मार्गो के निर्माण में लागत अधिक आती है, इसीलिए रेलमार्गो का घनत्व कम है।

सड़क परिवहन की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रदेश में औसत सड़क घनत्व 20 से 40 वर्ग किमी है। सबसे सघन सड़क मार्ग त्रिपुरा में पाया जाता है। जबकि सबसे कम अरूणाचल प्रदेश में हैं।

जल परिवहन का प्रमुख साधन ब्रह्मपुत्र नदी है। यह देश का दूसरा महत्वपूर्ण आतंरिक राष्ट्रीय जल मार्ग है। इस प्रदेश का कोई बंदरगाह नहीं है क्योंकि इस आर्थिक प्रदेश की सीमा स्थलीय है। इस प्रदेश का समस्त व्यापार कोलकाता व हल्दिया बंदरगाह से होता है। इसमें चार उत्पादन चक्र चल रहे है व एक की संभावना और है। वृहद आकार प्रदेशों (Macro Regions) के संसाधनों का विकास मध्याकार–आर्थिक प्रदेशों के द्वारा संभव है। इन मध्याकार प्रदेशों का निर्धारण वर्तमान व भविष्य में होने वाले उत्पादन विशिष्टीकरण द्वारा किया जा सकता है। इन सभी मध्याकार प्रदेशों (Macro Region) के संसाधनों का आकलन लोगों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए आवश्यक है। इस हेतु बहुउद्देशीय योजनाओं, शहरों, उद्योगों पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिए आसपास के क्षेत्रों का विकास भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए उत्तरी–पूर्वी प्रदेश को चार मध्याकार आर्थिक प्रदेश में बाँटा गया हैं, जो कि सभी उत्पादन विशिष्टीकरण के कारण प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय महत्व रखते हैं। ये प्रदेश इस प्रकार हैं –

(अ) ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी : इस प्रदेश में आसाम राज्य के लखीमपुर, शिवसागर धारांग जिला सम्मिलित है। यहां चाय, खनिज तेल व प्राकृतिक गैस उत्पादन को राष्ट्रीय महत्व प्राप्त है। प्लाईवुड व कोयला उत्पादन प्रादेशिक महत्व का है। यहाँ प्राकृतिक गैस, वन उद्योग आदि, जल विद्युत उत्पादन के कारण प्रगति पथ पर हैं। आर्थिक राष्ट्रीय महत्व के केन्द्र डिग्बोई, नाहरकटिया, डिब्रूगढ़ हैं। स्थानीय महत्व का उत्पादन खाद्यान्न है प्रादेशिक महत्व के केन्द्र शिवसागर, तिनसुखिया व लखीमपुर है।

(ब) निचली ब्रह्मपुत्र घाटी : इस प्रदेश में आसाम राज्य के नवगांग (Nowgang) कामरूप, गोलपाड़ा जिला सम्मिलित है। यहाँ राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों में जूट उद्योग, खनिज तेल शोधन कारखाना हैं। खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से इस क्षेत्र का प्रादेशिक महत्व है। राष्ट्रीय महत्व के केन्द्र गोहाटी, अमीन गांव (Amin Gaon) हैं। गोहाटी में नूनमाटी केन्द्र पैट्रो–रसायन उद्योग में विकसित है। प्रादेशिक स्तर के धुबरी, नवगांग, गोलपाड़ा, बोंगाई गांव, सिलघाट विकसित हो सकते है।

(स) शिलोंग का पठार : यह पठार गोरोखासी जयन्तिया के पहाड़ी जिलो को सम्मिलित करता है। राष्ट्रीय महत्व के खनिज सिलेमेनाइट (Sillimanite) है, जो परमाणु ऊर्जा उत्पादन में काम आता है। कृषि सम्बन्धित उत्पादन भी राष्ट्रीय महत्व रखते हैं। स्थानीय महत्व के कोयला, चूनापत्थर, खाद्य उत्पादन इत्यादि का है। इसमें विकसित होने वाले केन्द्रों में शिलोंग, चेरापूंजी, तूरा –रोन्ग्रेनगिरी (Tura–Rongrenggiri) है। इसमें शिलोंग राष्ट्रीय स्तर का व चेरापूंजी, तुरा–रोंग्रेनगिरी प्रादेशिक महत्व है।

(द) पूर्वी और उत्तरी पहाड़ियाँ तथा बेसिन : इस प्रदेश में उत्तरी कचार की घाटी, मिजो पहाडियां, नागालैण्ड, सम्पूर्ण मणिपुर, त्रिपुरा, अरूणाचल प्रदेश सम्मिलित हैं। यहाँ का चाय व लूट उत्पादन राष्ट्रीय महत्त्व के हैं। बांस से बने उत्पादनों का प्रादेशिक महत्व है। इस क्षेत्र का भविष्य लकड़ी, रसायन चक्र व जल विद्युत शक्ति चक्र की दृष्टि से उज्जवल है। प्रादेशिक महत्व के केन्द्र जो भविष्य की संभावनाऐं है अगरतला, इम्पाल पासीघाट, सिलचर, नेपानगर आदि है।

सभी मध्याकार (Meso) प्रदेशों को उनके प्राकृतिक संसाधनों तथा उनके उपयोग की समस्याओं के आधार पर उपविभागों में बांटने की आवश्यकता है। यह इकाईयां प्राकृतिक प्रदेशों से मिलती जुलती है। मध्याकार प्रदेशों की अर्थव्यवस्था में अधिकतम विशिष्टीकरण विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों व संसाधनों पर निर्भर है। शिलांग का पठार जो कि उत्तरी पूर्वी आर्थिक प्रदेश का मध्याकार (Meso) प्रदेश है, को तीन लघु प्रदेशों (Micro–regions) में उनकी विशेषताओं, संसाधनों की स्थिति व विकास की संभावनाओं के आधार पर शिलोंग के पठार को विभक्त किया गया है –

(1) **एकल उद्देशीय कृषि क्षेत्र :** सम्पूर्ण पठारी क्षेत्र से लोगों का पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं हो पाता है। स्थानांतरित कृषि जनसंख्या की कमी के कारण संभव थी, वर्तमान में जनसंख्या की कमी के कारण संभव थी, वर्तमान में जनसंख्या की अधिकता के कारण यह व्यवस्था असंभव है। अत: इस प्रकार की कृषि के लिए नियोजन की आवश्यकता है। अत: इस प्रकार की कृषि के लिए नियोजन की आवश्यकता है ताकि इस व्यवस्था को स्थायी कृषि में बदल कर स्थायीत्व प्रदान किया जा सके। अत: सीढ़ीनुमा खेतों के रूप में सिंचाई व खाद की सुविधा युक्त कृषि का नियोजन आवश्यक है।

(2) **तूरा–रोंग्रेंगिरी क्षेत्र (Tura–Rongrenggiri Area) :** यहां कोयला व चूने के पत्थर के विशाल भंडार सुरक्षित है। जिनका उपयोग नहीं हो सका हैं यातायात की समस्या जटिल रूप में होने के कारण उपरोक्त संसाधनों के खनन की समस्या है। उद्योगों का विकास सडकों के निर्माण से जुडा हैं जिसकी यहाँ लम्बाई कम है तथा वर्षा काल में उनका उपयोग संम्भव नहीं होता है। अत: यातायात का विकास आवश्यक है।

(3) **बहु उद्देशीय संसाधन प्रदेश :** इसका विस्तार शिलांग व चेरापूंजी जो कि पूर्व में आधे पठारी भाग में है। यहाँ कोयला व चूने के पत्थर का विशाल सुरक्षित भंडार है। जल विद्युत उत्पादन संभावना, संसाधनों, कोणधारी वनों (Coniferons) की अधिकता है। इस प्रदेश में

कोयला, रसायन, न्यूजप्रिंट, फल सुरक्षित रखने सम्बन्धित उद्योग विकसित हो सकते है। औद्योगिक विकास चेरापूंजी व गुहावटी के बीच यातायात सुविधाओं के विकसित होने पर ही संभव है।

18.4.2 पूर्वी प्रदेश (Eastern Region)

पूर्वी आर्थिक प्रदेश में संसाधनों की सम्पन्नता के कारण आर्थिक भू–दृश्यों की साफ झलक देखी जा सकती है। इसकी भौगोलिक स्थिति व भारत का महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश कोलकाता यहीं स्थित है।

यह प्रदेश भारत के कुल क्षेत्रफल के 12.82 प्रतिशत भाग पर फैला हुआ है। इस प्रदेश में बिहार, प. बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा राज्यों को शामिल किया गया है। इस प्रदेश को निम्न मध्याकार प्रदेशों में बाटा गया है –

(अ) कोलकाता हुगली प्रदेश

(ब) दामोदर घाटी क्षेत्र,

(स) छोटा नागपुर व उत्तरी उड़ीसा का पठार,

(द) उड़ीसा की दक्षिणी पहाडी व पठार,

(य) गंगा का निचला मैदान डेल्टा तथा तटीय मैदान,

(र) दार्जिलिंग पहाडियां व उप–पर्वत।

इस आर्थिक प्रदेश के महत्वपूर्ण आर्थिक केन्द्र कोलकाता, पटना, भुवनेश्वर, भागलपुर, रांची, पूर्णिया, आसनसोल, दुर्गापुर, रानीगंज, रूरकेला, जमशेदपुर, कटक, पुरी, कटिंया, डाल्टनगंज मुख्य है। इस के प्रमुख पत्तन – कोलकाता, हल्दिया, चन्द्राबली, पाराद्वीप, पुरी तथा भोलापुरा हैं।

खनिज संसाधनों कीं दृष्टि से समृद्ध इस प्रदेश में कोयले का सर्वाधिक खनन व सर्वाधिक भंडार भी है। यहाँ प्रमुख रूप से कोयला दामोदर घाटी के उत्तरी भाग व निचले भाग से तथा बाह्मणी नदी घाटी से निकाला जाता है।

यहाँ उत्तम प्रकार के लौह भण्डार हैं। मुख्य उत्पादन केन्द्र–गुरूमहिसानी, नोआमण्डी, मानभूम, सुलेपात, बादाम पहाड़, बरमजादा, सिंहभूमि, क्योंझर व मयूरभंज हैं।

अभ्रक उत्पादन की दृष्टि से इस क्षेत्र का भारत में प्रथम स्थान है, कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत यहीं से प्राप्त होता है। प्रमुख उत्पादन केन्द्र–कोडरमा, गिरीडीह व सिंगूर हैं। कोडरमा विश्व की सबसे बड़ी अभ्रक मंडी भी है।

भारत के कुल क्रोमाइट उत्पादन का लगभग 96 प्रतिशत यही (उड़ीसा) से प्राप्त होता है। इसके अलावा टंगस्टन, बॉक्साइट, चाँदी, इल्मेनाइट भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

इस प्रदेश की आर्द्र एवं उपआर्द्र जलवायु कृषि उत्पादन की दृष्टि से उपयुक्त है। यहाँ की प्रमुख फसलें–खाद्य फसलों में मक्का, चावल, जी, गेहूँ अल्पमात्रा में बाजरा, ज्वार है। व्यापारिक फसलों में चाय, जूट, गन्ना, पटसन, तम्बाकू मुख्य हैं। जूट उत्पादन में तो इस प्रदेश का

लगभग एकाधिकार है। तिलहन फसलों में तिल, सरसों, अलसी, रागी, तथा फल सब्जी उत्पादित किये जाते हैं।

यह प्रदेश वन संसाधन की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इसके कुल क्षेत्रफल के 18 प्रतिशत भाग पर वन हैं यह प्रतिशत भारतीय औसत से कम है। यहाँ के प्रमुख वन–उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वन जिसमें साल, साखू सागोन, चंदन, रोजवुड, आम, कत्था प्रमुख है। ज्वारीय वनों में सुंदरी नामक वृक्ष मुख्य है जिसके कारण इसको सुन्दर वन भी कहते हैं। पर्वतीय वनों का विस्तार उत्तरी बिहार में है।

जनघनत्व की दृष्टि से भारतीय जनघनत्व से लगभग दुगना है। यहाँ का साक्षरता स्तर निम्न है जो कि लगभग 58 प्रतिशत है।

औद्योगिक क्रियाओं के आधार पर स्पष्ट है कि यहाँ भारत का विकसित औद्योगिक भू–दृश्य देखा जा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों में सम्पन्नता के कारण औद्योगिक परिदृश्यों में विविधता देखी जा सकती है। यहाँ कि प्रमुख औद्योगिक क्रियाओं में खनिज आधारित उद्योग जैसे लौह–इस्पात उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, कोक निर्माण उद्योग, चीनी मिट्टी के बर्तन, काँच उद्योग तथा अन्य रासायनिक उद्योग प्रमुख हैं। कृषि आधारित उद्योग में जूट, चीन, वस्त्र, डेयरी उद्योग मुख्य हैं। वन आधारित उद्योगों में कागज, रंगाई छपाई, रबर, रेशम के कीडे पालन, रासायनिक उद्योग प्रमुख है।

परिवहन सुविधाओं की दृष्टि से सड़क परिवहन भारत की कुल सड़क लम्बाई का 173 प्रतिशत भाग है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या – 2 कोलकाता–कानपुर, दिल्ली – अमृतसर (ग्राण्ड ट्रक रोड), कोलकाता –चेन्नई राजमार्ग संख्या – 5 तथा कलकत्ता – दिल्ली राजमार्ग संख्या – 7 आदि प्रदेश के प्रमुख राजमार्ग हैं। रेल परिवहन – भारत की पहली रेलमार्ग विकास योजना इसी प्रदेश के लिए तैयार की गई थी। भारत की दूसरी रेल लाइन 1954 में कोलकाता से रानीगंज डाली गई थी। वर्तमान रेल सुविधा कोलकाता, भुवनेश्वर, रांची, पटना, हावड़ा, आसनसोल, भागलपुर, कटिहार व पुरी में है। जल परिवहन की दृष्टि से भारत में प्रथम स्थान इसी क्षेत्र का है (आतंरिक जल परिवहन में) परिवहन हेतु मुख्य नदियाँ गंगा, गंडक, महानदी, भागीरथी, ब्रह्मणी, दामोदर मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त त्रिवेणी नहर, फरक्का बांध, दामोदर मुख्य हैं। त्रिवेणी नहर, फरक्का बांध की नहरें व तलन्दा नहर प्रमुख हैं। जबकि प्रमुख हवाई अड्डों में दमदम, पटना, भुवनेश्वर, गया, रांची, बिलासपुर मुख्य हैं। पाइप लाइन इस क्षेत्र में खनिज तेल परिवहन के लिए उपलब्ध है। जैसे नहरकटिया–नूनमाटी–बरौनी पाइप लाईन, हल्दिया–बरौनी–कानपुर पाइप लाइन जो मथुरा तक पहुँच गई है। रज्जू पथ की सेवा प्रदेश के दुर्गम भागों में खनन भार परिवहन के लिए है। इसमें 7 उत्पादन चक्र चल रहे है व दो की और संभावना है।

18.4.3 उत्तरी मध्य प्रदेश (North Central Region)

भारत के आर्थिक प्रदेशों में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह हिमालय का पदीय भाग व गंगा के अपवाह बेसिन का पृष्ट प्रदेश है। भौगोलिक कारकों की अनुकूलता के कारण कई प्रकार की आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र है। इस प्रदेश में उत्तर प्रदेश व उतरांचल राज्यों को सम्मिलित किया

गया है। आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र होने के कारण घनी जनसंख्या का जमाव इस प्रदेश में पाया जाता है। भारत के उत्तरी मध्य भाग में स्थित यह प्रदेश भारत के 9 प्रतिशत भाग पर फैला है। इस प्रदेश को तीन मध्याकार प्रदेशों में बांटा गया है –

(अ) उत्तरी हिमालय क्षेत्र

(ब) प. गंगा का मैदान

(स) पू. गंगा का मैदान

इस प्रदेश में आर्थिक क्रियाओं का केन्द्रीयकरण कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, आगरा, हरिद्वार, फरीदाबाद, मेरठ, गोरखपुर, इलाहबाद, अल्मोडा, देहरादून, गाजियाबाद, मथुरा में हुआ है। यहाँ अनेक प्रकार के खनिज संसाधन, वन संसाधन पाये जाते है। लेकिन वन संसाधन की दृष्टि से यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ है । यहाँ केवल 16.5 प्रतिशत भूमि वनाच्छादित है जो कि राष्ट्रीय औसत से कम है। यहाँ के प्रमुख वन पर्णपाती है जिसमें साल, सेमल, चीड़ साइप्रस, देवदार, बर्च मुख्य वृक्ष हैं।

इस प्रदेश में खनिज संसाधन सीमित लेकिन विभिन्नता के साथ हैं। यहाँ के प्रमुख खनिज–चूना पत्थर, संगमरमर, जिप्सम, मैग्रेटाइट, डोलोमाइट, सिलिका, बाक्साइट, ताँबा, फास्फोराइट है। देश कि लगभग 17 प्रतिशत आबादी इस प्रदेश में निवास करती है।

कृषि क्रिया इस आर्थिक प्रदेश की विशेषता है। यहाँ चावल, गेहूँ गन्ना, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, तिलहन, दलहन का उत्पादन किया जाता है। यहाँ पश्चिमी मैदान व पूर्वी गंगा मैदान क्रमश: गेहूँ व चावल के उत्पादन भारत के कुल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका बना रखी है। भारत में सबसे अधिक गेहूँ उत्पादन करने वाले राज्यों में उत्तर प्रदेश का भी स्थान है।

इस प्रदेश में प्रमुख उद्योग व उनके केन्द्र – हरिद्वार – भारी मशीन उद्योग, मथुरा – पैट्रोलियम, कानपुर – चावल, वस्त्र, चमड़ा उद्योग। आगरा – कृषि उद्योग, वाराणसी – लोकोमेटिव व रसायन उद्योग, मेरठ–वस्त्र व चीनी उद्योग, गाजियाबाद–वनस्पति, गोरखपुर–चीनी व उर्वरक, लखनऊ – कागज एंव चीनी उद्योग है। कृषि आधारित औद्योगिक क्रियाओं में गुड़, खाण्डसारी, चीनी उद्योग प्रमुख है। वनों पर आधारित उद्योगों में कागज, फर्नीचर, रंगाई छपाई, चमडा रंगने, लकड़ी के खिलौनों के उद्योग हैं। खनिजों पर आधारित उद्योगों में काँच, रासायनिक, सीमेंट, मशीनरी, पोटरी, शिल्प उद्योग है। इस प्रदेश में विनिर्माण उद्योग अधिक विकसित है जैसे भारी मशीन, धातु कर्मी, पैट्रो–रसायन, होजरी सामान, रेल इंजन, चमड़े की वस्तुओं का कार्य आदि मूलभूत खनिज न होने पर भी सम्पादित होते हैं।

परिवहन सुविधाओं की दृष्टि से व्यापक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसका प्रमुख कारण अनुकूल भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारक है। गंगा के मैदान में सडकों का घना जाल है। इस प्रदेश के प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्ग 2, 7, 24, 25, 28, 29, 56, व 58 हैं। रेल परिवहन का विकास पर्याप्त हुआ है। यह प्रदेश मध्य एवं उत्तरी–पूर्वी रेल मण्डलों के अन्तर्गत है यहां गंगा, यमुना, गोमत्ती, घाघरा व सहायक नदियां हैं। गंगा व यमुना से निकलने वाली नहरें भी जल – परिवहन में योगदान देती हैं। केन्द्रवर्ती स्थिति के कारण वायु परिवहन सुविधा सुलभ है। यह

विदेशी वायु सेवा से जुडा क्षेत्र है। इसके प्रमुख हवाई अड्डे – झांसी, आगरा, लखनऊ, कानपुर हैं। इसके अलावा रजू पथ, पाइपलाइन, जानवरों द्वारा भी परिवहन होता है। इस प्रदेश में 5 उत्पादन चक्र चल रहे हैं, शेष चार की संभावना कम है।

18.4.4 मध्यवर्ती प्रदेश (Central Region)

मध्यवर्ती प्रदेश में मध्य प्रदेश तथा छतीसगढ़ राज्यों को शामिल किया गया है। यह प्रदेश भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 13 प्रतिशत भाग पर फैला हुआ है। इस प्रदेश को चार भागों में विभाजित किया गया है –

(अ) पूर्वी मध्य प्रदेश

(ब) पश्चिमी मध्य प्रदेश

(स) बस्तर क्षेत्र

(द) मध्यवर्ती मध्य प्रदेश

इस प्रदेश की उत्तरी सीमा में उत्तर प्रदेश, राजस्थान रख बिहार का कुछ भाग है, जबकि पूर्व में झारखण्ड एवं उड़ीसा, दक्षिण में महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश व पश्चिम में राजस्थान व गुजरात राज्य स्थित हैं।

मध्यवर्ती आर्थिक प्रदेश के आर्थिक क्रियाओं के केन्द्र – भोपाल, जबलपुर, रतलाम, रायपुर, इन्दौर, ग्वालियर, भिलाई, दुर्ग, उज्जैन, कटनी मुख्य है।

संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार यहाँ लौह अयस्क – बस्तर, दुर्ग जिले, मैगनीज – भारत का सर्वाधिक, बॉक्साइट – सर्वाधिक जमाव यहीं हैं मुख्य केन्द्र बालाघाट, दुर्ग, कटनी, बस्तर, कोरापुर हैं। अन्य संसाधनों में संगमरमर, चूना पत्थर, कोयला, सिलीमेनाइट आदि हैं।

कृषि संसाधन – कृषि के लिए यहाँ की आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय जलवायु दशाएं अनुकूल हैं। यहाँ की मुख्य कृषि फसलें – गेहूँ चावल, मक्का, जी, बाजरा, कपास, गन्ना, सोयाबीन हैं।

वन संसाधन इस प्रदेश में भारत के राष्ट्रीय औसत से दुगने हैं। इस प्रदेश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 38 प्रतिशत भाग पर वन पाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य वन मानसूनी एवं ऊष्ण आर्द्र पतझड़ वन हैं जिनमें मुख्य रूप से साल, सागवान, पलाश, शीशम, पीपल, बड़, आँवला, शहतूत, अंजू साखू व जारल वृक्ष पाये जाते हैं। पठारी भागों में मूल्यवान सागवान के वृक्ष काफी मात्रा में पाये जाते है।

इस प्रदेश में भोपाल – जबलपुर, इन्दौर – उज्जैन लघु औद्योगिक प्रदेश हैं। यहाँ पर विभिन्न औद्योगिक क्रियाएं सम्पादित होती हैं जैसे खनिज आधारित उद्योग – एल्यूमिनियम, लौह–इस्पात, सीमेन्ट मैगनीज, व पोटरी उद्योग मुख्य हैं। वन आधारित उद्योग में लाख भारत की 25 प्रतिशत, कागज उद्योग (भारत की प्रथम अखबारी कागज मिल स्थापना) कटनी रबर उद्योग, इन्दौर, खालियर में रेशम उद्योग, दियासलाई, फर्नीचर, बीड़ी उद्योग मुख्य हैं। कृषि आधारित उद्योगों में वस्त्र, जूट, चीनी, रेशम, तम्बाकू मुख्य है। वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र भोपाल, जबलपुर, ग्वालियर व इन्दौर हैं जबकि चीनी उद्योग के मुख्य केन्द्र – ग्वालियर व

भोपाल है। रसायन उद्योग के केन्द्र – रायपुर, इन्दौर, जबलपुर, इटारसी व ग्वालियर हैं। इनके अलावा इस प्रदेश के अन्य उद्योगों में मोटरयान, इलेक्ट्रोनिक सामान, प्लास्टिक सामान के उद्योग हैं।

परिवहन की दृष्टि से सड़क परिवहन का विकास अधिक है। प्रदेश के नगरों को जो राजमार्ग जोड़ते है उनमें 3, 6, 7, 12, 16, 26, 43, 75, 78, 86 मुख्य हैं। जबकि रतलाम, इन्दौर, जबलपुर, भोपाल, रायपुर, भिलाई, ग्वालियर नगर रेलमार्ग से जुडे हुए हैं। यहां की सोन, केन, नर्मदा, चम्बल की सहायक नदियों से अल्प जल परिवहन सुविधा प्राप्त है। वायु परिवहन से जुडे नगर इन्दौर, भोपाल, रायपुर आदि हैं। इसमें 4 उत्पादन चक्र चल रहे है तथा 2 की और संभावना है।

18.4.5 उत्तरी पश्चिमी प्रदेश (North Western Region)

इस आर्थिक प्रदेश में राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली सम्मिलित है। उत्तरी पश्चिमी प्रदेश को 6 मध्याकार प्रदेशों में विभक्त किया गया है–

(अ) पंजाब का मैदान

(ब) केन्द्र प्रशासित दिल्ली

(स) पश्चिमी राजस्थान

(द) पूर्वी राजस्थान

(य) हिमाचल की पहाड़ियां व दून क्षेत्र

(र) कश्मीर घाटी व आसपास की पहाड़ियां

यह प्रदेश कुल भारतीय क्षेत्रफल के 215 प्रतिशत पर फैला है। इसके उत्तर में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, पश्चिम में पाकिस्तान, पूर्व में उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश एव दक्षिण में गुजरात व मध्य प्रदेश है। यहां दिल्ली, चण्डीगढ़, पंजाब, हरियाणा का उपजाऊ क्षेत्र हिमाचल प्रदेश (फल व पर्यटन में अग्रणी) जयपुर स्थित हैं। दिल्ली, चण्डीगढ़, जयपुर, गुड़गांव, फरीदाबाद, रोहतक, रेवाडी, अमृतसर, श्रीनगर, जम्मू उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, भीलवाड़ा विकसित केन्द्र हैं।

संसाधन उपलब्धता की दृष्टि से प्रदेश अभाव ग्रस्त है। कृषि व मानव की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस प्रदेश के संसाधनों में कृषि में (पंजाब हरियाणा) कपास, गेहूँ की प्रति हैक्टेयर उत्पादन सबसे अधिक है। मुख्य फसलें गेहूँ चावल, बाजरा, जी, मक्का, ज्वार जबकि व्यापारिक फसलों में गन्ना, तम्बाकू, कपास, केसर, जीरा, सण मुख्य हैं। दलहन उत्पादन में मोठ, मूंग, चना, उड़द, चवला, राजमा। तिलहन उत्पादन में सरसों, तिल, रागी, मूंगफली, तारामीरा मुख्य हैं।

पश्चिमी राजस्थान के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रदेश में खनिज संसाधनो का अभाव है। यहाँ लोहे तथा कोयले की कमी है। यहाँ के प्रमुख खनिज – जिप्सम, अभ्रक, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, टंगस्टन, ताँबा, स्लेट, संगमरमर, गंधक, खडिया इमारती पत्थर व मुलतानी मिट्टी है। थोडी

मात्रा में लोहा (जयपुर) व लिग्राइट कोयला कश्मीर – हिमाचल प्रदेश में है। इस क्षेत्र में उपलब्ध लगभग प्रत्येक संसाधन पश्चिमी राजस्थान में है।

वन संसाधन की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश को छोडकर पूरे भाग में कमी है। पूरे प्रदेश में वनों का औसत कुल क्षेत्र का केवल 10.5 प्रतिशत ही है। यहाँ के मुख्य वनों में – हिमाचल के वन जिसमें फर, सिल्वर, बर्च, देवदार, चीड़, पाइन, ढाक, शाल, जामुन, स्पर हैं। पतझड़ वन में – शीशम, नीम, बबूल, शहतूत एव पीपल हैं। जबकि प. मरूस्थलीय वन में – अरीठा, कुमठा, बबूल, खैर, कीकर, आंवला, नागफनी एव झाडियां हैं।

इस प्रदेश में कुल जनसंख्या का 128 प्रतिशत निवास करता है। यहाँ की औसत साक्षरता 65 प्रतिशत है।

उत्तरी पश्चिमी प्रदेश की प्रमुख ऊर्जा परियोजनाओं में झेलम, भाखड़ा, पले, राणाप्रताप (जलीय) पानी पत, दिल्ली, कोटा (ताप) मुख्य रावत भाटा में परमाणु ऊर्जा के केन्द्र हैं।

इस प्रदेश का प्रमुख औद्योगिक प्रदेश अमृतसर, अम्बाला है। यहाँ होजरी व खेल का सामान बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिल्ली, चण्डीगढ़, जम्मू गुड़गाव, जयपुर व कोटा प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र हैं। यहाँ खनिज आधारित उद्योगों में हिन्दुस्तान जिंक (उदयपुर) हिन्दुस्तान कॉपर लि. (खेतड़ी) सीमेन्ट, पॉटरी, संगमरमर उद्योग प्रमुख हैं। कृषि पर आधारित उद्योगों में वस्त्र उद्योग – धारीवाल, अमृतसर, गंगानगर, जयपुर, श्रीनगर, पाली, भीलवाड़ा कोटा, उदयपुर में केन्द्रित है। भारत का सबसे अधिक ऊनी वस्त्रों का उत्पादन इसी प्रदेश में किया जाता है। चीनी उद्योग अमृतसर, रोहतक, फगवाड़ा, राजस्थान (गंगानगर, भोपाल सागर, विजयपुर) वन उद्योग – कागज – चंडीगढ़, होशियारपुर, सोनीपत फरीदाबाद, रेशम उद्योग – जम्मू कश्मीर, पंजाब में स्थित हैं। अन्य प्रकार के उद्योगों में रासायनिक उर्वरक उद्योग –नांगल (पंजाब) में स्थित है।

सामरिक महत्व के कारण परिवहन व्यवस्था का अच्छा विकास हुआ है, सड़क परिवहन द्वारा प्रदेश के प्रमुख नगर जुडे हुए हैं। यहां के मुख्य राजमार्गों में राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या – 1, अमृतसर – दिल्ली, राजमार्ग संख्या 2 – दिल्ली का पूर्वी भारत से जुडा है (ग्रांड–टंक रोड) राष्ट्रीय राजमार्ग – 8 दिल्ली से गांधीनगर राजमार्ग – 11 आगरा – जयपुर–बीकानेर, 14 काण्डला – अजमेर,

15 अमृतसर – गंगानगर – बीकानेर – जैसलमेर – बाड़मेर – काण्डला मुख्य हैं। रेल परिवहन प्रदेश के रेल मार्ग उत्तरी पश्चिमी रेल मण्डल के अन्तर्गत है। सभी मुख्य नगर रेलसेवा का लाभ उठा रहे हैं। जल परिवहन केवल सिन्धु नदी तंत्र व यमुना की नहरों से उपलब्ध है। वायु परिवहन सेवाओं के मुख्य केन्द्र दिल्ली, जयपुर, चण्डीगढ़, शिमला, अमृतसर, जम्मू श्रीनगर, लेह, जोधपुर, उदयपुर हैं। इसमें 6 उत्पादन चक्र चल रहे हैं व अन्य की संभावना कम है।

18.4.6 पश्चिमी प्रदेश (Western Region)

पश्चिमी आर्थिक प्रदेश में गुजरात, महाराष्ट्र तथा दादर नगर हवेली व दमनद्वीप केन्द्र सम्मिलित हैं। इस प्रदेश के उत्तर में राजस्थान व मध्य प्रदेश, पूर्व में छतीसगढ़, आन्ध्रा,

दक्षिण में कर्नाटक व गोवा, पश्चिमी भाग में अरब सागर से सीमित है। इस प्रदेश को निम्न भागों में बाटा गया है

(अ) मुम्बई नगर एवं महानगरीय क्षेत्र

(ब) नागपुर एवं मुम्बई क्षेत्र

(स) महाराष्ट्र का तटीय भाग

(द) पश्चिमी महाराष्ट्र मुख्य रूप से पठारी भाग,

(य) पूर्वी महाराष्ट्र,

(र) मध्यवर्ती महाराष्ट्र,

(व) गुजरात का मैदान,

(प) सौराष्ट्र व

(फ) कच्छ में बांटा गया है।

प्रदेश में भारत की व्यापारिक राजधानी मुम्बई, अहमदाबाद, कांडला, मुम्बई तथा न्हावाशेवा (अत्याधुनिक सुविधा सम्पन्न) बन्दरगाह व उनका पृष्ठ प्रदेश, पेट्रोलियम, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा में अग्रणी होने से इस प्रदेश का आधार है।

इस प्रदेश के आर्थिक क्रियाओं के प्रमुख केन्द्र – मुम्बई, पुणे, शोलापुर, औरंगाबाद, अहमदाबाद, बडोदरा, सूरत, नागपुर, गांधीनगर, काण्डला, सतारा, नासिक, अहमदनगर, भावनगर, भुज हैं।

वन संसाधन कुल भौगोलिक क्षेत्र के औसत 19 प्रतिशत भाग पर हैं। यहाँ उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन, शुष्क पर्णपाती, उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र, ऊष्ण कटिबन्धीय आर्द्र सदाबहार वन पाये जाते हैं।

कृषि संसाधन की दृष्टि से उपजाऊ इस क्षेत्र में कपास, तूर, ज्वार, बाजरा चावल, गेहूँ गन्ना, मक्का, आलू अदरक, दलहन, तम्बाकू, फल, तिलहन पैदा किये जाते हैं।

खनिज संसाधनों में पेट्रोलियम व गैस, बॉक्साइट, लोहा, कोयला, नमक, मैंगनीज, घीया पत्थर, इमारती पत्थर, संगमरमर, डोलोमाइट मुख्य हैं। इस क्षेत्र को पेट्रोलियम एव प्राकृतिक गैस – मुम्बई, अंकलेश्वर, सूरत, कलोल, मेहसाना से प्राप्त है।

भारत की जनसंख्या 144 प्रतिशत यहाँ निवास करता है। इस प्रदेश का जनसंख्या घनत्व भारत के जनघनत्व से दो गुना हैं।

प्रदेश के कुल तीन औद्योगिक प्रदेश हैं – (i) मुम्बई – पुणे – शोलापुर (ii) अहमदाबाद – बड़ोदरा औद्योगिक प्रदेश (iii) नागपुर – वर्धा लघु औद्योगिक प्रदेश हैं। मुम्बई – पुणे – शोलापुर औद्योगिक प्रदेश में सूती वस्त्र, भारी इंजिनियरिंग, काँच, सीमेंन्ट, रसायन, औषधि, उर्वरक व पेट्रोल शोधन जैसी क्रियाएँ मुख्य है। अहमदाबाद – बडोदरा में सूती वस्त्र उद्योग, रेशम रसायन, चीनी, पेट्रो रसायन, डेयरी व इंजिनियरिंग उद्योग मुख्य हैं। नागपुर वर्धा प्रदेश – सूती वस्त्र, इंजिनियरिंग तथा रसायन उद्योग के लिए प्रसिद्ध है।

पश्चिमी प्रदेश में परिवहन सुविधाएं सर्वाधिक हैं। सड़क परिवहन की दृष्टि से महाराष्ट्र में सडकों की लम्बाई भारत में सबसे अधिक है। प्रमुख राजमार्ग – राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या – 8, 9, 57

है। रेल परिवहन की सुविधाएं भी पर्याप्त हैं। मुम्बई में नगरीय रेल सेवा भी उपलब्ध है। सभी मुख्य केन्द्र रेलमार्ग से जुडे हुए हैं। आन्तरिक जल परिवहन नर्मदा व ताप्ती नदियों से तथा सामुद्रिक जल परिवहन – काण्डला, मुम्बई सूरत से हैं। वायु परिवहन – सर्वप्रथम इसी प्रदेश को सुविधा प्राप्त थी। प्रदेश के नागपुर, मुम्बई, अहमदाबाद सम्पूर्ण विश्व की प्रमुख वायु सेवा से जुडे हुए हैं। इसी प्रदेश में विश्व की सबसे लम्बी भूमिगत गैस पाइप लाइन हाजिरा – बिजयपुर – जगदीशपुर (HBJ) 1750 किमी. लम्बी है। यहां 6 उत्पादक चक्र चल रहे है व 2 की ओर संभावना है।

18.4.7 दक्षिणी प्रदेश (Southern Region)

मुख्य रूप से पाँच राज्यों से मिलकर (तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा गोवा के अलावा अण्डमान – निकोबार, लक्षद्वीप) बना है। त्रिभुजाकार यह प्रदेश भारत का एक विशाल आर्थिक प्रदेश है। मंगलौर, बैंगलोर, चेन्नई, विशाखापट्टनम, मैसूर, तिरूचिरापल्ली व रामगुंडम इस प्रदेश के विकसित केन्द्र हैं। संसाधन की दृष्टि से, खनिज संसाधन – खनिजों में कोयले का जमाव गोदावरी क्षेत्र में भारत का 7 प्रतिशत तेल आन्ध्रप्रदेश व तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों से निकलता है। इसी प्रदेश में तीन लौह पेटियां – कर्नाटक पेटी, तमिलनाडु व गोवा पेटी है। मैगनीज आन्ध्र प्रदेश, बाक्साइट के जमाव नील गिरी, सेलम, मदुरै व कोयम्बटूर जिलों में हैं। तांबा खम्मन, गुंटूर, कुरनुल (आन्ध्र प्रदेश) व चित्रद्रग एवं हसन (कर्नाटक) में पाये जाते हैं। इस आर्थिक प्रदेश का खनिज की दृष्टि से प्रथम स्थान है।

इस प्रदेश की शस्य गहनता (Cropping Intensity) भारत की शस्य गहनता से अधिक है। इस प्रदेश की प्रमुख फसलें चावल, ज्वार, गन्ना, कपास, चाय, काफी, तिलहन है।

कृषि आधारित उद्योगों में गन्ना, सूती वस्त्र, वनस्पति तेल उद्योग का विशेष स्थान है। सूती वस्त्र उद्योग तमिलनाडु में, चीनी उद्योग तमिलनाडु, केअर्काट, मुदैरे, कोयम्बटूर, तिरूचिरापल्ली जिलों में, कर्नाटक में बेलगांव, बीजापुर, शिमोगा, मांडवा व चित्रद्रग तथा आन्ध्रप्रदेश में विशाखापट्टनम, चितूर में विकसित है।

वन आधारित उद्योगों में कागज – आन्ध्र प्रदेश के सीरपुर, राजमहेन्द्री भद्रावती, रामनगरम् व बैंगलौर (कर्नाटक) में उत्पादन केन्द्र खनिज पर आधारित उद्योगों में लौह–इस्पात – भद्रावती, विशाखापट्टनम, हास्पेट (आन्ध्र प्रदेश), सेलम (तमिलनाडु) केन्द्रों पर विकास हुआ है। जलयान निर्माण का काम विशाखापट्टनम व कोचीन में हुआ है। इसके अलावा यहाँ इंजीनियरिंग, सीमेंट उद्योग का मुखतः विकास हुआ है।

सीमेन्ट उद्योग के केन्द्र कृष्णा, विजयवाडा (आन्ध्र प्रदेश), बंगलौर, भद्रावती (कर्नाटक), डालमिया नगर, तुल्लका पट्टी (तमिलनाडु) औद्योगिक क्षेत्रों में हुआ है। अन्य उद्योगों में रसायन उद्योग का विकास इस प्रदेश में हुआ है।

दक्षिणी आर्थिक प्रदेश में परिवहन व यातायात का पर्याप्त विकास हुआ है। अधिकांश भाग पठारी व पहाड़ी होने के कारण यातायात विकास कठिन रहा है। नदियों में प्रपात होने के कारण जल यातायात कम रहा है।

रेल परिवहन मध्यम सघन रेल जाल युक्त है। पठारी व पहाड़ी भाग इसके विकास में प्रमुख बाधा है। इस क्षेत्र के मुख्य नगर चेन्नई,

हैदराबाद, तिरूवन्तपुरम अन्य छोटे नगरों के साथ जुडते हुए भारत के उत्तरी भाग से जुड़े हैं। 1998 में कोंकण रेलमार्ग बन जानें से यह प्रदेश पश्चिमी प्रदेश से जुड़ गया। इसके बन जाने से मुम्बई – मंगलोर – कोयम्बटूर की दूरियां कम हो गई हैं।

सडकों का घनत्व तमिलनाडु में सर्वाधिक है। पक्की सड़कों में घनत्व के हिसाब से तमिलनाडु व केरल का देश में दूसरा व तीसरा स्थान है। यह क्षेत्र राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 7, 2, 17 से जुडा हुआ है। राष्ट्रीय राजमार्ग 17 हैदराबाद, बंगलौर व कन्याकुमारी तक जाता है।

धरातलीय उच्चावच में विषमता के परिणाम स्वरूप पर्याप्त जल परिवहन विकसित नहीं हो सका। गोदावरी, कृष्णा के डेल्टा क्षेत्र व केरल में प. तट नहर जल परिवहन में प्रमुख हैं। इसके अलावा आन्ध्रप्रदेश व तमिलनाडु की बकिंघम नहर व कम्बरजुआ नहर प्रमुख नाव्य नहरें हैं। इसमें 8 उत्पादन चक्र चल रहे है व 1 की और संभावना है।

बोध प्रश्न – 1

1. आर्थिक प्रादेशीकरण का उद्देश्य एक लाइन में बताओ।

   ....

   ....

2. डा. पी.सेन गुप्ता ने किसके ऊर्जा उत्पादन चक्र (Energy Production Cycle) सिद्धान्त को आधार माना।

   ....

   ....

3. डॉ पी सेन गुप्ता ने भारत को कितने वृहदाकार प्रदेशों में विभक्त किया है ?

   ....

   ....

4. आर्थिक प्रदेश निर्धारण में किस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये ?

   ....

   ....

18.5 सारांश (Summary)

प्राकृतिक संपदा की दृष्टि में भारत सम्पन्न होते हुए भी गरीब व पिछड़ा हुआ देश है। भारत की विशाल जनसंख्या सीमित संसाधनों पर निर्भर है परिणामस्वरूप अनेक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक उलझनें पैदा हो जाती हैं। अत्यधिक जनसंख्या के अतिरिक्त उसका ग्रामीण स्वरूप, असमान वितरण विकास के मार्ग में बाधा है। अत वैज्ञानिक प्रादेशिक नियोजन ही आर्थिक विकास को सही दिशा दे सकता है।

आर्थिक प्रदेश भौगोलिक व सांस्कृतिक तत्वों के द्वारा जनित क्षेत्र होते हैं। इनका निर्धारण आर्थिक क्रियाओं, संसाधनों के प्रकार उपयोग के आधार पर किया जाता है। इसका उद्देश्य देश के सभी भागों का संतुलित विकास करना है। भारत को आर्थिक
प्रदेशों में विभक्त करने का प्रयास बहुत से विद्वानों ने किया। पी.सेन गुप्ता ने भारत को वृहदाकार, मध्याकार, लघु आकर प्रदेशों में विभक्त कर आर्थिक प्रादेशीकरण को नई दिशा प्रदान की है।

18.6 शब्दावली (Glossary)

- **प्रादेशीकरण (Regionalisation) :** किसी संपूर्ण क्षेत्र या भूखंड को चयनित आधारों पर अनेक उपविभागों या प्रदेशों में विभाजन की प्रक्रिया।
- **आर्थिक प्रदेश (Economic Region) :** ऐसे भौगोलिक प्रदेश जिनमें अर्थव्यवस्था उद्योग, व्यापार, परिवहन व अन्य सम्बन्धित तृतीयक क्रियाओं की समानता पायी जाती है।
- **नगरीयकरण (Urbanization) :** किसी ग्राम्य प्रधान समाज के नगरीय प्रधान में रूपान्तरण की प्रक्रिया को नगरीयकरण कहते हैं।
- **औद्योगिकरण (Industrialization) :** जब एक प्रदेश की अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है, औद्योगिकरण करते हैं।
- **महानगर (Metropolis) :** जनसंख्या की दृष्टि से दस लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों को महानगर कहते हैं।
- **अवसंरचना (Infrastructure) :** किसी अर्थव्यवस्था या क्षेत्र के सम्यक् विकास के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना या ढांचा जिसके ऊपर ही समस्त विकास कार्य निर्भर होते हैं।
- **मात्रात्मक विधि (Quantitative Method) :** परिकल्पनाओं के परीक्षण तथा सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु आंकड़ों की संख्यात्मक व्याख्या।
- **संतुलित विकास (Balance Development) :** सम्पूर्ण प्रदेश या इकाई का एक समान विकास होना।
- **निचले स्तर से नियोजन (Planning from Below) :** सम्पूर्ण विकास हेतु प्रदेश की सबसे छोटी इकाई का चयन कर विकास का लाभ देना।

18.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Alexander, E.R. : **Approaches to Planning : Introducing Current planning theories, Concepts Issue, Gorden & Breach,** Philadelphia, 1992.
2. Bhat, L.S. : Regional **Planning in India SPS**, Calcutta, 1971.
3. Chatterjee, S.P. : **"Region, Regionalism and Economic Regionalisation"** The Geographer Vol. XIV, 1967.

4. Datta and Chaudhary : **" Regional Planning in India" in Issue in regional Planning edited by Dunham and hilborst**, Mouton, London 1971.
5. Mishra, R.P. : Sundram K.V., Prakash Rao, V.L.S. : **regional Development Planning in India,** A New Stratagy, Vikas Publishing house, New Delhi, 1974
6. Mishra, R.P. (ed) : **Regional Planning, Concepts, Techniques, Policies and case studies,** Concept, New Delhi,1992.
7. Mishra, A. : **Levels of Regional Development in India,** Census of India, New Delhi, 1965.
8. Pal, M.N. : **" A Method of regional Analysis of Economic Development with special reference to south India : journal of Regional Science**, Vol. 5 No 1, 1968.
9. Sen Gupta, Sadasyuk, P.S. : **G Economic Regionalisation of India : Problems and approaches, Census of India Monograph,** Edited by Mishra, New Delhi,1968.

18.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. प्रदेशों का सर्वांगीण विकास करना।
2. प्रो. कोलोस्विस्की (N.N Kolosiveskey)
3. सात बृहदाकार प्रदेशों में।
4. उन प्राकृतिक दशाओं एवं मानवीय क्रियाओं का जिनसे उस प्रदेश की जनसंख्या और समाज को आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति मे सहायता मिलती है।

18.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत को आर्थिक प्रदेशों में विभाजित कीजिये।
2. आर्थिक प्रदेशों के विभाजन के लिए कोई योजना बनाइये तथा अपनी योजना का आधार बतलाईये व एक आर्थिक प्रदेश का वर्णन कीजिये।
3. 'हमको, अपनी संपदाओं के विकास लिए और अधिक उत्तम योजना बनाने के लिए, भारत को आर्थिक प्रदेशों में विभक्त करनाचाहिये' इस विषय पर अपने समकक्ष विद्यार्थियों के साथ वाद–विवाद आयोजित करें।

ISBN No. - 13/978-81-8496-008-2